या नहीं। यों हीं इधर उधर के रिसालों, अखबारों, अनार्ष ग्रन्थों तथा अनार्ष भाष्यों को पेश करके अपना तथा हमारा समय व्यर्थ न खोवें।

प्रथम संस्करण

सत्यार्थप्रकाश तथा संस्कार विधि

वेद भाष्य सत्यार्थ प्रकाश तथा अन्य पुस्तकों के संस्कृत अंशों के हिन्दी अनुवाद का तथा उन के प्रूफों के पढ़ने का काम पण्डितों पर ही छोड़ दिया गया था। पौराणिक शिक्षा के संस्कार वाले उन पण्डितों ने कहीं २ ऐसी बातें उन पुस्तकों में धरदीं। जो वैदिक शिक्षा के विरुद्ध थीं। अतएव स्वामी जी ने संवत् १९३५ ईस्वी सं० १८७८ में नीचे लिखा विज्ञापन प्रकाशित किया।

विज्ञापनम्

सब को विदित हो कि जो जो बातें वेदों की और उन के अनुकूल हैं। उनको मैं मानता हूं। विरुद्ध बातों को नहीं, इससे जो जो मेरे बनाये सत्यार्थ प्रकाश वा संस्कार विधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तक के वचन बहुत से लिखे हैं। वे उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिये लिखे हैं। उन में से वेदार्थ के अनुकूल को साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध को अप्रमाण मानता हूं। जो जो बातें वेदार्थ से निकलती हैं। न सब को प्रमाण करता हूं। क्योंकि वेद ईश्वर वाक्य होने

से सर्वथा मुझ को मान्य हैं। और जो १ ब्रह्माजी से लेके जैमिनिमुनि पर्य्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल करते हैं। उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं। और जो सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ४२ पंक्ति २५ में "पित्रादिकों में से जो कि जीता हो उसका तर्पण न करे और जितने मर गये हैं उन का तो अवश्य करे" तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ में 'मरे भये पित्रादि का तर्पण और श्राद्ध करता है" इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है। सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इस के स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त रखना यह पुत्रादि का परम धर्म्म है। और जो २ मर गये उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए के पास किसी पदार्थ को पहुंचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि से दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्रद्धा है। अन्य नहीं। इस विषय में मन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अंक के पृ० २५१ से १२ अंक के २६७ पृ० तक छपा है। वहां देख लेना। (दयानन्द ग्रन्थ माला पृ० १४—१५)।

"जिस समय मैं ने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठनपाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था ... भाषा बोलने ...

खने का अभ्यास हो गया है। इसलिये इस ग्रन्थ को भाषा-करणानुसार शुद्ध करके दूसरी वार छपवाया है। कहीं २ शब्द, वाक्य, रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किये बिना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हां जो प्रथम छपने में कहीं २ भूल रही थी वह निकाल शोधकर ठीक २ करदी गई है"।

(सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका)

वाक्यार्थ बोध

"वाक्यार्थबोध में चार कारण होते हैं--आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य। जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है तब उस को ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है। "आकाङ्क्षा" किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थपदों की आकांक्षा परस्पर होती है। "योग्यता" वह कहाती है कि जिस से जो हो सके जैसे जल से सींचना। "आसत्ति" जिस पद के साथ जिस का सम्बन्ध हो उसी के समीप उसको पद बोलना वा लिखना। "तात्पर्य" जिस के लिये वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो उसी के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना। बहुत से पठनहठी दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं, विशेषकर मत वाले लोग। क्योंकि मत के आग्रह से उन की बुद्धि अन्धकार में फंस के नष्ट हो जाती है। (सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका पृ० २)

व्याख्या

(१) आकांक्षा नाम इच्छा का है। जैसे बोलने और सुनने वाले की विषय को जानने की इच्छा होती है। वैसे ही वाक्यों में भी शब्दों की आपस में इच्छा होती है। अर्थात् जब तक किसी पद के साथ इच्छानुसार दूसरे पदों को मिलाया न जावे तब तक वाक्य अपूर्ण रहता है। इस से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। उदाहरणार्थ एक आदमी बोलता है "घोड़ा" अब इस घोड़ा पद को दूसरे पदों की ज़रूरत है। जब तक और पद उस के साथ न मिलाये जावें तब तक केवल घोड़ा कहने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। क्या पता लगे कि कहने वाले की क्या इच्छा है। वह "घोड़ा लाओ" कहना चाहता है या "घोड़ा लेजावो" 'घोड़ा खरीदो' 'घोड़ा बेचो' 'घोड़ा आता है' 'घोड़ा जाता है' 'घोड़ा कूदता है' 'घोड़ा दौड़ता है' कहना चाहता है। सारांश यह कि जब तक घोड़ा पद के साथ कोई और पद न जोड़ा जाय तब तक बोलने वाले के प्रयोजन को नहीं जाना जा सकता। इसी को आकांक्षा कहते हैं।

(२) योग्यता नाम क़ाबलियत का है। जिस चीज़ में जो काबलियत हो वही समझना। जैसे जल में सैराब करने की क़ाबिलीयत है। और आग में जलाने की क़ाबलियत है। तो इन दोनों को वैसा ही समझना योग्यता है। किंतु पानी को जलाने वाला और आग को सिंचन करने वाला समझना योग्यता के विरुद्ध है।

(३) आसत्ति नाम समीपता का है। जिस पद का जिस पद के साथ संबंध हो उसी के साथ बोलना आसत्ति

कहलाती है। इस के विरुद्ध करना आसत्ति के विरुद्ध है। जैसे एक मनुष्य ने देशी खांड की दुकान खोली और उसने अपनी दुकान पर यह बोर्ड लिख कर लगाया कि 'यहां पर देशी खांड मिलती है' किंतु पढ़ने वाला इस को इस प्रकार से पढ़ता है कि 'यहां' परदेशी खांड मिलती है' अब देखिये यहां केवल 'पर' पद को यहां के साथ न पढ़ कर देशी के साथ मिला कर पढ़ने से दुकानदार का मतलब बिलकुल खबत हो जाता है। और ग्राहकों पर क़तई उस के विरुद्ध संस्कार पड़ता है। ऐसा करना आसत्ति के विरुद्ध है।

(४) तात्पर्य नाम अभिप्राय का है। लिखने वाले या बोलने वाले ने जिस अभिप्राय के लिये कुछ लिखा वा बोला हो। उस से वही अभिप्राय ग्रहण करना तात्पर्य कहाता है। उसके विरुद्ध कल्पना करना तात्पर्य के विरुद्ध है। जैसे एक मनुष्य का जूता टूट गया था। वह बाज़ार में जूता खरीदने गया। किंतु उस को सारे शहर में जूता न मिला। वह सायं एक मित्र के मकान पर गया और उस से कहने लगा कि 'यार यह शहर कितना निकम्मा है कि यहां जूते भी नहीं मिलते'। मित्र ने फौरन हंस कर उत्तर दिया कि 'आप का शिर सलामत चाहिये जूतों की क्या कमी है'। अब ज़रा विचार करें कि उस ने तो जूतों का पैर के लिये ज़िक्र किया था किंतु उसके मित्र ने उसके अभिप्राय के विरुद्ध शिर के लिये जूतों का प्रयोग करके मखौल बना लिया। ऐसा करना तात्पर्य के विरुद्ध होता है।

जो आदमी इन चारों बातों को ध्यान में रखकर किसी पुस्तक को पढ़ना है। वह ग्रन्थ कर्ता के अभिप्राय को ठीक समझता है। किंतु जो मनुष्य इन चारों बातों को ध्यान में न लाकर स्वार्थ, अंधविश्वास और बेईमानी से ग्रन्थ-कर्ता के अभिप्राय के विरुद्ध उसके ग्रन्थ के लेख में से अभि-प्राय निकाल कर जनता को धोका देता है। वह महापापी आत्म हत्यारा और नरक गामी है। जैसा कि वेद की आज्ञा है कि—

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति ये के चात्म हनो जनाः॥
(यजु० ४०।३)

भाषार्थ—जो मनुष्य आत्म हत्यारे हैं। वे इस जीवन में भी दुःख पाते हैं। और मरने के पश्चात् भी ऐसे लोक लोकान्तरों को प्राप्त होते हैं। जो अंधे अंधेरे से ढके हुवे हैं। और जिन में निशाचर लोग निवास करते हैं।

हम इस बात को विना संकोच के कह सकते हैं कि स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों के बारे में सनातन धर्म्म के ठेकेदार पूर्ण रूप से आत्म हत्या से काम ले रहे हैं। और उपरोक्त चारों कारणों को तिलांजलि देकर स्वामी जी के ग्रन्थों के लेख को तोड़ मरोड़ कर स्वामी जी के अभि ाय के विरुद्ध अभिप्राय निकाल कर जनता को धोके में डालने का यत्न कर रहे हैं। उदाहरणार्थ—

(१) स्वामी जी ने "नतस्य प्रतिमास्ति यजु० ३२।३" के भाष्य में लिखा है कि "उस परमेश्वर की प्रतिमा, परिमाण,

उसके तुल्य, अवधिका साधन, प्रतिकृति, मूर्ति, वा आकृति नहीं है" एक बार का ज़िकर है कि ,एक स्थान में आर्य्य समाज तथा सनातन धर्म्म में मूर्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ हुवा। आर्य्य पण्डित ने सनातनी पण्डित की बोलती बन्द कर दी। पौराणिक पण्डित ने तंग आकर कहा कि यदि हम स्वामी दयानन्द जी के वेदभाष्य से मूर्ति पूजा दिखला दें तब तो मानोगे। लोगों ने कहा बिल्कुल ठीक है ज़रूर मानेंगे। तब पौराणिक पण्डित ने स्वामी जी का यजुर्वेद भाष्य उठाया और उपरोक्त भाष्य में से मूर्ति पद पर अंगुली रखकर दो चार साधारण भाषा जानने वालों को दिखा दिया कि देख यह मूर्ति लिखा है या नहीं। उन्हों ने कहा कि हां मूर्ति तो लिखा है। यह सुनते ही सनातनियों ने ताली बजा दी कि स्वामी जी के भाष्य से मूर्ति प्रसिद्ध हो गई। अब यह तरीका निश्चय पूर्वक आकांक्षा के विरुद्ध तथा आत्म हत्या करके नरक में जाने का साधन है।

(२) स्वामी दयानन्द जी ने अपने यजुर्वेद के भाष्य अध्याय २१ मंत्र ६० के भाष्य में लिखा है कि "ऐश्वर्य्य के लिये बैल से भोग करें (उपयोग लें) और अध्याय ६ मंत्र १४ के भाष्य में लिखा है कि "हे शिष्य! अच्छी शिक्षाओं से मैं तेरी जिससे रक्षा की जाती है उस गुदा इन्द्रिय को पवित्र करता हूं अर्थात् धर्म्मानुकूल करता हूं" किंतु सनातन धर्म्म के ठेकेदार यह कह कर जनता को धोका देते हैं कि स्वामी जी ने बैल से और शिष्य से मैथुन करने की आज्ञा दी है। हालांकि बैल में तथा शिष्य में मैथुन की योग्यता

नहीं है। तथा स्वामी जी ने 'भोग करें' के अर्थ 'उपयोग लें' तथा 'शुद्ध करता हूं' के अर्थ स्पष्ट 'धर्म्मानुकूल करता हूं' लिख भी दिये हैं। यह कथन योग्यता के विरुद्ध है।

(३) स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के दशम समुल्लास में लिखा है कि—

(प्रश्न) जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायें तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाय ? (उत्तर) यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त करदें। (प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंकदें ? (उत्तर) चाहें फेंक दें चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती,] किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है (सत्यार्थ० समु० १०)

इस पाठ को इकट्ठा पढ़ने से स्पष्ट पता लगता है कि स्वामी जी मुरदे के मांस को भी इस कारण अभक्ष्य बतला रहे हैं कि उस से गोश्त ख़ोरी का स्वभाव होकर स्वभाव का हिंसक होना संभव है। और हिंसा से प्राप्त किया पदार्थ अभक्ष्य है। किंतु पौराणिक मण्डल की

जमीर फरोशी देखें कि ये सत्यार्थ का उतना पाठ सुनाकर कि जितना कोष्ठ में दिया है। जनता में भ्रम फैलाते हैं। कि स्वामी जी ने मुरदा जानवर और मनुष्य के मांस खाने को आज्ञा दी है। हालांकि अगला पाठ पढ़ने से सारा भ्रम दूर हो जाता है। धर्म्म के ठेकेदारों का यह तरीक़ा आसक्ति के विरुद्ध है।

(४) स्वामी जी ने मनुष्य मात्र को वेद का अधिकार सिद्ध करने के लिये 'यथेमाम् यजु० २६ । २ २' के अर्थ में '(स्वाय) अपने स्त्री सेवकादि' लिख कर स्त्री तथा सेवकों को भी वेद पढ़ने का अधिकार बतलाया है। पौराणिक मण्डल ने इस से ईश्वर की स्त्री (पत्नी) तथा नौकर की कल्पना करके वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध ईश्वर को देहधारी सिद्ध करने का यत्न किया है। हालांकि यहां स्त्री से पत्नी का नाम नहीं अपितु स्त्री जाति तथा सेवक से ईश्वर भक्त मनुष्यमात्र का ग्रहण है। और समस्त स्त्री तथा मनुष्य ईश्वर की प्रजा होने से ईश्वर के स्व तथा ईश्वर सब का स्वामी है। इस प्रकार की चेष्टा तात्पर्य्य के विरुद्ध है।

आप इस सारी किताब में इसी प्रकार की चेष्टा देखेंगे ग्रन्थकर्ता ने स्वामी जी के सिद्धान्त के विरुद्ध स्वामी जी के ग्रन्थों के पाठ से अवतार, मूर्ति पूजा, श्राद्ध, जन्म से वर्ण व्यवस्था आदि उन बातों को सिद्ध करने की चेष्टा की है कि जिन को स्वामी जी ने वेद विरुद्ध सिद्ध करके उनका स्पष्ट खण्डन किया है। हम ने उन स्थलों की काफी समालोचना करदी है। पाठक पुस्तक को पढ़ते हुए उपरोक्त चार बातों का ध्यान रक्खें।

—मनसाराम 'वैदिक तोप'

विषय-सूची

पौराणिक पोल प्रकाश

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२-५	तर्का	तर्क
६-१	अनाष	अनार्ष
११-१६	जसे	जैसे
११-१७	उसको पद बोलना	उस पद को बोलना
१३-२	जसे	जैसे
१३-२३	तात्पय	तात्पर्य
१४-२	पढ़ना	पढ़ता
१४-२६	अभिाय	अभिप्राय
१५-१०	देख	देख लो
१८-३२	तथा ३३ नंबर के मध्य में	३२-२ स्वर्ग ४,४
२६-२०	पञ्चभूतम्	यच्चभूतम्
३६-११	मनुयों	मनुष्यों
४२-३	गुह्यकन्तं	गुह्यकस्तं
४२-२२	सोनावहे	सोना कहे
४५-६	चक्षः	चक्षुः
४५-१४	ऊर्ध्वमत्क्र-मत	ऊर्ध्व-मुत्क्रमत
४६-११	तेनहिति	तेनार्हति
५०-२३	मख है	मुख है
५१-२३	स्वल्या ज्याहुति	स्वल्पाज्या हुति
५२-१५-१६	पतिता	पतिव्रता
६७-१०	मंत्र में पढ़े हैं	मंत्र में पढ़े हैं
६६-३	राम मेघ नाद के बाण से ज़खमी हो कर मरे।	राम मेघ नाद के बाण से ज़खमी हो कर मूर्च्छित हुवें और कृष्ण भील के तीर से ज़खमी हो कर मरे।
७१-४	(४६) प्रश्न	(४६) इस
७८-१	जसे	जैसे
७६-५	विकार	विकारी
७६-१४	और जो कोई कहे कि भक्त जन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं	और जो कोई कहे कि भक्त जनों का उद्धार करने के

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
		लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं क्यों-कि जो भक्त जन ईश्वर की आज्ञा अनुकूल चलते हैं।
८५–२०	संबाधित	संबोधित
६२–१३	भजने	यजने
१०७–१५	सस्यस्य	सत्यस्य
११४–७	गुणों के	गणों के
११८–१८	कगांली	कंगाली
१२०–६	मुक्षीपमा	मुक्षीयमा
१४७–४	उसके पंच तत्वों	उसके शरीर पंच तत्त्वों
१५०–६	पह	यह
१५३–१५	यक्ष	यज्ञ
१५४–८	प्रतियाना	प्रति-यातना
१५६–३	प्रत्यक्षादीनं	प्रत्य-क्षादीनां

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१५६–१२	(११७)	(११८)
१६७–१	हज़ है	हर्ज है
१८०–११	मये समपि	अमये ऋषि
१८१–१६	लिये सब	लिये गये वे सब
१८५–५	कार्पिताः	कर्पिताः
१९०–१३	लोगों की पैदाइश	लिंगों की पैदाइश
१९०–२०	जलरुरी	जलहरी
१९२–४	लिंग	लिंगं
१९२–१	चिह्ना	चिह्नी
२००–८	पार्वती के वीर	पार्वती के पुत्र वीर
२०१–८	हेच्छतां	हेच्छता
२०२–२१	२ नं० ६	नं० २
२०७–२०	न बचेंगे से आगे	२१३–२ पढ़
२०८–८	सर्वथा से पान	सर्वात्म से पा
२०८–७	तृ० ३६	पृ० ३
२१२–२२	धार्मिक	धार्मि भक्त ज
२१५–१९	सिद्धि के	सिद्धि

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२१६–२३	जीव की	जीवन की
२१६–२६	इसे	इस से
२२२–२०	परमात्मा की आज्ञा मूर्तियां चांदी सूर्य	परमात्मा की बनाई हुई मूर्तियों चांद सूर्य
२३४–११	अयोऽन्य	अन्योन्य
२३५–६	सहि ावे	सहितावे
२३८–११	माना पुत्र	माता पुत्र
२३६–५	वात्मा- नाहि	वात्मा- नौहि
२५३–१६	सृष्टचां	सृष्ट्यां
३८०–६	चेतनं	चिंतनं
२८४–२१	ये तो	ये जो
२६२–८	मुण्डन	मुण्डक
२६३–३	मर और अवर	पर और अपर
२६५–२३	ऋतु	क्रतु
३०५–१३	नं० २६	नं. २०६
३०७–१५	न्यग्वेद	त्यृग्वेद
३१०–२२	ब्रह्मद्वारा	ब्रह्माद्वारा
३१२–१३	लोप	लेप
३१२–१४	संथा	सर्वथा
३२०–३	दृष्ट	दृष्टा
३२०–१६	सुखों द्वारा	दुःखों सुखों द्वारा
३२०–२४	योग्य	भोग्य
३२१–१४	कम करें	कर्म करें
३२३–१८	यह जोव	वह जीव
३२४–४	नियत होगया	नियत होगये और वे मुझे सज ूरन करने पडेंगे।
३२४–६	असूल	असूली
३२४–१२	घर एक	घर से एक
३२४–१६	पुत्रकाः	पुत्रकः
३२७–१७	जों	जावें
३२८–२२	कम कर	कर्म कर
३३२–१५	पुम	पुमां
३३४–१४	प्रेत्यामि	प्रेत्यापि
३३९–५	न्तित्य	न्नित्य
३५१–८	अद्भिज	उद्भिज
३५१–१५	नेत्र	क्षेत्र
३५५–१५	आत्मा	परमात्मा
३६४–५	कम	कर्म
३६५–९	कि कर्मों	किये कर्मों
३७४–१५	और	और न

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
३८०–१३	आग	आम
३८१–१६	रा	द्वारा
३८६–२३	अधर्म है	अधर्म्म से
३८८–८	आमुकिं	आमुष्मिकं
३९६–१३	वसे	वैसे
३९६–२१	अंधंतमः	अंधमतमः
३९६–२४	अमक	अमृत
३९७–२	कम	कर्म
४००–१८	दशन	दर्शन
४०३–२३	जसे	जसे
४०६–२२	लें	लेवें
४०८–१७	और करते हैं	और कर्म करते हैं
४१४–१८	से आगे	स्वर्ग
४१५–१६	लोगों	लोकों
४१५–१४	हैं	हूं
४१६–२४	कहीं है	नहीं है
४१७–१६	दुर्लेन्द्रियैः	दुर्बलेंद्रियैः
४१९–१	स्वग	स्वर्ग
४२२–५	इऽमें	इसमें
४३१–११	कि अथ	कि जो अर्थ
४३१–१३	जो ऐसा	जो पैसा

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
	करता है	नहीं करता है
४३९–२३	संस्कार	संस्कार से
पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
४४२–१२	अधिकार देने	अधिकार देने से
४४३–३	कसे	कैसे
४४६–२२	देना है	देता है
४४७–५	हर	रह
४४७–८	का	को
४५१–४	संभाजनी	संभोजनी
४५१–९	जसे	जैसे
५५१–२४	अत्यन्ज	अन्त्यज
५५५–५	क्रिवा	क्रिया
४५७–१	हितका है	हितकारी है
५५९–८	होना है	होता है
४६२–२४	ैठे	बैठे
४६५–१६	निध	निषेध
४६८–९	द्धि	सिद्ध
४६८–१६	वेदानं वाचनां	वेदानां वाचनं
४६८–२२	वजयेद	वर्जयेद
४७०–६	पहिन कर	पहिनाकर

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुधि
४७३-२३	यह	यह कैसे
४७३-२४	सकता है	सकता है कि
४७४-२४	ब्रह्मचारी अर्थात् अक्षत-वीर्य कुमार सारांश यह कि	सारांश यह कि ब्रह्मचारी अर्थात् अक्षत वीर्य कुमार
४७६-६	प्रथक	प्रथम
४७६-२२	युग्य	युग्म
४७७-६	मनुष्य	मनुष्य मात्र
४८१-२१	कोऽदाति	को अदाति
४८७-२	सायं का काल	संध्या का काल
४८७-३	श्यामा संध्या	श्यामा सुन्दरी
४९०-१७	वेदयासा	वेदपारगा
५५१-१६	मत	मृत
५५३-१६	वं तक	वर्ष तक
५६१-१५	वं के	वर्ष के
५६७-१४	भास्कर	पारस्कर
५६८-१७	भोग	भंग
५६९-१२	युवता	युवती
५७७-१६	सामता	सामृता

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
५७७-२३	भ्रूणहत्या	भ्रूणहत्या
५७८-७	रिागमन	द्विरागमन
५७८-१०	यहा	यह
५७८-१२	ब्रह्मचयव	ब्रह्मचर्यैव
५७९-४	मनुष्या स्तस्माद्	मनुष्यास्त स्माद्
५८२-२३	पन्त्या	पत्नया
५८४-५	विवाह के लिये मेरु पर्वत	विवाह के लिये सब देवताओं को मेरु पर्वत
५९१-२३	विवाइ	विवाह
५९४-१७	के लिये	के छोटी
६०५-११	शीतल	शील
६०५-१३	तरंगों	तदंगों
६१४-१९	पढ़े	पढ़े
६१९-१	तवं	तत्त्वं
६२३-१	॥२०॥ जिसके	जिसके जीवन में ये लक्षण हों उस का नाम ब्राह्मण है और जिस के जीवन में

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
६२४–६	तो जीवन एक वार	तो जो जीव एक वार
६२५–३	कृस्वा	कृत्वा
६२७–२	ाह्मण	ब्राह्मण
६३२–१६	मानों	यानों
६४१–६-७	वर्ण का धार जन्म तथा रज वीर्य शरीर में	वर्ण का आधार जन्म तथा रज वीर्य नहीं रज वीर्य तो शरीरमें ही
६४३–१६	सद्यः	(२) सद्यः
६४६–११	वांडाली	चांडाली
६५१–११	ब्राह्मण	अब्राह्मण
६५५–५	काज	काल
६५६–२३	गरदी हुए	गरदी करते
६६०–६	यद्यपि उत्तर	यद्यपि
६६२–५	मानें में	मानेंगे
६६४–१६	तप	तब
६६६–११	होता	होना
६७२–१४	दो ों	दोनों
६७६–२२	मानता	मानता है
६८१–१६	परि- सन्त्वयम्	परिसान्त्व- यन्

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
६८५–७	द्विजाः	द्विजः
६८६–६	लिलकुल	बिलकुल
६६०–२०	नहिं	तर्हि
६६३–२०	गुर्णा कर्म	गुणकर्म
६६६–१६	ही है	नहीं है
६६७–११	के खाने	कोई खाने
६६६–२	इत्यन्तर	त्यन्तर
७०३–१८	पेर	पेट
७०३–१६	कर हैं।	कर रहे हैं।
७०६–१६	शूद्रों के	शूद्रों को
७११–४	शूद्र से	से शूद्र
७११–१५	वह २ वर्णा	वह २ उस २ वर्ण
७११-१७-१८	शूद्राया	शूद्रायां
७१५–१	पदा	पैदा
७१७–२	मन्यते	मन्यन्ते
७१६–१	दारेणान्यां	दारेनान्यां
७२०–२४	यांलिखा	यों लिखा
७२५–२	(१०) क्या अंडज मछली में जरा युज मनुष्य का गर्भ संभव है।	
७२६–११	मायुष्य	मायुष्यं

पृष्ठ पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
७२८-१	दवतं	दैवतम्
७२२-१०	गणिक	गणिका
७२६-१२	वैश्यायन	वैश्यापन
७२९-१६	प्रेषितो	प्रेषिता
७३०-६	उंशी	उवंशी
७३८-४	ब्राह्मणादि की	ब्राह्मणादि को
७३८-२	जसेपूर्ण	जैसेपूर्व

स्थायी ग्राहकों के लिए नियम

(१) स्थायी ग्राहक बनने का प्रवेश शुल्क सिर्फ एक रुपया है।

(२) पुस्तकें प्रकाशित होते ही १५ दिन पहिले मूल्य आदि का सूचना-पत्र भेज देने के बाद—स्थायी ग्राहकों को २५) सैंकड़ा कमीशन काटकर वी० पी० द्वारा भेज दी जाती है।

(३) एक स्थायी ग्राहक एक ही प्रति ले सकता है।

(४) बाहर की—हिन्दुस्तान भर की—सब पुस्तकें स्थायी ग्राहकों को ≈) रुपया कमीशन पर मिल सकती हैं।

(५) स्थायी ग्राहक आर्डर देते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य नोट कर दिया करें, जिस में उनके आर्डर पर कमीशन काटने में भूल न हो।

(६) स्थायी ग्राहक की भूल से वी० पी० लौट आने पर डाक खर्च उनको ही देना पड़ता है, और दो बार वी० पी० लौट आने पर स्थायी ग्राहकों की सूची से उनका नाम काट दिया जाता है।

(७) सर्वसाधारण को निज प्रकाशन पर निम्नलिखित कमीशन दिया जाता है—

१) से	९) तक	६।)	रुपया सैंकड़ा
१०) से	२४) तक	१५)	,, ,,
२५) से	४९) तक	२०)	,, ,,
५०) से	९९) तक	२५)	,, ,,

आर्य साहित्य मन्दिर,

हस्पताल रोड, लाहौर।

ओ३म्

पौराणिक पोलप्रकाश

(१) मृत्युञ्जय आर्यसमाज

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।।अथर्व १०।८।३२

अर्थ—मनुष्य समीप रहनेवाले परमात्मा अथवा अपने आत्मा को नहीं देखता है। उस पास रहने वाले को छोड़ भी नहीं सकता। हे मनुष्य! ईश्वर के काव्य वेद को देख, वह न पुराना होता है और न मरता है।

आत्मा और परमात्मा इतने सूक्ष्म हैं, कि बिना विशेष ज्ञान के उसके दर्शन होने असम्भव हैं, किन्तु अदृश्य होने से कोई उनका त्याग भी नहीं कर सकता। क्योंकि वे अत्यन्त सूक्ष्म हैं। उनका ज्ञान प्राप्त करने के लिये परम गुरु परमात्मा की रचना वेद को पढ़ना विचारना चाहिये। प्रभु का यह काव्य (रसमय उपदेश) सदा बना रहता है, कभी विनष्ट नहीं होता, कभी पुराना नहीं होता। अर्थात् वेद में "तरमीम तन्सीख़" परिवर्तन न्यूनाधिकता और उसका लोप कभी नहीं होता, सदा नया बना रहता है। क्योंकि आर्यसमाज का मूलाधार धर्म-पुस्तकईश्वरीय ज्ञान वेद है जैसा कि आर्यसमाज के तीसरे नियम में स्पष्ट है कि "वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है" अतः आर्य-समाज भी ईश्वरीय ज्ञान वेद के साथ साथ सदा ही अमर है।

हां पौराणिक सनातन धर्म की मृत्यु में सन्देह नहीं है क्योंकि उसका मूलाधार धर्म पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान वेद अथवा वेदानुकूल स्मृतियां नहीं हैं। अपितु उसका मूलाधार अनित्य पौराणिक इतिहास है जैसा कि गरुड़पुराण में वर्णन है कि—

तर्कोऽप्रतिष्ठाः श्रुतयो विभिन्नाः।
नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम्॥
धर्म्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्।
महाजनो येन गतः स पन्थाः॥५१॥

गरुड़० आचारकांड अध्याय १०९।

अर्थ—दलील में निश्चलता नहीं वेदों में विरोध है एक भी ऐसा ऋषि नहीं है कि जिसकी सम्मति भिन्न न हो। इसलिये धर्म का तत्व गुफ़ा में रखा हुआ है। महापुरुष जिस रास्ते से चलें वही धर्म है।

उपरोक्त प्रमाणों से आर्यसमाज की अमर जोत तथा पौराणिक सनातन धर्म की अकाल मौत स्पष्ट है।

(२) ईश्वर स्तुति प्रार्थना

ओ३म् विश्वानि देव सवित दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव॥ यजु० अ० ३० मं ३॥

अर्थ—हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता समग्र ऐश्वर्ययुक्त शुद्ध स्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिये जो कल्याणकारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ हैं वह सब हमको प्राप्त कीजिये ताकि हम अज्ञानी वितंडावादी पौराणिकों

के प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देकर वैदिक सिद्धान्तों का संसार में प्रचार करने में समर्थ हो सकें। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

पौराणिक स्तुति का नमूना—

नूतन जलधररुचये गोपवधूटी दुकूल चौराय।
तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय ॥१॥

न्यायमुक्तावली प्रथम श्लोक।

अर्थ—उस नवीन मेघ के समान कान्ति वाले गोप लोगों की स्त्रियों के कपड़े चुराने वाले तथा संसाररूपी वृक्ष के बीज स्वरूप श्रीकृष्णजी के लिये नमस्कार हो।

गोपालो कामिनी जारश्चोरजारशिखामणिः ॥

गोपल सहस्रनाम

मातस्तातजटासु किं सुरसरि त्किंशेखरे चन्द्रमाः किं भाले हुतभुग्लुठत्युरसि किं नागाधिपः किंकटौ। कृत्तिः किं जघनद्वयान्तरगतं यद्दीर्घमालम्बते श्रुत्वा पुत्र वचोऽम्बिकास्मित मुखीलज्जावती पातुवः ॥२७॥ सुभाषित रत्न भांडागार ॥ पार्वती प्रकरण ॥

क्या मेरे पौराणिक भाईयों को इस प्रकार की ईश्वर स्तुति पढ़कर तनिक भी लज्जा नहीं आती।

(३) ईश्वर का स्वरूप

वेदों में ईश्वर को सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता वर्णन किया है। जैसा कि ऋषि दयानन्दजी ने आर्यसमाज के दूसरे नियम में

प्रतिपादन किया है और यजुर्वेद अध्याय ४० में पूर्ण रूप से ईश्वर के स्वरूप का वर्णन किया है। जैसा कि—

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ यजु० ४०। ८॥

अर्थ—हे मनुष्यो! जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित (अव्रणम्) छिद्ररहित और नहि छेद करने योग्य (अस्नाविरम्) नाडी आदि के साथ सम्बन्ध रूप बन्धन से रहित (शुद्धम्) अविद्या आदि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र और (अपापविद्धम्) जो पापयुक्त पापकारी और पाप में प्रीति करनेवाला कभी नहीं होता (परिअगात्) सब ओर से व्याप्त है जो (कविः) सर्वज्ञ (मनीषी) सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करनेवाला और (स्वयम्भूः) अनादि स्वरूप जिसके संयोग से उत्पत्ति वियोग से विनाश, माता, पिता, गर्भवास, जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादि स्वरूप अपने अपने स्वरूप से उत्पत्ति और विनाश रहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये (याथातथ्यतः) यथार्थ भाव से (अर्थान्) वेद द्वारा सब पदार्थों को (व्यदधात्) विशेष कर बनाता है (सः) वही परमेश्वर तुम लोगों के उपासना करने योग्य है।

इसी प्रकार से अनेकों वेद मन्त्र ईश्वर के स्वरूप को वर्णन करते हुए ईश्वर को निराकार प्रतिपादन करते हैं। चारों वेदों में एक भी वेदमंत्र ऐसा नहीं है कि जो ईश्वर को साकार वर्णन

करता हो। क्योंकि साकार होने से ईश्वर एक देशी हो जाता और सर्वव्यापक सर्वज्ञ आदि गुणों के अभाव से वह ईश्वर कहलाने के क़ाबिल ही नहीं रहता। अतएव वेद का सर्वतन्त्र सिद्धान्त यही है कि ईश्वर निराकार है। इसके विपरीत पुराणों में ईश्वर को जन्म धारण करने वाला शरीरधारी वर्णन किया गया है। जैसा कि--

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः।
संभूतं षोड़श कलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १ ॥

भागवत० स्कं० १ अध्याय ३।

अर्थ—आदि में सृष्टि को पैदा करने की इच्छा से परमात्मा ने षोडशकला संपूर्ण महानादि के साथ होने वाले मनुष्य के रूपको धारण किया। इत्यादि अष्टादश पुराणों में अनेक स्थानों पर ईश्वर के विविध प्रकार के अवतारों का वर्णन है। जो कि वेद के सर्वथा विरुद्ध और मिथ्या है। किंतु पौराणिक पण्डितों के सिर पर आज-कल एक ख़बत सवार हो रहा है कि वे ईश्वर के साकार होने के कलंक को वेदों के मत्थे मढ़ने की कोशिश में लगे हुए हैं। कहीं पर वेदों के नाम से अन्य किसी ग्रन्थ का प्रमाण देकर जनता को भ्रम में फंसाते हैं तो कहीं किसी ग्रन्थ का अपूर्ण (नामुक्कमिल) प्रमाण देकर ही अर्थ का अनर्थ कर डालते हैं। कहीं पर वेदमन्त्र का ही मनमाना अर्थ करके उसमें से ईश्वर को साकार साबित करने का प्रयत्न करते हैं। सारांश यह है कि यह लोग धर्म-अधर्म के विचार को बालाय ताक़ रखकर वेद विरुद्ध सिद्धान्तों को पुष्ट करने के प्रयत्न में आत्महत्या के भागी बनते हैं। इसका प्रमाण आपको अगले प्रश्न के उत्तर में मिलेगा।

ब्रह्म के दो रूप

(४) प्रश्न—वेद कहता है कि "उभयंवाएतत्प्रजापति निरुक्तश्चानिरुक्तश्चेत्यादि शतपथ० कां० १४ अ० १ ब्रा० २ श्रु० १८" प्रजापति (ईश्वर) दो प्रकार का है। रूपवान् और अरूप (साकार और निराकार)

उत्तर—(१) प्रथम तो इस प्रश्न में आपने वेद तथा श्रुति का नाम लेकर शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण देकर पाठकों को भ्रम में डालने का यत्न किया हैं। क्योंकि शतपथ वेद नहीं है अपितु ब्राह्मण ग्रन्थ है। और वह परतः प्रमाण है।

(२) दूसरे वेद के नाम से शतपथ का प्रमाण पेश करना इस बात को सिद्ध करता है कि आप वेद में से कोई ऐसा मन्त्र पेश नहीं कर सकते जो ईश्वर को साकार साबित कर सके।

(३) यहां शतपथ में भी ईश्वर का प्रकरण ही नहीं है। अपितु यज्ञ का प्रकरण है। आपने अधूरा पाठ दर्ज करके और "ईश्वर" शब्द को अपनी तरफ से मिलाकर अर्थ का अनर्थ किया है। जोकि सत्य-शील विद्वानों को शोभा नहीं देता। लीजिये हम शतपथ का पूरा पाठ दर्ज करके उस का अर्थ कर देते हैं। ताकि जनता को आपकी चालाकी का पता लग जावे। शतपथ में पाठ इस प्रकार से है। कोष्ठ में दर्ज पाठ को आपने चुरा लिया है।

(प्रजापति र्वाऽएष यज्ञोभवति) उभयं वा एतत्प्रजापति निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च तद्यद्यजुषा करोति यदेवास्यनिरुक्तं परिमितं रूपं

तदस्य तेनसंस्करो त्यथ यत्तूष्णीं यदेवास्यानिरुक्त-मपरिमितꣳरूपंतदस्य तेन संस्करोति (स ह वाऽएतं सर्वं कृत्स्नं प्रजापति ꣳ संस्करोति य एवं विद्वानेतदेवं करोत्यथोपशयायै पिण्डं परिशिनष्टि प्रायश्चित्तिभ्यः ॥ १८ ॥)

शतपथ० का० १४ अ० १ ब्रा० २ मं० १८

अब देखिये पुस्तक में ठीक पाठ इस प्रकार से हैं जिसको पहिले और पीछे से छोड़ कर आपने बीच का पाठ दे दिया है। पूर्व के पाठ से स्पष्ट है कि प्रजापति यज्ञ का नाम है ईश्वर का नाम नहीं है। सम्पूर्ण पाठ का अर्थ इस प्रकार सेहै।

अर्थ—प्रजापति यह यज्ञ है। यह प्रजापति यज्ञ दो प्रकार का है। रूपवान और अरूप। परिमित और अपरिमित। वह जो यजुर्वेद के मंत्रों से किया जाता है (अर्थात् जो यज्ञ में वेदी, पात्र, सामग्री, घृत, समिधा, याजक आदि) वह इस यज्ञ का कथन योग्य परिमित (महदूद) रूप हैं और जो वह उनसे संस्कार किया हुआ यज्ञ है (अर्थात् जो अग्नि द्वारा सूक्ष्म होकर वायु, जल, आकाश, आदि में फैल चुका है) उसके बारे में चुप ही होना पड़ता है। वह उस यज्ञ का न कथन करने योग्य अपरिमित (लामहदूद) रूप है। वह उस यज्ञ का उनसे किया संस्कार है। वह जो निश्चय से इस सारे संपूर्ण यज्ञ को जानता है। और जो इस यज्ञ का इस प्रकार से संस्कार करता है। वह उपशाय नाम क्रिया से भोजन को बचाकर प्रायश्चित के लिये करता है ॥ १८ ॥ अब कृपया पक्षपात को छोड़कर बतलावें कि शतपथ में यह यज्ञ के दो रूपों का वर्णन है या ईश्वर के दो

रूपों का। अतः ईश्वर की निराकारता वेदानुकूल होने से प्रमाण तथा सत्य तथा साकारता वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण तथा मिथ्या है।

(५) प्रश्न—ईश्वर समस्त ब्रह्माण्ड भर में व्यापक हो रहा है। और ब्रह्माण्ड के बाहर भी व्यापक है। ईश्वर दुनिया से बहुत बड़ा है। "पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ यजु० ३१।३॥" "इस ब्रह्म के एक पाद में समस्त ब्रह्माण्डों की रचना है। और इसी ब्रह्म के तीन पाद दिव में अमृत (सृष्टि रहित) हैं" वेद ने हमको यह समझा दिया कि ईश्वर के एक हिस्से में तो दुनिया बनी है, और ईश्वर के तीन हिस्से ऐसे हैं, जहाँ पर दुनिया नहीं बनी ईश्वर के जिन तीन हिस्सों में संसार नहीं बना या यों कहिये कि तत्त्वों की रचना नहीं हुई वहाँ पर ईश्वर निराकार है। किन्तु ईश्वर के जितने अंश में अनेक ब्रह्माण्ड बन गए उतने अंश में वेद ईश्वर को साकार बतलाते हैं।

उत्तर—वेद तो ईश्वर को साकार नहीं बतलाता किंतु आप वेदमन्त्र के अर्थ को तोड़ मरोड़ कर साकार सिद्ध करने के यत्न में हैं, और इसी कारण से आपने वेद का पूरा मन्त्र नहीं दिया। किन्तु आधा मन्त्र दिया है, यदि आप पूरे मन्त्र को पढ़ेंगे तो आपको पता लगेगा कि वेद का अभिप्राय ईश्वर की महान् महिमा का वर्णन करना है, और वर्तमान जगत् को ईश्वर की अपेक्षा अत्यन्त अल्प वर्णन करने का है, वरना अनन्त तथा सर्व व्यापक परमात्मा में अंश कल्पना नहीं की जा सकती। पूरा मंत्र तथा उसका अर्थ इस प्रकार है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः ।
पादोऽस्यविश्वा:भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ यजु० ३१।३॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! (अस्य) इस जगदीश्वर का (एतावान्) यह दृश्य अदृश्य ब्रह्माण्ड (महिमा) महत्त्व सूचक है (अतः) इस ब्रह्माण्ड से यह (पुरुषः) परिपूर्ण परमात्मा (ज्यायान्) अति प्रशंसित और बड़ा है (च) और (अस्य) इस ईश्वर के (विश्वा) सब (भूतानि) पृथिवी आदि चराचर जगत् एक (पादः) अंश है और (अस्य) इस जगत् स्रष्टा का (त्रिपाद्) तीन अंश (समृतम्) नाशरहित महिमा (दिवि) द्योतनात्मक अपने स्वरूप में है ॥३॥

भावार्थ—यह सब सूर्य चन्द्रादि लोकान्तर चराचर जितना जगत् है वह सब चित्र विचित्र रचना के अनुमान से परमेश्वर के महत्त्व को सिद्ध कर उत्पत्ति स्थिति और प्रलय रूप से तीनों काल में घटने बढ़ने से भी परमेश्वर के एक चतुरांश में ही रहता है किंतु इस ईश्वर के चौथे अंश की भी अवधि को नहीं पाता और इस ईश्वर के सामर्थ्य के तीन अंश अपने अविनाशी मोक्ष स्वरूप में सदैव रहते हैं, इस कथन से उस ईश्वर का अनन्तपन नहीं बिगड़ता। किंतु जगत् की अपेक्षा उसका महत्त्व और जगत् का न्यूनत्व जाना जाता है ॥३॥

हमारे इसी कथन की ताईद महीधर जी भी करते हैं। वह लिखते हैं कि

यद्यपि "सत्यं ज्ञानमनन्तंब्रह्मे, त्याम्नातस्य पर ब्रह्मण इयत्ताया अभावात् पाद चतुष्टयं

निरूपयितु मशक्यं तथापि जगदिदं ब्रह्म रूपा पेक्षयाल्पमिति विवक्षितत्त्वा त्पादत्वोपन्यासः।

महीधर भाष्य यजु० ३१।३॥

अर्थ—यद्यपि "ब्रह्म सत्य ज्ञानमय और अनन्त है" इत्यादि वेद से प्रतिपादित परब्रह्म की मिक़दार परिमाण के अभाव से उसके चारपाद का निरू-पण करना अशक्य है तथापि यह जगत् ब्रह्मकी अपेक्षा अल्प है यह कहने की इच्छा के कारण पादत्व कल्पना किया है ॥ ३ ॥

अब आप कृपया यह बतलावें कि जब परमात्मा ब्रह्माण्ड के अन्दर तथा बाहर व्यापक है और ब्रह्माण्ड व्याप्य है। तो व्याप्य ब्रह्माण्ड के साकार होने से व्यापक परमात्मा भी साकार हो गया यह कौनसी युक्ति और दलील है। क्या आप कोई ऐसा प्रमाण दे सकते हैं कि जिससे यह सिद्ध हो कि व्याप्य के साकार होने से व्यापक भी साकार हो सकता है। अतः आपकी यह कल्पना सर्वथा वेद विरुद्ध और असत्य है, और ईश्वर का निराकार होना ही वेदानुकूल और सत्य है।

तीन प्रकार की साकारता

(६) प्रश्न—ईश्वर व्याप्य व्यापकत्व, सर्व स्वरूपत्व, अवतारत्व, इन तीन प्रकारों से साकार है।

उत्तर—व्याप्य के साकार होने से व्यापक को साकार नहीं माना जा सकता, ईश्वर इस जगत का निमित्त कारण है उपादान कारण नहीं है, उपादान कारण प्रकृति है, और ईश्वर के अवतार का वेद ने (अकायम्) कहकर स्वयं ही खण्डन कर

दिया है। अतः आपकी तीनों प्रकार की साकारता वेद विरुद्ध और मिथ्या है।

व्याप्य-व्यापकत्व साकारता

(७) प्रश्न—एक पण्डित मोहनलाल सज्जन हैं। वास्तव में तो यह फर्ज़ी पण्डित मोहनलाल नाम शून्य रूप शून्य निराकार जीव हैं, निराकार होने पर भी अब यह साढ़े तीन हाथ के शरीर में व्यापक हो गये हैं। यह व्यापक हैं शरीर व्याप्य है, इसी कारण इनका यह शरीर है। क्योंकि यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि "व्यापक का व्याप्य शरीर होता है" यह शरीर इनका है घसीटु धोबी का नहीं है। क्योंकि जिस का कल्पित नाम घसीटु धोबी है, वह आत्मा इस शरीर में व्यापक नहीं हैं, दूसरे शरीर में व्यापक है। जिस शरीर में घसीटु धोबी नामक आत्मा व्यापक है, वह शरीर घसीटु धोबी का है। इसी प्रकार देवदत्त, यज्ञदत्त, विष्णुदत्त आदि नाम वाले आत्मा जिस जिस शरीर में व्यापक हैं वह वह उनका शरीर है। अब उत्तम रीति से सिद्ध हो गया कि व्याप्यं व्यापक का शरीर होता है।

उत्तर—पण्डित मोहनलाल जीव का नाम नहीं है क्योंकि "पण्डित मोहनलाल का जीव निकल गया" ऐसा कहा जाता है। और नहीं शरीर का नाम पंडित मोहनलाल है क्योंकि "पंडित मोहनलाल के शरीर को जला दिया" ऐसा कहने में आता है। अतः जीव और शरीर के संयोग का नाम पंडित मोहनलाल है। जीव शरीर में व्यापक नहीं है, अपितु एकदेशी

है। और वह हृदय में रहता है। यदि आप जीव को शरीर में व्यापक मानेंगे तो पुनर्जन्म अनुसार हाथी का जीव कीड़ी के शरीर में जावेगा तो उसको सुकड़ना पड़ेगा, और कीड़ी का जीव हाथी के शरीर में जावेगा तो उसको फैलना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में जीव में संकोच विकाश होने के कारण जीव अनित्य हो जावेगा। व्यापक का व्याप्य शरीर नहीं होता अपितु शरीर शब्द उसमें लाक्षणिक रूप से प्रयोग किया जाता है, क्योंकि शरीर का लक्षण करते हुये न्याय दर्शन में लिखा है कि "चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम् ॥" न्यायदर्शन १।१।११॥

अर्थ—जो चेष्टा इन्द्रिय तथा अर्थ का आश्रय हो उसका नाम शरीर है अर्थात् जिस में चेष्टा हो उसका नाम शरीर है। वायु में चेष्टा होने के कारण उसका नाम शरीर न हो जावे अतः बताया कि जिसमें चेष्टा तथा इन्द्रियां दोनों हों उसका नाम शरीर है। तमाशे की कठपुतली में चेष्टा और इन्द्रियां दोनों होने के कारण उसका नाम शरीर न हो जावे इसलिये बतलाया कि जिस में चेष्टा और इन्द्रियां भी हों तथा उन इन्द्रियों के द्वारा दुःख-सुख, रूप-रस आदि अर्थों का ग्रहण भी किया जाता हो। उसका नाम शरीर है। जहाँ इन तीनों बातों में से एक का भी अभाव होगा। उसका नाम वास्तविक रूप से शरीर न होगा। अपितु लाक्षणिक रूप से उसमें शरीर शब्द का प्रयोग होगा। और न्याय १।१।९ के भाष्य में वात्स्यायन मुनि लिखते हैं कि "भोगायतनं शरीरम्' जिस में रह कर जीवात्मा कर्मों का फल भोगता है उसका नाम शरीर है। अतः एक यह लक्षण सर्वथा अशुद्ध है कि "व्याप्य व्यापक का शरीर होता है।"

(८) प्रश्न—तुम्हारा ईश्वर व्यापक है। और पृथिवी, जल, वायु, अग्नि, आकाश व्याप्य हैं। इस कारण पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश तुम्हारे ईश्वर के शरीर हैं।

उत्तर—न तो पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पांचों तत्त्व चेष्टा इन्द्रिय तथा अर्थ का आश्रय हैं। और नहीं ईश्वर इन पांचों तत्त्वों के द्वारा दुःख सुख आदि कर्मों के फल को भोगता है। अतः इन पांचों तत्त्वों को ईश्वर का शरीर नहीं कहा जा सकता।

(९) प्रश्न—इसी बात को शतपथ १४। ६। ७ में "यः पृथिव्यांतिष्ठन्" इत्यादि पांच मन्त्रों द्वारा पृथिवी आदि पांचों तत्त्वों को ईश्वर का शरीर वर्णन किया है। जब समस्त संसार ईश्वर का शरीर हो गया। तो फिर ईश्वर निराकार कैसे रहा। इससे सिद्ध है कि ईश्वर व्याप्यव्यापक भाव से साकार है।

उत्तर—इस स्थान में शतपथ में भी पांच मंत्रों द्वारा नहीं अपितु ७ से लेकर ३१ तक २५ मंत्रों द्वारा पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, वायु, आदित्य, चन्द्र, तारा, दिशा, विद्युत, स्तनयित्नु, सर्वलोक, सर्ववेद, सर्वयज्ञ, सर्वभूत, प्राणवाग्, चक्षु, श्रोत्र, मनः, त्वचा, तेज, तमः, रेतः, आत्मा, इत्यादि में ईश्वर की व्यापकता को वर्णन करते हुवे लाक्षणिक रूप से इन वस्तुओं को ईश्वर का शरीर वर्णन किया है। जैसे कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्। यजुर्वेद ३१। ११।" में भी लाक्षणिक रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को परमात्मा के शरीर के अंग मुख, बाहु, ऊरु, पाद वर्णन किया है। इन वर्णनों से परमात्मा की व्यापकता प्रति-

पादन करना ही अभिप्राय है। यह वस्तुएँ वास्तव में परमात्मा का शरीर नहीं हैं। क्योंकि इन वस्तुओं को वास्तव में परमात्मा का शरीर मानने से प्रथम तो वेद से विरोध आवेगा क्योंकि वेद ने यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८ में स्पष्ट शब्दों में (अकायम्) शब्द से परमात्मा को स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों प्रकार के शरीरों से रहित वर्णन किया है। ऐसी सूरत में वेद के मुक़ाबले में शतपथ का प्रमाण कोई वुक़अत नहीं रखता, क्योंकि वेद स्वतः प्रमाण और शतपथ ब्राह्मण परतः प्रमाण है। अतः शतपथ के इस लेख को वेद विरुद्ध होने से मिथ्या ही मानना पड़ेगा। दूसरे इन वस्तुओं में वास्तव शरीर के लक्षण मौजूद नहीं है। क्या आप यह मानते हैं कि ये वस्तुएँ चेष्टा, इन्द्रिय और अर्थों का आश्रय हैं। अर्थात् परमात्मा जीवात्मा की भांति इन वस्तुओं द्वारा रूप, रस, गन्ध और स्पर्श शब्द सुख-दुःख आदि भोगों को अनुभव करता है। यदि नहीं तो फिर यह वस्तुएँ परमात्मा का वास्तव शरीर कैसे मानी जा सकती हैं। अतः शतपथ के इन मन्त्रों का यह अभिप्राय है कि परमात्मा उपरोक्त सब वस्तुओं में व्यापक है। और ये वस्तुएँ अज्ञान के कारण परमात्मा को नहीं जानतीं। ये वस्तुएँ परमात्मा के शरीर वत् हैं। अर्थात् जैसे जीवात्मा शरीर के अन्दर बैठा हुआ शरीर को नियम पूर्वक चलाता है। वैसे ही परमात्मा इन सब वस्तुओं में रहता हुआ उनको नियम-पूर्वक चलाता है। और अपनी अनन्त शक्ति से इन सब पदार्थों को धारण कर रहा है। वही परमात्मा अमृत अन्तर्यामी है। इससे सिद्ध हुआ कि व्यापक परमात्मा निराकार और व्याप्य संसार साकार है।

सर्वस्वरूपत्व साकारता

(१०) प्रश्न—सृष्टि में जितने आकार हैं, वे सब ब्रह्म के स्वरूप हैं। समस्त रूप ब्रह्म के रूप से बने हैं, और अन्त में समस्त ही रूप ईश्वर में लय होंगे।

उत्तर—आपका यह कथन वेद विरुद्ध होने से मिथ्या है, क्योंकि संसार में जितने स्थूल पदार्थ हैं, वे प्रकृति के स्वरूप हैं ब्रह्म के स्वरूप नहीं हैं। अर्थात् इस संसार का उपादान कारण प्रकृति है ब्रह्म नहीं है, क्योंकि यदि इस सृष्टि का उपादान कारण ब्रह्म को माना जावे तो "कारण गुण पूर्वकः कार्य गुणो दृष्टः" वैशेषिक० २।१।२४॥ अर्थात् उपादान कारण के गुण कार्य में अवश्य आते हैं, इस नियम से ब्रह्म के चैतन्यता सर्वज्ञता आदि गुण पृथिवी आदि समस्त पदार्थों में विद्यमान होने चाहिये, या यह मानना पड़ेगा कि ब्रह्म में भी जड़ता आदि गुण विद्यमान हैं। अतः सिद्ध हुआ कि सृष्टि का उपादान कारण प्रकृति निमित्त कारण ब्रह्म तथा साधारण कारण जीव है। और ये तीनों ही अनादि हैं, जैसा कि वेद ने स्पष्ट रूप से वर्णन किया है।

द्वा सुपर्णा सयुजासखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति॥
(ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० २०)

अर्थ—जो ब्रह्म और जीव दोनों चेतनता और पालनादि गुणों में सदृश व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त परस्पर मित्रता युक्त सनातन अनादि हैं। और वैसा ही अनादि मूल रूप कारण

और शाखा रूप कार्य युक्त वृक्ष अर्थात् जो सूक्ष्म हो कर प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण कर्म स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्ष रूप संसार में पाप पुण्य रूप फलों को अच्छे प्रकार भोगता है, और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान् हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव, और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं। इससे सिद्ध है कि इस सृष्टि का न ब्रह्म उपादान कारण है। और न ही यह सृष्टि ईश्वर में लय होगी।

(११) प्रश्न—जब हम पृथिवी के बनने की खोज उठाते हैं, तो पता चलता है कि पृथिवी जल से बनी है, वास्तव में पृथिवी कोई चीज़ नहीं है। पृथिवी की सत्ता कोई भिन्न सत्ता नहीं है, किंतु जल सत्ता का कठिन रूप पृथिवी कहलाती है।.

उत्तर—हम ऊपर वेद का प्रमाण देकर सिद्ध कर चुके हैं कि प्रकृति अनादि है और सूक्ष्म परमाणु रूप पृथिवी जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन पांच सूक्ष्म तत्त्वों का नाम ही प्रकृति है, इनमें से कोई एक दूसरे से नहीं बना अपितु प्रथम चार के सूक्ष्म प्रमाणु तथा आकाश ये पांचों तत्त्व सूक्ष्म रूप से अनादि हैं। पृथिवी का स्वाभाविक गुण "व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः। वै० २। २। २" गंध है, तथा जल का स्वाभाविक गुण "अप्सु शीतता वै० २।२।५" शीतलता है। यदि जलसे ही पृथिवी बनी है, तो पृथिवी में गंध गुण कहाँ से आगया, क्योंकि जल में तो

गन्ध मौजूद ही नहीं था। यदि कहो कि अभाव से भाव हो गया तो यह बात असंभव है क्योंकि "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। भगवद्गीता। २।१६॥" अभाव से भाव तथा भाव अभाव नहीं होता। अतः सिद्ध हुआ कि पृथिवी जल से नहीं बनी अपितु पृथिवी तत्त्व स्वतन्त्र अनादि काल से वर्तमान है, और जल का कठिन रूप भी बर्फ की शकल में ही बन सकता है, पृथिवी रूप में नहीं बन सकता।

१२—(प्रश्न) अग्नि में संचलन उत्पन्न होने से जल बनता है। अग्नि का रूपान्तर ही जल है।

उत्तर—आप की यह बात वेद तथा शास्त्र के विरुद्ध होने से अप्रमाण है क्योंकि जल का स्वाभाविक गुण शीतलता है। और अग्नि का स्वाभाविक गुण (तेजो रूप स्पर्शवत् वै० २। १। ३) रूप है और अग्नि में स्पर्श वायु के योग से है। यदि अग्नि से ही जल बना है तो जल में शीतलता कहाँ से आई, जब कि अग्नि में शीतलता मौजूद नहीं है। और अभाव से भाव का होना असंभव है। इससे सिद्ध हुआ कि जल की उत्पत्ति अग्नि से नहीं हुई। अपितु जल तत्त्व स्वतन्त्रता से अनादि काल से मौजूद है। वह अग्नि का रूपान्तर नहीं है।

(१३) प्रश्न—दो विरुद्ध धर्म वाले वायु के मिलने से अग्नि उत्पन्न होता है। अग्नि कोई पृथक् चीज़ नहीं है। वायु का दूसरा रूप ही अग्नि है।

उत्तर—आपकी यह बात भी वेद विरुद्ध होने से मिथ्या है। और कृपया यह तो बतलावें कि वे विरुद्ध गुण वाले दो वायु कौन-कौन से हैं। जिनसे अग्नि की उत्पत्ति होती हैं और

इसमें किस वेद शास्त्र का प्रमाण है। क्योंकि वैशेषिक शास्त्र में तो एक ही प्रकार का "स्पर्शवान् वायुः। वै० २।१।४" वायु का स्वभाविक गुण स्पर्श है। ऐसा लिखा है। यदि वायु से ही अग्नि बना है तो अग्नि का जो स्वाभाविक गुण रूप है। वह कहां से आया। जब कि वायु में रूप गुण मौजूद ही नहीं है, और अभाव से भाव का होना असम्भव है। इस से सिद्ध है कि वायु का ही रूपान्तर अग्नि नहीं है। अपितु अग्नि पृथक् तत्त्व अनादि काल से मौजूद है।

(१४) प्रश्न—आकाश के जो सूक्ष्म परमाणु हैं। उनमें जब संचालन शक्ति (हरकत) उत्पन्न होती है तो आकाश के सूक्ष्म परमाणु कुछ कठोर हो जाते हैं। और वह धक्का देने लगते हैं। इसी का नाम वायु है। प्रत्यक्ष में आप हाथ में पंखा ले लीजिये और उसको हिलाइये। पंखे के हिलने से आकाश के परमाणुओं में संचालन शक्ति उत्पन्न हो जावेगी। वे परमाणु धक्का देंगे वही वायु कहलावेगा। सिद्ध हुआ कि वायु कोई भिन्न सत्ता वाला पदार्थ नहीं है। किन्तु आकाश का रूपान्तर है।

उत्तर—धन्य हो महाराज! यहां पर तो आपने फ़िलासफी की टाँग तोड़ दी। वह कौन सा वेद तथा शास्त्र है। जो आकाश के परमाणु मानता है। या यह नया शास्त्र आप के ही कार्यालय से कल्पित होने लगा है। श्रीमान् जी! आकाश के परमाणु नहीं होते आकाश तो अवकाश अर्थात् पुलाव का नाम है। पंखे के हिलाने से आकाश के परमाणु हरकत में नहीं आते अपितु आकाश में जो सूक्ष्म रूप से वायु भरा हुआ है, वह

ही पंखे के चलाने से इकट्ठा हो जाता है। यदि आकाश में वायु न हो तो पंखा न चलाने की सूरत में भी जो आप को सांस आ रहा है। वह कहाँ से आता है। क्या कहीं आकाश के परमाणु ही तो अन्दर नहीं चले जाते। पक्षपात भी बुरी बला है। इन्सान को अन्धा कर देता है। न आकाश के परमाणु होते हैं। न ही उनमें हरकत होने तथा कठोर होने से वायु पैदा होती है। अपितु वायु एक पृथक् तत्त्व अनादि काल से मौजूद है। यदि आकाश से ही वायु की पैदाइश मानी जावे तो वायु का स्वाभाविक गुण स्पर्श है। तथा "त आकाशे न विद्यन्ते। वै० २।१।५" रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श आकाश में नहीं है। किन्तु शब्द ही आकाश का गुण है। फिर स्पर्श गुण वायु में कहाँ से आया। जब कि अभाव से भाव होता ही नहीं। अतः आप की सम्पूर्ण कल्पना मिथ्या और वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण है।

१५—(प्रश्न) सर्वोपरि विज्ञान वैदिक ज्ञान बतलाता है कि वह जो निराकार ब्रह्म है जहाँ पर सृष्टि नहीं है। जिसको अमृत कहा है। उससे और यह जो दृश्य ब्रह्माण्ड रूप ईश्वर है। इस से आकाश उत्पन्न होता है।

उत्तर—महाशयजी! यहाँपर तो आप चौकड़ी ही भूल गये। आप वर्णन तो कर रहे हैं आकाश की उत्पत्ति का। और वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, अभी पैदा ही नहीं हुए। क्योंकि वे तो आपके सिद्धान्त अनुसार आकाश से ही क्रमशः पैदा होने हैं। फिर वह दृश्य ब्रह्माण्ड कहाँ से आ गया जिसको निराकार ब्रह्म से मिलाकर आकाश की उत्पत्ति कर रहे हैं। क्या यहाँ "अन्योऽन्याश्रय दोष" तो नहीं आता। क्या आपका यही सर्वोपरि

विज्ञान वैदिक ज्ञान है । कृपया वेदों को भी अपनी मिथ्या कल्पनाओं से कलंकित न कीजियेगा । यदि आप ब्रह्म से ही आकाश की पैदाइश मानते हैं, तो बतलावें कि आकाश में जड़त्व कहाँ से आया । क्योंकि ब्रह्म तो चेतन है । और अभाव से भाव होता नहीं । या यह मानें कि ब्रह्म भी जड़ है । सारांश यह कि आपकी सम्पूर्ण कल्पनायें सर्वथैव मिथ्या हैं । आकाश ब्रह्म से पैदा नहीं हुआ । अपितु आकाश एक पृथक् पदार्थ अनादि काल से मौजूद है ।

(१६) प्रश्न—अब सिद्ध हो गया कि संसार में जितने रूप (शकलें) हैं । वे सब ब्रह्म के रूप से उत्पन्न हुए हैं । इससे साबित है कि ईश्वर सर्वस्वरूपत्वभाव से साकार है ।

उत्तर—अब सिद्ध हो गया कि संसार में जितने रूप (शकलें) हैं । वे सब अनादि प्रकृति के रूप हैं । ब्रह्म के नहीं हैं । क्योंकि ब्रह्म और जीव से भिन्न अनादि प्रकृति संसार में मौजूद है । हमारे दिये हुवे वेद मंत्र तथा सिद्धान्त की ताईद अनेक प्रमाणों से होती है । उदाहरणार्थ "नतस्य कार्य्यं करणं च विद्यते" (श्वेताश्वेतर उपनिषद् । अ० ६ मं० ८) परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य्य और उस परमात्मा का कोई कारण भी नहीं है । पाँच तत्वों का नाम प्रकृति है । उनमें से आकाश तो अनादि नित्य एक रस है । तथा वायु अग्नि जल और पृथिवी ये चारों प्रत्येक दो प्रकार के हैं । एक तो कारण रूप जो सूक्ष्म तथा अनादि हैं । दूसरे कार्य्य रूप स्थूल जो दृश्य हैं वे अनित्य हैं । जैसे—

पृथिव्यादि रूपरसगन्ध स्पर्शद्रव्यानित्यत्वादनित्याश्च ॥२॥
एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम ॥३॥ (वै० ७ । १ । २ । २ । ३)

अर्थ—जो कार्यरूप पृथिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, गुण हैं। ये सब द्रव्यों के अनित्य होने से अनित्य हैं ॥२॥ और जो इससे कारण रूप पृथिव्यादि नित्य द्रव्यों में गन्धादिगुण हैं वे नित्य हैं ॥३॥ "सदकारणवन्नित्यम्" वै० ४।१।१ जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो वह नित्य है। अतः ये सब रूप पाँच तत्त्व स्वरूप अनादि प्रकृति के हैं। ब्रह्म के नहीं हैं। इससे सिद्ध हुआ कि परमात्मा निराकार है। सर्व-स्वरूपत्व भाव से साकार नहीं है।

(१७) प्रश्न—वेद में "तस्मादेतस्मादात्मन इत्यादि तैत्ति० १ ब्रह्मा० वल्ली अनु० १" आता है कि उस अदृश्य ब्रह्म से तथा इस दृश्य ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथिवी उत्पन्न हुई।

उत्तर—प्रथम तो आपने वेद का नाम लेकर तैत्तिरीयो-पनिषद् का प्रमाण देकर जनता को धोखे में डाला है। क्योंकि तैत्तिरीय उपनिषद् स्वतः प्रमाण नहीं है। दूसरे आपने यह मंत्र भी पूरा नहीं दिया अधूरा दिया है। तीसरे आप आकाश की उत्पत्ति से पूर्व दृश्य ब्रह्म पता नहीं कहाँ से ले आये। हाँ यदि दृश्य ब्रह्म से आपका अभिप्राय अनादि प्रकृति से हो तो फिर आपके मत से ईश्वर की सर्वस्वरूपता खटाई में पड़ जाती है। चौथे आपने योग्यता का ध्यान न रखते हुए सब स्थानों में पंचमी विभक्ति का अर्थ "से" ही लगाया है। हालांकि

पंचमी का अर्थ "पश्चात्" भी होता है। इस प्रकार से आपका लेख सर्वथा दूषित और वेद विरुद्ध है। हम इस प्रमाण का पूरा पाठ और वेदानुकूल अर्थ नीचे दर्ज करते हैं। ध्यान पूर्वक पढ़िये—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्यो अन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः सवाएष पुरुषोऽन्नरसमयः॥ तैत्तिरीयोपनि० ब्रह्मानन्दवल्ली अनु० १॥

भावार्थ—उस (निमित्त कारण) परमेश्वर और (उपादान कारण) प्रकृति से आकाश अवकाश अर्थात् जो कारण रूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था, उसको इकठ्ठा करने से अवकाश उत्पन्न सा होता है। वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि बिना अवकाश के प्रकृति और परमाणु कहाँ ठहर सकें। आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवी से औषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य्य, वीर्य्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है। इस प्रमाण से आपकी सर्व स्वरूपता से ईश्वर की साकारता की सिद्धि सर्वथा असम्भव है।

(१८) प्रश्न—पुष्पदन्त ने भी त्वमर्क स्त्वं सोम" इत्यादि लेख से सूर्य चन्द्रमा आदि को ईश्वर ही बतलाया है।

उत्तर—कहिये महाराज! आपने इस पुष्पदन्त के लेख को वेद के नाम से क्यों दर्ज नहीं किया। आपने तो ऐरा ग़ैरा नत्थू ख़ैरा प्रत्येक के लेख को वेद कहने का ठेका ले रक्खा

है। फिर पुष्पदन्त के लेख पर यह क्रूर दृष्टि क्यों। अच्छा अब यह बतलाने का कृपा करें कि यह पुष्पदन्त जी हैं कौन? क्या यह कोई पौराणिक ऋषि हैं या कोई सनातन धर्म के अवतार हैं। यदि यह कुछ भी नहीं तो फिर इनका लेख वेद के मुक़ाबले में क्या हैसियत रखता है। अतः हम इस पर कुछ लिख कर अपने काग़ज़ और स्याही का दुरुपयोग करना बुद्धिमता नहीं समझते।

(१९) प्रश्न—यजुर्वेद अध्याय ३२ मंत्र १ में भी "तदेवाग्निस्तदादित्य" इत्यादि मंत्र से अग्नि सूर्य आदि को ब्रह्म ही वर्णन किया है॥

उत्तर—आपको जो सूझती है उलटी ही सूझती है। इस मन्त्र में अग्नि सूर्य्य आदि को ब्रह्म नहीं बतलाया। अपितु वह बतलाया है कि परमेश्वर में अनेक गुण होने के कारण अग्नि आदित्य आदि ईश्वर के अनेक नाम हैं। देखिये—

तदेवाग्निस्तदादित्य स्तद्वायु स्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥१॥

यजु० ३२।१

पदार्थ—हे मनुष्यो! (तत्) वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, सनातन, अनादि, सच्चिदानन्द स्वरूप, नित्य, शुद्ध बुद्ध, मुक्त स्वभाव, न्यायकारी दयालु जगत का स्रष्टा धारण कर्ता और सबका अन्तर्यामी (एव) ही (अग्निः) ज्ञान स्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि (तत्) वह (आदित्य) प्रलय समय सबको ग्रहण करने से आदित्य (तत्) वह (चन्द्रमाः) आनन्द स्वरूप और आनन्द कारक होने से चन्द्रमा (तत् एव) वही (शुक्रम्) शीघ्र-

कारी वा शुद्ध भाव से शुक्र (तत्) वह (ब्रह्म) महान् होने से ब्रह्म (ताः) वह (आपः) सर्वत्रव्यापक होने से आप (उ) और (सः) वह (प्रजापतिः) सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति है, ऐसा तुम लोग जानो ॥१॥ यहां पर ईश्वर के अनेक नामों का वर्णन होने से साकारता का गंध भी नहीं है।

(२०) प्रश्न—यह समस्त संसार ईश्वर से उत्पन्न हुआ है, और इस संसार का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" ईश्वर है, अतएव संसार में छोटे बड़े जितने रूप हैं वे सब ईश्वर के रूप हैं।

उत्तर—इस संसार का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" ईश्वर नहीं है, अपितु इस संसार का उपादान कारण प्रकृति है और ईश्वर निमित्त कारण तथा जीव साधारण कारण है। प्रकृति की नित्यता तथा उपादान कारण होने को वेद इस प्रकार से वर्णन करता है।

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव ।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन भिषता विचष्टे ॥

अथर्व० १० । ८ । ३०॥

भावार्थ—यह सदा रहने वाली नित्य प्रकृति सदा ही कार्य उत्पन्न करती रहती है, यह पुराणी प्रकृति सब कार्यों में पूर्णतया रहती है। यह बड़ी तथा क्रान्तिमयी है, तथा कामनीय पदार्थों को विशेष रीति से प्रकाशित करने वाली है। वह प्रकृति प्रत्येक गतिशील जीव के साथ अपने स्वरूप कथन कर रही है। सिद्ध हुआ कि संसार में छोटे बड़े जितने रूप हैं वे सब प्रकृति के हैं, ईश्वर के नहीं हैं।

(२१) प्रश्न—"द्वावेव ब्रह्मणो रूपे" इत्यादि वृहदारण्यक में भी इस तत्त्वात्मक जगत् को ब्रह्म का रूप बतलाया है।

पृ० १६०, पं० १७

उत्तर—यहां पर ब्रह्मनाम ईश्वर का नहीं है, अपितु प्रकृति से बने हुए जगत् का नाम ब्रह्म है। यह बात पुस्तक के पाठ से स्पष्ट हो जाती है। जैसे—

द्वावेव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवामूर्त्तं च।
तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षात्।
अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षम्॥ वृह० अ० ४ ब्रा० ३ कं० १।२।३॥

अर्थ—प्रकृति उपादान कारण से निमित्त कारण ब्रह्मने जो जगत् पैदा किया है, उसके दो रूप हैं। एक मूर्त्त (मुजस्सम) दूसरा अमूर्त्त (गैर मुजस्सम) वह यह मूर्त्त है जो वायु और आकाश से भिन्न है, अर्थात् पृथिवी, जल तथा अग्नि मुजस्सम हैं, और वायु तथा आकाश अमूर्त (गैरमुजस्सम) हैं।

प्रथम, यहाँ पर पृथिवी जल अग्नि को साकार तथा वायु और आकाश को निराकार वर्णन करने से स्पष्ट है कि वृहदारण्यक ने प्रकृति के ही दो रूप वर्णन किये हैं, ब्रह्म के नहीं।

दूसरे, आपने वृहदारण्यक के पाठ को श्रुति अर्थात् वेद के नाम से लिख कर बड़ा अनर्थ किया है, क्योंकि वृहदारण्यक उपनिषत् है वेद नहीं है, और परतः प्रमाण है।

तीसरे, आपने पृ० १५६ पं० ३ तथा ७ में लिखा है कि "ईश्वर के जिन तीन हिस्सों में तत्त्वों की रचना नहीं हुई वहाँ पर ईश्वर निराकार है और ईश्वर के जितने अंश में ब्रह्माण्ड बन गये उतने अंश में ईश्वर साकार है" इस लेख के अनुसार

भी यहाँ पर कार्य रूप जगत् का ही वर्णन है। और आपके दोनों लेखों में परस्पर विरोध भी है।

अतः इस प्रमाण में भी इस तत्वात्मिक जगत् को प्रकृति का ही रूप बतलाया है ब्रह्म अर्थात् परमात्मा का नहीं।

२२ प्रश्न—"पुरुष एवेदꣳसर्वम् ॥ यजु० ३१। २॥" में भी सब भूत भविष्यत वर्तमान जगत् को ब्रह्म ही बतलाया है॥ पृ० १६०, मं० २५

उत्तर—इस मंत्र में जगत् को ब्रह्म नहीं अपितु ब्रह्म को जगत् का पैदा करने वाला वर्णन किया है जैसा कि—

पुरुष एवेदꣳसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्त्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ यजु० ३१। २॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जो उत्पन्न हुआ और जो उत्पन्न होने वाला और जो पृथिवी आदि के संबंध से अत्यन्त बढ़ता है। उस इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप समस्त जगत् को अविनाशी मोक्ष सुख वा कारण का अधिष्ठाता सत्य गुण कर्म स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा ही रचता है ॥२॥

उव्वट का अर्थ भी आपके अर्थ की तरदीद करता है देखिये—

स एव पुरुषः पूर्वं पर्यायविशेषित एव शब्दो नान्यः। इदं वर्तमानकं सर्वं पञ्चभूतमतीतम् यच्च भाव्यं भविष्यत् तस्य काल त्रयस्य ईशानः। न केवलं काल त्रयस्य ईशानः। उत अमृतत्त्वस्यापि मोक्षस्यापि। उत शब्दोऽपि शब्दार्थे। कस्मात्कारणात्। यदन्नेनामृतेन अति रोहति अति रोधं करोति। सर्वस्येश्वर इति ॥३१।२॥

भावार्थ—वह पूर्व वर्णन किया हुआ अनन्य परमात्मा इस सम्पूर्ण वर्तमान भूत तथा भविष्य तीनों कालों का स्वामी है। केवल तीन का ही स्वामी नहीं है। अपितु मोक्ष का भी स्वामी है। किस कारण से कि जो अमृत से बढ़ाता है। सारांश यह कि वह सबका स्वामी है।

आपने अधूरा मन्त्र देकर वास्तव अर्थ को छिपाने का यत्न किया, किन्तु हमने पूरा मन्त्र देकर आपकी चालाकी का भांडा सारे बाज़ार में फोड़ दिया। उव्वट ने भी परमात्मा को सबका ईश्वर मान कर ब्रह्म से भिन्न जीव और प्रकृति को स्वीकार करके आपके सिद्धान्त का खंडन कर दिया है।

२३ प्रश्न—जब वेद संसार के समस्त रूपों को ब्रह्म के रूप कह रहा है। फिर निराकार कहना मूर्खता नहीं तो क्या है॥ पृ० १६० पं० ११

उत्तर—वेद संसार के समस्त रूपों को प्रकृति के रूप बतलाता है ब्रह्म के रूप नहीं। संसार का उपादान कारण अनादि प्रकृति है ब्रह्म नहीं है। हम प्रकृति के अनादि होने के कई मन्त्र पेश कर चुके हैं। एक मन्त्र यहां पर और पेश करते हैं।

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरु पिशङ्गिला।
शश आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां विसर्पति॥ य० २३। ५६॥

भाषार्थ—हे विद्वन्! जन्म रहिता प्रकृति प्रलय काल में रूपों को निगलने वाली है। संसारावस्थापन्न होकर कार्य्यों के रूपों को प्रकट करनेवाली होती है। चतुर ज्ञानी पुरुष प्रकृति के बन्धन से परे हो जाता है। और सर्पवत् कुटिल स्वभाव मनुष्य

जन्म मरण मार्ग पर विविध रीतियों से जन्म मरण के चक्र में पड़ जाता है ॥५६॥ इस मन्त्र पर महीधर भी भाष्य करते हुवे प्रकृति को अनादि मानते हैं, जैसे—

अजा पिशङ्गिला अजानित्या माया रात्रिर्वा पिशङ्गिला विश्वं रूपं गिलति भक्षयति पिशङ्गिला माया विश्वं ग्रसते। रात्रावपि रूपाणि न प्रतीयन्ते तमसा ॥ महीधर २३ । ५६ ॥

भाषार्थ—अजा नाम अनादि प्रकृति या रात्रि का है। इन दोनों को पिशङ्गिला भी कहते हैं। प्रकृति को तो इस लिये पिशङ्गिला कहते हैं कि वह सारे संसार को निगल लेती है। और रात्रि को पिशङ्गिला इस लिये कहते हैं कि रात्रि में भी अन्धेरे के कारण पदार्थों की प्रतीति नहीं होती ॥ ५६ ॥

जब वेद से स्पष्ट हो गया कि प्रलयकाल में सारा जगत प्रकृति में लय हो जाता है। तो इस से साफ साबित है कि वेद सारे संसार की प्रकृति से ही उत्पत्ति मानता है। फिर आपका यह लेख कि "समस्त रूप ब्रह्म के रूप से बने हैं और अन्त में समस्त ही रूप ईश्वर में लय होंगे। कतई वेद के विरुद्ध और मिथ्या सिद्ध हो गया। अतएव परमात्मा का सर्व स्वरूपत्व से साकार होना वेद विरुद्ध होने से मिथ्या तथा परमात्मा का निराकार होना वेदानुकूलता से सत्य सिद्धान्त है।

अवतारत्व साकारता

२४ (प्रश्न) ईश्वर का अवतार धारण करना वेद ने बड़े विस्तृत रूप से लिखा है। पृ० १६१, मंत्र ८

(उत्तर) वेद में परमात्मा को (अकायम्) शरीर रहित (अस्नाविरम्) नाड़ी और नस के बंधन से रहित वर्णन किया है।

यह हम पहिले दिखा चुके हैं। वेद ने बड़े विस्तार से परमात्मा को अजन्मा प्रतिपादन किया है। वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है। जो परमात्मा के जन्म लेने का अनुमोदन करता हो, अपितु अनेकों मंत्र परमात्मा के जन्म लेने का निषेध करते हैं जैसे—

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भद्यां मन्त्रेभिः सत्यैः।
प्रिया पदानि पश्वोनिपाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः॥
ऋ० १।६७।३

भाषार्थ—जैसे न जन्मने वाला परमेश्वर न टूटने वाले विचारों से पृथिवी को धारण करता है। विस्तृत अन्तरिक्ष तथा द्युलोक अथवा सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों को गिरने से रोकता है। प्रीतिकारक प्राप्तव्य पदार्थों को देता है। सम्पूर्ण आयु देने वाला बंधन से सर्वथा छुड़ाता है। बुद्धि में स्थित हुवा वह गुह्य पदार्थों को जानता है। वैसे ही तू भी हे विद्वान् जीव! हमें अज्ञान आदि से छुड़ा कर प्राप्तव्य की प्राप्ति करा" इत्यादि अनेकों मन्त्र परमात्मा के जन्म का निषेध करते हैं।" यह तो रही वेद की बात। अब आप कृपा करके यह बतावें कि परमात्मा को जन्म लेने की क्यों ज़रूरत पड़ती हैं और आपके मत में जब परमात्मा के सर्वव्यापक होने से सारा ब्राह्मण्ड ही उस का शरीर है, तो परमात्मा को एक तुच्छ शरीर और धारण करवाने में क्या लाभ होता है। फिर जब आपके मतानुसार सारे ही रूपधारी पदार्थ भी ब्रह्म ही हैं तो फिर अवतार में क्या विशेषता रही। जब ब्रह्म से भिन्न कोई पदार्थ ही संसार में नहीं, तो फिर कौन किस के गर्भ में प्रवेश करके जन्म लेकर

किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि ॥ १८ ॥
येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः ॥ १९ ॥

वाल्मीकि० युद्ध० स० १०१

अर्थ—मैंने दूसरे जन्म में कौन सा ऐसा बुरा कर्म किया है। कि जिस के कारण मेरा धार्मिक भाई मेरे सामने मरा हुआ पड़ा है।

२६ प्रश्न—"प्रजापतिश्चरति" यजु० ३१।१९ इत्यादि मंत्र से ईश्वर का गर्भ में आना और जन्म धारण करना सिद्ध है। पृ. १६१ मं. १९

उत्तर—आप का अर्थ क्या है, चूं चूं का मुरब्बा है, जिस में परस्पर विरोध भरा पड़ा हैं। आपने इस अर्थ से ईश्वर को जन्म धारण करने वाला साकार सिद्ध करने का यत्न किया है। किंतु आपका परिश्रम व्यर्थ है। आप अपने अर्थ को ध्यानपूर्वक पढ़ कर उत्तर दें कि यदि उस परमेश्वर में सब ब्रह्माण्ड ठहरे हुए हैं। अर्थात् वह सारे संसार में परिपूर्ण व्यापक हैं, तो वह विशाल व्यापक ईश्वर जिसमें सारे ब्रह्माण्ड ठहरे हुए हैं, छोटे से गर्भ में कैसे समा गया और गर्भ में आया कहां से क्या वह गर्भ में व्यापक न था? और क्या गर्भ उसमें ठहरा हुआ न था। कैसी बेतुकी बात है कि "सब ब्रह्माण्डों में व्यापक ईश्वर गर्भ में आता है। क्यों जी जब वह अजन्मा है तो फिर वह बहुत प्रकार से जन्म कैसे धारण करता है। क्या दो विरुद्ध गुण किसी द्रव्य में रह सकते हैं। यदि आप कहें कि जीव भी तो स्वरूप से अजन्मा है। किन्तु वह जन्म धारण करता है। ऐसे ही परमात्मा भी स्वरूप से अजन्मा होकर, जन्म धारण

करता है। तो यह युक्ति ठीक नहीं है। क्योंकि प्रथम तो परमात्मा को जहाँ अजन्मा कहा है वहाँ (अकायम्) शरीर रहित तथा (अस्नाविरम्) नाडी और नस के बन्धन से रहित भी कहा है परन्तु जीव को ऐसा कहीं नहीं कहा। दूसरे जीव को "द्वासुपर्णा" आदि में कर्मों का फल भोगनेवाला कहा है जिस के लिए शरीर का धारण करना आवश्यक है। किन्तु परमात्मा न शुभाशुभ कर्म करता है, न उस के फल भोगने के लिये शरीर की ज़रूरत है। तीसरे जीव अणुपरिमाण एक देशी है, सारा शरीर में समा सकता है। ईश्वर व्यापक होने से शरीर में नहीं समा सकता। चौथे जीव का एकदेशी होने से गर्भ में आना जाना कहा जा सकता है। परमेश्वर के लिये व्यापक होने के कारण आना जाना नहीं कहा जा सकता। अतः जीव की भांति परमेश्वर का जन्म नहीं माना जा सकता। फिर भला यदि ईश्वर साकार और शरीर धारी है तो उसके स्वरूप को धीर पुरुष ही क्यों देखते हैं, आम लोग क्यों नहीं देख सकते। क्या राम और कृष्ण का शरीर, रावण; कुम्भकरण, मेघनाद, कंस, केशीमधु आदि राक्षसों तथा साधारण पुरुषों को नज़र न आता था। कैसे मखौल की बात है कि "ईश्वर के अवतार धारण किये हुए शरीर को बुद्धिमान पुरुष ही देख सकते हैं साधारण पुरुष नहीं।" इस प्रकार से आपका सारा ही अर्थ असंगत परस्पर विरुद्ध तथा वेदमन्त्र के आशय के विरुद्ध होने से मिथ्या ही है। मन्त्र का ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो वहुधा विजायते।
तस्ययोनिं परिपश्यन्ति धीरा स्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।
यजु० ३१। १९

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो अपने स्वरूप से उत्पन्न नहीं होने वाला प्रजा का रक्षक जगदीश्वर गर्भस्थ जीवात्मा और सब के हृदय में विचरता है। और बहुत प्रकारों से विशेष कर प्रकट होता है। उस प्रजापति के जिस स्वरूप को ध्यानशील विद्वान् जन सब ओर से देखते हैं। उसमें प्रसिद्ध सब लोक लोकान्तर स्थित हैं।

भावार्थ—जो यह सर्वरक्षक ईश्वर आप उत्पन्न न होता हुआ अपने सामर्थ्य से जगत् को उत्पन्न कर और उसमें प्रविष्ट हो के सर्वत्र विचरता है। जिस अनेक प्रकार से प्रसिद्ध ईश्वर को विद्वान् लोग ही जानते हैं। उस जगत् के आधाररूप सर्वव्यापक परमात्मा को जान के मनुष्यों को आनन्द भोगना चाहिये। यह है इस मंत्र का वास्तविक अर्थ। बतलाइये इससे अवतार सिद्ध कैसे हो सकता है। अतः आपका ईश्वरअवतार सिद्धान्त वेदविरुद्ध और मिथ्या है।

(२७) प्रश्न—"रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव।" ऋ० ६।४७।१ इत्यादि वेद के केवल एक मन्त्र से ही ईश्वर के बहुत अवतार सिद्ध हो जाते हैं। पृ० १६२, पं० २

उत्तर—कहिये महाराज आपका कोई निश्चित सिद्धान्त भी है या नहीं। अभी पीछे ईश्वर को स्वस्वरूपता से साकार सिद्ध करते हुए ईश्वर को संसार का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" सिद्ध कर रहे थे। अब यहाँ पर आकर "ईश्वर अपनी माया का आश्रय लेकर असंख्य रूपों को धारण करता है।" ऐसा कहने लगे। इन दोनों में से कौनसी बात सत्य और कौन सी मिथ्या है। और यह भी बतलाइये कि वह माया क्या

वस्तु है। वह माया या अविद्या ब्रह्म का ही गुण है या ब्रह्म से कोई भिन्न पदार्थ है। यदि कहो कि ब्रह्म का ही गुण है तो जिस ब्रह्म का गुण माया या अविद्या है। क्या वह ब्रह्म ब्रह्म कहलाने के योग्य है। और यदि माया ब्रह्म से भिन्न स्वतंत्र पदार्थ है तो आपके सिद्धान्त "अभिन्ननिमित्तोपादानकारण" का आपके लेख से ही खण्डन हो गया। और ये प्रेमी भक्त बीच में से कौन निकल आये जिनको ईश्वर अपना रूप दिखाता है। क्या ये अनादि जीव तो नहीं हैं। इससे तो ईश्वर जीव प्रकृति का भिन्न-भिन्न अनादि होना, इस एक ही मंत्र से आपने स्वीकार कर लिया। फिर आपने "हरयः" शब्द को क़तई छोड़ दिया इस का कोई अर्थ नहीं किया। सारे संसार को ईश्वर का रूप बनाते-बनाते सैकड़ों पर आ गये। और उनको भी छोड़ कर केवल दश ही रह गये। किन्तु ये दश भी रहते हुये नज़र नहीं आते। क्योंकि यह मंत्र ईश्वरपरक ही नहीं है अपितु इस मंत्र का प्रतिपाद्य विषय जीवात्मा है। और इस मंत्र का ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रोमायाभिः पुरु रूप ईयते युक्ताह्यस्य हरयः शतादश॥
ऋ० ६। ४७। १८

भाषार्थ—जीव बुद्धियों के द्वारा प्रत्यक्ष कथन के लिये रूप रूप का प्रतिरूप होता है। और इस कारण वह बहुत शरीर धारण करने के हेतु अनेक रूपोंवाला पाया जाता है। वह सब कुछ इसके शरीर का रूप है। अथवा यह सब कुछ जीवात्मा के स्वरूपबोधन के लिये है। इस जीवात्मा के

निश्चय से दश इन्द्रियाँ तथा सैकड़ों शक्तियाँ युक्त होकर कार्य को साधन करती हैं।

भावार्थ—कर्मों के अनुसार जीवात्मा जिस-जिस शरीर में जाता है वैसे ही स्वभाव और वैसी ही चेष्टावाला हो जाता है। मनुष्य शरीर पाकर इस की चेष्टा मनुष्य की सी होती है तो पशु, पक्षी की योनी में जाकर वैसी गति विधि करने लगता है। यह सारी बातें शरीर से आत्मा की पृथक् सत्ता को सिद्ध करती हैं।

इस मंत्र में कितनी सुन्दरता से शरीर इन्द्रियादि से आत्मा का भेद कथन किया गया है। इस मंत्र से ईश्वर-अवतार सिद्ध करना वेदविरुद्ध अनधिकार चेष्टा है।

(२८) प्रश्न—ईश्वर चैतन्य है। वह अवतार धारण करके भक्तों की रक्षा करता है। अब कोई कैसे कह सकता है कि वेद में ईश्वर के अवतार का लेख नहीं है। पृ० १६२, पं० २०

उत्तर—हम इस बात को बलपूर्वक कह सकते हैं कि वेदों में एक मंत्र भी इस प्रकार का नहीं है कि जो ईश्वर के अवतार अथवा साकारता का वर्णन करता हो, अपितु इस प्रकार के सैकड़ों मंत्र वेदों में मौजूद हैं जो ईश्वर को निराकार तथा अजन्मा शरीररहित वर्णन करते हैं। रहा आप का यह हेतु कि भक्तों की रक्षा करने के लिये ईश्वर अवतार धारण करता है। तो भी सत्य नहीं है। क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुसार चलते हैं। उन के उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में हैं। क्या ईश्वर के पृथिवी सूर्य, चन्द्रादि जगत् का बनाने धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस, रावणादि का वध

बड़े कर्म हैं। जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो ईश्वर के सदृश कोई न है न होगा। और वैसे यह अवतारवाद का सिद्धान्त संसार में पुरुषार्थ का नाश कर के आलस्यवाद का फैलाने वाला है। क्योंकि अवतारवादी लोग इस आशा में कि हमारे कष्ट को दूर करने के लिये भगवान् स्वयं अवतार लेकर आवेंगे। स्वयं कोई पुरुषार्थ न करके हाथ पर हाथ रखकर यह राग गाते रहते हैं कि—

वंशी वालिया काहना तेरे आवन दी लोड
वंशी वालिया काहना तेरे आवन दी लोड

हमारी यह समझ में नहीं आता कि एक मगरमच्छ ने जब हाथी को खेंचा तो उसकी रक्षा के लिये परमेश्वर झट कूद पड़ा, किन्तु आज दिन निकलने से पहिले सत्तर हज़ार गौओं की गरदन पर छुरा चल जाता है। आज वह इनकी रक्षा के लिये क्यों नहीं कूदता। क्या वे ईश्वर की भक्त नहीं हैं? इससे सिद्ध हुआ कि यह ढकोसला ही है कि परमात्मा भक्तों को रक्षा के लिये जन्म धारण करता है। और इस के विरुद्ध पुराणों में लेख मौजूद है। चुनांचे शिवपुराण में लिखा है कि वृन्दा के शाप से श्री रामचन्द्रजी का जन्म हुआ। और वह कथा इस प्रकार है। कि "विष्णु ने माया से दो बन्दरों की सहायता से वृन्दा को छल कर उससे मैथुन करके उस का पतिव्रत-धर्म भंग कर दिया। कभी मैथुन के अन्त में वृन्दा को पता लगा कि यह तो विष्णु है। तो वृन्दा ने क्रोध में आकर विष्णु को शाप दिया।

रे महाधम दैत्यारे पर धर्म विदूषक।
गृह्णीष्व शठ मद्दत्तं शापं विषोल्वणम्॥ ४३॥

यौ त्वया मायया ख्यातौ स्वकीयौ दर्शितौ मम ।
तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः ॥ ४४ ॥
त्वंचापि भार्या दुखार्त्तो वनेकपिसहायवान् ।
भ्रमसर्पेश्वरेणायं यस्ते शिष्यत्वमागतः ॥ ४५ ॥

(शिवपुराण रुद्रसंहिता २ युद्धखंड ५ अध्याय २३)

अर्थ—रे महापापी राक्षसों के शत्रु दूसरों के धर्म को नाश करने वाले ! मेरे दिये हुए तीक्ष्ण विष के समान शाप को ग्रहण कर ॥ ४३ ॥ जो तूने अपनी माया से प्रकट किये मुझे दो अपने साथी दिखाये । वही दोनों राक्षस बन कर तेरी पत्नी को हरेंगे ॥ ४४ ॥ और तू भी पत्नी के दुख से व्याकुल हुआ जंगल में बन्दरों की सहायता लेकर अपने इस शिष्य शेषनाग के साथ भ्रमण करेगा ॥ ४४ ॥ पुराण के इस लेख से स्पष्ट है कि राम का जन्म भक्तों की रक्षा के लिये नहीं हुआ। अपितु वृन्दा के शाप के कारण हुआ था ।

इसी प्रकार से कृष्ण के विषय में ब्रह्म-वैवर्तपुराण में लिखा है कि गोलोक में कृष्ण को, राधा ने क्रोध में आकर शाप दिया।

हे कृष्ण वृजाकान्त गच्छ मत्पुरतो हरे ।
कथं दुनोषि मां लोल रतिचौरातिलम्पट ॥ ५९ ॥
शीघ्रं पद्मावतीं गच्छ रत्नमालां मनोरमाम् ।
अथवा वनमालां वा रूपेणाप्रतिमां व्रज ॥ ६० ॥
हे नदीकान्त देवेश देवानांच गुरोगुरो ।
मया ज्ञातोऽसि भद्रं ते गच्छ गच्छ ममाश्रमात् ॥ ६१ ॥
शश्वत्ते मानुषाणांच व्यवहारस्य लम्पट ।
लभतां मानुषीं योनिं गोलोकाद्व्रज भारतम् ॥६२।

हे सुशीले शशिकले हे पद्मावति माधवि ।
निवार्यतांच धूर्त्तोऽयं किमस्यात्र प्रयोजनम् ॥ ६३ ॥

(ब्रह्म-वैवर्तपुराण कृष्णजन्म खंड ४ पूर्वार्द्ध अध्याय ३)

अर्थ—हे कृष्ण ! हे हरे ! हे वृजा के प्यारे ! मेरे सामने से चला जा । हे चंचल ! मुझे क्यों दुख देता है । हे अति लम्पट और कामचोर मुझे क्यों कष्ट देता है ॥ ५६ ॥ शीघ्रता से पद्मावती के पास जा । अथवा सुन्दरी रत्नमाला के पास जा । अथवा अनूपम रूप वाली वनमाला के पास जा ॥ ६० ॥ हे वृजा के प्यारे ! हे देवेश ! हे देवों के गुरु के गुरु ! मैंने आपको जान लिया है । तेरा कल्याण हो । जा-जा मेरे आश्रम से चला जा ॥ ६१ ॥ हे लंपट ! चूँकि आप मनुयों की भाँति मैथुन करने में लम्पट हैं, अतः आपको मनुष्य-योनि ही मिले । आप गो-लोक से भारत में चले जावें ॥६०॥ हे सुशीले ! हे शशिकले ! हे पद्मावति ! हे माधवि ! यह धूर्त है । इस को यहां से दूर करो । इसका यहाँ क्या प्रयोजन है ॥ ६३ ॥ इस से सिद्ध है कि कृष्ण का जन्म भक्तों की रक्षा के लिये नहीं अपितु राधा के शाप के कारण हुआ था ।

दूसरे स्थान में इस प्रकार से भी वर्णन मौजूद है कि गोलोक में एक वार राधा की श्रीदामा से लड़ाई हो गई । तो श्रीदामा ने राधा को शाप दिया कि तू पृथिवी पर मानुषी योनि को प्राप्त हो । तब राधा ने कृष्ण के पास जाकर कहा, तो कृष्ण ने कहा चिन्ता मत करो मैं भी भूतल पर जाकर तुम्हारे पास आऊँगा ।

अतो हेतोर्जगन्नाथो जगामनन्द गोकुलम् ॥ १६ ॥
किंवा तस्य भयं कंसाद्भयांतकारकस्यच ।
माया भयच्छलेनैव जगाम राधिकान्तिकम् ॥ १७ ॥
(ब्रह्मवैवर्तपुराण कृष्णजन्म खण्ड ४ पूर्वार्द्ध अध्याय २)

अर्थ—इस कारण से जगत् के नाथ कृष्ण नन्द के गोकुल में गये ॥ १६ ॥ उनको कंस से क्या भय हो सकता था। क्योंकि वह तो स्वयं भय का अन्त करने वाले हैं। वह तो माया और भय का छल कर के वास्तव में राधा के पास ही गये थे ॥ १७ ॥

कहिये महाराज अब तो स्पष्ट हो गया, कि राम तथा कृष्ण का जन्म भक्तों की रक्षार्थ नहीं अपितु शाप के कारण हुआ था। अतः पुराणों के लेखानुसार भी भक्तों की रक्षार्थ ईश्वर का अवतार होना मिथ्या ही है।

यक्षावतार

(२६) प्रश्न—तलवकार अर्थात् केनोपनिषद् में "ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिज्ञे तस्यह इत्यादि १४ से २४ तक" यक्ष अवतार का वर्णन किया गया है। पृ० १६२, पं० ६

उत्तर—कहियेगा महाराज! यह यक्षावतार आपके २४ अवतारों में से कौन से अवतार हैं। (गरुड़ पुराण आचार काण्ड अध्याय १) तथा (भागवत पुराण प्रथम स्कन्ध अध्याय ३) में आपके हां अवतारों का वर्णन इस प्रकार से है। विष्णु, ब्रह्मा, कुमार, वाराह, देवर्षि, नरनारायण, कपिल दत्त, यज्ञ, उरुक्रमः, पृथिवी, मत्स्य, कच्छप, धन्वन्तरि, मोहिनी, नरसिंह, वामन, परशुराम, व्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्धः

कल्कि, वैसे तो आपके मत में यह सारा ही संसार ब्रह्म का रूप है। और इस में जितने रूप हैं, वे सब ब्रह्म का अवतार हैं। किन्तु आप तो विशेष अवतारों में से यक्षावतार का वर्णन कर रहे हैं। किन्तु हमें आपके पूर्वोक्त विशेष अवतारों में कहीं "यक्षावतार" का नाम नज़र नहीं आता। यह आप ने व्यास जी के पीछे एक नए पच्चीसवें अवतार की कल्पना की है। क्यों न हो आप कोई व्यास से कम थोड़ा ही हैं। यदि वह ब्रह्म का अवतार हैं तो आप भी तो ब्रह्म का स्वरूप है। यदि वह २४ अवतारों की कल्पना कर सकते हैं तो क्या आप एक की भी न कर सकते।

दूसरे आप केनोपनिषद् का पाठ देकर उसे वेद का प्रमाण प्रकट कर रहे हैं। श्रीमान् जी उपनिषद् वेद नहीं हैं। अपितु ऋषि लोगों के रचित होने से परतःप्रमाण माने जा सकते हैं।

तीसरे इस पाठ में न तो अवतार शब्द ही मौजूद है और न ही इस में परमेश्वर के जन्म लेने का वर्णन है।

चौथे इस कथा को यदि सत्य मान लिया जावे तो इस में असंभव दोष आता है। क्योंकि अग्नि, वायु ये दोनों ही चेतना-रहित जड़ पदार्थ हैं। इनका इकट्ठे होकर यह कहना कि "हमारा ही विजय हुआ है" और "हमारा ही महत्व है" तथा अग्नि और वायु का यक्ष के पास जाकर बातचीत करना यह सब बातें असंभव हैं। जड़ वस्तुओं से ऐसी बातें नहीं हो सकतीं इस बात को साधारण कवि लोग भी जानते हैं। चुनांचे कालिदास जी मेघदूत में, श्लोक नं० ५ में इसी बात को बतलाते हैं।

धूमज्योतिः सलिल मरुतां सन्निपातः क्व मेघः,
संदेशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकान्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

(मेघदूत)

भाषार्थ—आग, पानी, धूम, वायु के मेल से बना हुआ बादल कहाँ। "अचेतन होने से संदेश पहुंचा ने के अयोग्य है। यह भाव है" और समर्थ इन्द्रिय वाले चेतन प्राणियों से पहुँचाने के योग्य संदेश का अर्थ कहाँ। किन्तु यक्ष ने अपने इष्ट पदार्थ की उत्सुकता में इस बात का विचार न करते हुए मेघ से प्रार्थना की। क्योंकि कामवासना से व्याकुल हुए स्वभाव से दीन लोग चेतन अचेतन में विचार नहीं कर सकते। "कामांध लोगों के युक्त अयुक्त के विवेक से शून्य होने के कारण अचेतन से प्रार्थना नामुमकिन नहीं हैं। यह भाव है।"

इस लिये यदि आप इस कथा को वास्तव मान लेंगे तो मानना पड़ेगा कि यह लेख "उन्मत्त प्रलाप अर्थात् पागलों की बड़" ही है। किन्तु यह बात नहीं है। यह कथा वास्तव नहीं, अपितु "अग्नि, वायु आदि से ब्रह्म की शक्ति प्रबल है" इस बात को समझाने के लिये यह अलंकार रूप कथा बनाई गई है। और ऐसा प्रत्येक भाषा में पाया जाता है। जैसे—

सोना बोला—

सोना कहे सुनार से उत्तम मेरी जात।
यह काले मुख की लालड़ी क्यों तुले हमारे साथ ॥

रत्ती बोली—

लालों की मैं लालड़ी लाल हमारा रंग।
काला मुख तब से भया जब तुली नीच के संग॥

इससे स्पष्ट है कि सोना तथा रत्ती जड़ होने से बातचीत नहीं कर सकते किन्तु कवि ने लोगों को यह शिक्षा देने के लिये कि "जो किसी को बुरा कहेगा वह दूसरे से बुरा कहा लेगा।" यह अलंकार रूप सोने तथा रत्तिका का संवाद कल्पना किया है। इसी प्रकार से भाषा तथा उर्दू के साहित्य में "सोने चांदी की अंगूठियों का" "गिलहरी पहाड़ का" "वृक्ष पक्षियों का" "पगड़ी जिह्वा का" "तीली लौंग का" इत्यादि अनेक संवाद मिलते हैं जोकि कवियों ने अनेक प्रकार के भाव समझाने के लिये कल्पना किये हुए हैं। इसी प्रकार के शिक्षा देने वाले अलंकार रूप संवाद संस्कृत साहित्य, उपनिषद्, ब्राह्मण तथा वेदों तक में भी मिलते हैं। इस बात को निरुक्त ने स्पष्ट रूप से लिख दिया है। जैसे कि—

अपुरुषविधाः स्युरित्यपरम् ॥ १॥
अपितु यद्दृश्यतेऽपुरुषविधम्
तद्यथाऽग्निर्वायुरादित्यः पृथिवी चन्द्रमा इति॥ २॥
यथो एतच्चेतनावद्वद्धि स्तुतयो भवन्तीत्यचेतनान्य
प्येवंस्तूयन्ते यथाक्षप्रभृतीन्योषधिपर्य्यन्तानि ॥ ३॥
यथो एतत्पौरुष विधिकैरङ्गैः स्तूयन्त इत्यचेतनेष्व
प्येतद्भवत्यभिक्रन्दन्ति हरितेभिरासभिरिति ग्रावस्तुतिः॥४॥

यथो एतत्पुरुष विधिकै र्द्रव्यसंयोगै रित्येतदपि तादृशमेव।
"सुखं रथं युयुजे सिंधुरश्विनम्" इति नदी स्तुतिः॥ ५॥

यथो एतत्पौरुष विधिकैः कर्मभिरित्येतदपि तादृशमेव ।
"होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत" इति ग्रावस्तुतिरेव ॥ ६ ॥
(नि० दै० अ० ७ खण्ड ७)

भावार्थ—देवता पुरुष से भिन्न भी होते हैं यह दूसरा पक्ष है ॥ १ ॥

जैसा कि नज़र आ रहा है पुरुष से भिन्न वह जैसे अग्नि, वायु, सूर्य, पृथिवी, चन्द्रमा इति ॥ २ ॥

जैसे इनकी चेतनावालों की भांति स्तुतियां हैं। अर्थात् अचेतन भी चेतनों की भाँति स्तुति किये जाते हैं। अक्ष से लेकर औषधि पर्यंत ॥ ३ ॥

जैसे इन को पुरुषों के समान अंगों से स्तुति करते हैं। अर्थात् अचेतनों में भी चेतन के अंगों के समान स्तुति की जाती है; जैसे पत्थरों के लिये आता है कि "वह हरे-हरे मुखों से बोलते हैं।" ॥ ४ ॥

जैसे वह पुरुषों के समान वस्तुओं के संयोग से स्तुति किये जाते हैं। अर्थात् अचेतन भी चेतनों के समान वस्तुओं के संयोग से स्तुति किये जाते हैं। जैसे नदी के लिये आता है कि "नदी सुख देने वाले रथ को जोड़ती है।" ॥ ५ ॥

जैसे यह पुरुषों के समान कर्मों से स्तुति किये जाते हैं अर्थात् अचेतन भी चेतन के समान कर्मों से स्तुति किये जाते हैं। जैसे पत्थरों के लिये आता है कि ये "अग्नि और होता से पहिले खाने योग्य हवि को खाते हैं।" ॥ ६ ॥

निरुक्त ने इस बात को बिलकुल साफ कर दिया है कि यद्यपि अग्नि, वायु, पृथिवी, जल, सूर्य, चाँद आदि पदार्थ जड़

हैं, तो भी इस का वर्णन चेतनों के समान ही किया जाता है। इस से वह चेतन नहीं बन जाते अपितु यह वर्णन करने की शैली मात्र ही है। हम इस विषय में आपके सामने प्रश्नोपनिषत् में से इसी प्रकार का दूसरा वर्णन दिखाते हैं। ताकि आप की पूरे तौर से तसल्ली हो जावे। जैसे—

अथ हैनं भार्गववैदर्भिः पप्रच्छ। भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत्प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥ १ ॥ तस्मै स हो वाचाकाशो हवा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ् मनश्चक्षुः, श्रोत्रं च। ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेत द्बाणमवष्टभ्य विधा रयामः ॥ २ ॥ तान् वरिष्ठः प्राणउवाच मा मोहमापद्यथाह मेवैतत्पञ्चधात्मानं प्रविभज्यैत द्बाणमवष्ठभ्य धारयामीति। तेऽश्रद्दधाना बभूवुः सोऽभिमानादूर्ध्वमत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्क्रा मत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रातिष्ठन्ते तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते एवमस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवंवाङ् मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणंस्तुवन्ति ॥ ४ ॥

(प्र० प० प्र० नं० २ मं० १ से ४)

भाषार्थ—प्रथम प्रश्न का उत्तर सुनने के अनन्तर प्रसिद्ध है कि पिप्पलाद ऋषि से भृगुकुलोत्पन्न वैदर्भिने पूछा कि हे ऐश्वर्य सम्पन्न कितने देव इस शरीर रूपी प्रजा को धारण

करते हैं। और कितने इसको प्रकाशित करते हैं। फिर इनमें कौन श्रेष्ठ हैं॥ १॥ वैदर्भि के प्रश्न का उत्तर देने के लिये वह पिप्पलाद स्पष्टतया बोले। प्रसिद्ध है कि यह आकाश, वायु अग्नि, जल और पृथिवी ये पांच भूत वाणी मन नेत्र और श्रोत्र ये सब देव हैं। ये शरीर को प्रकाशित कर के कहने लगे कि हम इस शरीर को आश्रय कर के धारण करते हैं॥ २॥ उन सब देवों से श्रेष्ठ प्राण बोला कि मत मोह को प्राप्त होवो मैं ही प्राणादि पाँच भेदों से अपने आप को विभक्त करके इस शरीर को थामे हुआ हूं। और मैं ही इनको धारण करता हूँ॥ ३॥ वह सब देव रूप इन्द्रिय अश्रद्धा वाले हुये। तब वह प्राण अभिमान से ऊपर को उत्क्रमण करने की नाईं उठता दीख पड़ा। उस को निकलता हुआ देख अन्य सब भी निकलने लगे और उसके ठहरने पर सब ही ठहर गये। जैसे मधु की सारी मक्खियां अपने राजा के निकलने पर उस के पीछे निकल जाती हैं, और उसके स्थिर होने पर सब ही स्थिर हो जाती हैं। इसी प्रकार प्राण के अधीन वागादि सब देव हैं। तब वे वाणी मन चक्षु और श्रोत्रादि इन्द्रिय विश्वास वाले हुये। प्राण की स्तुति करने लगे॥ ४॥

अब देखिये इस प्रकरण में आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाणी, श्रोत्र, चक्षु और प्राणों को जड़ होते हुये भी चेतन के समान वाद विवाद करते हुये वर्णन किया है। इससे उपरोक्त पदार्थ चेतन नहीं बन गये अपितु यह वर्णन करने की शैली है और इस प्रकार वर्णन करने का प्रयोजन यह है कि शरीर में उपरोक्त सब पदार्थ प्राण के ही आश्रय हैं अतः प्राण

ही सब में श्रेष्ठ है। बस इसी प्रकार से ही केनोपनिषद् के "ब्रह्म ह देवेभ्यो" इत्यादि पाठ के वर्णन से अग्नि वायु आदि चेतन नहीं बन गये और न ही ब्रह्म शरीर धारी बन गया। अपितु यह वर्णन करने की शैली है। और इस प्रकार वर्णन करने का प्रयोजन यह है कि ब्रह्म की शक्ति के सामने सब शक्तियां हेच हैं। आपने इस रहस्य को न समझते हुये जो इस लेख से ब्रह्म का अवतार सिद्ध करने का यत्न किया है वह युक्ति शून्य तथा वेद विरुद्ध होने से मिथ्या ही है।

मत्स्यावतार

३० प्रश्न—शतपथ पृ० ५८ में "मनवे ह वै प्रातः" इत्यादि मनु प्रातः हाथ धोने लगे तो उनके हाथ में छोटी सी मछली आगई। तब मछली ने मनु से कहा आप मेरी पालना करें तो सब को डुबा देने वाला जो जल प्रवाह आवेगा उसमें मैं आप को रक्षा करूँगी। मनु ने उस की पालन कर के बड़ा मत्स्य होने पर समुद्र में छोड़ दिया। जब जल का महा प्रवाह आया तो मत्स्य भगवान् ने मनु की किश्ती को हिमालय पर ऊँची जगह पहुँचा दिया। तब सब प्रजा जल में डूब कर नष्ट हो गई एक मनु ही शेष रह गये। इस लेख से सिद्ध होता है कि वेद में भगवान् के मत्स्य अवतार का वर्णन आता है।

पृ० १६५ पं० २

उत्तर—आपने शतपथ के पाठ को वेद के नाम पर मढ दिया। यह सत्य नहीं। क्योंकि शतपथ ईश्वर कृत नहीं अपितु ऋषि कृत होने से परतः प्रमाण है।

दूसरे इस सारे पाठ में न तो अवतार शब्द है, न ईश्वर या ईश्वर के जन्म लेने का वर्णन है।

तीसरे क्या यह संभव है कि मछली सेवकों को नज़र न आई। क्या वह अत्यन्त ही सूक्ष्म थी।

चौथे मछली का बोलना तथा राजा का समझना दोनों असंभव हैं।

पाँचवें जो प्राणी राजा से अपनी रक्षा की प्रार्थना कर रहा है, वह स्वयं ईश्वर है सर्वथा असत्य है।

छठे समुद्र के बड़े मत्स्यों से जान का भय खाने वाला ईश्वर कैसे।

सातवें जल जन्तुओं को अपना नाशक शत्रु मानने वाला ईश्वर का अवतार नहीं कहा जा सकता।

आठवें मछली के सींगों का वर्णन और भी हास्यास्पद है अतः मानना पड़ेगा कि यह वास्तव कथा नहीं है। अपितु पूर्व वर्णित केनोपनिषद् की गाथा की भान्ति यह भी अलंकार रूप गाथा है। जिस का प्रयोजन लोगों को यह शिक्षा देना है कि "यदि तुम औरों की पालना पोषणा आपत्तिकाल में सहायता करोगे तों वह भी तुम्हारे आपतकाल में काम आवेंगे और तुम्हारी रक्षा करेंगे" इस से मछली का बातें करनादि सत्य नहीं होता अपितु यह वर्णन करने की शैली ही है। अतः ईश्वर का मत्स्य अवतार इस पाठ से सिद्ध करना वेद विरुद्ध होने से मिथ्या तथा असंभव और अनधिकार चेष्टा है।

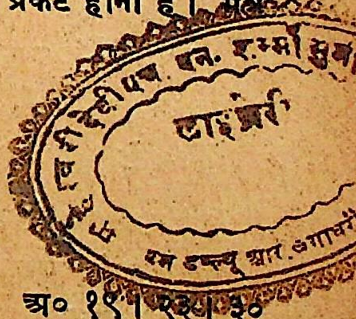
ब्रह्मावतार

३१ प्रश्न—"ब्रह्मज्येष्टा संभृता। अ० २३। ३०" इस

मन्त्र में ब्रह्मा के अवतार का वर्णन है। पृ० १६७ पं० १५

उत्तर—कृपया यह बतलावें कि इस मंत्र में वे कौन से शब्द हैं जिन से ईश्वर का अवतार सिद्ध होता है। प्रकट होने के अर्थ अवतार लेना या जन्म धारण करना नहीं है अपितु निमित्त कारण ईश्वर का उपादान कारण प्रकृति से सूर्य, चाँद, पृथिवी आदि का पैदा करना ही उसका प्रकट होना है। मंत्र के ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार से हैं :—

ब्रह्मज्येष्ठा सम्भृता वीर्याणि
ब्रह्मग्ने ज्येष्ठं दिवमाततान।
भूतानां ब्रह्मा प्रथमोत जज्ञे
तेनर्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥



अ० १९। २३। ३०

भाषार्थ—यथावत् धारण किये हुए वीर कर्म परमात्मा को प्रधान रखने वाले हैं। महाप्रधान परमात्मा ने पहिले ज्ञान को सब ओर फैलाया है। और वह सब से बड़ा सर्वजनक परमात्मा प्राणियों में सब से पहिले प्रकट हुआ है। इस लिये महान परमात्मा की कौन बराबरी कर सकता है ॥ ३० ॥

इस मंत्र से परमात्मा का अवतार सिद्ध करना वंध्या पुत्र का विवाह देखने के समान असंभव और व्यर्थ चेष्टा है।

जिस ब्रह्मा को आप अवतार सिद्ध करने के लिये पानी २ हो रहे हैं। ज़रा यह तो बतलावें कि उसने संसार में आकर क्या उपकार किया, किन भक्तों की रक्षा की और अपने चरित्र से संसार को क्या शिक्षा दी। पुराणों में आपके प्रथमावतार ब्रह्मा का यूं वर्णन है।

(क) ब्रह्मा ने राक्षसों को पैदा किया, वे राक्षस ब्रह्मा से ही मैथुन करने के लिये उस के पीछे दौडे। ब्रह्मा भयभीत हुआ विष्णु के पास आया और बोला—

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः।
ता इमा यभितुं पापा उपक्रामन्ति मां प्रभो॥ २६॥

भा० स्क० ३ अ० २०

भाषार्थ—हे परमात्मा! मेरी रक्षा करो, मैंने आपके भेजने से प्रजा उत्पन्न की थी। वे ये पापी मेरे साथ मैथुन करने के लिये मेरे पीछे भाग रहे हैं॥ २६॥

(ख) एतस्मिन्नतरे वक्त्रात्समुद्भूताचशारदा।
दिव्यांगं सुन्दरं तस्याः दृष्ट्वा ब्रह्मा स्मरातुरः॥ २॥
बलाद् गृहीत्वा तां कन्यामुवाच स्मरपीडितः।
रतिं देही मदाघूर्णे रक्ष मां कामविह्वलाम्॥ ३॥
इति श्रुत्वा तु सा माता रुषा प्राह पितामहम्।
पंच वक्त्रोऽयमशुभंन योग्यस्तव कंधरे॥ ४॥

भविष्य० प्रतिसर्ग पर्व ३ अ० २३

भाषार्थ—इतने में ब्रह्मा के मुख से शारदा नाम पुत्री पैदा हुई। उसके अति सुन्दर अंगों को देख कर ब्रह्मा जी कामातुर होगये॥ २॥ उस कन्या को जबर दस्ती पकड़ कर कामातुर हुआ बोला। मस्त नेत्रोंवाली! मुझे जीवन का दान दे। और मुझ कामाकुल की रक्षा कर॥ ३॥ यह सुनकर वह माता क्रोध से ब्रह्मा को बोली। यह जो तुम्हारा अशुभ पांचवां मुख है। वह तुम्हारे कंधे पर योग्य नहीं है॥ ४॥

(ग) ब्रह्मा का पुत्र दक्ष था, दक्ष की पुत्री सती थी। सती

का विवाह महादेव से होना निश्चय हुआ। तो दक्ष ने ब्रह्मा से प्रार्थना की। इसे ब्रह्मा के शब्दों में सुनिये—

ततो मां पितरं प्राह दक्षः प्रीत्या हि मत्सुतः।
प्रणिपत्य त्वया कर्म कार्य्यं वैवाहिकं विभो॥ ३१॥
वि० अध्याय १८

तब मेरा पुत्र प्रीति से मुझ बाप को बोला। कि यह विवाह का कार्य्य आप ही करवावें॥ ३१॥ यह प्रार्थना स्वीकार कर के मैं अपनी पोती सती का विवाह महादेव से करवाने लगा। जब विवाह संस्कार हो रहा था तो—

प्रदक्षिणां प्रकुर्वन्त्या वह्नेः सत्या पदद्वयम्।
आविर्बभूव वसनात्तदद्राक्षमहं मुने॥ १७॥
मदनाविष्ट चेताश्च भूत्वांगानि व्यलोकयम्।
अहं सत्या द्विज श्रेष्ठ शिव माया विमोहितः॥ १८॥
यथा यथाहं रम्याणि व्यैक्षमंगानि कौतुकात्।
सत्याबभूव संहृष्टः कामार्तो हि तथा तथा॥ १९॥
अहमेवं तथा दृष्ट्वा दक्षजां च पतिव्रताम्।
स्मराविष्टमना वक्त्रं द्रष्टुकामोऽभवं मुने॥ २०॥
न शंभोर्लज्जया वक्त्रं प्रत्यक्षं च विलोकितम्।
न च सा लज्जयाविष्टा करोति प्रकटं मुखम्॥ २१॥
ततस्तद्दर्शनार्थाय सदुपायं विचारयन्।
धूम्रघोरेण कामार्तोऽकार्षं तच्च ततः परम्॥ २२॥
आर्द्रेन्धनानि भूरीणि क्षिप्त्वा तत्र विभावसौ।
स्वल्यांज्याहुति विन्यासादाद्रद्रव्योद्भवस्तथा॥ २३॥
प्रादुर्भूतस्ततो धूमो भूयांस्तत्रसमंततः।
तादृग् येन तमोभूतं वेदी भूमि विनिर्मितम्॥ २४॥

ततो धूमाकुले नेत्रे महेशः परमेश्वरः ।
हस्ताभ्यां छादयामास बहुलीलाकरः प्रभुः ॥ २५ ॥
ततो वस्त्रं समुत्क्षिप्य सतीवक्त्रमहं मुने ।
अवेचं किल कामार्तः प्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ २६ ॥
मुहुर्मुहुरहं तात पश्यामिस्म सतीमुखम् ।
अथेन्द्रियविकारं च प्राप्तवानस्मि सोऽवशः ॥ २७ ॥
मम रेतः प्रचस्कंद ततस्तद्वीक्षणाद्द्रुतम् ।
चतुर्विन्दुमितं भूमौ तुषारचयसन्निभम् ॥ २८ ॥

शिवपु० रुद्र० सती अ० १९॥

भाषार्थ—अग्नि की प्रदक्षिणा करते हुए सती के दोनों पैर कपड़े से बाहर नंगे हो गये। वह मैंने देख लिये ॥ १७ ॥ मैं काम में व्याकुल होकर उस के और अंगों को देखने लगा। क्योंकि मैं शिव की माया से मोहित था ॥ १८ ॥ मैं कौतुक से जैसे जैसे उस सती के सुन्दर अंगों को देखता था। वैसे वैसे मैं कामार्त होता जा रहा था ॥ १९ ॥ मैं इस प्रकार से पतिव्रता दक्ष की पुत्री को देखकर काम से व्याकुल होकर मुख के देखने की इच्छा करने लगा ॥ २० ॥ मैंने महादेव की लज्जा से प्रत्यक्ष मुख नहीं देखा और वह भी लज्जा से मुख नंगा न करती थी ॥ २१ ॥ तब मैंने उस के दर्शनार्थ अच्छा उपाय विचारा। मैंने कामार्त होने से घोर धुआं पैदा कर दिया ॥ २२ ॥ बहुत गीली सी लकड़ियां वहां अग्नि में डालकर और अल्प घी डालने से गीली लकड़ियों से धूआं पैदा हो गया ॥२३॥ तब वहां बहुत धुआं पैदा हो गया। जिससे सारी वेदी धुआंधार होगई ॥ २४ ॥ तब महादेव ने धूएँ से व्याकुल हुए नेत्र

दोनों हाथों से ढक लिये ॥ २५ ॥ तब मैंने प्रसन्न मन से कामार्त हो कपड़ा उठाकर सती का मुख देख लिया ॥ २६ ॥ मैं सती का मुख बार बार देखता था। तब मैं बेबस होकर इन्द्रियों के विकार को प्राप्त होगया ॥ २७ ॥ तब उसके देखने से शीघ्रता से मेरा वीर्य पात होगया। वह वीर्य्य चार बिन्दु ओस के क़तरों के समान था ॥ २८ ॥

इस प्रकार के सैंकड़ों ब्रह्मचर्य विरोधी कार्य ब्रह्मा के पुराणों में दिखाये जा सकते हैं। तो क्या इन्हीं के लिये ब्रह्मा का अवतार हुआ था।

३२ प्रश्न—"तदण्डमभवद्धैममिति मनु० १।९" में मनु ने ब्रह्माण्ड के सूक्ष्म रूप विराट से ब्रह्मा की उत्पत्ति लिख कर वेद मंत्र की पुष्टि की है॥ पृ० १६७ पं० २३

उत्तर—न तो वेद मंत्र में ही आप के फ़र्ज़ी पौराणिक ब्रह्मा के अवतार का वर्णन है। और न ही मनुस्मृति उसकी ताईद करती है। मनु ने जिस ब्रह्मा के प्रकट होने का उपरोक्त श्लोक में वर्णन किया है। उस ब्रह्मा का लक्षण वह मनु अ० १ श० ११ में इस प्रकार करके स्पष्ट करते हैं।

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सद सदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥

भाषार्थ—जो वह अदृश्य नित्य सत् असत् आत्मिक कारण प्रकृति है। उसको स्थूल कार्य्य रूप में प्रकट करने के कारण उस परमात्मा को ब्रह्मा कहते हैं॥ और सूक्ष्म उपादान कारण प्रकृति को स्थूल कार्य्य रूप में तबदील करना ही परमात्मा का प्रकट होना है जैसे—

ततः स्वयंभूर्भगवान् अव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातन ।
सर्व भूतमयोऽचिंत्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥
मनु० १ । ६—७

भाषार्थ—फिर वह नित्य, बाह्य इन्द्रियां से अगोचर, योगाभ्यास से सेवन करने के योग्य, अखंडित सृष्टि सामर्थ्य वाला, प्रकृति का प्रेरक, परमात्मा आकाशादि पांच महाभूतों को सूक्ष्म रूप से स्थूल रूप में प्रकाशित करके प्रकाशित हुवा ॥ ६ ॥ जो वह बाहर की इन्द्रियों से अगोचर, सूक्ष्म, अवयवों से रहित नित्य सर्व-भूतों में व्यापक परमात्मा है ॥ ७॥ वह स्वयं ही कारण प्रकृति को कार्य्य जगत में तबदील करके प्रकट हुआ आशा है अब आप भली-भांति समझ जावेंगे कि मनुस्मृति में भी परमात्मा के जन्म धारण तथा अवतार का ज़बरदस्त खंडन है। अब तीनों श्लोकों की रोशनी में आपके श्लोक के अर्थ इस प्रकार से हुए।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशु समप्रभम् ।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः ॥ मनु० १ । ९ ॥

अर्थ—वह प्रकृति रूप बीज़ अर्थात् कारण सूर्य्य और सोने के समान चमकने वाला अण्डे समान गोल रूप होगया। उसके ऐसा कार्य्यरूप बनने पर सारे संसार के पितामह ब्रह्मा अर्थात् परमात्मा अपने आप ही प्रसिद्ध होगये। क्योंकि कार्य्य से ही कर्ता प्रसिद्ध होता है॥ बस इस श्लोक का यही अर्थ वेदानुकूल होने से सत्य है। अतः इस से ईश्वर का ब्रह्मा रूप में अवतार लेना सिद्ध नहीं होता।

३३ प्रश्न—"ब्रह्मा देवानां प्रथमः" मुण्डकोपनिषत् में यह स्पष्ट है कि संसार के बनाने वाले और संसार की रक्षा करने वाले ब्रह्मा समस्त देवताओं से पहिले प्रकट हुए। मानना पड़ेगा कि ब्रह्मा ईश्वर अवतार है॥ पृ० १३८ पं० ५

उत्तर—प्रथम तो यह वेद का प्रमाण नहीं है। उपनिषद वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं अन्यथा नहीं। दूसरे इस लेख में न तो ईश्वर का वर्णन है। और नही ईश्वर के जन्म लेने का वर्णन है। अपि तु ब्रह्मा नाम के ऋषि का वर्णन है। यहां पर "देवों में प्रथम" का अभिप्राय "विद्वानों में अव्वल दर्जा" अर्थात् "विद्वानों में फर्स्ट क्लास,, "सर्व श्रेष्ठ" ऐसा है। प्रथम पैदा होने का नहीं है। अतः इस पाठ का सत्य वेदानुकूल अर्थ इस प्रकार है।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
सब्रह्म विद्यां सर्वविद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह॥ १॥

भाषार्थ—ब्रह्म वेत्ता विद्वानों में प्रसिद्ध मुख्य ब्रह्म विद्या के उपदेश द्वारा संसार के ज्ञान रूप जन्म दाता तथा रक्षक ब्रह्मा नामक ऋषि मशहूर हुए। उन्हों ने अथर्वा नामक अपने बड़े पुत्र को सब विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या का उपदेश किया॥ १॥ ब्रह्मवेत्ता विद्वानों में प्रसिद्ध और ब्रह्मविद्या के उपदेश द्वारा अपने शिष्य वर्ग को जन्म देनेवाला "ब्रह्मा" नामक ऋषि हुआ। और उस ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा के प्रति ब्रह्मविद्या का उपदेश किया। बस इसके विना यहां अवतार का गंध भी नहीं है॥

वराहावतार

३४ प्रश्न—"वराहेण पृथिवी संविदाना। अथर्व० १२।१। ४८" में वराह सूकर रूपधारी प्रजापति ईश्वर अवतार का वर्णन है। पृ० १६८ पं० १७

उत्तर—इस मंत्र को आप ने पूरा न देकर धोखा किया है। इस पूरे मंत्र को पढ़ने से पता लगता है कि न इसमें कहीं ईश्वर का वर्णन है और न ही उसके अवतार का ज़िक्र है। अपितु यहां पर पृथिवी मेघ तथा सूर्य्य की विद्या का वर्णन है। केवल वराह शब्द को देखते ही अवतार की कल्पना करनी निर्मूल है। क्योंकि निरुक्त अ० ५ खं० ४ में "वराहो मेघो भवति" वराह नाम मेघ का है, स्पष्ट लिखा है। पूरा मंत्र तथा उसका ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

मल्वं बिभ्रति गुरुभृद् भद्रपापस्य निधनं तितिक्षुः।
वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहोते मृगाय॥
अ० १२।१।४८॥

भाषार्थ—धारण सामर्थ्य को और भारी-पन रखने वाले सामर्थ्य को धारण करने वाली, भले और बुरे के समूह को सहने वाली, मेघ के साथ मिली हुई पृथिवी सुखद किरणों वाले गमन शील सूर्य्य के लिये विविध प्रकार प्राप्त होती है॥४८॥

भावार्थ—पृथिवी अपने धारण आकर्षण से सब पदार्थों को अपने पर रखती है। और सूर्य के सन्मुख जल आकाश में चढ़ता और बरसता है। उस पृथिवी को उपयोगी बनाने में मनुष्य प्रयत्न करें। इस से स्पष्ट हो गया कि इस मंत्र में ईश्वर अवतार का लेशमात्र भी वर्णन नहीं है।

३५ प्रश्न—"उधृतासि वराहेण। तैत्ति० अ० १ अनु० १ मं० ३०" में भी ईश्वर के वराह अवतार की पुष्टि की गई है॥ पृ० १६८ पं० २१।

उत्तर—प्रथम तो आप का यह प्रमाण वेद का नहीं है। क्योंकि तैत्तिरीय आरण्यक भी परतः प्रमाण है। दूसरे इस पाठ में भी ईश्वर या ईश्वर के जन्म लेने का लेश मात्र भी ज़िकर नहीं है। क्योंकि आप भी वाराह भगवान के सैकड़ों हाथ तथा उसका काला रंग नहीं मानते। अतः यहां पर भी भूमि का उद्धार करने वाले सैकड़ों शक्तियों से सम्पन्न काले रंग के मेघ का ही वर्णन वेदानुकूल है।

उद्धृताऽसि वराहेण कृष्णेन शत बाहुना॥

भाषार्थ—इस पृथिवी का वर्षा की सैकड़ों धारा रूप शक्तियों से युक्त काले रंग वाले मेघ समूह ने उद्धार किया है। इसके सिवाय यहाँ पर और अर्थ असंभव है।

(३६) प्रश्न—"इयतीह वा इयमग्रे। शत० १४।१।२।११" में भी वाराह अवतार का बर्णन मौजूद है॥ पृ० १६८ पं० २५

उत्तर—आपको वेद का तो कोई प्रमाण मिलता ही नहीं। यहां पर भी वाराह शब्द को देखते ही शतपथ का प्रमाण दे मारा। श्रीमान जी! इस पाठ में भी न ईश्वर का वर्णन है। और न ही उसके जन्म लेने का प्रतिपादन है। अपि तु यहां भी यज्ञ से वर्षा द्वारा प्रजा का पालन करने वाले पृथिवी के पति मेघ का ही वर्णन है। इस पाठ का अर्थ वेदानुकूल इस प्रकार से है।

इयतीह वा इयमग्रे पृथिव्या स प्रादेश मात्री तामेमूष
इति वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिः प्रजापतिरिति॥
(शत० १४।१।२।११)

भाषार्थ—यह इतनी पृथिवी जो सामने है। यह उस सारी पृथिवी का भाग मात्र है (क्योंकि तीन भाग पृथिवी जलों के नीचे है और एक भाग खाली है) उस का यह मेघ उद्धार करता है। सो मेघ इस का पति तथा प्रजा का पालन करने वाला है। कहिये इससे अवतार कैसे सिद्ध हुआ और आपके वाराहजी ने अवतार लेकर संसार का उपकार क्या किया हमें तो पुराणों में वाराह की कथा इस प्रकार से मिलती है। देखिये—

वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा।
उद्धार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलात् ॥ २७ ॥
जले तां स्थापयामास पद्मपत्र यथार्णवे।
तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा सर्वं विश्वं मनोरहरम् ॥ २८ ॥
दृष्ट्वातदधिदेवीं च सकामां कामुको हरिः।
वाराह रूपी भगवान् कोटि सूर्य्य समप्रभः ॥ २९ ॥

कृत्वा रतिकरीं शय्यां मूर्तिं च सुमनोहराम्।
क्रीडां चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम् ॥ ३० ॥
सुख संभोग संस्पर्शान्मूर्च्छां संप्राप सुन्दरी।
विदग्धया विदग्धेन संगमोऽपि सुखप्रदः ॥ ३१ ॥

विष्णुस्तदंगसंश्लेषाद्बुबुधे न दिवानिशम्।
वर्षांते चेतनां प्राप्य कामी तत्याज कामुकीम् ॥ ३२ ॥
दाधार पूर्व रूपं हि वाराहं चैव लीलया।
पूजां चकार भक्त्या च ध्यात्वा च धरणीं सतीम् ॥ ३३ ॥
बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मंगलः ग्रहः ॥ ३४ ॥

(ब्रह्मवै० प्रकृति० अ० ८)

भावार्थ—वाराह कल्प में वाराह भगवान् हुए जिनकी पहिले ब्रह्मा ने स्तुति की। हिरण्याक्ष को मारकर रसातल से पृथिवी का उद्धार किया ॥ २७ ॥ उसकी जल में स्थापना की जैसे समुद्र में कमल वहां पर ही ब्रह्मा ने सारा सुन्दर जगत बनाया ॥ २८ ॥ कामातुर उसकी अधिष्ठात्री देवी को देखकर करोड़ सूर्य के समान कान्ति वाले वाराह रूपी कामुक हरि भगवान कामातुर हो गये ॥ २९ ॥ अपनी मूर्ति मनोहर बना कर और भोग योग्य चारपाई तैयार कर के हज़ारों देवताओं के वर्षों तक दिनरात कामक्रीडा की ॥ ३० ॥ वह सुन्दरी आनन्द भोग के स्पर्श से मूर्च्छा को प्राप्त हो गई। चतुर का चतुर के साथ भोग भी सुख दायक होता है ॥ ३१ ॥ विष्णु उस के अंगों के स्पर्श से दिन रात बेहोश पड़े रहे। वर्ष के पीछे चेतनता को प्राप्त होकर कामी विष्णु ने कामुकी को छोड़ दिया ॥ ३२ ॥ पहिले की भांति ही लीला से वाराह रूप धारण कर लिया और सती धरणी को याद करके उस की पूजा करने लगे ॥ ३३ ॥ उस गर्भ से तेजस्वी मंगल नाम का ग्रह पैदा हुआ ॥

कहने में आप चाहे कितनी बातें कहें किन्तु अवतारों के पुराणों में वर्णित आचरण से तो संसार को कोई धार्मिक शिक्षा नहीं मिलती।

वामनावतार

(३७) प्रश्न—"इदं विष्णुर्विचक्रमे। यजु० ५।१५" इत्यादि मंत्र में वामन अवतार का वर्णन मौजूद है। पृ० १६९ पं० १५

उत्तर—इस मंत्र में न तो परमेश्वर के जन्म लेने का वर्णन है। और न ही पौराणिक वामनावातार का नाम है। अपितु इस मंत्र में "परमात्मा ने तीन प्रकार के जगत को बना कर आकाश में स्थित कर रक्खा है" यह वर्णन किया गया है। मंत्र का ठीक अर्थ इस प्रकार है।

इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्।
संमूढमस्य पांसुरे स्वाहा॥ यजु० ५। १५॥

भावार्थ—सब जगत में व्यापक परमेश्वर इस जगत को रचता हुआ, इस प्राप्त करने योग्य जगत् को तीन प्रकार से धारण करता है। इस प्रकाशवान् प्रकाश-रहित और अदृश्य तीन प्रकार के परमाणु, आदि रूप अच्छे प्रकार देखने और दिखलाने योग्य जगत का ग्रहण करता हुआ, इस अच्छे प्रकार विचार करने, कथन करने योग्य दृश्य जगत् को अंतरिक्ष में स्थापित करता है॥ १५॥

कहियेगा इसमें से आपका वामनावतार कैसे सिद्ध होता है!

(३८) प्रश्न—"मध्येवामनमासीनम्" कठ० ५। ३" इस मंत्र में भी ईश्वर के वामनावतार की पुष्टि की है। पृ० १६९ पं० २०

कठ उपनिषद् स्वतः प्रमाण नहीं अपितु वेदानुकूल होने से प्रमाण हो सकता है। आपने पूरा मंत्र दर्ज नहीं किया, वरना आपको पता लग जाता कि इस मंत्र में न ईश्वर का वर्णन है और न ही ईश्वर के जन्म का प्रतिपादन है। अपितु इस मंत्र में "शरीर में जीवात्मा की स्थिति" कथन की गई है। वामन शब्द के अर्थ "सूक्ष्म" तथा "प्रशंसित ज्ञानवाला" है। इस मन्त्र का पूरा पाठ तथा वेदानुकूल अर्थ इस प्रकार से है।

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ ३ ॥

(कठ० ५ । ३)

भावार्थ—जो जीवात्मा प्राण वायु को ऊपर ले जाता है। और अपान वायु को हृदय देश से नीचे फैंकता है। बीच में (हृदय में) स्थित सूक्ष्म परिच्छिन्न ज्ञानी जीवात्मा को सब इन्द्रियाँ सेवन करती हैं ॥ ३ ॥

बतलाइये इसमें कहीं पर ईश्वरावतार की गंध भी है।

(३९) प्रश्न—"वामनोह विष्णुरास" शत० १ । २ । २ । ५ में भी विष्णु के वामनावतार को साबित किया गया है। पृ० १६६ पं० २३।

उत्तर—जादू वह जो सिर पर चढ़ कर बोले। आप ने स्वयं ही शतपथ का पाठ देकर बतला दिया कि "वामन नाम विष्णु का है।" चूंकि विष्णु अर्थात् व्यापक परमात्मा अत्यन्त सूक्ष्म तथा प्रशंसित ज्ञान वाला है। अतः परमात्मा का नाम वामन है। इस से सिद्ध हुआ कि परमात्मा का ही नाम वामन है, न कि परमात्मा किसी फ़रज़ी वामन रूप को धारण करके लोगों को ठगता फिरता है।

(४०) प्रश्न—इसी प्रकार वेद में समस्त अवतारों का वर्णन है। पृ० १७० पं० १

उत्तर—प्रथम आपने सृष्टि की सारी शकलों को ब्रह्मा की ही शकलें सिद्ध करके सब को अवतार सिद्ध करने का यत्न किया, जोकि निष्फल गया। फिर आपने कहा कि ब्रह्मा के अवतार तो सैंकड़ों होते हैं किन्तु उनमें से दश मुख्य हैं।

फिर जब सिद्ध करने का समय आया तो केवल यक्ष, मत्स्य, ब्रह्मा, वाराह और वामन, इन पांच का ही वर्णन कर सके। उनमें से यक्ष का तो अवतारों में नाम ही नहीं है। रह गये चार। उनमें से भी ब्रह्मा का नाम २४ अवतारों में तो है किन्तु दश विशेष अवतारों में ब्रह्मा का नाम नहीं है। रह गये तीन। उन में से मत्स्यावतार के लिये वेद का कोई मन्त्र पेश नहीं किया जासका। शतपथ का प्रमाण देकर रहगये। अब रहे दो। उन दोनों में से वामनावतार के लिये जो वेद मन्त्र पेश किया है। उस में वामन शब्द ही नहीं है। अपितु विष्णु नाम से व्यापक ब्रह्म का वर्णन है। अब रह गये केवल एक वाराह भगवान्। उन के लिये वेद का एक मन्त्र पेश किया जिस में भी वाराह अवतार का नामो निशान भी नहीं है। अपितु वाराह शब्द से मेघ का वर्णन है। जैसे आपने इन अवतारों का वर्णन वेद से सिद्ध किया, यदि समस्त अवतारों का भी इसी प्रकार का वर्णन वेदों में है तो अवतारों का अल्ला ही बेली है। और अवतार आज नहीं तो कल भी नहीं। और यदि वेद के, प्रकरण शब्द अर्थ संबन्ध को देखे बिना केवल किसी का नाम ही किसी मन्त्र में आने से वह अवतार माना जा सकता हो तो फिर अवतारों की क्या कमी है। इस प्रकार से तो सबही किसी वेद के शब्द पर अपना नाम रखकर सनातन धर्म के पूज्य तथा ईश्वर का अवतार बन जावेंगे; जैसे—

(अ) हज़रत ईसा सनातन धर्म के अवतार हुए, क्योंकि "ईशावास्यं यजु० ४० । १" में उनका नाम आता है। जिसका शब्दार्थ ईश्वर है।

(आ) ईसा की माता मर्यम अवतार हुईं क्योंकि "मर्यन योषाकृणुते ऋ० १०। ४०। २" में उनका नाम आता है, जिसका शब्दार्थ मनुष्य है।

(इ) कबीर जी भी अवतार हुए क्योंकि "कवि र्मनीषी यजु० ४०। ८" में उनका नाम आता है जिसका शब्दार्थ सर्वज्ञ है।

(ई) धयापां धानकी भी अवतार हुई क्योंकि "धयापां प्रपीनम् यजु० १७। ८७" में उसका नाम मौजूद है। शब्दार्थ जल पीना है।

(उ) शंभु भंगी भी अवतार हुआ क्योंकि "परिभूःस्वयंभूः यजु० ४०। ८" में उसका नाम आता है। शब्दार्थ नित्य परमात्मा है।

(ऊ) मैं भी सनातन धर्म का अवतार हूँ क्योंकि "मनसा जुष्टा, यजु ४-१७" में मेरा नाम मौजूद है। शब्दार्थ "मन से" है।

(ऋ) मेरी धर्मपत्नी लक्ष्मी भी अवतार हुई क्योंकि "श्रीश्चते लक्ष्मीश्च यजु० ३१। २२" में उसका नाम आता है। शब्दार्थ ऐश्वर्य है।

(ऋ) मेरा लड़का सत्य भी अवतार हुआ क्योंकि "ऋतं च सत्यं च ऋ० १०। १९०। १" में उसका नाम मौजूद है। शब्दार्थ प्रकृति है।

कहियेगा क्या आप हम सबको ईश्वर का अवतार मान कर हमारी धूपदीप से आरति उतार कर पूजने को तय्यार हैं। यदि नहीं तो साफ शब्दों में तसलीम करो कि वेदों में ईश्वर के जन्म लेने का वर्णन एक भी मन्त्र में नहीं है, अपितु वेद के

सभी मन्त्र ईश्वर को अकाय अजन्मा व्यापक वर्णन करते हैं।

निराकार

(४१) प्रश्न—मंत्र तथा ब्राह्मण और उपनिषत् भागों में ईश्वर को निराकार भी बतलाया गया है। किंतु जो ग्रन्थ ईश्वर को निराकार बतलाता है। वह साथ में साकार रूप का भी वर्णन कर देता है। पृ० १७० पं० ४।

उत्तर—एक द्रव्य में दो विरुद्ध गुण नहीं रहा करते। अतः ईश्वर में निराकारता तथा साकारता दो विरुद्ध गुणों का मानना न्याय के विरुद्ध है। चारों मूल वेद मंत्रसंहिता ईश्वर कृत होने से स्वतः प्रमाण हैं। तथा ब्राह्मण और उपनिषद् मनुष्य कृत होने से परतःप्रमाण हैं। चारों वेदों में एक भी मंत्र ऐसा नहीं है। जो ईश्वर को साकार वर्णन करता हो। अपि तु चारों वेद ईश्वर को निराकार सर्वव्यापक तथा अकाय वर्णन करते हैं। ब्राह्मण तथा उपनिषदों में जहां ईश्वर को निराकार वर्णन किया है। वह वेदानुकूल होने से प्रमाण के योग्य है। यदि इन ग्रन्थों में कहीं ईश्वर को साकार वर्णन किया गया हो। तो वह वेद के विरुद्ध होने से प्रमाण के योग्य नहीं हो सकता। यदि कोई ग्रन्थ ईश्वर कोनिराकार तथा साकार भी वर्णन करता हो तो वह ग्रन्थ व्याघात अर्थात् परस्पर विरोध होने के कारण प्रमाण के योग्य नहीं समझा जासकेगा।

(४२) प्रश्न—"स पर्य्यगात् यजु० ४०।८" इस मंत्र में जहां "अकायम्" पद से ईश्वर को निराकार वर्णन किया है। वहां पर "परिभूः स्वयंभूः" इन दो पदों से चारों ओर से प्रकट होने

वाला तथा अपने आप शरीर धारण करने वाला" बयान किया है। पृ० १७० पं० १०।

उत्तर—इस मंत्र में एक पद भी ईश्वर को साकार वर्णन करने वाला नहीं है। "परिभूः" का अर्थ है "दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला" तथा "स्वयंभूः" का अर्थ है "अनादि स्वरूप।" इन दोनों पदों के आपके किये हुए अर्थ स्वयं इस मंत्र के पदार्थ से ही विरुद्ध हैं। क्योंकि जो परमात्मा "अकायमस्नाविरम्" "शरीर रहित तथा नाड़ी और नस के बन्धन से रहित" हो। उसके लिये "चारों ओर से प्रकट होने वाला तथा अपने आप शरीर धारण करने वाला" कहना अत्यन्त असंभव तथा असंगत और व्याघात दोष से दूषित है। इस मन्त्र के ठीक-ठीक अर्थ संख्या ३ पर देखने की कृपा करें।

(४३) प्रश्न—जब ईश्वर के शरीर ही नहीं तो फिर यह क्या कहा कि "व्रण शून्य, नस नाड़ी के बन्धन से रहित, शुद्ध, पापशून्य है।" जब शरीर निषेध कर दिया तब तो व्रण, नसनाड़ी और पाप तीनों का ही निषेध हो गया। शरीरधारियों के ही फोडा-फुन्सी, नस, नाड़ी और पाप अनुष्ठान होता है। जब शरीर ही नहीं तो फिर व्रणादि का निषेध कैसा। पृ० १७० पं०२०

उत्तर—वेद ने परमात्मा के शरीररहित होने में ये तीन हेतु वर्णन किये हैं। ताकि मनुष्यों को परमात्मा के शरीर रहित होने का निश्चित ज्ञान हो जावे और परमात्मा के शरीर धारण की भ्रांति निवृत्त हो जावे।

(क) "भोगायतनं शरीरम्" शरीर पापों के फल भोगने का ठिकाना है। शरीर को वही धारण करता है। जिस ने

अपने पापों का फल भोगना हो। चूंकि परमात्मा पाप
अतः वह शरीर को धारण नहीं करता।

(ख) शरीर को वही धारण कर सकता है जो परि
होने के कारण शरीर के अन्दर रहते हुए नाड़ी और न
बंधन में फंस कर तादात्मभाव संबंध से शरीर को अप
और इन्द्रियों के द्वारा सांसारिक विषयों का अनुभव
चूंकि परमात्मा सर्वव्यापक होने के कारण किसी एक
के अन्दर रह कर नाड़ी और नसों के बन्धन में फंसकर
त्मभाव सम्बन्ध से किसी शरीर को नहीं अपना सकता
लिये वह शरीर से रहित है।

(ग) जो शरीर धारण करते हैं उनके शरीर में
विकार से फोड़े फुन्सी आदि रोग तथा शरीरधारियों
परस्पर द्वेष संभव होने से युद्धादि में ज़ख्मी होना आ
है। चूंकि परमेश्वर निर्विकार और द्वेष से शून्य है। अत
शरीर धारण कर के विकारी और ज़ख्मी नहीं हो सकता

(४४) प्रश्न—किसी पुरुष ने अपने मित्र से पूछा
आपके कोई लड़का है। उसने उत्तर दिया कि मेरे कोई
नहीं। और उस लड़के के एक आँख तथा एक हाथ
इसका क्या मतलब ? मतलब यही निकलेगा कि इस पु
निज का लड़का नहीं है। गोद लिया है। और वह
टोंटा है। यही दशा इस अर्थ में है। पृ० १७१ पं० २१

उत्तर—आपका यह दृष्टान्त इस मंत्र के अर्थ के अ
नहीं है। इस मंत्र के अर्थ के अनुकूल तो यह दृष्टान्त हो
है कि "वह यज्ञदत्त अविवाहित, निःसन्तान, विरक्त

य ब्रह्मचारी तथा धर्म्मात्मा है" यहाँ पर निःसन्तान, विरक्त
। विषयशून्य, यह तीनों यज्ञदत्त के अविवाहित होने में
हैं। इन से यह सिद्ध नहीं हो सकता कि यज्ञदत्त रंडीबाज़
क्योंकि ब्रह्मचारी तथा धर्मात्मा यह दो विशेषण यज्ञदत्त
रंडीबाज़ सिद्ध होने नहीं देते। इसी प्रकार से ही अव्रणं"
स्नाविरं" "तथा अपापविद्धं" यह तीनों परमात्मा के
कायम्" होने में हेतु हैं। इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता
परमात्मा का शरीर व्रणशून्य नसनाड़ी रहित तथा पाप-
र होता है। क्योंकि सर्वव्यापक सर्वज्ञ नित्य शुद्ध तथा
कर्ता विशेषण जो इस मन्त्र में पढ़े हैं। वह ईश्वर को
र धारी साबित होने नहीं देते। और न ही इस प्रकार का
वास्तव शरीर व्रण रहित नाड़ी बन्धन शून्य तथा पाप-
शून्य होना संभव है। अतः यह कल्पना सर्वथा मिथ्या
आप का दृष्टान्त तो उलटा हमारे पक्ष को सिद्ध करता है
"ईश्वर के निज का शरीर तो नहीं है। किन्तु पृथिवी,
वायु आदि को लाक्षणिक रूप से ईश्वर का शरीरवत्
से शरीर कहा जा सकता है। वह वास्तव शरीर न होगा।
कि वास्तव शरीर में तो व्रण नाड़ीबन्धन तथा पाप फल
का होना आवश्यक है। अतः यह ईश्वर का लाक्षणिक
र है जो इन तीनों बातों से रहित है। कहिये महाराज
जी छब्बे बनने चले थे किंतु दुब्बे ही रह गये वही गत
की हुई।

(४५) प्रश्न—"चिञ् चयने" धातु से "कायम्" पद बनता
अर्थ यह है कि "चिनोति सुखदुखादिकं पापपुण्यात्मकं

यस्मिंस्तत्कायम्" "इकट्ठे किये जाते हैं सुख दुख और पाप पुण्य जिसमें उसका नाम काय है"। और ईश्वर कैसा है वह "अकाय" है। उसके शरीर में सुख दुख पाप पुण्यात्मक कर्मबंधन नहीं होता। वह स्वेच्छा तनु है। अपनी इच्छा से शरीर धारण करता है। यह अर्थ "अकायम्" पद का है॥

पृ० १७१ पं० ३॥

उत्तर—आपके लेख से यह सिद्ध हुआ कि ईश्वर का न तो कोई वास्तव में शरीर है। और न ही वास्तव में काया है। क्योंकि शरीर तो कहते हैं "सुख दुखादि कर्मों का फल भोगने के ठिकाने को" और काया कहते हैं "जिस में सुख दुख पाप पुण्यात्मक इकट्ठे किये जाते हैं" और सुख दुख पाप पुण्यात्मक और उसका भोग कर्मबंधनादि ईश्वर में होता नहीं। इससे सिद्ध है कि ईश्वर शरीर या काया को धारण नहीं करता। तो फिर वह क्या चीज़ है। जिसको वह धारण करता है। यह भी बतलाइये कि वह स्वेच्छा तनु क्या बला है जिसको ईश्वर अपनी इच्छा से धारण करता है। और उस स्वेच्छा तनु का क्या लक्षण है। क्योंकि वह स्वेच्छा तनु वर्तमान मनुष्य पशु पक्षि आदि प्राणियों जैसा तो हो नहीं सकता। क्योंकि यदि ऐसा होगा तो उसमें उपरोक्त शरीर तथा काया के लक्षण आजावेंगे, और उपरोक्त लक्षणों के बिना कोई मनुष्य पशु पक्षी आदि का शरीर नज़र नहीं आता कि जिस में व्रण न हो सके, नस नाड़ी न हों तथा सुखदुखादि पाप पुण्य कर्मों के फल भोगने का ठिकाना न हो, तो फिर वह स्वेच्छा तनु क्या वस्तु है। आपके लेखानुसार तो राम कृष्णादि भी

अवतार सिद्ध नहीं हो सकते। राम ने वृन्दा के शाप से तथा कृष्ण ने राधा के शाप से कर्म फल भोगने के लिये जन्म लिया (देखो नं० २८) राम मेघनाद के बाण से ज़ख़मी हो कर मरे। अतः राम और कृष्ण दोनों के शरीर में व्रण, नाड़ी नस बंधन तथा पापकर्म फल भोग मौजूद होने से ये दोनों ईश्वर के अवतार नहीं हो सकते।

(४६) प्रश्न—इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध में "परिभूः" शब्द है। परिभूः शब्द का अर्थ चारों तरफ से प्रकट होने वाला है। जब ईश्वर परिभूः है और वह चारों तरफ से प्रकट होता है, शरीर धारण कर लेता है, फिर यह निराकार कैसे।

पृ० १७१ पं० १३

उत्तर—"परिभूः" शब्द का अर्थ "चारों तरफ से प्रकट होने वाला" नहीं अपितु "दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला" यह अर्थ है। महीधर भी इसका अर्थ "परिभूः परि सर्वेषामुपर्युपरि भवतीति परिभूः" जो सबके अत्यन्त ऊपर विराजमान है उसका नाम परिभूः हैं अर्थात् सबसे अत्यन्त श्रेष्ठ है। आपका अर्थ तो स्वयं मंत्र के अकायम् पद के ही विरुद्ध है और आप स्वयं भी मानते हैं कि परमेश्वर शरीर वा काया वास्तव धारण नहीं करता (देखो नं० ४५) हाँ यदि आपका यह अभिप्राय हो कि निमित्त कारण ईश्वर उपादान कारण प्रकृति को कार्य रूप जगत् में प्रकट करता है और यही उसका चारों तरफ से प्रकट होना है। और इस जगत् को ही लाक्षणिक रूप से ईश्वर का शरीरवत् होने से शरीर धारण मानते हों तो कुछ मानने की बात है, वरना ईश्वर का मनुष्य

पशु पक्षी आदि का शरीर धारण करना वेद से सिद्ध नहीं हो सकता।

(४७) प्रश्न— परिभूः के पश्चात् ईश्वर को "स्वयंभूः" लिखा है। इसका अर्थ है "स्वयं भवतीति स्वयंभूः" जो अपने आप शरीर धारण करे। जब वह अपने आप शरीर धारण करता है तो फिर उसको निराकार कौन कहेगा। पृ० १७१ पं० १६।

उत्तर—स्वयंभूः का अर्थ स्वयं शरीर धारण करने वाला नहीं अपितु स्वयंभूः का अर्थ अनादि स्वरूप है। इसका अर्थ महीधर भी हमारे अनुकूल ही करते हैं। "स्वयमेव भवतीति स्वयंभूः स नित्य ईश्वरः" जो अपने आप ही हो अर्थात् नित्य ईश्वर स्वयंभूः का अर्थ है यही अर्थ भविष्य पुराण में भी किया गया है।

नोत्पद्यत्त्वादपूर्ववत्त्वात् स्वयंभूरिति विश्रुतः ॥

भविष्य० ब्राह्म० १ अ० ७७ श्लो० १५

भावार्थ—चूंकि परमात्मा कभी उत्पन्न नहीं होता तथा अनादि है। इसलिए परमात्मा को स्वयंभूः कहते हैं ॥१५॥

आपका अर्थ तो स्वयं मन्त्र के अकायम् पद के ही विरुद्ध है। हाँ यदि आप लाक्षणिक रूप से जगत् के पैदा करने को ही शरीर धारण करना मानते हों तो दूसरी बात है। वरना ईश्वर का मनुष्य पशु पक्षी आदि का शरीर धारण करना तीन काल में भी स्वयंभूः पद से सिद्ध नहीं हो सकता।

(४८) प्रश्न —स्वयंभूः शब्द के ऊपर "ततः स्वयंभूर्भगवान्" मनु० १। ६ में मनु जी भी भगवान् को प्रकट होने वाला लिखते हैं। पृ० १७१ पं० १६।

उत्तर—इसमें परमात्मा के प्रकट होने का यही अर्थ है कि निमित्त कारण परमात्मा उपादान कारण प्रकृति से कार्य रूप जगत् बना कर प्रसिद्ध हुआ। पूरा अर्थ देखो (नं० ३२)

(४६) प्रश्न—इस मन्त्र का महीधर भाष्य भी हमारे पक्ष की पुष्टि करता है। यथा—

योऽयमतीत मन्त्रोक्त आत्मा स पर्य्यगात् परितः सर्वत्र गच्छति नभोवत्सर्वंव्याप्नोति। व्याप्य च शाश्वतीभ्यो नित्याभ्यः समाभ्यः संवत्सराख्येभ्यः प्रजापतिभ्यो याथातथ्यतः यथा भूतकर्म फलसाधनतः अर्थात् कर्तव्यपदार्थान् व्यदधात्। यथानुरूपं व्यभजदित्यर्थः। सकीदृशः। शुक्रमित्यादि विशेषणानिलिङ्ग व्यत्ययेन पुंलिंगे नेतव्यानि। शुक्रः शुद्धो दीप्तिमान्। अकायो अशरीरः। लिंगशरीरवर्जित इत्यर्थः। अव्रणोऽक्षतः। अस्नाविरः शिरारहितः। अव्रणोऽस्नाविर इति विशेषणद्वयेन स्थूल शरीर प्रतिषेधः। शुद्धोनिर्मलः। अपाप विद्धोऽधर्म्मादिवर्जितः। कविः सर्वदृक् "नान्यदतोऽस्ति द्रष्टृ" इति श्रुतेः। मनीषी मनस ईषिता सर्वज्ञः। परिभूः। परि सर्वेषामुपर्युपरि भवतीति परिभूः। स्वयंभूः स्वयमेव भवतीति येषामुपरिभवति यश्चोपरि भवति स स्वयमेव भवतीति स्वयंभूः। स नित्य ईश्वरः सर्वं कृतवानित्यर्थः॥ ४०। ८॥

भावार्थ—जो यह पिछले मंत्र में कहा परमात्मा वह आकाशवत् सर्व व्यापक है। और सर्व व्यापक होकर नित्य प्रजापतियों के लिये जीवों के प्रति यथायोग्य कर्म फल साधन से करने योग्य पदार्थों को बनाता है। यथानुरूप विभाग कर दिया यह मतलब है। वह कैसा है। शुद्ध दीप्तिमान् शरीर से रहित। लिंग शरीर

से रहित यह अर्थ है। घाव शून्य नाडी नस रहित। घावरहित नाड़ी शून्य इन दो विशेषणों से स्थूल शरीर का निषेध है। निर्मल अधर्म्म से रहित। सर्व दर्शी। मनीषी सर्वज्ञ। ऊप ऊपर विराजमान्। नित्य ईश्वर ने सब कुछ बनाया य अर्थ है।

(५०) प्रश्न—इस एक मन्त्र को छोड़ कर चारों वेदों कोई दूसरा ऐसा मन्त्र नहीं है। जो ईश्वर को निराकार कहत हो। पृ० १७१ पं० २७

उत्तर—वेदों में ईश्वर को निराकार अजन्मा वर्णन कर वाले "न तस्य प्रतिमास्ति यजु ३२। ३" सजायते प्रथमः ऋ ४। १। ११" "सर्वेनिमेषा जज्ञिरे यजु ३२। २" "अन्तरिच्छनि ऋ० ८। ७२। ३" "सपर्य्यगात् यजु ४०। ८" "अपादिन्द्रो ऋ० ८। ६९। ११" "अजोन क्षमां ऋ० १। ६७। ३" उतनो ऽहिर्बुध्न्य ऋ० ६। ५०। १४" आदि आदि हज़ारों मन्त्र भं पड़े हैं। किंतु समस्त वेदों में एक मन्त्र भी ऐसा नहीं है ज ईश्वर को साकार अथवा जन्म धारण करने वाला वर्णन करत हो। यदि हिम्मत हो तो निकाल कर दिखाओ।

(५१) प्रश्न—दुर्जनतोष न्याय से हम यह भी मान लें कि इस मन्त्र में ईश्वर को निराकार कहा है। इतने से भी त ईश्वर केवल निराकार सिद्ध नहीं होता। क्योंकि "ब्रह्म ह देवेभ्य १" "मनवे ह वै २" "ब्रह्मा देवानाम् ३" "उद्‌धृताऽसिवराहेण ४" "इयतो हवा ५" मध्ये वामनम् ६" वामनो ह विष्णुः ७" "तदे वाग्निः ८" "पुरुषएव इदं ९" एषो ह देवः १०" "प्रजापति श्चरति ११" "ब्रह्मज्येष्ठा १२" "वराहेण पृथिवी १३" "इ

विष्णुः १४" प्रभृति प्रमाणों से जो वेद ने ईश्वर को साकार बतलाया है। क्या इन वेद के प्रमाणों को कोई मनुष्य दबा-लेगा। पृ० १७२ पं० २।

उत्तर—दबाने की क्या ज़रूरत है, जबकि इन प्रमाणों से ईश्वर का साकार होना सिद्ध ही नहीं होता। प्रथम के ७ प्रमाण तो आपने जनता को भ्रम में डालने के लिये वेद के नाम से ज़ाली दिये हैं। क्योंकि ये प्रमाण वेद के नहीं हैं। अपितु ब्राह्मण तथा उपनिषदों के हैं। ब्राह्मण तथा उपनिषदों के प्रमाण वहां तक ही मानने योग्य हैं जहां तक वे वेदानुकूल हों। वेद से विरुद्ध होने पर वे प्रमाण नहीं माने जा सकते। तथापि इन समस्त प्रमाणों में एक भी प्रमाण ऐसा नहीं है जो ईश्वर को साकार या अवतार धारण करने वाला वर्णन करता हो। इन समस्त प्रमाणों के विषय में अपने २ स्थान में विस्तार पूर्वक लिख दिया है वहां पर देखने की कृपा करें।

(५२) प्रश्न—उपनिषदों में ईश्वर को निराकार प्रतिपादन किया है। साथ ही साथ परमात्मा को साकार भी बतला दिया है। पृ० १७२ पं० १२।

उत्तर—वेदों में ईश्वर को निराकार ही वर्णन किया है। उपनिषदों के जो प्रमाण ईश्वर को निराकार वर्णन करते हैं; वे वेदानुकूल होने से प्रमाण माने जावेंगे। यदि उपनिषदों का कोई प्रमाण ईश्वर को साकार वर्णन करता होगा तो वह वेद विरुद्ध होने से प्रमाण न माना जा सकेगा। क्योंकि उपनिषदें परतः प्रमाण हैं।

(५३) प्रश्न—

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं वृहत् ॥ १७ ॥
अपाणि पादो जवनो ग्रहीता ।
पश्यत्यचक्षुः सश्रृणोत्यकर्णः ॥ १८ ॥
सवेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ १९ ॥

(श्वेताश्वेतर० अ० ३)

भाषार्थ—सब इन्द्रियों के विषयों को प्रकाश देने वाला समस्त इन्द्रिय-रहित सब का प्रभु स्वामी सबका रक्षक सब से बड़ा ईश्वर है ॥१७ ॥ ईश्वर के हाथ और पैर नहीं, किंतु बिना पैर के चलता है। और बिना हाथ के पकड़ता है। ईश्वर के नेत्र नहीं किंतु वह देखता है। कान नहीं सुनता है। वह समस्त जानने योग्य पदार्थों को जानता है। किन्तु उस ईश्वर का जानने वाला कोई नहीं। उस को अग्र सब से प्रथम वर्तमान पुराण पुरुष कहते हैं ॥ १९ ॥

इन दो श्रुतियों से निराकार सिद्ध करना कुछ बहुत बड़ी बुराई नहीं है। पृ० १७२ पं० १८।

उत्तर—उपनिषत् के मंत्रों का नाम श्रुति नहीं। श्रुति केवल वेद के लिये ही कहा जा सकता है। इन प्रमाणों से ईश्वर निराकार सिद्ध करना उत्तम गुण है, और उपनिषत् के ये प्रमाण वेदानुकूल होने से मानने के क़ाबिल हैं।

(५४) प्रश्न—बुराई तो यह है कि इसी श्वेताश्वतरोपनिषद् में "एषो देवः २।१६" की श्रुति को जो ईश्वर का अव-

तार होना सिद्ध करती है। उसको छिपा लिया जाता है।

पृ० १७३ पं० ६।

उत्तर—न ही उपनिषद् का यह प्रमाण अवतार होना सिद्ध करता है। और न ही इसे छिपाने की आवश्यकता है, क्योंकि उपनिषद् में आया हुआ यजु० ३२।४ का मंत्र ईश्वर को सर्वव्यापक तथा निराकार वर्णन करता है। पूरा मंत्र तथा ठीक अर्थ देखो (नं० २५)।

(५५) प्रश्न—

यत्तदद्रश्यमग्राह्यमगोत्रमचक्षुः
श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यंविभुं
सर्व गतं सुसूक्ष्मं तदव्ययम्
तद् भूतयोनिं परिपश्यन्तिधीराः ॥६॥मुण्डक० १।६॥

भावार्थ—जो ईश्वर अदृश्य है, अग्राह्य है, अगोत्र है, वर्ण रहित है, जिसके चक्षु नहीं, जिसके कान नहीं, हाथ नहीं, पैर नहीं, नित्य है, विभु है, सर्व व्यापक है, जो सूक्ष्म है, जो अव्यय है, समस्त भूतों का योनि है। उसको धीर पुरुष देखते हैं। निराकार विषय में इस का प्रमाण देना न्याय है।

पृ० १७३ पं० १८।

उत्तर—ठीक है मुण्डकोपनिषत् का यह लेख वेदानुकूल होने से प्रमाण है।

(५६) प्रश्न—किंतु अन्याय यह है कि "ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव" यह मुण्डक की श्रुति जो ईश्वर को साकार बतलाती है। इसको छिपा लिया जाता है। पृ० १७३ पं० २७।

उत्तर--इस मंत्र में ईश्वर का ज़िकर ही नहीं है। अपितु

ब्रह्मा नाम वाले ऋषि का वर्णन है। पूरापाठ तथा ठीक अर्थ देखो (नं० ३३)।

(५७) प्रश्न—जो लोग यह कहते हैं कि हम वेद को स्वतः प्रमाण और उपनिषदों को वेदानुकूल होने पर प्रमाण मानते हैं। वे ही वेद में आई हुई "एषोह देवः" श्रुति को छिपाते हैं और जो "सर्वेन्द्रियगुणाभासम्" तथा "अपाणिपादः" श्रुतियाँ वेद में नहीं आई उनको स्वतः प्रमाण मानते हैं।

पृ० १७३ पं० १२।

उत्तर—हम लोग "सर्वेन्द्रियगुणाभासम्" तथा "अपाणिपादः" इन उपनिषद के मंत्रों को स्वतः प्रमाण नहीं मानते। अपितु "सपर्य्यगात्" इस वेद मंत्र के अनुकूल होने के कारण प्रमाण मानते हैं। और न ही हम "एषो ह देवः" प्रमाण को छिपाते हैं। जब आप स्वयं मानते हैं कि यह मंत्र यजुर्वेद का है। तो फिर आप स्वामी दयानन्दजी के यजुर्वेद भाष्य में देखें। इस पर भाष्य किया है या नहीं। यदि किया है तो फिर आपका यह कहना कि इस श्रुति को छिपाते हैं, सर्वथा मिथ्या और भ्रमोत्पादक है।

(५८) प्रश्न—ईश्वर के विषय में वेद का अभिप्राय यह है, कि वह प्रलय काल में अरूप रहता है। वह अरूप ब्रह्म इच्छा शून्य अविज्ञेय, अनिर्वचनीय है। किंतु इस ब्रह्म का अंश मायिक ब्रह्म कहलाता है। उसमें इच्छा होती है, वहाँ संसार को अपने शरीर से उत्पन्न करता है। पृ० १७४ पं० ५।

उत्तर—आप वेद का नाम लेकर अपने कपोल कल्पित अभिप्राय को प्रकट कर रहे हैं। वरना आपके इस अभिप्राय

का एक वेद मन्त्र ने भी अनुमोदन नहीं किया। वह सनातन ब्रह्म सदा एक रस निर्विकार है। काल भेद से उस में तबदीली नहीं होती। क्योंकि परिणामी पदार्थ नित्य नहीं हो सकता। अतः ब्रह्म सदा ही व्यापक निराकार निर्विकार और रूप रहित है यह माया क्या वस्तु है, ब्रह्म से भिन्न पदार्थ है। या माया अर्थात् अविद्या ब्रह्म का ही गुण है। यदि भिन्न पदार्थ है तो आपने माया कहा हमने प्रकृति कह दिया। भेद क्या पड़ा। और यदि यह अविद्या ब्रह्म का ही गुण है। तो वह ब्रह्म अज्ञानी होकर ब्रह्म कहाने के योग्य न रहेगा। कोई गुण किसी पदार्थ के एक अंश में नहीं रहा करता। और न ही ईश्वर में अंशांशी भाव होसकता है। क्योंकि वह अनन्त है। जब ब्रह्म इच्छा शून्य आप लिख रहे हैं। तो फिर वह इच्छा आई कहां से। क्या अभाव से भाव हो गया? यदि ब्रह्म ने अपने शरीर से जगत् को रचा है तो जगत में ब्रह्म के गुण क्यों नहीं। अतः आपकी समस्त कल्पना वेदविरुद्ध और मिथ्या है। वास्तव में निमित्त कारण ब्रह्म ने साधारण कारण जीवों के लिये उपादान कारण प्रकृति से जगत् को बनाया। यही सिद्धान्त वेदानुकूल और सत्य है।

(५९) प्रश्न—जिस प्रकार मिट्टी से घट और लोहे से कुल्हाड़ी सुवर्ण से कटक अंगूठी बनती हैं। उसी प्रकार यह समस्त संसार ब्रह्म से बनता है। जैसे घट मिट्टी से और कुल्हाड़ी लोहे से तथा कड़े अंगूठी सोने से भिन्न नहीं हैं। ऐसे ही यह संसार ब्रह्म से भिन्न नहीं है। जितनी शकलें छोटी बड़ी, लम्बी-चौड़ी, संसार में दीख रही हैं, ये सब ब्रह्म की शकलें हैं। पृ० १७४ पं० ८

उत्तर—जैसे घट में मिट्टी के, कुल्हाड़ा में लोहे के, कड़ा तथा अंगूठी में सोने के गुण वर्तमान हैं। वैसे ही इस समस्त संसार में ब्रह्म के चैतन्य सर्वज्ञता आदि गुण क्यों वर्तमान नहीं हैं। अतः इस संसार का उपादान कारण ब्रह्म नहीं अपितु प्रकृति है। हां व्याप्य व्यापक भाव से सारा ही संसार ब्रह्म से भिन्न नहीं है। स्वरूप से भिन्न है। ये जितनी शकलें नज़र आरही हैं सब प्रकृति की हैं ब्रह्म की नहीं हैं।

(६०) प्रश्न—इस अभिप्राय को लेकर वेद ने व्यापकत्व और सर्व स्वरूपत्व दो भेदों से प्रजापति को साकार बतलाया। संसार में ईश्वर अनेक रूप धारण कर के आता है। इसी को अवतार कहते हैं। पृ० १.४ पं १२।

उत्तर—वेद का कोई मन्त्र आप ईश्वर को साकार सिद्ध करने में पेश नहीं कर सके। व्याप्य के साकार होने से व्यापक साकार नहीं बनता। संसार का केवल एक ब्रह्म ही "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" नहीं है अपितु ईश्वर जीव प्रकृति, संसार के तीन अनादि कारण हैं। ईश्वर अजन्मा शरीर रहित है, वह कभी जन्म मरण में नहीं आता।

(६१) प्रश्न—किंतु ब्रह्माण्डों से बाहर जो ब्रह्म है। वह भी अरूप है इस कारण से वेद ने प्रजापति को रूप रहित (निराकार) और रूपवान् (साकार) दो प्रकार का बतलाया है। पृ० १७४ पं० १८।

उत्तर—ईश्वर इस जगत् के अन्दर और बाहर एक रस निर्विकार, व्यापक, निराकार रूप रहित सदा से वर्तमान है। वेद का एक मन्त्र भी आप ब्रह्म के दो रूप होने में पेश नहीं

कर सके। आपने जो शतपथ तथा वृहदारण्यक के दो प्रमाण दिये हैं। उन में से एक में यज्ञ के तथा दूसरे में प्रकृति के दो दो रूप वर्णन किये हैं, ब्रह्म के नहीं। अतः सिद्ध हुआ कि वेद ईश्वर को अजन्मा निर्विकार निराकार वर्णन करता है। जन्म धारण करने वाला विकार तथा साकार वर्णन नहीं करता। क्योंकि जो जन्मा है वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण, जगत् की उत्पत्तिस्थिति प्रलय करता है उस के सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है। जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला उस अनन्त गुण कर्म स्वभाव युक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिए जन्म-मरण युक्त कहने वाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है। और जो कोई कहे कि भक्तजन ईश्वर की आज्ञा अनुकूल चलते हैं, उनके उद्धार करनें का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् का बनाने धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस, रावण आदि का वध और गोवर्धनादि पर्वतों का उठाना बड़े कर्म हैं। जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो ईश्वर के सदृश कोई न है न होगा। और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता, जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया। वा मुट्ठी में धर लिया ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता। क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है। इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से

उसका आना-जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहाँ हो सकता है जहाँ न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था? जो कहीं से आया, और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला। ऐसा, ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्या हीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा। इस लिये परमेश्वर का आना-जाना, जन्म-मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता, और ईश्वर साकार भी नहीं है। क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न होता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते, क्योंकि परिमित वस्तु में गुण कर्म स्वभाव भी परिमित रहते हैं। तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा, और रोग, दोष, छेदन भेदन आदि से रहित नहीं हो सकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आँख आदि अवयवों का बनाने हारा दूसरा होना चाहिये। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहाँ ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था। इसलिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता। किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है। अच्छा भला यह तो बतलाने की कृपा करें कि एक ही समय में अनेक अवतारों की क्या ज़रूरत थी। ब्रह्मा विष्णु महादेव तीनों अवतार एक ही समय में हुए। कृष्ण बलराम तथा अर्जुन एक ही समय में, राम और परशुराम एक ही समय में। फिर अवतार की अवतार से लड़ाई। राम और

नहीं सकता। इससे साबित है कि ईश्वर अवतार लेता है और वह साकार है। पृ० ४ पं० १८।

उत्तर—यहाँ पर "मत चोरे और मत चुरवावै" का अर्थ वह नहीं है जो कि प्रचलित भाषा में प्रसिद्ध है। अपितु इसका अर्थ यह है कि हे ईश्वर आप हमारे प्रिय भोगों को हमारे से पृथक् न करें तथा उनकी रक्षा करें इस बारे में हम निम्नलिखित प्रमाण पेश करते हैं।

(क) आर्याभिविनय में स्वामी जी ने इस मन्त्र के अर्थ करते हुए आख़ीर में अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिये साफ लिख दिया है कि "अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो" इससे सिद्ध है कि "मत चोरे और मत चुरवावै" से स्वामी जी का अभिप्राय "यथावत् रक्षा करो और करावो" यही है, अन्यथा नहीं है।

(ख) स्वामी जी का पत्र-व्यवहार प्रथम भाग जो कि पं० भगवद्दत्त जी ने छपवाया है। उसके पृ० ५३ पर स्वामी जी का वह पत्र छपा हुआ है जो स्वामी जी ने संस्कृत में अमरीका निवासी औलकाट साहिब को लिखा था। उस पत्र में पंक्ति १३ पर इस मंत्र का अर्थ करते हुए उपरोक्त विवादास्पद पदों का अर्थ इस प्रकार से किया है कि—

नोऽस्माकं प्रियाणि भोजनान्यभीष्टान्,
भोगान् मा प्रमोषीः पृथङ् मा कुरु।

भाषार्थ—हमारे प्यारे भोजन अभीष्ट भोगों को पृथक् मत करें। इसमें स्वामी जी ने अपने अभिप्राय को साफ तौर से

वर्णन कर दिया है। अतः इस लेख से ईश्वर का अवतार या साकार सिद्ध करना बालू से तेल निकालने के समान असंभव है।

हां, पौराणिक अवतारों में चोरी, धोखा, छल, कपट आदि दुर्व्यसन होने से, वे ईश्वर का अवतार होने के क़ाबिल ही नहीं हो सकते ; जैसे—

(क) राम का झूठ—

कृतदारोऽस्मि भवति भर्येयं दयिता मम ॥२॥
श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान् ॥३॥
बाल्मी० अरण्य० स० १८।

जनकस्य वचः श्रुत्वा पाणीन् पाणिभिरस्पृशन् ॥४॥
चत्वारस्तं चतसृणां वसिष्ठस्य मते स्थिताः ॥३५॥
बाल्मी० बाल० स० ७३

भाषार्थ—राम ने शूर्पणखा से कहा—श्रीमती जी मैं विवाहित हूँ। यह सीता मेरी प्यारी पत्नी है ॥२॥ यह बलवान श्रीमान् लक्ष्मण अविवाहित है ॥३॥ क्या लक्ष्मण अविवाहित था? हर्गिज़ नहीं। जनक की बात को सुनकर वसिष्ठ की सम्मति के अनुसार राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों ने सीता, ऊर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति चारों स्त्रियों का पाणिग्रहण किया। क्या यह ईश्वर के अवतार राम का सफेद झूठ नहीं?

(ख) राम का अधर्म—

युक्तं यत्प्राप्नुयाद्राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि।
अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहितो रणे ॥५२॥
बाल्मी० किष्क० सर्ग १७

भाषार्थ—बाली ने राम से कहा कि मेरे मरने के पीछे सुग्रीव राज्य को प्राप्त करे यह तो ठीक है। किन्तु जो आपने मुझे धोखे से मारा है यह ठीक नहीं है।

(ग) कृष्ण को वृजा से विषयासक्त देखकर राधा ने कहा—

कथं दुनोषि मां लोल रति चौरातिलम्पट ॥५९॥

ब्रह्म वै० कृष्ण जन्म अ० ३

भाषार्थ—हे चंचल मुझे क्यों दुःख देता है। हे अति लम्पट चोरी से पर-स्त्री भोग करनेवाले मुझे दुखी न कर।

(घ) गोपाल सहस्रनाम में—

गोपालो कामनी जार श्चोरजार शिखामणिः।

भाषार्थ—कृष्ण स्त्रियों का यार तथा चोरों यारों के सरदार हैं। कहिये अब भी आपकी तृप्ति हुई या नहीं!

(६५) प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी ने यजुर्वेद अध्याय ३७ मं० ६ "अश्वस्यत्वा वृष्णःशक्ना धूपयामि देव यजने पृथिव्याः" इस पाठ का अर्थ किया है कि "पृथिवी के बीच यज्ञस्थल में वेगवान् घोड़े की लेंडी (लीद) से तुझको तपाता हूँ।" जो ईश्वर घोड़े की लीद बीन लावे और फिर उस को सुलगा कर विद्वानों को उस आग से तपा दे, वह कभी निराकार हो सकता है। पृ० ७ पं० १।

उत्तर—इस स्थान में न तो कहीं यह लिखा है कि ईश्वर लीद बीनकर लावे और न ही यह वर्णन है कि ईश्वर आग को सुलगावे। अपितु यहां पर वैद्यक का प्रकरण है। घोड़े की लीद से तुझको तपाता हूँ का अर्थ यह है कि मैं तुझको घोड़े की लीद से तपाने की आज्ञा देता हूँ। बहुत से ऐसे रोग हैं। जिनमें धूनी देने से और सेकने से आराम आता है। चुनांचे चोट लगी हो तो घोड़े की लीद से सेकना अति लाभदायक है। उसी की ईश्वर ने आज्ञा दी है। इस आज्ञा देने से ईश्वर साकार

कैसे होगया और बीच में से अवतार कहाँ से टपक पड़ा! यहाँ वैद्यक का प्रकरण जानने के लिये मंत्र के अर्थ के नीचे स्वामी जी का लिखा हुआ भावार्थ पढ़ने की कृपा करें।

भावार्थ—जो मनुष्य रोगादि क्लेश की निवृत्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों का संप्रयोग करते हैं वे सुखी होते हैं॥९॥

श्रीमान् जी ! इस मन्त्र में तो ईश्वर ने रोगी मनुष्यों को घोड़े की लींद से सेंकने की आज्ञा ही दी है। किन्तु आपने तो ईश्वर को ही घोड़े की लेंडी से तपा मारा। देखिये आपने अपनी पुस्तक पृ० १९१ पं० १२ में यों लिखा है कि—"अश्वस्यत्वा वृष्णः, इस मन्त्र से घोड़े की लीद से महावीर को पकावें" तथा महीधर भी लिखते हैं कि "हे महावीर "पृथिव्याः देव भजने मखाय मखस्य शीर्ष्णे च वृष्णः सेक्तुरश्वस्य शक्ना शकृता पुरीषेण त्वा त्वां धूपयामि" हे महावीर ! यज्ञ-स्थल में मैं तुझे घोड़े के पाखाने से धूप देता हूँ। कहिये महाराज ! इन महावीरजी से क्या ख़ता हो गई जो इनको भट्टी में झोंका जा रहा है, या महावीर जी इस ही सुगन्धित पदार्थ की धूप को अधिक पसन्द करते हैं। क्यों न हो महाराज, आपके तो देवता ही दुनियाँ से विचित्र है। यदि महावीर जी पाखाने की धूनी से प्रसन्न होते हैं तो वाराह जी उस पुरीष को समूल ही हड़प करने के लिए व्याकुल रहते हैं। प्रतीत होता है या तो महावीर जी को ज्वर हो जाता होगा अथवा वह पागल हो जाते होंगे। क्यों कि पुराणों ने ऐसे रोगों में ही पाखाने आदि का प्रयोग लिखा है; जैसे—

कूर्म मत्स्याश्वमहिषगो शृगालाश्च वानराः ।
विडाल बर्हिकाकाश्च वराहोल्लूक कुक्कुटाः ॥१४॥
हंस एषां च विण्मूत्रं मांसं वा रोम शोणितम् ।
धूपं दद्याज्ज्वरार्तेभ्य उन्मत्तेभ्यश्च शान्तये ॥१५॥
गरुड़० आचार खण्ड अ० १९३

भावार्थ—कछुवा, मछली, घोड़ा, भैंसा, गौ, गीदड़, बन्दर, बिल्ला, मोर, काक, वाराह, उल्लू कुक्कुट, हंस इन जानवरों के मल, मूत्र, मांस, बाल, खून से ज्वर पीड़ित तथा पागलों को शान्त करने के लिये धूप देवे ॥१४ । १५॥

आपकी मौज बन गई, अब आपको महावीर के लिये ही नहीं अपितु दूसरे पौराणिकों के लिये भी औषधार्थ बाहर जाने को ज़रूरत न पड़ेगी। अब तो आपके मन्दिर ही औषधालय का काम देंगे । क्योंकि उपरोक्त जानवरों में से कूर्म मत्स्य, वाराह आदि कई तो आपके पूज्य अवतार मन्दिरों में हो रहते हैं। हाँ, एक आपत्ति है कि वे मल-मूत्र त्याग नहीं करते। यदि आप इसके लिये यत्न करें तो सम्भव है सफल हो जावें। धन्य है महाराज ! आपकी अवतार लीला धन्य है ! यही आपके अवतार हैं जिनकी सिद्धि के लिए आप ऋषि दयानंद जी के ग्रन्थों को कलंकित करने का व्यर्थ परिश्रम कर रहे हैं।

(६६) प्रश्न—स्वामी दयानन्द जी ने "प्रजापतिश्चरति यजु० ३१ । १९"इस मन्त्र का भाष्य करते हुए ईश्वर का प्रकट होना और उसके स्वरूप को ध्यान शील पुरुषों का देख लेना लिखा है। यहाँ पर स्पष्ट रूप से स्वामी दयानन्द जी ने ईश्वर को साकार माना है। अतः ईश्वर का अवतार लेना साफ साबित है। पृ० ८ पं० १२ ।

उत्तर—इस मंत्र के अर्थों से न तो यह सिद्ध होता है कि ईश्वर साकार है। और न ही ईश्वर का अवतार लेना साबित होता है। जब उस में सारे ब्रह्माण्ड स्थित हैं तो पता लगा कि वह सर्व व्यापक है। जब वह सर्व व्यापक है तो साकार कैसे हो सकता है। क्योंकि साकार वस्तु व्यापक नहीं हो सकती अपितु एकदेशी होती है। और व्यापक का किसी एक गर्भ में ही आजाना भी असंभव है। अतः वेद ने कह दिया कि वह स्वयं अजन्मा होते हुए गर्भ, गर्भस्थ जीव तथा अन्तः करण में व्यापक होने से विराजमान है। स्वरूप का अर्थ शकल नहीं अपितु स्वरूप का अर्थ लक्षण है। और परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। यदि परमात्मा की शकल हो तो मूढ से मूढ आदमी भी चक्षु आदि इन्द्रियों से देख वा जान सकता है। चूंकि वह सूक्ष्म होने से वाह्य इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता और योगाभ्यास द्वारा ध्यान से ही जाना जा सकता है। अतः यह कहा कि उसके स्वरूप को ध्यानशील विद्वान् ही जान सकते हैं। वह परमात्मा निमित्त कारण होता हुआ उपादान कारण प्रकृति से अनेक प्रकार के कार्य्यरूप जगत् को बनाता है। और यही उसका बहुत प्रकार से विशेष प्रकट अर्थात् प्रसिद्ध होना है। क्योंकि कर्ता की प्रसिद्धि उसके कामों से ही हुआ करती है। अतः इस अर्थ से ईश्वर को साकार वा जन्मधारी सिद्ध करना स्वयं वेद मंत्र के विरुद्ध होने से यह कल्पना मिथ्या ही है। (विशेष देखें नं० २६) हां पौराणिक अवतार अनेक प्रकार के रूप धारण करके अनेक प्रकार की विचित्र लीला करते रहे हैं; जैसे—

एकदा कृष्ण सहितो नन्दो वृन्दावनं ययौ ॥ १ ॥
चकार माययाऽकस्मान्मेघाच्छन्नं नभो मुने ॥ ३ ॥
एतस्मिन्नन्तरे राधा जगाम कृष्ण सन्निधिम् ॥ ८ ॥
जग्राह बालकं राधा जहास मधुरं सुखात् ॥ २८ ॥
कृत्वा वक्षसि तं कामा च्छलेशं श्लेषं चुचुम्ब च ॥ ३८ ॥
एतस्मिन्नन्तरेराधा मायासद्रत्न मंडपम् ।
ददर्श रत्न कलशं शतेन च समन्वितम् ॥ ३९ ॥
सा देवी मण्डपंदृष्ट्वाजगामाभ्यंतरं मुदा ॥ ४४ ॥
ददर्श तत्र तांबूलं कर्पूरादि समन्वितम् ॥ ४५ ॥
पुरुषं कमनीयं च किशोर श्यामसुन्दरम् ॥ ४६ ॥
शयानं पुष्प शय्यायां सस्मितं मनोहरम् ॥ ४७ ॥
क्रोडं बाल शून्यं च दृष्ट्वा तं नव यौवनम् ॥ ५२ ॥
सर्वस्मृति स्वरूपा सा तथापि विस्मयं ययौ ॥ ५३ ॥
तामुवाच हरिस्तत्र स्मेरानन सरोरुहाम् ॥ ५५ ॥
आगच्छ शयने साध्वि कुरुवक्षस्थलेहिमाम् ॥ ६१ ॥
तिष्ठत्यहं शयानस्त्वं कथाभिर्यत्क्षणं गतम् ॥ ८१ ॥
वक्षस्थले च शिरसि देहि ते चरणांबुजम् ॥ ८२ ॥
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा ऽऽजगाम पुरतो हरेः ॥ ८९ ॥
तस्या हस्तं च श्रीकृष्णं ग्राहयामास तं विधि ॥ १२४ ॥
प्रणम्य राधां कृष्णं च जगाम स्वालयं मुदा ॥ १३७ ॥
प्रणम्य श्री हरिं भक्तया जगाम शयनं हरेः ॥ १६९ ॥
कृष्णश्चर्वित तांबूलं राधकायै मुदा ददौ ॥ १४३ ॥
राधा चर्वित तांबूलं ययाचे मधुसूदनः ॥ १४४ ॥
यः कामो ध्यायते नित्यं यस्यैक चरणाम्बुजम् ।
बभूव तस्य स वशो राधा सतोष कारणात् ॥ १४६ ॥

करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामास वक्षसि ।
चकार शिथिलं वस्त्रं चुम्बनं च चतुर्विधम् ॥ १४८ ॥
बभूव रति युद्धेन विच्छिन्ना क्षुद्र घंटिका ।
चुंबनेनोष्ठ रागश्च ह्याश्लेषेण च पत्रकम् ॥ १४९ ॥
पुलकांकित सर्वांगी बभूव नव संगमात् ।
मूर्च्छामवाप सा राधा बुबुधे न दिवानिशम् ॥ १५१ ॥
प्रत्यंगेनैव प्रत्यंगमंगेनांगं समाश्लिषत् ।
श्रृंगाराष्टविधं कृष्णश्चकार कामशास्त्रवित् ॥ १५२ ॥
पुनस्तां च समाश्लिष्य सस्मितां वक्रलोचनाम् ।
क्षत विक्षत सर्वांगीं नख दंतैश्चकार ह ॥ १५३ ॥
बभूव शब्द स्तत्रैव श्रृंगार स्मरोद्भवः ॥ १५४ ॥
निर्जने कौतुकात् कृष्णः कामशास्त्र विशारदः ॥ १५६ ॥
निवृत्ते काम युद्धे च सस्मिता वक्र लोचना ॥ १५९ ॥
बभूव शिशु रूपं च कैशोरं च विहाय च ।
ददर्श बाल रूपं तं रुदंतं पीडितं क्षुधा ॥ १६३ ॥
यशोदायै शिशुं दातुमुद्यता सेत्युवाच ह ॥ १७३ ॥
यशोदा बालकं नीत्वा चुचुंब च स्तनं ददौ ।
बहिर्निविष्टा सा राधा स्वगृहे गृहकर्मणि ॥ १७७ ॥
नित्यं नक्तं रतिं तत्र चकार हरिणा सह ॥ १७८ ॥

(ब्रह्मवै० खं० ४ अ० १६)

भाषार्थ—एक दिन कृष्ण समेत नन्द जी वृन्दावन में गये ॥ १ ॥ कृष्ण ने माया से आकाश बादलों से युक्त बना दिया ॥ ३ ॥ इतने में राधा कृष्ण के पास गई ॥ ८ ॥ बालक को राधा ने ले लिया । सुख से मधुर हँसने लगी ॥ २८ ॥ काम से

उसे बग़ल में लेकर छाती से लगा कर चूम लिया ॥ ३८ ॥ इतने में राधा ने सैंकड़ों रत्न के घड़ों से परिपूर्ण माया से बना सुन्दर मंडप देखा ॥ ३९ ॥ वह देवी मंडप को देखकर प्रसन्नता से अन्दर गई ॥ ४४ ॥ वहाँ पर उसने कपूर वाला पान (४५) और कामना के योग्य जवान श्याम-सुन्दर ॥ ४६ ॥ सुन्दर हँस मुख पुरुष को पुष्प शय्या पर सोते देखा ॥ ४७ ॥ अपनी गोदी को बालक से खाली और उस नौजवान को देख कर ॥ ५२ ॥ सब कुछ जानते हुए भी हैरान हो गई ॥ ५३ ॥ उस कमल मुख वाली को कृष्ण जी कहने लगे ॥ ५५ ॥ हे प्यारी चारपाई पर आजा, मुझे बग़ल में लेले ॥ ६१ ॥ मैं बैठी हूँ आप लेटे हैं। इसी प्रकार समय जा रहा है ॥ ८१ ॥ मेरी बग़ल और शिर में चरणकमल अर्पण करो ॥ ८२ ॥ इतने में ब्रह्मा कृष्ण के सामने आया ॥ ८९ ॥ ब्रह्मा ने राधा का हाथ कृष्ण के हाथ में पकड़ा दिया ॥ १२४ ॥ ब्रह्मा राधा तथा कृष्ण को प्रणाम करके अपने घर गया ॥ १३७ ॥ राधा कृष्ण को प्रणाम कर के कृष्ण के पलंग पर गई ॥ १३८ ॥ कृष्ण ने चबाया हुआ पान राधा को दिया ॥ १४३ ॥ राधा से चबाया पान कृष्ण ने माँगा ॥ १४४ ॥ काम जिस के चरणों को स्मरण करता था। राधा के सन्तोषार्थ वह कृष्ण उसी काम के वश में हो गये ॥ १४६ ॥ कृष्ण ने हाथ से पकड़ कर राधा को बग़ल में ले लिया। उसके कपड़े ढीले कर दिये और चतुर्विध चुँबन किया ॥ १४८ ॥ रति युद्ध में एक घंटा हो गया, चूमने से होंठों का रंग तथा लिपटने से पत्रावली नष्ट हो गई ॥ १४९ ॥ नये समागम से राधा रोमांचित हो गई। बस राधा मूर्छित हो गई और दिन रात होश में न आई ॥ १५१ ॥ अंग से अंग तथा

प्रत्यंग से प्रत्यंग लिपट गया। काम शास्त्रके जानने वाले कृष्ण ने आठ प्रकार से भोग किया॥ १५२॥ फिर उस राधा ने लिपट कर उस मुस्कराती हुई टेढ़ी नज़र वाली को, नाखुन और दाँतों से ज़खमी कर दिया॥ १५३॥ कामभोग-युद्ध में बड़ा शब्द हुआ॥ १५४॥ काम शास्त्र में चतुर कृष्णने एकान्त में यूँ भोग किया॥ १५६॥ काम युद्ध की समाप्ति पर वह तिरछी नज़र वाली राधा मुस्कराने लगी॥ १५९॥ वह कृष्ण जी युवावस्था को छोड़ कर फिर बालक रूप हो गये, राधा ने कृष्ण को बालक रूप में भूख से पीडित रोते हुए देख॥ १६३॥ वह राधा यशोदा को बालक देकर बातचीत करने लगी॥ १७३॥ यशोदा ने बालक को लेकर चूमा और स्तन दिया। राधा बाहर चली गई, अपने घर अपना काम करने लगी॥ १७७॥ वह राधा रात को हमेशा कृष्ण से भोग करती रही॥ १७८॥

अब वह राधा थी कौन यह अगले तीन श्लोकों से पता लगेगा।

आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः॥ २५॥
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम॥ २६॥
ब्रह्मवै० ब्रह्म० अ०

वृषभानोश्च वैश्यस्य साचकन्याबभूवह॥ ३६॥
सार्द्धरायाण वैश्येन तत्संबन्धं चकार स॥ ३८॥
कृष्ण माता यशोदाया रायाणस्तत्सहोदरः।
गोलोके गोपकृष्णांशः संबंधात्कृष्णमातुलः॥ ३१॥
ब्रह्मवै० प्रकृ० ख० २ अ०

भावार्थ—कृष्ण के बायें पसवाड़े से एक कन्या पैदा हुई ॥ २५ ॥ उसका नाम विद्वान् द्विजों ने राधा रक्खा ॥ २६ ॥ वह राधा वृषभानु वैश्य की कन्या थी ॥ ६ ॥ उसने उसका संबंध रायाण वैश्य से कर दिया ॥ ३८ ॥ कृष्ण की माता जो यशोदा थी रायाण उसका भाई था। वह रायाण गोलोक में तो कृष्ण का अंश था, किंतु संबंध से कृष्ण का मामा लगता था ॥ ४१ ॥ कहिये महाराज जिस राधा से विवाह करके कृष्ण ने काम क्रीडा की वह संबंध से कृष्ण की पुत्री पुत्र-वधू, तथा मामी लगती थी ॥ अब तो "आप बहुधा विजायते" तथा "रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव,, इन दोनों मंत्रों को अवतारवाद में पूर्ण रूप से संगत कर सकेंगे। कुछ शरम तो नहीं आती। इन्हीं अवतारों की सिद्धि में आत्म घाती बन कर ऋषि दयानन्द जी के अभिप्राय से विरुद्ध उनके ग्रन्थों से अवतारवाद सिद्ध करने की धुन में हैं। एक तरफ कृष्ण को ईश्वर का अवतार बतलाते हैं, दूसरी तरफ पुराणों में सैकड़ों कलंक उन पर लगाये हैं। वास्तव में कृष्ण जी क्या थे यह ऋषि दयानन्द जी के शब्दों में देखो। ऋषि कहते हैं कि—

देखो! श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उसका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण, श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्य्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जादासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजी में लगाये हैं। इसको पढ़-पढ़ा सुन-सुना के अन्य मतवाले श्रीकृ-

ष्णजी की बहुतसी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती ?

(सत्यार्थ० समु० ११ प्रकरण भागवत समीक्षा)

जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर मूर्त्तियां अंग्रेजों ने उड़ा दी थीं तब मूर्त्ति कहां गई थी ? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े, शत्रुओं को मारा, परन्तु मूर्त्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रें उड़ा देता और ये भागते फिरते।

(सत्यार्थ० समु० ११ प्रकरण मूर्तिपूजा)

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्रपार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीविजयो भूति र्ध्रुवानीति र्मति र्मम ॥ ७८ ॥

(गीता अ० १८)

भावार्थ—जहां योगीराज कृष्ण हों तथा जहां धनुषधारी अर्जुन हों वहीं श्री, वहीं विजय, वहीं सम्पत्ति तथा वहीं दृढ़ नीति है यह मेरी राय है।

अवतार परिशिष्ट

(६६/२) प्रश्न—"प्रतद्विष्णुः इत्यादि ऋ० १। १५४। २" मंत्र में नरसिंहावतार का वर्णन है।

उत्तर—इस मन्त्र में नरसिंहावतार का नाम मात्र भी नहीं है। अपितु सिंह के दृष्टान्त से परमात्मा का उग्र पराक्रम दिखाया है। मन्त्र तथा उसके वास्तविक अर्थ इस प्रकार से हैं—

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वाः॥

ऋ० १। १५४। २।

भावार्थ—जिस सर्वव्यापक विष्णु के रचे जन्म स्थान नाम इन तीन विविध सृष्टिकर्मों में समस्त लोक-लोकान्तर आधार में निवास करते हैं। वह सर्वव्यापक परमेश्वर पराक्रम से सब लोकों को प्रस्तुत करता है। जैसे पर्वत कन्दराओं में स्थित भयानक मृग अर्थात् सिंह ॥२॥

(६६/३) प्रश्न—"भद्रोभद्रया इत्यादि साम० उत्तर० १५।२।१।३" में रामावतार का वर्णन स्पष्ट आता है।

उत्तर—इस मंत्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "अग्नि" है और यहाँ राम नाम काला अँधियारा है। देखिये इस मंत्र का अर्थ सायणाचार्य्य ने इस प्रकार से किया है कि—

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारञ्जारो अभ्येति
पश्चात्। सुप्रकेतै द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभि-
राममास्थात्। साम० उत्तर० १५।२।१।३

भावार्थ—भजनीय भजनीया के सहित आता है। शत्रुओं का नाशक वह अग्नि स्वयं चलने वाली उषा के सामने आता हैं। तथा भले प्रकार प्रज्ञान=तेजों के साथ सब ओर वर्तमान वह अग्नि श्वेतवर्ण रोकने वाले अपने तेजों से "रामम्" काले रात्री के अन्धियारे को सायं होम काल में तिरस्कार कर के स्थित होता हैं॥ ३॥

(६६/४) प्रश्न—"कृष्णं त राम इत्यादि ऋ० ४।७।९" इस मंत्र में कृष्णावतार का वर्णन है।

उत्तर—इस मन्त्र का देवता भी अग्नि ही हैं यहाँ कृष्ण के अर्थ काला है। इस मन्त्र का सायण भाष्य इस प्रकार से है—

कृष्णं त रामरुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषा मिदेकम्।
यदप्रवीतादधतेह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदुदूतः। ४।७।९

भाषार्थ—हे अग्ने ! तुझ प्रकाशमान के गमन का मार्ग कृष्णवर्ण (काला) है। तेरा प्रकाश आगे रहता है।। चलने वाला तेरा तेज ही सम्पूर्ण रूपवान तेजस्वियों में मुख्य है। जिस तेरे समीप न गये हुये यजमान लोग ज्यों ही तेरे गर्भ रूप अरणी को धरते हैं। त्यों ही तू उत्पन्न होता ही दूत अर्थात् यजमान का दूत बन जाता है ।। ९ ।। इन मन्त्रों में ईश्वर के अवतार का नाम भी नहीं है।

मूर्तिपूजा

(६७) प्रश्न—वेद में ब्रह्म, सूर्य, शक्ति, गणेश, शंकर, विष्णु तथा देवताओं का पूजन स्पष्ट रूप से लिखा है।

पृ० १७६ पं० ३।

उत्तर—वेदों में ब्रह्म, सूर्य, शक्ति, गणपति, शंकर, विष्णु इत्यादि ये सब परमात्मा के ही नाम हैं। अतः वेदों में अनेक नामधारी परमात्मा की ही पूजा का वर्णन है। हाँ यदि उपरोक्त नामों से आपका अभिप्राय किन्ही विशेष पौराणिक देवताओं से हो तो यह बात आपकी गलत है। क्योंकि वेदों में एक अद्वितीय परमात्मा की ही उपासना का वर्णन है। और चारों वेदों में तो "मूर्त्तिपूजा" शब्द भी मौजूद नहीं है।

(६८) प्रश्न—"अर्चत प्रार्चत ऋ० ६। ५। ५८। ८" इस मंत्र में परमात्मा इन्द्र की पूजा की आज्ञा है। पृ० १७९ पं० ५

उत्तर—आपके अर्थ के अनुसार भी इस मंत्र में इन्द्र नाम वाले परमात्मा की ही पूजा लिखी है। और आपके अर्थ में इन्द्र के अर्थ काष्ठ में देकर (ईश्वर) किये गये हैं। हमारी इन अर्थों से कोई हानि नहीं है। क्योंकि इस मन्त्र में न तो मूर्तिपूजा शब्द

मौजूद है और न ही यह आज्ञा वर्तमान है कि परमात्मा की "धात लकड़ी वा पत्थर की इतनी लम्बी चौड़ी मूर्ति बना कर परमात्मा के स्थान में उसकी पूजा करो।" तो फिर न जाने आपने यह मन्त्र मूर्ति पूजा की सिद्धि में क्यों पेश किया है। इस मन्त्र का शुद्ध पाठ ठीक ठिकाना तथा सत्य अर्थ इस प्रकार से है—

अर्चन्त प्रार्चत प्रियमेधासोऽर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्णवर्चत ॥८॥
ऋग्वेद मंडल ८ सूक्त ६९

भाषार्थ—बुद्धिमान मनुष्य परस्पर आपस में एक दूसरे की पूजा अर्थात् सत्कार करें। अतिथि, साधु, महात्मा लोगों का सत्कार करें। अन्न, बल तथा ज्ञान से हमारी रक्षा करने वाले विद्वानों का सत्कार विशेष रूप से करें। सब पुत्र लोग धैर्य शील होकर माता पिता आचार्य का सत्कार करें। पति पत्नी लोग भी आपस में एक दूसरे की पूजा अर्थात् सत्कार करें। इस मन्त्र में इन्द्रियों के स्वामी जीवात्माओं को परस्पर एक दूसरे की पूजा अर्थात् सत्कार करने दी आज्ञा परमेश्वर ने दी है। इसमें मूर्तिपूजा का नाम मात्र भी नहीं है।

(६६) प्रश्न—वेद ने ब्रह्म और संसार का अभेद माना है। इस कारण वेद ने संसारी पदार्थों को पूजना और उस पूजन से ब्रह्म की प्रसन्नता होना मान वेद के अनेक स्थलों में संसारी पदार्थों का पूजन लिखा है। पृ० १७९ पं० १६।

उत्तर—वेद ने तो 'द्वासुपर्णा' इत्यादि अनेक मंत्रों से ईश्वर जीव तथा प्रकृति को अनादि प्रतिपादन किया है। अतः इस संसार का उपादान कारण प्रकृति, निमित्त कारण ईश्वर, तथा

साधारण कारण जीव है। ये तीनों पदार्थ स्वरूप से एक दूसरे से भिन्न तथा व्याप्य व्यापक भाव से अभिन्न हैं। यही वेद का सिद्धान्त है। और वेद ने ईश्वर के स्थान में प्रकृति तथा प्राकृत पदार्थों की पूजा को भी "अंधतमः प्रविशन्ति" इत्यादि मंत्रों द्वारा पाप वर्णन किया है। अतः वेद में कहीं भी परमात्मा के स्थान में किसी और वस्तु की पूजा करने का वर्णन नहीं है। आपने यह सम्पूर्ण प्रतिज्ञा मिथ्या ही की है। हाँ भला यह तो बतलाइये कि आपके मत में यदि ब्रह्म तथा संसार का अभेद है तो फिर आप उपास्य उपासक भेद डाल कर क्यों दुनिया को गुमराह कर रहे हैं। जब सारा संसार ही ब्रह्म है तो उपासना कौन किसकी करेगा। और जब संसार की सब वस्तु ब्रह्म है तो फिर विशेष शकल की मूर्तियाँ बना मंदिरों में स्थापन कर उनकी पूजा का क्यों शोर मचाया जा रहा है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप स्वयं ही अपने लेख से मूर्तिपूजा का खण्डन कर रहे हैं।

(७०) प्रश्न—"नमस्तेऽस्तु विद्युते" अथर्व० १।३।१ इस मन्त्र में बिजली, गर्जना, पाषाण तथा उसकी चोट को प्रणाम करना लिखा है। पृ० १७९ पं० १६।

उत्तर—आपने यह समझ रक्खा है कि नमः का अर्थ नमस्कार ही होता है। परन्तु ऐसा नहीं है। अपितु नमः के अर्थ वज्र (निरु० ३।११।२०) अन्न (निरु० ३।९।७) सेवन निरु० ३।१३।५) भी आते हैं। अतः यहाँ पर नमः शब्द के अर्थ यथा योग्य सेवन अर्थात् उपयोग में लानेके हैं। इस मंत्र में न तो कहीं मूर्ति पूजा शब्द मौजूद है और न ही किसी की मूर्ति बनाने, पूजने का वर्णन है। अपितु विद्युत् आदि पदार्थों के यथा

योग्य उपयोग का वर्णन है। इस मन्त्र का ठीक पता तथा अर्थ यों है।

नमस्तेऽस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्तेऽस्त्वश्मने येनादूडाशे अस्यसि ॥

अथर्व० १। १३। १

भाषार्थ—उस प्रकाश करने वाली बिजली का हम उपयोग करते हैं। उस शब्द करने वाली बिजली का हम उपयोग करते हैं जिस पत्थर से चोट लगना सम्भव है उसका भी हम उपयोग करते हैं। अर्थात् मुनासिब इस्तेमाल करते हैं। कृपया बतलावें इससे मूर्ति पूजा कैसे सिद्ध होती है।

(७१) प्रश्न—"योदेवेभ्यः आतपति यजु० ३१। २०" इस मन्त्र में ब्रह्म के अवयवभूत सूर्य्य की प्रशंसा कर उसको प्रणाम करना बतलाया है। पृ० १७९ पं० २१।

उत्तर—आपने यहाँ पर फिर वही भूल की है कि नमः के अर्थ प्रणाम कर दिये। यदि वेद में सर्वत्र नमः के अर्थ प्रणाम ही हैं। तो ऊपर लिखे हुवे वज्र, अन्न तथा परिचरण व्यर्थ हो जावेंगे। और क्या "तस्कराणां पतयेनमः यजु १६। २१" तथा "श्वनिभ्योनमः" यजु० १६। २७। इत्यादि में भी नमः का अर्थ प्रणाम करके डाकू और भंगियों को भी उपास्य देव मान लेंगे। इसलिये नमः का अर्थ सर्वत्र प्रणाम न लेना चाहिये। इस मन्त्र के ठीक अर्थ इस प्रकार से हैं।

योदेवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥

यजु० ३१। २०

भाषार्थ—हे मनुष्यो जो सूर्य्य-लोक उत्तम गुणों वाले पृथिवी आदि के अर्थ अच्छे प्रकार तपता है। जो पृथिवी आदि लोकों के प्रथम से हितार्थ बीच में स्थित किया। जो पृथिवी आदि से प्रथम उत्पन्न हुआ उस रुचि कराने वाले परमेश्वर के सन्तान के तुल्य सूर्य्य से अन्न उत्पन्न होता है।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने सबके हित के लिये अन्न आदि की उत्पत्ति का निमित्त सूर्य्य को बनाया है। उसी परमेश्वर की उपासना करो ॥२०॥

इस मन्त्र से किसी सूरत में भी मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं हो सकती। श्रीमान् जी जिन सूर्य्य देव की उपासना आप सिद्ध करना चाहते हैं, क्या वह वही तो नहीं हैं जिनका भविष्य पुराण में इस प्रकार से वर्णन आता है कि—

इतिश्रुत्वा वेदमयं वाक्यं चादिति संभवः।
विवस्वान् भ्रातृजां संज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठवानभूत् ॥
(भविष्य० प्रति० स० ३ खं० ४ अ० १८ श० २८)

तत्रस्थिता प्रिया संज्ञा बडवारूप धारिणी ॥३७॥
(प्रमाण पूर्ववत्)

अश्व रूपेण मार्तण्डस्तां मुखेन समासदत् ॥५५॥
सा तं वैवस्वतं शुक्रं नासाभ्यां समधारयत् ॥५६॥
(भविष्य० ब्राह्म पर्व अध्याय ७९)

भाषार्थ—इस वेदानुकूल वाणी को सुनकर अदिति के पुत्र सूर्य ने भी भतीजी से विवाह करके श्रेष्ठता प्राप्त की ॥ २८ ॥ वहां पर वह प्यारी संज्ञा घोड़ी का रूप धारण करके खड़ी थी ॥ ३७ ॥ सूर्य भी घोड़े का रूप धारण करके उसको मुख

से मैथुनार्थ प्राप्त हुये ॥ ५५ ॥ उस संज्ञा ने उस सूर्य के वीर्य्य को नासिका के द्वारों से धारण किया ॥ ५६ ॥

मुझे इस बात का भय है कि कहीं उपासकों में उपास्य के गुण प्रवेश करने से पौराणिकों को भी यह बीमारी न चिमट जावे।

(७२) प्रश्न—"हिरण्यमयेन पात्रेण यजु० ४० । १७" इस मन्त्र में सूर्य मण्डल में व्याप्य अधिष्ठातृ देव को ईश्वर कहा गया है। पृ० १८० पं० ५

उत्तर—आपको अपना पक्ष सिद्ध करते हुए ईमानदारी से काम लेना चाहिये। देखिये आपने इस मन्त्र के अर्थों को स्पष्ट करने वाले वाक्य को मन्त्र में से सर्वथा ही लुप्त कर दिया है। यदि इसी प्रकार से मूर्तिपूजा सिद्ध होनी है। तो यह बेल मढ़े चढ़ती नजर नहीं आती, देखिये इस मन्त्र का पूरा पाठ तथा सत्य अर्थ इस प्रकार है।

हिरण्यमयेनपात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्।
ओ३म् खं ब्रह्म ॥ १७ ॥ य०

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस ज्योति स्वरूप रक्षक मुझ से अविनाशी यथार्थ कारण के आच्छादित मुख के तुल्य उत्तम अंग का प्रकाश किया जाता जो वह प्राण वा सूर्य मंडल में पूर्ण परमात्मा है। वह परोक्ष रूप में आकाश के तुल्य व्यापक सब से गुण कर्म और स्वरूप कर के अधिक हूँ। सब का रक्षक जो मैं उसका ऐसा नाम जानो ॥ १७ ॥

बतलाइये इस में सूर्य का तथा उसके अधिष्ठातृदेव का कहाँ वर्णन है ?

(७३) प्रश्न—"तत्सवितुर्वरेण्य यजु० ३ । ३५" इस गायत्री मन्त्र में सूर्य से यह प्रार्थना की गई है कि हमारी बुद्धियों को शुभ काम में लगावे । पृ० १८० पं० १०

उत्तर—सूर्य अग्नि तत्त्व का पुंज है और अग्नि जड़ है वह जड़ अग्नि हमारी बुद्धियों को शुभ काम में लगाने का सामर्थ्य नहीं रखता । न ही जड़ पदार्थ से प्रार्थना करना बुद्धिमत्ता कहा सकती है । और न ही इस मन्त्र में सूर्य का वर्णन है । अपितु सविता शब्द से जगत् के उत्पादक परमात्मा से ही प्रार्थना करने का वर्णन है । जैसा कि—

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ यजु० ३ । ३५ ।

भाषार्थ—हम लोग सब जगत् के उत्पन्न करने वा प्रकाशमय शुद्ध वा सुख देने वाले परमेश्वर का जो अति श्रेष्ठ पाप रूप दुखों के मूल को नष्ट करने वाला स्वरूप है । उसको धारण करें । और जो अन्तर्यामी सब सुखों का देने वाला है । वह अपनी करुणा करके हम लोगों की बुद्धियों को उत्तम २ गुण स्वभावों में प्रेरणा करें ॥ ३५ ॥ आशा है इस पदार्थ को जानकर आपके दिमाग से जड़ पदार्थों को उपास्य मानने का उन्माद अवश्य दूर हो जावेगा ।

(७४) प्रश्न—"उद्यते नमः उदायते नमः अथर्व० १७ । १ । २२" तथा "अस्तंयते नमः ॥ २३" इन दो मन्त्रों से उदय होते और अस्त होते सूर्य को दोनों समय प्रणाम करना लिखा है । पृ० १८० । पं० १५ ।

उत्तर—इन दोनों मन्त्रों में भी न सूर्य को प्रणाम किया

गया है। और न ही सूर्य की उपासना का वर्णन है। अपितु परमेश्वर को ही नमस्कार करने तथा उपास्य देव मानने का वर्णन है। इन मन्त्रों के ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से हैं।

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२२॥

भाषार्थ—प्रसिद्ध होते हुए को नमस्कार अति उत्तम होने वाले को नमस्कार है। प्रसिद्ध हो चुके हुए को नमस्कार है। विशेष राजा को नमस्कार है। स्वयंभू राजा के लिये नमस्कार है। राज राजेश्वर को नमस्कार है।

अस्तंयते नमो ऽस्तमेष्यते नमो ऽस्तमिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३॥
॥अथर्व० कां० १७ सू० १ मं २२—२३॥

भाषार्थ—अप्रसिद्ध होते हुए को नमस्कार है। अप्रसिद्ध होना चाहने वाले को नमस्कार है। अप्रसिद्ध हो चुके हुए को नमस्कार है। विशेष राजा को नमस्कार है। स्वयं राजा को नमस्कार है। राजाओं के राजा को नमस्कार है ॥ २३ ॥

इन मन्त्रों में जो 'विराज' स्वराज, तथा सम्राज शब्द हैं ये परमात्मा के लिये ही प्रयुक्त हो सकते हैं। सूर्य के लिये नहीं। निमित्त कारण परमात्मा का उपादान कारण प्रकृति से कार्य रूप जगत् बनाना ही प्रसिद्ध होना तथा प्रलय कर देना ही अप्रसिद्ध होना है। यह पूर्व भी लिख आये हैं।

(७५) प्रश्न—"अहंरुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि ऋ० अष्ट० ८ मं० १० अ० १० सूक्त१२५" इस सूक्त के ६ मन्त्रों में ईश्वर शक्ति दुर्गा का वर्णन है। उसके महत्त्व को वेद ने जैसा बतलाया है। उसको ऊपर देख लें। ईश्वर और शक्ति में वेद अभेद मानता है। और वह

बलवती पूज्या है। अतएव इन मन्त्रों के अभिप्राय तथा अन्य बहुत से मन्त्रों के भाव को लेकर वैदिक लोग शक्ति की पूजा करते हैं। पृ० १८१ पं ६।

उत्तर—इस सूक्त का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय 'वागाम्भृणी' अर्थात् वेद वाणी के धारण करने वाला परमात्मा है। यदि ईश्वर शक्ति से आपका अभिप्राय ईश्वर की वेद वाणी धारण करने वाली शक्ति (ताक़त) से है तो हमें इसमें कोई वक्तव्य नहीं है। और गुण गुणी में समवाय सम्बन्ध होने से उस शक्ति का ईश्वर से अभेद होना स्वाभाविक ही है। और यदि ईश्वर शक्ति से आपका अभिप्राय पौराणिक दुर्गा से है तो आपकी कल्पना सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि पौराणिक दुर्गा ईश्वर की शक्ति का नाम नहीं अपितु वह एक अद्भुत व्यक्ति है। वेदों में उसका क़तई वर्णन नहीं है। और न ही वैदिक लोगों के लिये वह पूज्या है। अपितु वह पौराणिक लोगों की आश्चर्य जनक कल्पना है। वह पौराणिक दुर्गा कैसी है, उसका संक्षिप्त स्वरूप निम्न प्रकार से है।

निशुंभशुंभ संहर्त्री मधुमांसासव प्रिया ॥९०॥

शिव० वायु० उत्तर० अ० ३१

उग्रदंष्ट्रा चोग्रदंडा कोटवी च पपौ मधु ॥३॥

जगर्ज साट्टहासं च दानवा भयमाययुः ॥१२॥

दानवानां बहूनां च मांसं च रुधिरं तथा ॥३६॥

भुक्त्वा पीत्वा भद्रकाली शंकरांतिकमभ्ययौ ॥३७॥

शिव० रुद्र० युध० अ० ३८।

जयति नर मुंडमुण्डित पिशित सुराहार कृचंडी ॥१२॥

जयति दिगम्बर भूषा सिद्ध वटेशा महालक्ष्मीः ॥१३॥

दिग्वसना विकृतमुखा विकराल देहा रौद्रभावस्था ॥१५॥
जयति भुजगेन्द्रमणि शोभितकर्णा महातुण्डा ॥१७॥
सिंहारूढ़ा विनिर्गत्य दुर्गाभिः सहिता पुरा ॥२४॥
कुमारी विंशति भुजा घनविद्युल्लतोपमा २५॥॥

भविष्य० उत्तर० अ० ६१ ।

भावार्थ—तेज़ दांतों वाली, कठोर डंडे वाली, शराब पीने वाली, गर्जने वाली, अट्टहास करने वाली, मांस भोजन वाली, खून पीने वाली, मनुष्य-मुण्ड-माला पहनने वाली, मांस शराब आहार वाली, चण्डी, नंगी, कुरूपा, विकराल देह वाली, डरावनी, कानों में सर्पमणि, लंबी चोंच वाली, सिंह सवारी, कुमारी बीस भुजावाली, बिजली सी चमकवाली इत्यादि इत्यादि ।

कहिये महाराज ! क्या इस पौराणिक दुर्गा का ही इस सूक्त में वर्णन आप बतला रहे हैं । यदि ऐसा ही है तो क्या उपरोक्त विशेषण इस सूक्त में मौजूद हैं । यदि नहीं तो क्यों दुनिया की आँखों में धूल झोंक रहे हैं । सीधे होकर मानिये कि इस सूक्त में पौराणिक दुर्गा का वर्णन नहीं है । अपितु वेद वाणी धारक परमात्मा का वर्णन है । इन वेद मन्त्रों का सत्य अर्थ इस प्रकार से है—

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यै रुत विश्व देवैः ।
अहं मित्रा वरुणोभाविभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

भावार्थ—मैं परमेश्वर ज्ञानदाताओं वा दुःखनाशकों निवास कराने वाले पुरुषों के साथ और मैं ही सर्व दिव्यगुण वाले प्रकाशमान अथवा अदीन प्रकृति से उत्पन्न हुए सूर्य आदि लोकों के साथ वर्तमान हूँ मैं दोनों दिन और रात को, मैं पवन

और अग्नि को, मैं ही दोनों सूर्य्य और पृथिवी को धारण करता हूँ ॥१॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरि स्थात्रां भूर्यावेशयंतः ॥२॥

भावार्थ—मैं धनों की पहुँचाने वाली और संगति योग्य पूजनीय विषयों की जाननेवाली पहिली नियम करने वाली शक्ति हूँ। विद्वानों ने बहुत प्रकारों से अनेक पदार्थों में ठहरी हुई उस मुझको अनेक विध से अपने आत्मा में अनुभव करके विविध प्रकार से धारण किया है ॥२॥

अहमेवस्वयमिदं वदामि जुष्टं देवानामुत मानुषाणाम्।
यम् कामयेतं तमुग्रं कृणोमि तं ब्राह्मणंतमृषिंतं सुमेधाम् ॥३॥

भाषार्थ—मैं ही आप सूर्य आदि लोकों और मननशील मनुष्यों का प्रिय यह वचन कहता हूँ। अर्थात् जिस जिसको मैं चाहता हूँ उस उसको ही कर्मानुसार तेजस्वी, उसको ही बृद्धिशील ब्रह्मा, उसी को सन्मार्ग दर्शक ऋषि; उसी को उत्तम बुद्धि वाला बनाता हूँ ॥३॥

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यतियः प्राणतियईंशृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥४॥

भाषार्थ—मेरे द्वारा ही वह अन्न खाता है। जो कोई विशेष करके देखता है, जो श्वास लेता है और जो यह वचन सुनता है, मुझे न जाननेवाले वे पुरुषहीन होकर नष्ट हो जाते हैं। हे सुनने में समर्थ जीव! तू सुन, तुझसे आदर योग्य सत्य बताता हूँ ॥४॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवाउ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावा पृथिवी आविवेश ॥५॥

भाषार्थ—मैं दुःखनाशक शूर के लिये ब्राह्मणों के द्वेषी हिंसक के मारने को ही धनुष सब ओर से तानता हूँ। मैं भक्त जन के लिये आनन्दयुक्त जगत करता हूँ। मैंने सूर्य और पृथिवी की लोक में सब ओर से प्रवेश किया हुआ है ॥५॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणा हविष्मते सुप्राव्या यजमानाय सुन्वते ॥६॥

भाषार्थ—मैं प्राप्ति योग्य ऐश्वर्य को, मैं रसों के छिन्न-भिन्न करने हारे सूर्य को, और पोषण करने हारी पृथिवी को और सेवनीय चन्द्रमा को धारण करता हूँ। मैं भक्ति रखनेवाले, विद्या रस का निचोड़ करने हारे, यज्ञ का सेवन करने हारे, पुरुष को सुन्दर सुन्दर रक्षा योग्य अनेक धन देता हूँ ॥६॥

अब धर्म और न्याय से बताइये कि इस सूक्त में वाणी के धारक परमात्मा का वर्णन है। या आपकी मिथ्या कल्पित पौराणिक दुर्गा का।

(७६) प्रश्न—"गणानांत्वागणपति। यजु० २३। १९" इस मन्त्र में गणपति का आवाहन है। आह्वान पूजा के समय ही होता है। अतएव आह्वान से गणपति का पूजन सिद्ध है॥ पृ० ८२ पं० २७।

उत्तर—आप के भाष्यकार तो इस मंत्र का देवता अश्व मानते हैं तथा इस मंत्र का विनियोग स्त्री को घोड़े के समीप सोने में लगाते हैं। जैसा कि महीधर लिखते हैं कि—

"महिषी अश्व समीपेशेते। अश्व देवत्यम्। हे अश्व गर्भधं गर्भंदधाति गर्भधं गर्भधारकं रेतः अहम् आ अजनि आकृष्य क्षिपामि। तं च गर्भधं रेतः आ अजनि आकृष्य क्षिपसि। १९।

भाषार्थ—यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोती है। यह मंत्र अश्व देवता वाला है। हे अश्व तेरा गर्भ को धारण करने वाला वीर्य्य मैं खैंच कर डालती हूँ। और आप भी खैंच कर डालते है। किन्तु आपने भी यह अनुभव करके कि महीधर भाष्य वेद को कलंकित करने वाला है। स्वामी दयानन्द जी का अनुकरण करते हुए इस मन्त्र का देवता गणपति ही मान लिया है। किन्तु यहाँ पर गणपति शब्द से गुणों के पालक परमात्मा का वर्णन है। पौराणिक गणपति का वर्णन नहीं है। देखिये गणेश जी का स्वरूप पुराणों में इस प्रकार वर्णन किया है।

विचार्येति च सा देवी वपुषोमल संभवम्।
पुरुषं निर्ममौ सा तु सर्व लक्षण संयुतम्॥ २०॥
हे तात शृणुमद्वाक्यं द्वारपालो भवाद्यमे॥ २५॥
विनामदाज्ञां सत्पुत्र नैवायान्मद् गृहान्तरम्॥ २६॥
शिव० रुद्र० कुमार० अ० १३।

एतस्मिन्नेव कालेतु शिवो द्वारि समागतः॥ ३१॥
ताड़ितस्तेन यष्टयाहि गणेशेन महेश्वरः॥ ३५॥
प्रमाण अ० १३।

क्रोधं कृत्वा समभ्येत्य ममश्मश्रूण्यवाकिरत्।
अ० १५, श० ३?।

अथ शक्ति सुतो वीरो वीर गत्या स्वपष्टितः।
प्रथमं पूजयामास विष्णुं सर्व सुखावहम्॥११॥ अ० १६।
एतदन्तरमासाद्य शूलपाणिस्तथोत्तरे।
आगत्य च त्रिशूलेन तच्छिरो निरकृंतत॥३४॥ अ० १६।
तावच्च गिरिजादेवी चुक्रोधाति मुनीश्वर॥४॥ अ० १७।

प्रथमं मिलितस्तत्र हस्ती चाप्येकदन्तकः ॥४९॥४९॥
तच्छिरश्च तदानीत्वा तत्र तेऽयोजयन् ध्रुवम् ॥५०॥ अ० १७।
धन्योऽसिकृत कृत्योऽसि पूर्वं पूज्यो भवाधुना ॥८॥
शिव० रुद्र० कु० अ० १९।

भाषार्थ—विचार करके पार्वती ने अपने शरीर से मैल उतार कर सब लक्षणों से युक्त पुरुष बनाया ॥२०॥ और कहा कि द्वारपाल बन जा ॥२५॥ मेरी आज्ञा के बिना कोई मेरे घर के अन्दर न आवे ॥२६॥ इतने में शिव जी द्वार पर आ गये ॥३१॥ गणेश ने महादेव को लाठी से पीटा ॥३५॥ क्रोध में आकर ब्रह्मा की भी डाढ़ी उखाड़ डाली ॥३१॥ पार्वती के पुत्र गणेश ने प्रथम डंडे से विष्णु की पूजा की ॥११॥ इतने में मौका पाकर शिव ने त्रिशूल से गणेश का सिर काट दिया ॥३०॥ इस पर पार्वती को क्रोध आ गया ॥४॥ पहिले-पहल एक दांत वाला हाथी मिला, तब उसका ही सिर काट कर गणेश के धड़ पर जोड़ दिया ।४९–५०। पार्वती ने धन्य कह कर पूर्व पूजा का विधान कर दिया ।५०।

कहिये इस मंत्र में कहीं आदमी का धड़ हाथी का सूंड वाला शिर चूहे की सवारी करने वाले गणेश का वर्णन मौजूद है, यदि नहीं तो फिर केवल गणपति शब्द के आ जाने से इस विचित्र आकृति वाले पौराणिक गणेश की कल्पना इस मंत्र में से निकालना सर्वथा निर्मूल है। मन्त्र का ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

गणानांत्वा गणपतिꣳहवामहे प्रियाणांत्वा प्रियपतिꣳहवामहे निधीनांत्वा निधिपतिꣳहवामहे वसोमम आहमजनि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्। १९। यजु० २३। १९।

भाषार्थ—हे जगदीश्वर हम लोग गणों के बीच गणों के पालने हारे आपको स्वीकार करते हैं। अति प्रियसुन्दरों के बीच अति प्रिय सुन्दरों के पालने हारे आपकी प्रशंसा करते हैं। विद्या आदि पदार्थों की पुष्टि करने हारों के बीच विद्या आदि पदार्थों की रक्षा करने हारे आपको स्वीकार करते है। हे परमात्मन् जिस आप में सब प्राणी बसते हैं। सो आप मेरे न्यायाधीश हूजिये। जिस गर्भ के समान संसार को धारण करने हारी प्रकृति को धारण करने हारे आप जन्मादि दोष रहित भली भान्ति प्राप्त होते हैं। उस प्रकृति के धर्ता आपको मैं अच्छे प्रकार जानूं। १९।

इस मन्त्र में पौराणिक सूंडधारी मूषक सवारी गणेश का गन्ध भी नहीं है।

(७७) प्रश्न—शतपथ और कात्यायन सूत्र ने अश्वमेध प्रकरण में अश्व में इसका विनियोग लगाया है। मरे हुए अश्व में ईश्वर का आह्वान होता है। अतएव यहां पर भी ईश्वर का ही आह्वान है। अश्व का आह्वान नहीं। इस मन्त्र का देवता गणपति है। जो गणपति है वही ईश्वर है। इस कारण अश्वमेध यज्ञ में किसी अन्य का आह्वान पूजन नहीं है। किन्तु गणपति का है। पृ० १८३ पं० १७।

उत्तर—श्रीमान् जी महीधर भाष्य में तो कहीं गणपति का आह्वान लिखा नहीं। वहां पर "हे अश्व" करके घोड़े का ही आह्वान लिखा हुआ है। और महीधर मे इस मन्त्र का देवता भी अश्व ही माना है, गणपति नहीं। हां किसी साइंस के असूल के अनुसार मरे हुए घोड़े से यजमान की पत्नी का "महिषी अश्वशिश्नम् स्वयमेवाकृष्य स्वयोनौस्थापयति। मही० मं० 20"

इस विधि से नियोजन करने पर बिजली के करंट की भाँति यदि गणपति का आह्वान हो जाता हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि जब यूरोपियन साइंसदान अनेक पदार्थों के मेल से आदमियों के बुलाने के साधनं टेलीफून, टेलीवीज़न आदि अनेक यन्त्र बना सकते हैं। तो क्या पौराणिक अश्वमेध यज्ञ में अश्व तथा यजमान पत्नी के संयोजन से गणपति के बुलाने का एक यन्त्र भी आविष्कार नहीं कर सकते।

(७८) प्रश्न—"तं यज्ञं बर्हिषि यजु ३१।९" इस मन्त्र में विष्णु की पूजा वेद ने लिखी है। पृ० १८३ पं० १७।

उत्तर—आप सिद्ध तो करना चाहते हैं मूर्ति पूजा। और एक भी मन्त्र अभी तक ऐसा पेश नहीं कर सके कि जिससे सूर्य, विद्युत, शक्ति गणेश विष्णु आदि की मूर्ति बनाकर ईश्वर के स्थान में उनकी पूजा करने की आज्ञा साबित हो सके। कहिये यह "प्रतिज्ञा हानि" निग्रह स्थान तो नहीं है। जिसमें फँसकर आप पराजित हो रहे हैं। इस मन्त्र का देवता भी पुरुष अर्थात् पूर्ण परमात्मा है। कोई वृन्दा के सतीत्व को छल से भंग करनेवाले विष्णु का इस मन्त्र में नाम मात्र भी नहीं है। और आपके भाष्यकार महीधर ने भी इस मन्त्र को साकार पूजा में नहीं लगाया अपितु निराकार पूजा में लगाया है। जैसे—"यज्ञं यज्ञ साधन भूतम् तं पुरुषं बर्हिषि मानसे यज्ञे प्रौक्षन् प्रोक्षितवन्तः" यज्ञ के साधन भूत पुरुष परमात्मा को मानसिक यज्ञ में प्रयुक्त करते हैं। जब मन्त्र में विष्णु का नाम ही नहीं है। और यह मन्त्र भी पुरुष सूक्त का है। तो इसमें आप विष्णु लाये कहाँ से। इस प्रकार की मिथ्या कल्पनाओं से अब

वेद विरुद्ध मूर्ति पूजा का संसार में जीवित रहना असम्भव है। देखिये मन्त्र का सत्य अर्थ इस प्रकार है—

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये। यजुः ३१।९

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जो विद्वान् और योगाभ्यास आदि साधन करते हुए मन्त्रार्थ जाननेवाले ज्ञानी लोग जिस सृष्टि के पूर्व प्रसिद्ध हुवे सम्यक पूजने योग्य पूर्ण परमात्मा को मानस यज्ञ में सींचते अर्थात् धारण करते हैं। वे ही उसके उपदेश किये हुए वेद से उसका पूजन करते हैं। उसको तुम लोग भी जानो। इस मन्त्र का इसके बिना कोई और अर्थ नहीं हो सकता।

(७९) प्रश्न—"अदो यद्दारुप्लवते ऋ० ८।१३।१०।१२।१५ इस मन्त्र में जगन्नाथ रूप विष्णु की पूजा मौजूद है। पृ० १८३ पं० २३।

उत्तर—इस मन्त्र में न तो मूर्ति पूजा की आज्ञा है और न ही जगन्नाथ या विष्णु आदि का नाम मौजूद है। इस मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "अलक्ष्मीघ्नम्" अर्थात् "दरिद्र नाश" है। इस मन्त्र में यह बतलाया गया है कि पुरुषों की कगाली कैसे दूर हो सकती है। वेद कहता है कि जहाज़ों द्वारा दूर दूर देशों की समुद्र यात्रा करने से पुरुष अपनी निर्धनता को नाश करके धन सम्बन्धी वृद्धि को प्राप्त हो सकता है। इसी विषय का इस मन्त्र में प्रतिपादन है। जैसे—

अदो यद्दारुप्लवते सिंधोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्वदुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम्। ३।
ऋ० १०। १५५। ३

भाषार्थ—यह जो काष्ठमय जहाज़ तैरता है। और बिना पुरुषों के चप्पू आदि के खेने से ही भापादि से समुद्र के पार पहुंचा देता है। उसको बहुत मज़बूत बना कर उसका आश्रय लो। और उससे दूर दूर की यात्रा करो ताकि तुम्हारा दरिद्र नाश हो जरा बतलाइये तो सही इसमें जगन्नाथ जी के जूठे भात और जगन्नाथपुरी के मन्दिर पर खुदी हुई आदमी के क़द के बराबर मादरज़ाद नंगी चौरासी आसनों से विषय भोग करती हुई स्त्री तथा पुरुषों की मूर्तियों का कहां वर्णन है।

(८०) प्रश्न—"त्र्यम्बकं यजामहे। यजु० ३।६०" इस मंत्र में तीन नेत्रवाले रुद्र परमात्मा की पूजा का विधान है। पृ० १८४ मं० ६।

उत्तर—इस मन्त्र में भी मूर्ति बनाकर परमेश्वर के स्थान में पूजने का विधान नहीं है, यहाँ पर त्र्यम्बक शब्द से परमेश्वर का ही ग्रहण है; किसी कल्पित पौराणिक देवता का नाम नहीं है। अग्नि, चाँद और सूर्य ये तीनों परमात्मा के चक्षुवत् अर्थात् सब संसार के देखने में सहायक हैं। इसलिए परमात्मा को त्र्यम्बक कहा गया है। इस बारे में महाभारत में भी लेख आता है कि—

तिस्रो देव्योयदा चैनं भजन्तेभुवनेश्वरम्।
द्यौरापः पृथिवीचैव त्र्यम्बकस्तुततःस्मृतः॥

महा० द्रोण० अ० २०३ श्लो० १२८।

भाषार्थ—तीन देवियां जब कि उस परमात्मा को सेवन करती है द्यौ लोक, जल तथा पृथिवी, अतः परमात्मा को त्र्यम्बक कहते है। इससे स्पष्ट है कि परमात्मा के हमारी तरह से शारीरिक नेत्र नहीं है अपितु लाक्षणिक रूप से सूर्य चन्द्र अग्नि

आदि को ही नेत्रवत् वर्णन किया है। अतः कहीं त्र्यम्बक आता है तो कहीं सहस्राक्षः आता है। अतः सिद्ध है कि परमात्मा निराकार हैं। दुष्टों को दण्ड देने के कारण उसे रुद्र कहते हैं। अब मन्त्र के ठीक अर्थ इस प्रकार से होते हैं।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीपमामृतात्। यजु० ३। ६०।

भावार्थ—हम लोग जो शुद्ध गन्धयुक्त शरीर आत्मा और समाज के बल को बढ़ाने वाला रुद्र रूप जगदीश्वर है। उसकी निरन्तर स्तुति करें। इसकी कृपा से जैसे खरबूज़ा फल पक कर लता के सम्बन्ध से छूट कर अमृत के तुल्य होता है। वैसे हम लोग भी प्राण वा शरीर के वियोग से छूट जावें और मोक्ष रूप सुख से श्रद्धा रहित कभी न होवें। ६०।

आशा है इस मन्त्र के अर्थ को समझ कर मूर्ति पूजा के भ्रम को आप हृदय से अवश्य निकाल देंगे।

(८१) प्रश्न—"भवाशर्वौमृडत इत्यादि अथर्व० ११। १। २ मं० १-१६" इन सोलह मंत्रों में शंकर के पूजन का वेद में विस्तार पूर्वक वर्णन है। पृ० १८४ पं० २३।

उत्तर—इन मन्त्रों में मूर्ति बनाने या परमेश्वर के स्थान में मूर्ति पूजने का क़तई वर्णन नहीं है। इन मन्त्रों का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "रुद्र" है। जिसके अर्थ हैं दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाला। अतः इन मन्त्रों में राजा तथा सेनापति का वर्णन है। क्योंकि ये दोनों दुष्टों को दण्ड देकर प्रजा को सुखी करते हैं। इन सोलह मन्त्रों में न तो शंकर और महादेव शब्द ही मौजूद हैं। और न ही इन मन्त्रों में महादेवजी

के विशेष स्वरूप प्रतिपादक शब्द ही विद्यमान हैं। देखिये पौराणिक महादेव का विशेष स्वरूप इस प्रकार का हैं जैसे—

कपाली, वृषांकः, वृषवाहनः, नीलकण्ठः, कपर्दी, श्मशान-निलय, श्मशास्थ, कामपालः, भस्मप्रिय, भस्मशायी, कामी, कान्तः, भस्मोद्धूलित विग्रहः, भृत्यमर्कट रुपधृक् व्याघ्रचर्माम्बरः व्याली, उन्मत्तवेषः, कमंडलुधरः, नृत्यप्रियः, नित्यनृत्यः, ललाटाक्षो, मुण्डी विरूपो, विकृतः, पिंगलाक्षः, बह्वक्षः, नीलग्रीवः, सहस्रबाहुः, विरूपाक्षः, वाराहश्रृंगधृक्, भूशाया, शूली, जटी, शिव० कोटिरुद्र० अ० ३५।

इससे सिद्ध हुआ कि इन मन्त्रों में पौराणिक शंकर का वर्णन नहीं है। अपितु राजा और सेना का वर्णन है। इन मन्त्रों का ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

भवाशर्वौ मृडतं माभिवातं भूतपती पशुपती नमोवाम्।
प्रतिहितामायातां मा विस्राष्टं मानो हिंसिष्टं द्विपदोमाचतुष्पदः ॥१॥

भाषार्थ—हे भाव और शर्व! सुख उत्पन्न करने और शत्रु नाशक राजा तथा सेनापति तुम दोनों प्रसन्न हो। हमारे विरुद्ध मत चलो। हे सत्ता के पालको! हे सब दृष्टि वालों के रक्षको, तुम दोनों को नमस्कार है। लक्ष्य पर लगाई हुई और तानी हुई तीर को तुम दोनों मत छोड़ो, न हमारे दोपायों और चौपायों को मारो अर्थात् सब की रक्षा करो ॥१॥

शुने क्रोष्ट्रेमा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्योयेच कृष्णा अविष्यवः। मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि तेविधसे मा विदन्त ॥ २ ॥

भाषार्थ—कुत्ते के लिये, गीदड़ के लिये, अपने बल से भय देनेवाले के लिये खाऊ गिद्धादिकों के लिये और जो हिंसाकारी

कौवे हैं उनके लिये हमारे शरीरों को तुम दोनों मत करो। हे प्राणियों प्रजा के रक्षक! तेरी मक्खियां और तेरे पक्षी भोजन पर न प्राप्त होवें अर्थात् इन सब दुखदायक प्राणियों से हमारी रक्षा का प्रबन्ध करें ॥ २॥

क्रन्दायते प्राणाय याश्चते भव रोपयः ।
नमस्ते रुद्र कृरमः सहस्राक्षायामर्त्य ॥ ३ ॥

भाषार्थ—हे भव सुख उत्पन्न करने वाले राजन्! हे दुःख-नाशक सेनापते! हे अमरकीर्ति वाले! सहस्र कर्मों में दृष्टिवाले तुझ को अपना रोदन मिटाने के लिये तुझे अपना जीवन बढ़ाने के लिये और तुझे जो पीड़ायें हैं उन्हें हटाने के लिये हम नमस्कार करते हैं ॥ ३ ॥

पुरस्तात् ते नमः कृरम उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद् दिवस्पर्य्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—हे राजन्! हे सेनापते! तुझे आगे से ऊपर से और नीचे से नमस्कार। तुझे आकाश के अवकाश से अंतरिक्ष लोक को जानने के लिये हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

मुखायते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ।
त्वचे रूपाय संदृशे प्रतिचीनायते नमः ॥५॥

भाषार्थ—हे दृष्टि वालों के रक्षक! तुझे हमारे मुख के हित के लिये, हे सुखोत्पादक! तुझे जो हमारे दर्शन साधन हैं उनके लिये, हमारी त्वचा के लिये सुन्दरता के लिये, आकार के लिये प्रत्यक्ष तुझे नमस्कार करते हैं ॥५॥

अङ्गेभ्यस्ते उदराय जिह्वाया आस्यायते ।
दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥६॥

भाषार्थ—हे राजन्! तुझे हमारे अंगों के हित के लिये,

उदर के हित के लिये, तुझे हमारी जिह्वा के हित के लिये और मुख के हित के लिये, तुझे हमारे दांतों के हित के लिये और गंध ग्रहण करने के लिये नमस्कार है ॥६॥

अस्त्रानील शिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥७॥

भावार्थ--प्रकाश करने वाले नीलों निधियों के पहुँचाने वाले सहस्रों कर्मों में दृष्टि वाले बलवान् हिंसकों के मारने वाले उस राजा वा सेनापति के साथ हम लड़ाई न करें ॥७॥

सनोभवः परिवृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि
वृणक्तु नो भवः। मानोऽभिमांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥८॥

भावार्थ—वह सुख उत्पन्न करने वाला राजा हमें दुष्ट कर्मों से सब ओर वर्जता रोकता रहे। जैसे जल और अग्नि एक दूसरे को रोकते हैं वैसे भव सुख उत्पन्न करने वाला राजा हमें रुकवाता रहे। हमें वह न सतावे। इस राजा को नमस्कार होवे ॥८॥

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते। तवे-
मेपञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥९॥

भावार्थ—सुखोत्पादक राजा को चार बार, आठ बार नमस्कार है। हे दृष्टि वाली प्रजा के रक्षक! तुझे दश बार नमस्कार है। तेरे ही बांटे हुए यह पांच दृष्टि वाले गौवें, घोड़े, पुरुष और बकरी और भेड़ें हैं ॥९॥

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवीतवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम्।
तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत् प्राणत् पृथिवीमनु ॥१०॥

भावार्थ—हे तेजस्वी सेनापति! तेरी चारों बड़ी दिशायें हैं। तेरा प्रकाशमय सूर्य, तेरी फैली हुई भूमि, तेरा यह चौड़ा

आकाश लोक है। तेरा ही यह सब है जो आत्मा वाला और प्राण वाला पृथिवी पर है ॥१०॥

उरुः कोशो वसुधा न स्तवायं यस्मिन्निमाविश्वा भुवनान्यन्तः। सनोमृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाःश्वानः परोयं त्वघ रुदो विकेशयः ॥११॥

भाषार्थ—हे सभापते ! तेरा यह चौड़ा कोष श्रेष्ठ पदार्थों का आधार है जिसके भीतर ये सब प्रजा हैं। हे दृष्टि वाली प्रजा के रक्षक तू सो हमें सुखी रख। तेरे लिये नमस्कार हो। चिल्लाने वाले गीदड़, सम्मुख चमकती हुई विपत्तियाँ, घूमने वाले कुत्ते दूर और केश फैलाये हुए भयानक पाप की पीड़ाएँ दूर चली जावें ॥११॥

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्नि शतवधं शिखण्डिन्। रुद्रस्येषु श्चरति देवहेति स्तस्यै नमो यतमस्यांदिशीतः ॥ १२ ॥

भाषार्थ—हे परम उद्योगी सेनापते ! शत्रु नाशक, बल युक्त, सहस्रों शत्रुओं के मारने वाले, सैंकड़ों हथियारों वाले धनुष को तू धारण करता है। दुख विनाशक सेनापति का बाण दिव्य वज्र चलता रहता है। उस वाण के रोकने के लिये यहां से चाहे जौनसी दिशा हो उस में नमस्कार है ॥ १२ ॥

योऽभियातो निलयते त्वांरुद्र निचिकीर्षति।
पश्चादनु प्रयुङ्क्ते तं विद्धस्य पदनीरिव । १३ ॥

भाषार्थ—जो दुष्कर्मी हारा हुआ छिप जाता है और हे दुखनाशक ! मुझे हराना चाहता है। पीछे पोछे उस का तू अनुप्रयोग करता है अर्थात् यथाप्राध दंड देता है। जैसे घायल का पद खोजा जाता है ॥ १३ ॥

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥ १४ ॥

भावार्थ—समान संयोग वाले समान ज्ञान वाले तेजस्वी दोनों भव और रुद्र अर्थात् राजा तथा सेनापति वीरता देने को विचरते हैं। यहां से चाहे जौनसी दिशा हो उस में उन दोनों को नमस्कार है ॥ १४ ॥

नमस्तऽस्त्वायते नमोऽस्तु परायते।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायो ते नमः॥ १५ ॥

भावार्थ—आते हुए के हित के लिये तुझे नमस्कार होवे, दूर जाते हुए के हित के लिये नमस्कार होवे। हे रुद्र दुखनाशक सेनापते ! खड़े होते हुए के हित के लिये तुझे नमस्कार और बैठे हुए के हित के लिये तुझे नमस्कार है॥ १५ ॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवायच शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥

भावार्थ—सायंकाल में नमस्कार, प्रातः काल में नमस्कार रात्री में नमस्कार दिन में नमस्कार। भव अर्थात् सुख उत्पन्न करने वाले राजा, और शर्व अर्थात् दुःखनाश करने वाले सेनापति दोनों को मैंने नमस्कार किया है ॥ १६ ॥

आशा है कि अब आप पौराणिक महादेव की पूजा का विचार हृदय से निकाल कर एक ईश्वर की पूजा में ही चित्त लगाने की कृपा करेंगे।

———

महावीर

(८२) प्रश्न—यज्ञ में महावीर नामक प्रजापति की प्रतिमा बनती हैं। पृ० १८८ पं० ७।

उत्तर—श्रीमान् जी! यह महावीर नाम के प्रजापति कौन थे। क्या किसी पुराण में इनका इतिहास मिलता है। और क्या महावीर को कहीं प्रजापति भी लिखा है। आपके ग्रन्थों में दश ही प्रजापतियों का वर्णन मिलता है। जैसे मनुस्मृति में आता है कि—

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥३४॥
मरीचि मत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुंनारदमेव च ॥३५॥ मनु० १। ३४-३५

मैंने प्रजा पैदा करने की इच्छा से कठोर तप करके आदि में दश महर्षियों को प्रजाओं का पति पैदा किया ॥३४॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु, और नारद ये दश प्रजापति थे ॥३५॥

कहिये महाराज! इन दशों में तो महावीर जी का नाम नज़र नहीं आता। आपने अपने सिद्धान्त के विरुद्ध यह ग्यारहवां प्रजापति कहाँ से घड़ डाला। आपके इस प्रकरण में भी जिसका आप वर्णन करने लगे हैं "प्रजापतिर्वाएष यज्ञो भवति शतपथ १४।१।२।१८" यज्ञ का नाम तो प्रजापति लिखा है। किन्तु महावीर को प्रजापति कहीं भी नहीं लिखा। फिर ज़रा यह भी बताने की कृपा करें कि उन महावीर की मूर्तियों से यज्ञ में क्या काम लिया जाता है। क्या वह राम लक्ष्मण के

भांति धनुष-बाण लेकर राक्षसों से यज्ञ की रक्षार्थ बनाई जाती हैं। आखिर कुछ तो बताइये, यदि आप नहीं बता सकते तो लीजिये हम आपको बतलाते हैं कि यह महावीर जी क्या वस्तु हैं।

यद्यपि हम शतपथ को स्वतः प्रमाण नहीं मानते। और उसकी वेद विरुद्ध कल्पनाओं का उत्तर देने की हमारी कोई जुम्मेवारी नहीं है। तथापि हम आपकी भ्रान्ति दूर करने के लिए बतला देना चाहते हैं कि शतपथ के लेखानुसार महावीर एक घृत पात्र का नाम है। जिसका कि यज्ञ में प्रयोग किया जाता है। यह उसी पात्र के बनाने का वर्णन है। किसी पूंछ वाले महावीर प्रजापति की मूर्ति बनाने का वर्णन नहीं है।

(८३) प्रश्न—"देवी द्यावा पृथिवी यजु० ३७। ३" इस मन्त्र में महावीर की मूर्ति बनाने के लिये जल तथा मिट्टी के ग्रहण करने का वर्णन है। पृ० १८८ पं० ९।

उत्तर—बस महाराज बस कीजिये। यह पौराणिक ख़राफ़ात वेदों के सिर मढने की कृपा न कीजियेगा। जब वेद परमात्मा को "अकायम्" कह रहा है। और "नतस्य प्रतिमाऽस्ति" से परमात्मा की मूर्ति का निषेध करता हुआ मूर्तिपूजा को "अंधंतमः प्रविशन्ति" से नरक का रास्ता बता रहा है। तो वेद में मूर्ति निर्माण की विधि कहां। अच्छा आप यह बतलाने की कृपा करें कि "महावीर की मूर्ति बनाऊंगा" तथा "महावीर के बनाने के हेतु यह तुम्हारा ग्रहण है" यह मन्त्र के कौन से शब्दों का अर्थ है। और क्या मन्त्र में महावीर तथा मूर्ति शब्द कहीं नज़र पड़ता है। यदि नहीं तो फिर वेद

के नाम से अपनी मन मानी बात बयान करना क्या ईमानदा कहला सकती है। सुनो और कान खोलकर सुनो कि वेद कहीं पर भी महावीरादि की मूर्ति बनाने का वर्णन नहीं। यदि आपके पौराणिक ग्रन्थ किसी वेद विरुद्ध काम को मन्त्र पढ़कर करने का विधान कर डालें तो इसमें वेद का क्या क़सूर है। यह क़सूर तो वेद मन्त्र पढ़कर वेद विरुद्ध काम करने वाले का है। जैसे आप के पारस्कर गृह्य सूत्र ने कां० १ कंडि० सू० २७ में "माता रुद्राणामित्यादि" मन्त्र से गौ मारकर मधुपर्क में मांस भोजन की आज्ञा दे डाली। हालांकि मन्त्र में गौ की महिमा तथा मारने का निषेध वर्णन किया गया है बतलाइये इस में क़सूर वेद का है या पारस्कर का। यही अवस्था सब ग्रन्थों की है। इस मन्त्र का ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

देवी द्यावा पृथिवी मखस्यवामद्य शिरोराध्यासं देव यजने पृथिव्याः। मखायत्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे ॥ ३ ॥

भाषार्थ—उत्तम गुणों से युक्त प्रकाश और भूमि के तुल्य वर्तमान अध्यापिका और उपदेशिका स्त्रियो! इस समय पृथिवी के बीच विद्वानों के यज्ञ स्थल में तुम दोनों के उत्तम अवयव को मैं सम्यक् सिद्ध करूँ। यज्ञ के उत्तम अवयव की सिद्धि के लिये तुझ को और यज्ञ के लिये तुझ को सम्यक् सिद्ध करूँ ॥३॥

इस वेद मन्त्र में महावीर का लेश मात्र भी वर्णन नहीं है।

(८४) प्रश्न—इस मन्त्र पर कात्यायन श्रौतसूत्र लिखता है कि "मृदमादत्ते पिंडवद्देवीद्यावापृथिवीति। का० २६।१।४ "द्यावापृथिवी" इस मन्त्र से जलमिश्रित मृतपिण्ड को उठावे पृ० २८८ पं० १४।

उत्तर—वेद मन्त्र में मृतपिंड का वर्णन नहीं है। कात्यायन अपनी वा शतपथ की कल्पना को वेद के सिर मढ़ कर जनता को भ्रम में डाल रहा है। यह क़सूर वेद का नहीं अपितु कात्यायन तथा शतपथ का है।

(८५) प्रश्न—इसके ऊपर शतपथ "अथमृत्पिण्डं परिगृह्णाति। शतपथ १४। १। २। ६" इत्यादि में लिखता है कि "और इन ही दोनों वस्तुओं से महावीर की मूर्ति बनाते हैं।" इत्यादि पृ० १८८ पं० १८।

उत्तर—आपको स्वार्थ ने इतना अन्धा कर रक्खा है कि मूर्ति पूजा को सिद्ध करने के उन्माद में दूसरी पुस्तकों के पाठ का मनमाना अर्थ कर रहे हैं। भला बतलाइये तो सही कि शतपथ के इस पाठ में मूर्ति शब्द कहां है। हम शतपथ के पाठ को नीचे दर्ज करते हैं।

अथमृत्पिण्डं परिगृह्णाति। अभ्रयाच दक्षिणतो हस्तेन च हस्तेनैवोत्तरतो देवीद्यावा पृथिवी इति यज्ञस्य शीर्षं चिछन्नस्य रसो व्यक्षरत्स इमेद्यावा पृथिवी अगच्छद्यन्मृदियं तद्यदापोऽसौ तन्मृदश्चापाँच महावीरा कृता भवन्तितेनैवैनमेत द्रसेन समर्धयति कृत्स्नंकरोति तस्मादाह देवीद्यावा पृथिवी इति मखस्य वामद्यशिरो राध्यासमिति यज्ञो वै मखो यज्ञस्य वामद्य शिरो राध्यासमित्येवैतदाह देव यजने पृथिव्या इति देव यजने हि पृथिव्यै सम्भरति मखायत्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे इति यज्ञो वै मखो यज्ञायत्वा यज्ञस्यत्वा शीर्ष्ण इत्येवैतदाह ॥ ९ ॥

इस पाठ में "महावीर कृता भवन्ति" "महावीर बनाये जाते हैं" यह पाठ तो मौजूद है। जिससे यज्ञ के पात्र महावीर

बनाने का वर्णन है। किन्तु यहाँ पर "मूर्ति" शब्द का निशान भी नहीं है। जो कि आपने अपनी तरफ से मिला दिया है। हां शतपथ ने जो अपनी कल्पना को वेद मन्त्र की व्याख्या प्रकट करने का यत्न किया है, वह मिथ्या ही है। क्योंकि वेद मन्त्र में यह वर्णन नहीं है।

(८६) प्रश्न—इससे आगे "देव्योवम्रयो भूतस्य। यजु० ३७।४" इस मंत्र से महावीर की मूर्ति बनाने के लिये बाँबी की मिट्टी ग्रहण करने का वर्णन है। पृ० १८९ पं० १४।

उत्तर—वेद के इस मन्त्र में भी न महावीर का वर्णन है और न ही उन की मूर्ति बनाने का ज़िकर है। अपितु इस मंत्र का देवता अर्थात् प्रति पाद्य विषय "यज्ञ" है। आप यह बतलाने की कृपा करें कि आपने "अब महावीर को मूर्ति को सम्पादन करूँ" और "महावीर के हेतु तुझे ग्रहण करता हूँ" यह मन्त्र के कौनसे पदों के अर्थ हैं। एक पौराणिक विषय को वेद के सिर मढ़ना ईमानदारी में शामिल नहीं है। देखिये मन्त्र के ठीक-ठीक अर्थ इस प्रकार से हैं।

देव्यो वम्रयो भूतस्य प्रथमजा मखास्यवोऽद्यशिरो राध्यासं
देवयजने पृथिव्याः। मखायत्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे ॥
यजु० ३७।४

भाषार्थ—हे पहिले से हुई थोड़ी अवस्था वाली तेजस्विनी विदुषी स्त्रियो! उत्पन्न सिद्ध हुए यज्ञ की सम्बन्धिनी पृथिवी के उस स्थान में जहां विद्वान लोग संगति करते हैं। आज तुम लोगों को शिर के तुल्य मैं सम्यक् सिद्ध किया करूँ। यज्ञ का निर्माण करने वाली तुझको और शिर के तुल्य वर्तमान यज्ञ के लिये तुझको सम्यक उद्यत वा सिद्ध करूँ। ४।

क्या कोई भी मनुष्य इस मन्त्र से महावीर निर्माण सिद्ध कर सकता है।

(८७) प्रश्न—इस के ऊपर कात्यायण श्रौतसूत्र लिखता है कि "उत्तरतो देव्योवम्रय इति बल्मीक वपाम्। कां० २६। १। ५। ६" बाँबी से मिट्टी लेकर मौणधारण कर मृत्पिण्ड से उत्तर की तरफ रख दे। पृ० १८६ पं० १९।

उत्तर—कात्यायन सूत्र ने जो इस विधि को वेद के सिर मढ़ा है यह तो उसकी कल्पना मिथ्या है। क्योंकि मन्त्र में बाँबी की मिट्टी के लिए कोई शब्द मौजूद नहीं है। हाँ यह पौराणिक कल्पना है। किन्तु इसमें भी महावीर नाम यज्ञपात्र के बनाने की विधि है। बंदर रूप धारी पूँछवाले महावीर की मूर्ति बनाने का कोई वर्णन नहीं है।

(८८) प्रश्न—इसके ऊपर शतपथ लिखता है कि "अथ बल्मीक वपाम् इत्यादि शत० १४। १। २। १०" बाम्बी की मिट्टी लेता है और उससे महावीर की मूर्ति को परिपूर्ण करता है। पृ० १८६ पं० २३।

उत्तर—यद्यपि हम शतपथ को स्वतः प्रमाण नहीं मानते और इसकी वेद विरुद्ध कल्पनाओं के हम उत्तरदाता नहीं हैं। और शतपथ का अपनी कल्पना को वेद के मन्त्र में बतलाने का यत्न करना सर्वथा मिथ्या और निर्मूल है तथापि शतपथ के इस पाठ में भी महावीर पात्र के ही बनाने का वर्णन है "मूर्ति" शब्द मौजूद नहीं है। और न ही किसी पूँछ वाले महावीर का वर्णन है। देखिये शतपथ का पाठ यह है।

अथ बल्मीक वपाम्। देव्योवम्रय इत्येता वा एतद्-

कुर्वत यथा यथैतद्यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यत ताभिरेवैनमेतत्स मर्धयत कृत्स्नं करोतीति । १० ।

बतलाइये इस पाठ में मूर्ति शब्द कहां है ।

---

(८९) प्रश्न—"इयत्यग्र आसीन्मखस्य । यजु० ३७।५ इस मन्त्र द्वारा वाराह की खोदी हुई मिट्टी लेकर उस से यज्ञ शिर महावीर के बनाने का वर्णन है । पृ०.१९० पं० ३

उत्तर—हम इस बात को फिर बतला देना चाहते हैं कि इस महावीर यज्ञपात्र के बनाने का वर्णन वेद मन्त्रों में नहीं है । अपितु यह शतपथ तथा कात्यायन की अपनी ही कल्पना है । जिसे वह वेद के सिर मढ़ना चाहते हैं । देखिये इस मंत्र में भी न वाराह का वर्णन है न उससे खोदी हुई मिट्टी का तथा न ही महावीर का कहीं वेद मन्त्र में निशान है । अपितु वेद मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "यज्ञ" ही है । और मन्त्र का ठीक २ अर्थ यूं है ।

इयत्यग्रे आसीन्मखस्य तेऽद्यशिरोराध्यासं देव यजने पृथिव्याः । मखायत्वा मखस्यत्वा शीर्ष्णे ॥ यजु० ३७।५॥

भाषार्थ—हे विद्वन् ! मैं पहिले सत्कार रूप यज्ञ के लिये तुझ को संगतिकरण की उत्तमता के लिये तुझ को सिद्ध करूं जिस आपके यज्ञ का उत्तम गुण है । उस आप को आज भूमि के बीच इतने विद्वानों के पूजने में सम्यक् सिद्ध होऊँ ॥ ५ ॥

क्यों जी यह वाराह से खोदी हुई मिट्टी में क्या विशेषता होती है । जो उसको महावीर निर्माण में आवश्यक अंग समझा गया है । क्या उसकी थोथनी से लगे हुए किसी विशेष पदार्थ से मिट्टी में विशेष गुण उत्पन्न होजाते हैं । और क्या

वाराह और महावीर का क़ारूरा आपस में मिलता जुलता है। बात क्या है। क्या हमारे पौराणिक भाई इस पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

(९०) प्रश्न—इस के ऊपर कात्यायन श्रौत सूत्र लिखता है कि "इयत्यग्रे इति वराह विहितम्। कां० २६। १। ७" इस मन्त्र से जंगली वराह की खोदी हुई मिट्टी को लेकर मौन होकर बल्मीक की मिट्टी के उत्तर की तरफ मृगचर्म पर रखदे। पृ० १९० पं० ८।

उत्तर—वेद मन्त्र में उक्त विधि का प्रतिपादन बतलाना तो सर्वथा निर्मूल ही है। हां कात्यायन तथा शतपथ की अपनी ही यह कल्पना यज्ञ के मुख्य घृत पात्र महावीर के बनाने की है। इस में भी मूर्ति वा किसी प्राणी विशेष की आकृति बनाने का वर्णन नहीं है।

(९१) प्रश्न—इसके ऊपर शतपथ "अथ वराह विहितम्। शत० १४। १। २। ११" में लिखता है कि मूर्ति बनाने को वराह विहित मृत्तिका लेता है। पृ० १९० पं० १२।

उत्तर—कहिये महाराज! आपके ख्याल में यदि वाराह ने सृष्टि के आरंभ में पृथिवी का उद्धार कर दिया था। तो क्या सारे ही वाराह पृथिवी के पति होगये और पूज्य होकर उनकी खोदी मिट्टी भी यज्ञ में उपयोगी बन गई। और यदि यही बात है तो वाराह की मिट्टी से महावीर की मूर्ति बनाना अन्याय है। क्यों न यज्ञ में वाराह की ही मूर्ति बनाई जावे। क्या महावीर ने वाराह से भी बढ़कर कोई उपकार किया है। इस विषय में कुछ प्रकाश अवश्य डालना चाहिये। हां, फिर आप

मूर्ति शब्द कहां से ले आये इस पाठ में तो कहीं मूर्ति श
नज़र नहीं आता। देखिये पाठ यूं है।

अथ वराह विहितम्। इयतीहवा इयमग्रे पृथिव्या
प्रादेश मात्री तामेमूष इति वराह उज्जघान सोऽस्याः
प्रजापति स्तेनैवैनमेतन्मिथुनेनाप्रियेणधाम्ना समर्धयति कृ
करोतीति ॥ ११ ॥

कृपया अब बतलाइये इस पाठ में मूर्ति शब्द कहां है।

(९२) प्रश्न—इससे आगे "इन्द्रस्य" इस मन्त्र से महा
बनाने के लिये रोहिष तृण (घास) का ग्रहण किया है। म
में घास को विष्णु तेज कहकर महावीर बनाने के लिये ग्र
किया है। पृ० १६० पं १८।

उत्तर—"इन्द्रस्यौजः। यजु० ३७। ६" इस मन्त्र में
तो महावीर के बनाने का वर्णन है और न हो उस के लि
घास को विष्णु तेज कह कर ग्रहण किया है। अपितु इ
मन्त्र का विषय यज्ञ है। और इस में यह वर्णन है कि
मनुष्य धर्म युक्त कार्यों को करते हैं वे सब से शिरोमणि हो
हैं। अतः आपकी कल्पना सर्वथा निर्मूल है।

(९३) प्रश्न--कात्यायन श्रौत सूत्र कहता है कि इस घा
को लेकर मौन धारण कर वराह की मिट्टी के उत्तर की तर
मृगचर्म पर रखदे ॥ पृ० १९० पं० २।

उत्तर—कात्यायन की यह विधि यज्ञ पात्र बनाने
स्वयं कल्पित है। वेद में इसका वर्णन नहीं है।

(९४) प्रश्न -शतपथ "अथयत्यूयन् १४। १। २। १२
कहता है कि यह घास विष्णु तेज से उत्पन्न हुआ है। इसलि

यज्ञ के मुख्य महावीर निर्माण में इस को लिया जाता है। पृ० १६० पं० २२।

उत्तर—यह यज्ञार्थ महावीर नाम घृत पात्र की कल्पना शतपथ की स्वयं कल्पित है, वेद की नहीं है।

(६५) प्रश्न—"चत्वारि शृङ्गा। यजु० १७। ९१" इस मंत्र में यज्ञ को "त्रिधाबद्धः" लिखा है। इस की भाषा यह है कि यज्ञ मन्त्र ब्राह्मण और कल्प बद्ध है। यज्ञ प्रकरण में जो अर्थ मन्त्र का होता है। उसी अर्थ को ब्राह्मण कहता है। और क्रिया बतलाता हुआ उसी अर्थ को कल्प सूत्र कहता है। यज्ञ प्रकरण होने के कारण इस प्रकरण में मन्त्र ब्राह्मण कल्प तीनों ही मिलकर चलते हैं। पृ० १९० पं० २५।

उत्तर—यह ठीक है कि मंत्र जिस बात को कहता है। ब्राह्मण उसका अनुवाद करता है। और कल्प उसकी विधि बयान करता है। इनमें वेद ईश्वर कृत होने से स्वतः प्रमाण है। ब्राह्मण तथा कल्प ऋषि कृत होने से परतः प्रमाण हैं, ये दोनों वहाँ तक ही प्रमाण हैं जहाँ तक कि वेद के अनुकूल हों। जहाँ ये वेद के प्रतिकूल हों वहाँ ये प्रमाण न हो सकेंगे। यहाँ पर वेद मन्त्रों में महावीर का नाम तथा उसके बनाने की विधि का सर्वथा अभाव है। और ब्राह्मण तथा कल्प ने स्वतंत्ररूप से उसकी कल्पना की है। अतः यह विधि मानने के योग्य नहीं है। चूँकि ब्राह्मण तथा कल्प महावीर को यज्ञ पात्र मानते हैं। अतः यहाँ पर किसी प्रजापति की अथवा पूँछवाले हनुमानजी की मूर्ति की कल्पना करना सर्वथा ही ब्राह्मण तथा कल्प के भी विरुद्ध होने से मिथ्या प्रलाप मात्र ही है।

(९६) प्रश्न—आगे "प्रैतु ब्रह्मणस्पति। यजु० ३७। ७"

मन्त्र है। उसका अर्थ है कि वेद के रक्षक परमात्मा महावीर रूप में हमारे यज्ञ में आवें। पृ० १९१ पं० ५।

उत्तर—आपने तो जनता को भ्रम में डालने का ठेका ही ले रक्खा है। वरना इस मन्त्र में न तो महावीर का नाम है और न ही परमात्मा से महावीर रूप में आने की प्रार्थना है अपितु इस मन्त्र में यह वर्णन है कि "जो मनुष्य और जो स्त्रियाँ स्वयं विद्या आदि गुणों को पाकर अन्यों को प्राप्त करा विद्या सुख और धर्म की वृद्धि के लिये अधिक सुशिक्षित जनों को विद्वान् करते हैं, वे पुरुष और स्त्रियाँ निरन्तर आनन्दित होते हैं।"

(६७) प्रश्न—इसके ऊपर कात्यायन सूत्र लिखता है कि "कृष्णाजिनं परिगृह्योत्तरतः परिवृत्तं गच्छन्ति प्रैतु ब्रह्मणस्पतिरिति का० २६। १। १२" "प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः" इस मन्त्र को बोलकर उस समस्त सामग्री वाले कृष्ण मृग चर्म को यज्ञ स्थल के अन्दर ले जावे। और तीन महावीर बनावे। पृ० १९१। पं० ६।

उत्तर—कोई किसी मन्त्र को बोलकर कुछ ही करे यह कर्ता की स्वतन्त्र इच्छा है। वरना इस मन्त्र में इस विधि का नाम तक भी नहीं है। हां वेद में न होते हुए भी शतपथ ने तथा कात्यायन ने महावीर नाम के यज्ञ पात्र के बनाने की कल्पना अवश्य की है। यहां पर आप ने शतपथ तथा कात्यायन के उस लेख को छोड़ दिया जिस में यह लिखा है कि वह महावीर किस शकल का बनावें। इस लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह महावीर किसी कल्पित प्रजापति की मूर्ति है या

यज्ञपात्र ही है। हम उस समस्त पाठ को नीचे देते हैं। पाठक ग़ौर से पढ़ें—

शतपथ—

मृत्पिण्डमादाय महावीरं करोति प्रादेशमात्रं प्रादेशमात्रमिव हि शिरो मध्ये संग्रहीतं मध्ये संग्रहीतमिवहि शिरोऽथास्योपरिष्टात्त्र्यंगुलं मुखमुन्नयति नासिकामेवास्मिन्नेतद्‌दधातितं निष्ठितमभिमृशति [शत० १४ । १ । २ । १७]

कात्यायन—

मृदमादाय मखायेति महावीरं करोति प्रादेशमात्र मूर्ध्वमासेचनवन्तं मेखलावन्त मध्य संग्रहीतमूर्ध्वं मे मेखलायास्त्र्यङ्गुलम् का० २६ । १ । १६

महीधर—

महावीर पर्याप्तं तूष्णीं मृत्पिण्डमादाय मंत्रेण महावीरं करोति। कीदृशम। आदेशोच्चं गर्तवन्तं मेखलायुतं मध्ये संकुचितं मेखलोपरित्र्यंगुलोच्चमिति सूत्रार्थः।

महीधर भाष्य यजु० ३७ । ७

भाषार्थ—मिट्टी लेकर मन्त्र पढ़कर पर्याप्त महावीर बनाता है। एक बालिश्त ऊँचा, गढ़े वाला, सिंचन करने में समर्थ, मध्य में खाली, ऊपर मेखला तीन अंगुल ऊँचो मुख के समान, नासिका भी उसी में बनाता है। उस पड़े हुए को मसलता है।

अब बतलाइये उपरोक्त शकल महावोर नामक यज्ञपात्र की हो सकती है या महावीर नामक प्रजापति हनुमान की। यदि यह हनुमान की मूर्ति है तो आँखें कान हाथ पैर पेट पूँछ आदि अङ्गों के बनाने का क्यों विधान नहीं है। और बीच में से संकुचित, सेंचन में समर्थ गढ़ेवाला मेखला तीन अंगुलवाला इत्यादि

विधान प्रजापति हनुमान की मूर्ति में कैसे संगत हो सकता है। इससे सिद्ध हुआ कि महावीर यज्ञ-पात्र का ही नाम है। हनुमान की मूर्ति का नाम नहीं है।

(९८) प्रश्न—फिर "मखस्य शिरोऽसि" इस मन्त्र से अपने बायें हाथ में रक्खे हुवे महावीर को दाहिने हाथ से छुए और और इसी मन्त्र को पढ़कर इससे महावीर की स्तुति करे। पृ० १६१ पं० १०।

उत्तर—"यजु० ३७। ८" उपरोक्त मन्त्र में न महावीर का नाम है, न बायें हाथ में रखकर दायें हाथ से छूने का वर्णन है, न ही स्तुति करने की गन्ध मात्र है। अपितु इस मन्त्र में यह वर्णन किया गया है कि "जो लोग सत्कार करने में उत्तम हैं वह दूसरों को भी सत्कारी बना के मस्तक के तुल्य उत्तम अवयवों वाले हों"। आपने यहाँ पर शतपथ और कात्यायन को क्यों चुरा लिया इसलिये कि आपकी महावीर स्तुति की पोल न खुल जावे। श्रीमान् जी यहाँ महावीर प्रजापति हनुमान की स्तुति नहीं। अपितु महावीर यज्ञ-पात्र को घास विशेष की कूंची से घिसा कर खुरदरापन हटा कर मृदु (कूला) करने का वर्णन है। वह समस्त पाठ इस प्रकार है।

शतपथ—

अथ गवेधुकाभि र्हिन्वति। (शत० १४। १। २। १९)

कात्यायन—

गवेधुकाभिः श्लक्ष्णयति मखायेति प्रति मंत्रम्।
(का०। २६। १। २१)

महीधर—

गवेधुकाभिः महावीरान् घर्षणेन मृदून् करोति मखायेति प्रति मंत्रमेकैकम्। (महीधर भाष्य यजु० ३७। ८)

भाषार्थ—"मखाय" इस प्रकार प्रत्येक मन्त्र से अलग अलग महावीरों को घास विशेष की कूंची से घिसकर मृदु (कूला) करता है।

श्रीमान् जी! फ़रमाइये यह घास विशेष की कूंची से घिसा कर यज्ञ-पात्र महावीर को मृदु किया जा रहा है। या महावीर प्रजापति की स्तुति हो रही है। झूठे का सत्यानाश हो।

(६६) प्रश्न—फिर "अश्वस्य त्वा वृष्णः यजु० ३७। ९" इस मन्त्र से घोड़े की लीद से महावीर को पकावे। पृ० १९१ पं० ११

उत्तर—इस मन्त्र को पढ़कर कोई कैसा ही काम करे। किंतु इस मंत्र में न तो कहीं पर महावीर का नाम है। और न ही लीद से उसके पकाने का वर्णन है। अपितु इस मन्त्र में हिकमत (वैद्यक) का प्रकरण होने से यह वर्णन है कि "जो मनुष्य रोगादि क्लेश को निवृत्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों का प्रयोग करते हैं वे सुखी होते हैं।"

कृपया यह तो बतलावें कि यहाँ आप शतपथ और कात्यायन को क्यों छोड़ गये। इसलिये कि महावीर प्रजापति की मूर्ति की पाखाने की धूनी से कुछ शेखी किरकिरी होने लगी। देखिये शतपथ तथा कात्यायन क्या कहते हैं।

शतपथ—

अथैनान् धूपयति। अश्वस्यत्वा वृष्णः शक्ना धूपयामीति॥

(शत० १४। १। २। २०)

कात्यायन—

अश्वशकृता धूपयत्यश्वस्येति प्रति मंत्रम् (का० २६। १ २३)

प्रदहनं च मखायेति प्रति मंत्रम (का० २६। १। २४)

महीधर—

दक्षिणाग्निदीप्तेनाश्वपुरीषेण त्रिभिर्मंत्रै स्त्रीन महावीरान्
धूपयेत् । एकैकधूपेन सप्तसप्ताश्वशकृन्ति गृह्णाति (२३)
मखाय मखस्य शीर्ष्णेत्व त्वांनिर्दहामि (२४)

भाषार्थ—दक्षिण अग्नि के जलने पर घोड़े के पाखाने से तीन मन्त्रों से तीन महावीरों को धूप दे। एक-एक महावीर को धूप देने में सात-सात घोड़ों का पाखाना ग्रहण करता है। मखाय इत्यादि मंत्र से तुझे जलाता हूँ वा तपाता वा पकाता हूँ। कहिये महाराज! यह यज्ञपात्र महावीर को पकाया जाता है या महावीर प्रजापति हनुमान जी को सात-सात घोड़ों के पाखाने की धूनी देकर प्रसन्न किया जा रहा है। आज महावीर जी ने धूप तो अच्छी पसन्द की है। हींग लगे न फटकड़ी रङ्ग भी चोखा हो। आपको तो मौज हो गई। क्यों महावीर की धूपार्थ तथा वराह भगवान् के भोगार्थ तो आपको कौड़ी खर्चने की ज़रूरत ही न पड़ेगी। धन्य हो अन्धी देवी गंजे पुजारी, जैसे को वैसे मिल गये।

(१००) प्रश्न—बाद में "ऋजवेत्वा" इस मन्त्र से पके हुए महावीरों को पकने के स्थान से निकाले। पृ० १९१ पं० १३

उत्तर—"यजुर्वेद ३७। १०" में न तो महावीर का नाम है न ही पके हुए महावीरों को निकालने का वर्णन है। अपितु इस मन्त्र में यह वर्णन है कि "जो लोग विनय और सीधेपन से युक्त प्रयत्न के साथ सर्वोपकार रूप यज्ञ को सिद्ध करते हैं वे बड़े राज्य को प्राप्त होते हैं" आपने फिर यहाँ पर शतपथ और कात्यायन को छिपा लिया। जिन में लिखा है कि उन महावीरों को बकरी के दूध से धोवे। प्रतीत होता है कि उसके लिखने

से महावीर प्रजापति हनुमान की मूर्ति का सिद्ध होना असंभव बन जाता है। धोने से यज्ञपात्र ही सिद्ध होते हैं। लीजिये हम सारा पाठ दे देते हैं।

शतपथ—

अथैनाना च्छृणत्ति। अजायै पयसा (शत० १४।१।२।२५)

कात्यायन—

अजापयसा विसिञ्चति मखायेति प्रति मंत्रम् (क० २६।१।२६)

महीधर—

अजादुग्धेनत्रीन् महावीरांस्त्रिभिः तुल्य मंत्रैः सिञ्चतीत्यर्थः।

(महीधर भाष्य १०)

भाषार्थ—पके हुए महावीरों को तीन-तीन समान मंत्रों से तीनों को बकरी के दूध से धोते हैं।

महावीरों को धोने के पीछे यज्ञपात्रों को यज्ञशाला में रखने का वर्णन शतपथ में आता है। और उन यज्ञपात्रों में महावीर पात्र को भी गिना गया है। देखिये—

कुशान्त्सछंस्तीर्य द्वद्वं पात्राण्युपसादयत्युपयमनीं महावीरं परीशासौ पिन्वने रौहिणकपाले रौहिणहवन्यौ स्रुचौ यदुचान्यद् भवति। (शत० १४।१।३।१।

भाषार्थ—कुशायें बिछाकर दो-दो पात्र रखता है। उपयमनी, महावीर, परीशा, पिन्वन, रौहिणकपाल, रौहिनहवनी, स्रुच, और भी जो दूसरे पात्र हों।

कहिये श्रीमान् जी! अब तो तसल्ली हो गई कि महावीर किसी पौराणिक प्रजापति वा हनुमान् की मूर्ति नहीं है। अपितु यज्ञ का एक विशेष पात्र है। क्योंकि महावीरों का धोकर यज्ञपात्रों के साथ यज्ञशाला में रक्खा जाना इस बात का प्रबल प्रमाण है।

(१०१) प्रश्न—फिर "यमायत्वा" इस मन्त्र से महावीर का तीनबार प्रोक्षण करे। पृ० १९१ पं १४।

उत्तर—यहां पर "यजु० ३७। ११" में न तो महावीर का नाम है और न ही उस के तीन वार प्रोक्षण का वर्णन है अपितु इस मन्त्र में यह वर्णन है कि "जो लोग यथार्थ व्यवहार से प्रकाशित कीर्ति वाले होते हैं। वे दुःख के स्पर्श से अलग होकर तेजस्वी होते हैं और दुष्टों को दुख देकर श्रेष्ठों को सुखी करते हैं" हां, शतपथ तथा कात्यायन में महावीरों को प्रोक्षण करके अर्थात् पोंछ कर उन में घी भरना लिखा है। आपने प्रोक्षण तो लिख दिया। किन्तु घी चुरा गये क्योंकि घी भरने से स्पष्ट सिद्ध है कि महावीर यज्ञ पात्र हैं हनुमान जी की मूर्ति नहीं हैं। क्योंकि मूर्ति में घी नहीं भरा जाता अपितु पात्रों में घी भरा जाता है।

लीजिये, हम पूरा पाठ यहां पर दर्ज कर देते हैं।

शतपथ—

तदेतं प्रचरणीयं महावीरमाज्येन समनक्तिदेवस्त्वा सविता मध्वानक्त्विति। शत० १४। १। ३। १३

कात्यायन—

तेषु महावीरमाज्यवन्त मर्चिरसीति।

का० २६। ३। ३। ४

महीधर—

तेषु मुञ्जेषु संस्कृताज्यपूर्णं प्रचरणीयं महावीरं निदधातीति सूत्रार्थः (महीधर ३७। ११)

भाषार्थ—उन कुशाओं पर शुद्ध घी से भरा हुआ महावीर धरता है यह सूत्र का अर्थ है।

अब तो आपको महावीर के यज्ञ पात्र होने में संदेह न रहा होगा ।।

(१०२) प्रश्न—फिर "अनाधृष्टा यजु० ३७। १२" इस मन्त्र से महावीर के ऊपर अंगूठा और अंगुली रखकर महावीर की स्तुति करे। पृ० १९१ पं० १४।

उत्तर—यहां पर मन्त्र में न तो महावीर का नाम है और न ही उस पर अंगुली और अंगूठा रखकर उस की स्तुति करने का वर्णन है अपितु मन्त्र में यह वर्णन है कि "हे मनुष्यो! जैसे अग्नि जीवन को, जैसे बिजली प्रजा को, जैसे सूर्य्य देखने को धारण करता है। ईश्वर लक्ष्मी और शोभा को और महाशय जन बल को देता है वैसे ही सुलक्षणा पत्नी सब सुखों को देती है। उसकी तुम रक्षा किया करो।"

श्रीमान् जी! यह अंगुली और अंगूठा महावीर पर रखकर स्तुति करने का क्या तरीक़ा है। और यह अंगुली और अंगूठा महावीर के कौन से अंगों पर रक्खे जाते हैं। क्या यही तरीक़ा अंगुली और अंगूठा रखने का शिव विष्णु गणेश आदि की मूर्तियों के साथ भी वरता जाता है या यह विशेषता महावीर के साथ ही है। फिर यह स्तुति करना किन पदों का अर्थ है। और आपने कहां से यह अभिप्राय लिया है। या घर से ही घड़ कर डाल दिया। ताकि महावीर के साथ स्तुति शब्द मिला दिया तो मूर्ति पूजा सिद्ध होजावेगी। देखिये कात्यायन सूत्र का अर्थ करते हुये महीधर लिखते हैं कि "महावीरोपर्यंगुष्ठांगुलिदेशं धरन्तं यजमानमध्वर्युर्मन्त्रान् वाचयतीति सूत्रार्थः" महावीर के ऊपर अंगूठा और अंगुली धरने वाले यजमान को अध्वर्यु मन्त्र बुलवाता है, यह सूत्र का अर्थ है। इससे

साफ़ साबित है कि महावीर की स्तुति करना कहीं भी लिख
नहीं है। यह आपने मूर्ति पूजा की सिद्धि के लोभ में घर
ही मिला दिया है। यह है आप की ईमानदारी का नमूना।

(१०३) प्रश्न—इस प्रकार इस प्रकरण में महावीर
परिक्रमा आदि पूजन की सब क्रियायें लिखी हैं॥ पृ० १६
पं० १६।

उत्तर—इस से इस प्रकरण में कहीं भी यह साबित नहीं
हो सकता कि महावीर नाम प्रजापति की मूर्ति बनाई जावे।
उसकी स्तुति प्रार्थना परिक्रमा आदि पूजा की जावे। अग्नि
बनाने पकाने घिसाने, गढेवाली शक्ल बनाने, घी भरने, पात्रों
में गिनती होने तथा मूर्ति शब्द कहीं भी न होने से यह साबित
होता है कि महावीर नामक एक घृत रखने का यज्ञ पात्र है
जिसकी शतपथ तथा कात्यायन ने स्वयमेव कल्पना की है वेद
में इसका नाम मात्र भी नहीं है। और यह कल्पना भी वेद
विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं मानी जासकती। इस कल्पना
सृष्टि क्रम के विरुद्ध अश्लीलता भी है हम नमूने के तौर
एक दिखा देते हैं, देखिये—

शतपथ—

अथ पत्न्यै शिरोऽपवृत्य। महावीर मीक्षमाणां वाचय
त्वष्ट्रमन्तस्त्वा सयेमेतिवृषावै प्रवर्ग्यो योषा पत्नी मिथुनमेवै
तत्प्रजननं क्रियते॥ शत० १४।१।४।१६॥

कात्यायन—

त्वष्टमन्त इत्येनां वादयति का० २६।४।१३

महीधर—

महावीरमीक्षमानामपनीत शिरो वस्त्राघम पश्यन्ती
मध्वर्युर्वाचयति मैथुनाय त्वामुपस्पृशामः॥

भावार्थ—महावीर को देखती हुई शिर से कपड़ा उतारने वाली गरमी को अनुभव करती हुई यजमान पत्नी को अध्वर्यु बुलाता है कि हम तुझ को मैथुन के लिये स्पर्श करते हैं।

कृपया इस पर प्रकाश डालें कि इस महावीर के प्रकरण में कौन किसको मैथुन के लिये स्पर्श करता है।

(१०४) प्रश्न—इसको देखकर सदेह हुआ कि महावीर ईश्वर नहीं है, हमारी बनाई एक मूर्ति है। इस संदेह को दूर करने के लिये शतपथ ने "उभयं वा एतत्प्रजापतिः" इस लेख द्वारा परमेश्वर को निराकार तथा साकार दो रूप वाला बतलाकर संदेह दूर कर दिया। पृ० १९१ पं० १७।

उत्तर—न तो यह किसी को संदेह ही हो सकता है कि "महावीर ईश्वर नहीं हमारी बनाई मूर्ति है" क्योंकि यह निश्चय है कि महावीर एक यज्ञ पात्र है और इस प्रकरण में कोई ऐसा शब्द ही नहीं कि संदेह हो सके। और न ही इस संदेह को दूर करने के लिये शतपथ ने "उभयं वा" कहा है। और न ही 'उभयं वा' ईश्वर के दो रूप वर्णन करता है। अपितु वह यज्ञ की दो अवस्थायें सूक्ष्म और स्थूल वर्णन करता है। यहां पर "प्रजापति" नाम यज्ञ का है। और "उभयं वा" से पहिले "प्रजापति र्वा एष यज्ञो भवति" पाठ मौजूद है। जिसको आपने चुरा कर अपनी ईमानदारी का सबूत दिया है। (विशेष देखें नं० ४) हम इस महावीर के प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व एक प्रमाण आपको और दे जाते हैं कि महावीर यज्ञपात्र का नाम है। और कि प्रजापति हनुमान की मूर्ति का नाम नहीं है। प्रमाण इस प्रकार है—

प्रश्न—तदाहुः। यद्वानस्पत्यैर्देवेभ्यो जुह्वत्यथ कस्मादेतं

मृन्मयेनैव जुहोतीति तन्मृदश्वा पाँच महावीराः कृता भवन्ति। (शत० १४। २। १। ५३)

भाषार्थ—महावीर संज्ञक यज्ञपात्र मिट्टी के क्यों बनावे काठके पात्रों से देवताओं के लिए हवन किया करते हैं। वे भी काष्ठ के क्यों न बनाये जावें, ऐसा प्रश्न करते हैं।

उत्तर—स यद्वानस्पत्यः स्यात्। प्रदह्येत। यद्धिरण्यमयः स्यात्प्रलीयेत। यदयस्मयः स्यात् प्रदहेत्। यल्लोहमयःस्यात्प्रसिच्येत। परीशासावथैष एवैतस्मा अतिष्ठत। तस्मादेनं मृन्मयेनैव जुहोति। (शत० १४। २। १। ५४)

भाषार्थ—काष्ठ का वह यदि हो तो वह जल जावे। स्वर्ण का गल जावे। लोहे का चू जावे। अयोमय फूँकने लगे। इस लिये यही ठीक है कि मिट्टी का हो, उससे होम करे। इस प्रश्नोत्तर से स्पष्टतर हो गया कि महावीर यज्ञ-पात्र का नाम है, हनुमान जी की मूर्त्ति नहीं है।

सारांश

(क) वेद में न महावीर का नाम है, न बनाने आदि का वर्णन है।

(ख) यह कल्पना शतपथ तथा कात्यायन ने स्वयं करके वेद के सिर मढ़ने का यत्न किया हैं। जो कि वेद विरुद्ध होने से प्रमाण के योग्य नहीं है।

(ग) शतपथ तथा कात्यायन में भी महावीर नाम यज्ञ के विशेष घृत-पात्र का है हनुमानादि की मूर्त्ति का नाम नहीं है।

(घ) इस का मूर्त्ति-पूजा की सिद्धि में पेश करना उन्माद मात्र है।

(ङ) इस प्रकरण में अश्लीलता होने से सब के लिये त्याज्य है।

(१०५) प्रश्न—जैसे माता-पिता का पूजन पंचतत्त्वात्मक शरीर के द्वारा होता है उसी प्रकार ईश्वर का पूजन भी उसके पंच तत्वों के द्वारा होता है। अतएव यह शरीर परिच्छिन्न पूज्य है। और सृष्टि के बाहर जो ब्रह्म रूप है वह अविज्ञेय अनिर्वचनीय है। पृ० १६२। पं० १।

उत्तर—वह परमात्मा सृष्टि के अन्दर तथा बाहर सर्वत्र व्यापक है। वह एक रस है। वह अनिर्वचनीय नहीं है। अपितु वेद उसका "सपर्य्यगात्" "ईशावास्यम्" "न तस्यप्रतिमास्ति" इत्यादि अनेकों मन्त्रों से वर्णन करते हैं। वह अविज्ञेय नहीं है। अपितु बाह्य स्थूल इन्द्रियों से अविज्ञेय है। आत्मा के द्वारा परमात्मा का ज्ञान होता है। "भोगायतनं शरीरम्" अच्छे और बुरे कर्मों के फल भोगने के ठिकाने क शरीर कहते हैं। हमारे माता पिता जीव हैं। उन्होंने अपने पिछले कर्मों के फल भोगने के लिए परमात्मा की व्यवस्था से यह शरीर प्राप्त किया है। उनको शरीर के द्वारा सुख तथा दुःख दोनों का अनुभव होता है। अतः वे हमारी पूजा से सुख तथा अपमान से दुःख महसूस करते हैं। माता-पिता के शरीर की भांति ईश्वर का शरीर नहीं है। परमात्मा न पाप कर्म करता है न उसको उन कर्मों का फल भोगने के लिए शरीर धारण करना पड़ता है। पांच तत्व उसका वास्तव शरीर नहीं है अपितु लाक्षणिक रूप से पांचों तत्वों को परमात्मा का शरीर कहा गया है। परमात्मा उनके द्वारा सुख-दुःख महसूस नहीं करता यदि आप पांचों तत्वों को परमात्मा का वास्तव शरीर

मान कर माता-पिता की भांति पांच तत्व की पूजा से परमा
की प्रसन्नता मानेंगे, तो ज़मीन खोदने से, लकड़ी फाड़ने
पत्थर तोड़ने से, रोटी खाने आदि से परमात्मा को दुःख
कष्ट होना भी मानना पड़ेगा। अतः पांच तत्व न उस
वास्तव शरीर हैं और न ही उनकी पूजा से परमात्मा की पू
होती है। अपितु अपने आत्मा में परमात्मा का अनुभव कर
ही परमात्मा की पूजा है। अच्छा, भला यह तो बतलायें
यदि पांच तत्वों की पूजा ही परमात्मा की पूजा है, तो आ
विशेष मूर्ति निर्माण, प्राण प्रतिष्ठा आदि पचासों ढोंग क्यों र
हैं? प्रत्येक ईंट पत्थर ढेले के द्वारा पूजा हो सकती है फि
मूर्ति में विशेषता क्या है? और जब हमारा शरीर भी पां
तत्वों का बना हुआ है तो फिर हम अपने शरीर द्वारा ह
परमात्मा का पूजन क्यों न करें, इधर उधर मंदिरों में क्य
धक्के खाते फिरें? अस्तु; पाखण्ड की बातों को छोड़ो और अप
आत्मा के द्वारा परमात्मा की पूजा करो। यही वेद का सिद्धांत है

असलियत

(१०६) प्रश्न—इनका कहना है कि वेद मूर्त्ति पूजन का
स्वतः ही निषेध करता है। पृ० १९२ पं० ८।

उत्तर—इसमें क्या संदेह है। वेद ने परमेश्वर के स्थान
में किसी अन्य पदार्थ को पूजनीय नहीं माना और सर्वथा
निषेध किया है। यह निषेध इस प्रकार से है कि—

अंधंतमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्याᳪरताः ॥१॥

(यजु० ४०।९)

न तस्य प्रतिमा अस्ति ॥२॥ (यजु० ३२ । ३)
यद्वाचानाभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेवब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥१॥ (केनोपनिषत्)

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अंधकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं। और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्य रूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अंधकार से भी अधिक अंधकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःख रूप नरक में गिरके महाक्लेश भोगते हैं ॥१॥ जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्त्ति नहीं है ॥२॥ जो वाणी की इयत्ता अर्थात् यह जल है लीजिये, वैसा विषय नहीं। और जिसके धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है उसी को ब्रह्म जान और उपासना कर और जो उस से भिन्न है वह उपासनीय नहीं ॥१॥ इत्यादि अनेक प्रमाण हैं।

प्रकरण विच्छेद

(१०७) प्रश्न—यहाँ पर वेद प्रकरण बांध कर ईश्वर का ज्ञान करा रहा है किंतु इन लोगों के इस अनोखे अर्थ से प्रकरण का मतलब ही ग़ायब हो जाता है। पृ० १९३ पं० ८।

उत्तर—यह आपको भ्रम है कि स्वामीजी का अर्थ प्रकरण के विरुद्ध है। अपितु स्वामीजी का अर्थ प्रकरण के सर्वथा अनुकूल है जैसे—

तदेवाग्नि स्तदादित्यस्तद्वायु स्तदु चन्द्रमा ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥१॥
सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ।
नैनमूर्ध्वं न तिर्यंचं न मध्ये परिजग्रभत् ॥२॥

(यजु० अ० ३

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! यह परमात्मा ही ज्ञान स्व और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि, वह प्रलय समय सब ग्रहण करने से आदित्य, वह अनन्त बलवान् और सब धर्ता होने से वायु. वह अनन्त-स्वरूप और आनन्द-का होने से चन्द्रमा, वही शीघ्रकारी वा शुद्ध-भाव से शुक्र, महान् होने से ब्रह्म, वह सर्वत्र व्यापक होने से आप, और सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति नामवाला है ऐसा लोग जानो ॥१॥ हे मनुष्यो ! जिस विशेष कर प्रकाश पूर्ण परमात्मा से सब निमेष कला काष्ठा आदि का अवयव अधिक कर उत्पन्न होते हैं। उस इस परमात्मा कोई भी न ऊपर न तिरछा सब दिशाओं में वा नीचे और बीच में सब ओर से ग्रहण कर सकता है, उसको तुम सेवो। इससे आगे विवादास्पद मंत्र "न तस्य प्रतिमा अस्ति" जिसका अर्थ प्रकरण के विरुद्ध कैसे है।

(१०८) प्रश्न—पुरुष सूक्त के अन्त में "श्रीश्च ते" इस में श्री और लक्ष्मी ईश्वर की स्त्रियाँ बतलाई हैं।

पृ० १६३ पं०

उत्तर—धन्य है आपकी बुद्धि को। वेद मंत्रों के अर्थ आप खूब समझते हैं। आपने इस मंत्र से यह समझा ईश्वर के भी वैसे ही दो स्त्रियाँ हैं जैसे कृष्ण के तीस कर

और ईश्वर भी उन दोनों से वैसे ही लीला करता है जैसे कृष्ण तीस करोड़ गोपियों से। (देखो नं० ६२) यदि आपने ऐसा ही समझा है तो यह आपकी महाभूल है। इससे परमात्मा का साकार या मूर्तिमान सिद्ध होना असंभव है। क्योंकि यहाँ पर उपमा अलंकार है। जैसे—

वेद—"श्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्न्यौ। यजु० ३१। २२"

स्वामी दयानन्द—हे जगदीश्वर आपकी समग्र शोभा और सब ऐश्वर्य भी दो स्त्रियों के तुल्य वर्तमान हैं।

महीधर—श्रीः लक्ष्मीश्च ते तव पत्न्यौ। जायास्थानीये त्वद्वश्ये इत्यर्थः। यया सर्वजनाश्रयणीयो भवति सा श्रीः संपदित्यर्थः। यया लक्ष्यते दृश्यते जनैः सा लक्ष्मीः। सौन्दर्यमित्यर्थः।

भाषार्थ—श्री और लक्ष्मी आपकी पत्नियें हैं। पत्नी के स्थान में आपके वश में हैं यह अर्थ है। जिससे सब जनता आश्रय लेनेवाली होती है वह श्री संपत्ति यह अर्थ है। जिससे लोगों से देखा जाता है वह लक्ष्मी, सौंदर्य यह अर्थ है।

कहिये महाराज! यह तो महीधर जी आपके भाष्यकार भी स्वामी दयानन्द जी का अनुमोदन कर रहे हैं। हमारा क्या क़सूर है। आपके भाष्यकार ने ही आपके सारे मनसूबे खाक में मिला दिये। "इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से।"

(१०९) प्रश्न—अब "तदेवाग्निः" इस मंत्र से ईश्वर के व्यापकत्व और सर्व स्वरूपत्व से यह दिखलाया है कि अग्नि आदि जितनी साकार मूर्तियां हैं। वे सब ब्रह्म की मूर्तियां हैं।

पृ० १६३ पं० २१

उत्तर—इस मंत्र में यह बतलाया गया है कि ईश्वर के

गुण कर्म स्वभाव अनेक होने से उसके अनेक नाम हैं (देखो नं० १९) व्याप्य के साकार होने से व्यापक साकार नहीं हो सकता (देखो नं ६ से ९) "द्वासुपर्णा" इत्यादि अनेक मंत्र संसार के उपादान कारण प्रकृति को नित्य वर्णन कर रहे हैं। अतः अग्नि आदि जितनी साकार मूर्तियाँ हैं वह प्रकृति की हैं ब्रह्म की नहीं है। क्योंकि निराकार परमात्मा संसार का निमित्त कारण हैं। उपादान कारण प्रकृति है।

(देखो नं० १० से २३)।

(११०) प्रश्न—"सर्वेनिमेषा" इस मन्त्र में यह दिखलाया है कि काल विभाग और बिजलियाँ जो पैदा हुई हैं वे सब ब्रह्म से पैदा हुई हैं। अर्थात् ब्रह्म सब जगत् का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" है। पृ० १९३ पं० २३।

उत्तर—ब्रह्म जगत् का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" नहीं है। अपितु नित्य प्रकृति उपादान कारण तथा ब्रह्म निमित्त कारण है। अतः उस निमित्त कारण परमात्मा ने जब नित्य प्रकृति उपादान कारण से जगत् को बनाया तो वक्त का शुमार आरंभ हुआ। क्योंकि नित्य पदार्थों में काल का उपयोग नहीं। अपितु कार्य रूप अनित्य पदार्थों से काल का संबन्ध है। इस मन्त्र ने जहाँ निमित्त कारण परमात्मा से संसार की उत्पत्ति बतलाई है। वहाँ परमात्मा सूक्ष्म निराकार भी वर्णन किया है।

(१११) प्रश्न—अब "न तस्य" इस मन्त्र में यह कहना है कि ब्रह्म के तुल्य महत्त्व रखनेवाली कोई वस्तु संसार में नहीं। पृ० १९३ पं० २५।

उत्तर—प्रतिमा शब्द का अर्थ महत्त्व होता ही नहीं। अपितु प्रतिमा शब्द का अर्थ 'नाप का साधन' तथा 'परिमाण

'सादृश्य' 'प्रतिबिम्ब' तथा मूर्ति, होता है। आपने महत्त्व अपनी ओर से ही कल्पना किया है। देखिये इस पर महीधर क्या लिखते हैं—

"न तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानभूतं किंचिद्विद्यते"

भाषार्थ—उस पुरुष परमात्मा की प्रतिमा अर्थात् प्रतिनिधि सदृश माप आदि कोई वस्तु नहीं है। अतः प्रतिमा का महत्व अर्थ सर्वथा निर्मूल है।

श्रीमान् जी! भला यह तो बतलाने की कृपा करें कि जब ब्रह्म के सदृश महत्त्व रखने वाली कोई वस्तु संसार में नहीं तो फिर ये मूर्त्तियाँ उसके सदृश महत्त्व रखने वाली कैसे हो सकती हैं। अतः परमात्मा के स्थान में उनकी पूजा व्यर्थ ही है।

(११२) प्रश्न—इस मन्त्र में प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति होता ही नहीं। प्रतिमा का अर्थ तुल्य होता है। पृ० १६४ पं० १४

उत्तर—जब आप अपनी पुस्तक के पृ० १६८ पं० ७ में यह लिखते हुए कि "यज्ञ में महावीर नामक प्रजापति की प्रतिमायें बनती हैं" स्वयं प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति कर रहे हैं तो फिर यहाँ प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति क्यों नहीं होता, इसमें हेतु क्या है। यदि प्रतिमा का अर्थ केवल तुल्य ही है, तो फिर इसका यह अर्थ होगा कि "परमात्मा के तुल्य कोई नहीं।" जब परमात्मा के तुल्य किसी बात में भी कोई नहीं, तो पता लगा कि ये मूर्तियाँ परमात्मा के किसी बात में भी तुल्य नहीं हैं। जब मूर्तियाँ किसी बात में भी परमात्मा के तुल्य नहीं हैं तो फिर परमात्मा के स्थान में इनको प्रतिनिधि बना कर पूजा करना व्यर्थ हो गया।

(११३) प्रश्न—उव्वट, महीधर, शंकर, गिरिधर, नि
सबने प्रतिमा शब्द के तुल्य अर्थ किये हैं। पृ० १९४ पं० १

उत्तर—आप असत्य लिख रहे हैं। इस समय दो भा
तो हमारे सामने मौजूद हैं। दोनों ने ही सदृश अर्थ
किया। जैसे—

उव्वट—न तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानभूतं किंचिद्विद्यते।

महीधर—तस्य पुरुषस्य प्रतिमा प्रतिमानमुपमानं किंचिद्वस्तुनास्ति

अमरकोष—प्रतिमानं प्रतिबिम्बं प्रतिमा प्रतियाना प्रतिच्छाया
प्रतिकृतिरर्चापुंसि प्रतिनिधि रूपमोपमानं स्यात्

अमरकोश २०।३

स्वामी दयानन्द—न निषेधे तस्य परमेश्वरस्य प्रतिमा प्रतिमी
यया तत्परिमापकं सदृशं तोलन साधनं प्रतिकृति राकृति
अस्ति वर्तते (वेदभाष्य).

भाषार्थ—उस परमात्मा की प्रतिमान भूत कोई वस्तु नहीं
है। (उव्वट)

उस परमात्मा की प्रतिमा प्रतिमान उपमान कोई वस्तु नहीं
है। (महीधर)

प्रतिमान, प्रतिबिम्ब, प्रतिमा, प्रतियातना, प्रतिच्छाया, प्रति
कृति, अर्चा, प्रतिनिधि, ये आठ नाम प्रतिमा के हैं। (अमर
कोष) उस परमेश्वर की प्रतिमा माप सदृश तोल साधन प्रति
कृति आकृति नहीं है (दयानन्द)

अब फरमाइये स्वामी जी ने कौनसा नया अर्थ किया है
जो आप के आचार्यों ने नहीं किया। उव्वट महीधर ने प्रति
मान उपमान दो अर्थ किये हैं और अमर कोष ने प्रतिबिम्ब
तथा प्रतिच्छाया, प्रतिकृति, प्रतिनिधि शब्दों को प्रतिमा

शब्द का पर्य्याय बतलाया है। और इन शब्दों का अर्थ भाषा में मूर्ति तस्वीर फोटो के सिवाय और क्या हो सकता है। अतः सिद्ध हुआ कि स्वामी जी ने वही अर्थ किया है कि जो सनातन धर्म्म के आचार्य्य उव्वट महीधर आदि करते हैं। जैसे इन दो का अर्थ है वैसे ही सब का समझ लेना चाहिये।

(११४) प्रश्न—यजुर्वेद के "सहस्रस्य १५। ६५" में जब "प्रतिमासि" आया और इन को मालूम हुआ कि यहां पर मूर्ति अर्थ हो जाने से मूर्ति पूजा सिद्ध हो जावेगी तब घबराये। पृ० १६५ पं० १।

उत्तर—श्रीमान् जी! इस में घबराने की कौन सी बात है। प्रतिमा शब्द के आठ अर्थ हैं (नं० ११३) उन में से जो अर्थ जहां लेना मुनासिब हो वह वहां लेना ही बुद्धिमत्ता है। इस मन्त्र में प्रतिमा के अर्थ मूर्ति करने से मूर्ति पूजा सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि इस मन्त्र का देवता अर्थात प्रतिपाद्य विषय ईश्वर नहीं है अपितु "विद्वान् देवता" है। चूंकि यहां पर प्रतिमा के अर्थ मूर्ति संगत न हो सकते थे इस कारण यहां मूर्ति अर्थ करना मुनासिब ही न था। मन्त्र तथा अर्थ दोनों को ध्यान पूर्वक पढ़ने की कृपा करें।

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि सहस्रस्योन्मासि
साहस्रोऽसि सहस्रायत्वा॥ यजु० १५। ६५

भावार्थ—हे विद्वन् पुरुष विदुषी स्त्री वा जिस कारण तू असंख्यात पदार्थों से युक्त जगत् के (प्रमा) प्रमाण यथार्थ ज्ञान के तुल्य है। असंख्य विशेष पदार्थों के (प्रतिमा) तोल साधन के तुल्य है। असंख्य स्थूल वस्तुओं के (उन्मा)

तोलने की तुला के समान है। असंख्य पदार्थों और विद्या से युक्त है। इस कारण असंख्यात प्रयोजनों के लिये तुझ परमात्मा व्यवहार में स्थित करे ॥ ६५ ॥

अब इस प्रकरण में मूर्ति अर्थ करके स्वयं देखलें। सं ही न हो सकेगा। इसी लिये तो सनातन धर्म्म के आचार्य इस मन्त्र को मूर्ति पूजा में न लगाकर यज्ञ की अग्नि में लगा हैं। देखिये—

हे अग्ने सहस्रस्येष्टकानां प्रमा प्रमाणं त्वमसि। सह स्रस्य प्रतिमा प्रतिनिधिरसि। सहस्रस्योन्मोन्मानं तुलासि साहस्रः सहस्राहोंऽसि। सहस्राय अनन्त फलाप्त्यै प्रोक्षामि। (महीधर)

भाषार्थ—हे अग्नि तू सहस्र ईंटो का अंदाज़ा है। सहस्र का प्रतिनिधि है। तू सहस्र की तकड़ी है। तू सहस्र योग्य है। अनन्त फल प्राप्ति के लिये मैं तेरा प्रोक्षण करता हूँ जब आपके आचार्यों ने ही इस मन्त्र में प्रतिमा के अर्थ मूर्ति नहीं किये। तो स्वामी जी को उलाहना देना पागलपन नहीं तो क्या है।

(११५) प्रश्न—स्वामी दयानन्दजी ने भी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के "मासि प्रमासि प्रतिमासि" के भाष्य में लिख दिया कि "वेदेषु प्रतिमा शब्देन मूर्तयोन गृह्यन्ते" वेदों में प्रतिमा शब्द से मूर्ति का ग्रहण नहीं होता। फिर "नतस्य प्रतिमास्ति" इस मन्त्र में प्रतिमा से मूर्ति का ग्रहण कैसे हो जावेगा। पृ० १९५ प० ३।

उत्तर—आपने उत्सर्गापवाद के न्याय, को भुला दिया है।

वरना आप को यह शंका ही न होती। जब स्वामी जी इसी प्रकरण में "न तस्य प्रतिमा" इस मंत्र में प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्ति करते हैं। और फिर आगे चल कर थोड़ी दूर पर ही यह कहते हैं कि वेदों में प्रतिमा शब्द का अर्थ मूर्त्ति नहीं लिया जाता। तो उत्सर्गापवाद् न्याय से इसका स्पष्ट यह अभिप्राय है कि "न तस्य" इस मंत्र के सिवाय और स्थानों में जहां जहां प्रतिमा शब्द आता है वहां मूर्त्ति के अर्थों में नहीं आता अपितु परिमाण अर्थों में आता है। और इसके लिये उन्होंने अथर्व वेद का प्रमाण भी उपस्थित कर दिया है। जिसमें प्रतिमा शब्द के मूर्ति अर्थ संगति नहीं खाते अपि तु परिमाण अर्थ ही संगति खाते हैं। अतः स्वामी जी के लेख में परस्पर विरोध नहीं है। अपि तु उत्सर्गापवाद न्याय से दोनों ही लेख ठीक और युक्ति युक्त हैं।

(११६) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश में उसी मंत्र के अर्थ में यह लिखा हैं कि "जो जगत् में व्यापक है" यह अर्थ वेद मंत्र के किसी भी पद का हो नहीं सकता॥ पृ० १६५ पं० ७।

उत्तर—लीजिये हम आपको बतलाते हैं कि यह अर्थ मंत्र के कौन से पद का है। इस मंत्र में जो "तस्य" शब्द है यह पूर्व में पड़े हुए "पुरुषादधि" पुरुष शब्द की तरफ संकेत कर रहा है। इसी लिये उव्वट और महीधर दोनों ने "तस्य पुरुषस्य" ऐसा अर्थ किया हैं (देखो नं० ११३) अब पुरुष शब्द के अर्थ देख लीजिये क्या है। निरुक्त में पुरुष शब्द के अर्थ देख लीजिये क्या हैं। निरुक्त में पुरुष शब्द के अर्थ इस प्रकार हैं—

निरुक्त—पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूर्यतेवा—

दुर्गाचार्य्य—"पूरयतेर्वा" पूर्णमनेन पुरुषेण सर्वं गतत्वा जग दिति पुरुषः (निरु० अ० २ खं० ३ । १)

भाषार्थ—चूंकि परमात्मा व्यापक होने से सारे जगत् में पूर्ण हो रहा है। इसलिये परमात्मा को पुरुष कहते हैं।

कहियेगा अब तो आपको पता लग गया कि स्वामी जी ने जो जगत् में व्यापक है" यह कौन से पद का अर्थ किया है।

(११७) प्रश्न—फिर इसमें लिखा है कि "उस निराकार परमात्मा की" "न तस्य" इस मंत्र में "निराकार" इस इतने अर्थ को कहने वाला कोई पद नहीं। पृ० १६५ पं० १६।

उत्तर—श्रीमान् जी! हम आपको यह भी अवश्य बतलावेंगे कि निराकार किस पद का अर्थ है। यह तो आपको (नं० ११६) से पता लग गया कि तस्य पद का अर्थ पुरुषस्य है। अब वह पुरुष कैसा है यह भी इससे पूर्व मंत्र में ही देखिये। हम "सर्वे निमेषा" इस पूर्व मंत्र का अर्थ (नं० १०७) में कर आये हैं। जिसमें लिखा है कि उस परमेश्वर को कोई ऊपर' तिरछा सब दिशाओं में वा नीचे तथा बीच में सब ओर से ग्रहण नहीं कर सकता। इससे साफ सिद्ध है कि वह निरवयव निराकार है। बस तस्य पद के इशारे से पुरुष शब्द का ग्रहण होता है और पुरुष शब्द के ग्रहण से व्यापक तथा निराकार यह दोनों अर्थ स्वयं इस मंत्र में आ जाते हैं। इस पूर्व मंत्र का अर्थ महीधर का भी परमात्मा को निराकार ही वर्णन करता है। देखिये—

सर्वे निमेषाः त्रुटिकाष्ठाघट्यादयः काल विशेषाः पुरुषात् अधि पुरुष सकाशाज्जज्ञिरे। कीदृशात्पुरुषात्। विद्युतः विशे-

पेण द्योतते विद्युत् तस्मात्। किंच कश्चिदपि एनं पुरुषमूर्ध्व मुपरि भागेन परिजग्रभत् परिगृह्णाति। एनं तिर्यञ्चं चतुर्दिक्षु न परि० मध्ये मध्य देशेऽपि न गृह्णाति। नह्यसौ प्रत्यक्षादीनं विषय इत्यर्थः।

भाषार्थ—सब निमेष काष्ठा घड़ी आदि काल विशेष पुरुष से पैदा हुए हैं। कैसे पुरुष से। विशेष प्रकाशमान पुरुष से और कोई भी इस पुरुष को ऊपर से नहीं पकड़ सकता। इसको चारों ही तरफों में नहीं पकड़ सकता। बीच में से भी नहीं पकड़ सकता। "वह प्रत्यक्ष आदि का विषय ही नहीं है यह अर्थ है।" आशा है अब आपके यह भी समझ में आगया होगा कि यह निराकार अर्थ किस पद का है।

(११७) प्रश्न—फिर इस मन्त्र के अर्थ में "प्रतिमा" शब्द के तीन अर्थ किये गये परिमाण, सादृश्य, और मूर्ति। परिमाण ईश्वर का नहीं इसमें ईश्वर की उत्कर्षता है। और सादृश्य में भी उत्कषर्ता है। ये दोनों अर्थ, ठीक हैं। क्योंकि इनमें प्रमाण मिलते हैं। किन्तु मूर्ति अर्थ में कोई प्रमाण नहीं। पृ० १९५ पं० २१।

उत्तर—परमात्मा की उत्कर्षता को वर्णन करने वाले "अतोज्यायांश्चपूरुषः" इत्यादि अनेकों मन्त्र वेदों में भरे पड़े हैं। इस मन्त्र में परमात्मा को परिमाण रहित बतलाने का प्रयोजन परमात्मा की उत्कर्षता वर्णन करना नहीं। अपितु परमात्मा को अनन्त व्यापक (लामहदूद) वर्णन करना है। और सादृश्य रहित बतलाने का प्रयोजन भी उत्कर्षता वर्णन नहीं है अपितु यह बतलाना मक़सद है कि परमात्मा अनुपम है। और कोई पदार्थ भी संसार का किसी अंश में भी परमात्मा

के सदृश नहीं है। इन दोनों अर्थों के ठीक मानने से भी ईश्वर की मूर्ति बनाना मिथ्या सिद्ध हो जाता है। क्योंकि जो परमात्मा अनन्त और व्यापक है उसकी मूर्ति बन ही नहीं सकती। क्योंकि मूर्ति जो भी होगी वह महदूद एक देशी होगी। और जब संसार की कोई वस्तु किसी भी अंश में परमात्मा के सदृश नहीं है तो फिर मूर्ति परमात्मा के सदृश कैसे हो सकती है। रह गया यह प्रश्न कि प्रतिमा का अर्थ मूर्ति करने में कोई प्रमाण है वा नहीं। सो हमने नं० ११३ में भली भांति विस्तार-पूर्वक वर्णन कर दिया है; देखने की कृपा करें।

हेतुवाद

(११९) प्रश्न—"न तस्य" इस मन्त्र में हेतु भी है। मन्त्र का सीधासादा अर्थ यह है कि जो महत् यशवाला ईश्वर है। उस के तुल्य कोई पदार्थ नहीं। जब यह विरुद्ध हेतु पड़ते देखा तो सत्यार्थप्रकाश में "यस्यनाम महद्यशः" यह पाठ ही नहीं लिखा। यदि हम इसको मिलालें तो सत्यार्थप्रकाश लिखित मन्त्रोक्त हेतु विरुद्ध हेतु हो जाता है। क्योंकि अर्थ यह होगा कि "जो ईश्वर महत् यशवाला है उसकी मूर्ति नहीं होती" संसार में यश वालों की ही अधिक मूर्तियाँ देखने में आती है। पृ० १६६ पं० १।

उत्तर—स्वामीजी महाराज ने पुस्तक में विस्तार भय से सारा मंत्र नहीं लिखा। आपकी यह कल्पना निरर्थक है कि विरुद्ध हेतु पड़ने के कारण अगला पाठ नहीं दिया। क्योंकि स्वामी जी ने ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका के मूर्ति पूजा प्रकरण में ही इस मंत्र का पूरा अर्थ किया है। स्वामीजी के अर्थ अनु-

चार विरुद्ध हेतु बनता ही नहीं। यदि स्वामीजी के सत्यार्थ-प्रकाश के अर्थ के साथ "यस्यनाम महद्‌यशः" के अर्थ को जोड़ना है। तो इस वाक्य का स्वामीजी का ही किया हुआ अथ जोड़ना मुनासिब है। आपने अपना मनघड़न्त अर्थ जोड़ कर और असल पाठ में से निराकार तथा व्यापक शब्द चुराकर अपने मतलब का पाठ बना लिया। और खुद ही विरुद्ध हेतु बता कर खण्डन करने लगे। यदि "न तस्य प्रतिमास्ति" के अर्थ के साथ ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका में से "यस्य नाम महद्यशः" के अर्थ को जोड़ें तो पाठ इस प्रकार का बन जावेगा कि "जिस की आज्ञा का ठीक-ठीक पालन और उत्तम कीर्तियों के हेतु जो सत्य भाषण आदि कर्म हैं उनका करना ही जिसका नामस्मरण कहता है जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्ति नहीं है"। अब बतलाइये आपका वह विरुद्ध हेतु किधर पर लगा कर उड़ गया। अजी श्रीमान् जी! ईश्वर की मूर्ति न बनने के हेतु तो सत्यार्थप्रकाश के "नतस्य प्रतिमास्ति" के अर्थ में ही पड़े हुए हैं। और वे हैं सर्वव्यापकता तथा निराकारता। "चूँकि परमात्मा सारे जगत् में व्यापक और निराकार है इस लिये उसकी मूर्ति नहीं बन सकती क्योंकि मूर्ति साकार और एक-देशी की ही बन सकती है" इस का नाम है हेतुवाद। आप का विरुद्ध हेतुवाद तो "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनबा जोड़ा" के समान था, जो हमारे यथार्थ हेतुवाद के आते ही ऐसे गायब हो गया जैसे गधे के सिर पर सींग।

(१२०) प्रश्न—सत्यार्थप्रकाश के लेखक ने "न तस्य" इस

मन्त्र के उत्तरार्द्ध को बिलकुल छिपा लिया। पब्लिक के
नहीं आने दिया। इसका कारण कोई बतला सकता है। लो
जानता है कि इस मन्त्र के उत्तरार्द्ध में वेद ने मूर्ति पूजा
मण्डन किया है। पृ० १९६ पं० १३।

उत्तर—स्वामीजी ने "नतस्य" इस पूरे मंत्र का अर्थ ऋ
दादि भाष्य भूमिका के मूर्त्ति पूजा प्रकरण में ही दिया है।
यजुर्वेद के भाष्य में भी मौजूद है। आपकी यह कल्पना मि
है कि उत्तरार्द्ध में मूर्त्ति पूजा का मंडन है। अपि तु उत्तरार्द्ध
भी निराकार अजन्मा व्यापक परमात्मा का ही वर्णन है
स्वामीजी ने पुस्तक में विस्तार भय से सारा मंत्र नहीं दि
यह पूरा मंत्र तथा उसका अर्थ इस प्रकार है—

न तस्य प्रतिमास्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येषमामा हिꣳसीदित्येषा
यस्मान्न जात इत्येषा॥ यजु० ३२। ३॥

भावार्थ—जो सब जगत् में परिपूर्ण व्यापक निराकार है
जो जन्म नहीं लेता। जिसकी आज्ञा का ठीक २ पालन औ
उत्तम कीर्तियों के हेतु जो सत्य भाषण आदि कर्म हैं उन
करना ही जिसका नाम स्मरण कहाता है। जो परमेश्वर ते
वाले सूर्य्यादि लोकों की उत्पत्ति का कारण है। जिसकी प्रार्थ
इस प्रकार करनी होती है कि हे परमात्मन्! हम लोगों
सब प्रकार से रक्षा कीजिये। कोई कहे कि इस निराकार स
व्यापक परमेश्वर की उपासना क्यों करनी चाहिये तो उ
यह है कि जो परमेश्वर किसी माता पिता के संयोग से कभी
उत्पन्न हुआ न होता और न होगा। और न वह कभी शरी

धारण करके बालक जवान और वृद्ध होता है। उस परमेश्वर की प्रतिमा अर्थात् नाप का साधन तथा प्रतिबिम्ब वा सदृश अर्थात् जिसको तसवीर कहते हैं सो किसी प्रकार नहीं है। क्योंकि वह मूर्त्ति रहित अनन्त सीमा रहित और सबमें व्यापक है। इससे निराकार की उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये।

फरमाइये, इसमें मूर्ति पूजा का मंडन मंत्र के कौन से पदार्थ से होता है।

(१२१) प्रश्न—उत्तरार्द्ध में सब से पहिले "हिरण्यगर्भ इत्येष" इस मंत्र में ईश्वर का शरीर धारण और मनुष्यों का उसको हवि देकर पूजन करना बतलाया। फिर हम कैसे मानलें कि उसके मूर्ति नहीं। पृ० १९६ पं० २५।

उत्तर—इस मंत्र में न तो परमात्मा के शरीर धारण करने का वर्णन है। और न ही हवि शब्द स्थूल पदार्थों के लिये प्रयुक्त हुआ है। इस मंत्र के अर्थों से परमात्मा का शरीर धारण सिद्ध करना स्वयं वेद मंत्र के अभिप्राय के विरुद्ध है। मंत्र में परमात्मा को प्रकाश रहित पृथिवी आदि तथा प्रकाश सहित सूर्य्यादि लोक-लोकान्तरों को धारण करने वाला लिखा है। भला शरीरधारी और भोजन ग्रहण करने वाला तुच्छ शक्तिधारी इन लोक लोकान्तरों को धारण करने में कैसे समर्थ हो सकता है। अतः इस मंत्र में ईश्वर का शरीरधारी होने की कल्पना सर्वथैव निर्मूल है। मंत्र का ठीक २ अर्थ निम्न प्रकार से है।

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
(यजु० १३।४)

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो इस उत्पन्न हुए संसार का रचने और पालन करने हारा सहाय की अपेक्षा रहित सूर्य्य आदि तेजोमय पदार्थों का आधार जगत् रचने से पहिले वर्तमान् था। वह इस संसार को रचके और प्रकाश रहित भूगोल आदि और प्रकाश सहित सूर्य्यादि लोकों को धारण करता हुआ वर्तमान है। उस सुखरूप प्रजा पालने वाले प्रकाशमान परमात्मा की आत्मा आदि सामग्री से सेवा में तत्पर हैं वैसे तुम लोग भी इस परमात्मा का सेवन करो ॥ ४॥

क्या आप बतलाने की कृपा करेंगे कि मूर्ति पूजा का मंडन इस मंत्र के कौन से पदों से होता है।

(१२२) प्रश्न—इतना ही नहीं किंतु "हिरण्यगर्भ" इस मंत्र से मूर्ति निर्माण होकर उसका पूजन होता है॥ पृ० १९७ पं०।

उत्तर—कोई आदमी किसी मन्त्र को पढ़कर किसी प्रकार के काम को करे या करना लिखदे तो इस में मन्त्र का क्या क़सूर, और ऐसा करने से यह कैसे सिद्ध हो गया कि मन्त्र में भी ऐसा ही करना लिखा है। उदाहरणार्थ एक दुराचारी आदमी "विश्वानिदेव" मन्त्र पढ़ कर शराब पीता है या पीना लिख देता है। तो इस में मन्त्र का क्या दोष। तथा यह कैसे मान लिया जावे कि यह मन्त्र शराब पीने का विधान करता है जब तक इस मन्त्र के अर्थों से शराब पीने की विधि साबित न हो। इसी प्रकार से ही यदि कोई सूत्रकार "हिरण्यगर्भ" इस मन्त्र से मूर्ति बनाकर उस के पूजन का विधान लिख दे तो इस से यह साबित नहीं हो सकता कि यह मन्त्र भी मूर्ति पूजा का विधान करता है। जब तक कि उस के अर्थों से मूर्ति पूजा

विधान सिद्ध न हो। अब आप यह बतलावें कि इस मन्त्र के वे कौन से शब्द हैं जिनका अर्थ मूर्ति निर्माण तथा पूजन का विधान करते हैं। यदि नहीं तो कात्यायन का या शतपथ अथवा किसी और का लिखना हमारे लिये क्या कीमत रखता है। हम इस प्रकार के वेद विरुद्ध लेख को इतनी भी कीमत नहीं समझते जितनी कि उस कागज़ की जिसपर कि वह लिखा हुआ है। यदि आप को प्रमाण हो तो आप शहद लगा २ कर चाटा करें, हमारे सामने पेश करने की ज़रूरत नहीं।

(१२३) प्रश्न—इस विषय में कात्यायन कल्प सूत्र लिखता है कि—

"अथ पुरुषमुपदधाति स प्रजापतिःसोऽग्निः स यजमानः स हिरण्मयो भवति ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरग्निरमृतं हिरण्यममृतमग्निः पुरुषो भवति पुरुषो हि प्रजापतिः ॥१॥

उत्तानम्प्राञ्चां हिरण्य पुरुषं तस्मिन् हिरण्य गर्भ इति

कात्यायन कल्प सूत्र १७।४।१३

उत्तर—आप कृपया सच बतलावें आप ने कभी जन्म भर में कात्यायन कल्प सूत्र की शक्ल भी देखी है। यदि देखी है तो ईमानदारी के साथ बतलावें कि यह इतना लम्बा चौड़ा पाठ जो आपने कात्यायन के नाम से नम्बर ॥१॥ तक दिया है क्या कात्यायन सूत्र में मौजूद है। यह हमारे सामने कात्यायन श्रौतसूत्र चौखंबा संस्कृत ग्रन्थमाला का बनारस में १९०३ सन् का विद्याविलास प्रैस का छपा हुआ मौजूद है। इस के पृ० ७५२ पर "उत्तानम्" इत्यादि सूत्र तो मौजूद है, परन्तु इस से पूर्व का जो पाठ है वह मौजूद नहीं है। क्या इसी का नाम ईमान-

दारी है। जो आदमी इतना बड़ा पाठ किसी पुस्तक के नाम से लिख सकता है! उससे धर्म्म निर्णय की क्या आशा की जा सकती है। यद्यपि हम इस कात्यायन सूत्र को स्वत: प्रमाण नहीं मानते। और न ही इस के लेख के हम उत्तर दाता हैं तथापि सनातन धर्म्म के लेखकों की ईमानदारी की परीक्षा के लिये आप को यह सब कुछ बतला रहे हैं। लो एक बात और बतलाते जावें कि इस "उत्तानम्" इत्यादि एक सूत्र में भी मूर्ति के पूजने का नाम मात्र भी नहीं है। इस सूत्र की टीका जो कर्काचार्य्य ने की है वह यह है कि "तस्मिन् रुक्मे प्रांचं उत्तानं हिरण्य पुरुषमुपदधाति हिरण्यगर्भ इत्यनेन मन्त्रेण ॥ १७ । ७५ ॥

जिस का भाषार्थ यह है कि "उस रुक्म आसन पर पूर्व की तरफ ऊँचे उठाये हुए हिरण्य पुरुष नाम यज्ञ पात्र को रखता है। 'हिरण्यगर्भ' इस मन्त्र से"

अब बतलाइये इस सूत्र में परमात्मा की मूर्ति बनाना तथा उसकी पूजा करने का कहाँ वर्णन है। झूठे पर खुदा की लानत।

(१२४) प्रश्न—इस "हिरण्यगर्भ" मन्त्र पर शतपथ भी है उसको भी सुनिये, "अथ सामगायति ऐतद्वै देवा इत्यादि शत० ७ । ४ । १ । २२-२५"

पाठको! अब आप ही बतावें "नतस्य प्रतिमास्ति" इस मन्त्र में ईश्वर की मूर्ति का खण्डन है वा मूर्ति पूजा का विधान। पृ० १९७ पं० १७।

उत्तर—सुनाइये महाराज! वह भी सुना दीजिये, यद्यपि हम शतपथ को स्वत: प्रमाण नहीं मानते तथापि सुनने में क्या

हर्ज़ है। यह पता तो लगेगा कि आप की दौड़ कहाँ तक है। परन्तु हमें विश्वास नहीं कि आप सच बोलेंगे। क्योंकि अभी आप कात्यायन के नाम से एक मन घड़न्त पाठ दे चुके हैं। संभव है आप यहाँ पर भी वैसे ही करें। परन्तु खैर हमारा क्या हर्ज़ है—कीजिये, पेश कीजिये, तो क्या सचमुच "अथ गायति" शतपथ हिरण्यगर्भ पर ही है। इस सारे पाठ में "हिरण्यगर्भ" या इस मन्त्र का कोई शब्द तो नज़र आता नहीं अच्छा तो पुस्तक खोलकर देख लेते हैं। यह लो वही हुआ, जिस की आशा थी।

आपने "हिरण्यगर्भ" का शतपथ न देकर अगले मन्त्रों का दे दिया है। और उसे "हिरण्यगर्भ" का प्रकट कर के एक बड़ा भारी पाप किया है। जिसका कोई प्रायश्चित नहीं हो सकता। इस मन्त्र के शतपथ में आप के सिद्धान्त की पुष्टि करने वाली कोई बात भी नहीं है, लीजिये—हम इस मन्त्र का शतपथ तथा निरुक्त दोनों दर्ज कर देते हैं।

शतपथ—

हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रऽइति। हिरण्यगर्भो ह्येष समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीदित्येष ह्यस्य सर्वस्य भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् स दाधार पृथिवीं द्यामु ते मामित्येष वै दिवंच पृथिवीं च दाधार कस्मै देवाय हविषा विधेमेति प्रजापति वैं कस्तस्मै हविषाविधेमेत्येतत्॥ १९॥

(शत० ७। ४। १। १९)

यह है इस मन्त्र का शतपथ, अब आप इसमें से एक शब्द ही ऐसा निकाल कर दिखलावें जिस से मूर्ति का निर्माण या पूजन सिद्ध हो सके ?

निरुक्त—

हिरण्यगर्भो हिरण्यमयो गर्भोऽस्येतिवा ।
गर्भो गृभेर्गृणात्यर्थे, गिरत्यनर्थानितिवा ॥
यदा हि स्त्री गुणान् गृह्णाति गुणांश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति, समभवदग्रे भूतस्य जातः पतिरेको बभूव स धारयति पृथिवीं च दिवं च कस्मै देवाय हविषा विधेमेति व्याख्यातम् ॥ विधति र्दान कर्मा ॥ १ ॥ (निरु० अ० १० ख० २३)

क्या आप इस निरुक्त में से कोई शब्द बतला सकते हैं कि जिससे मूर्ति निर्माण अथवा मूर्ति पूजन सिद्ध हो सके। यदि नहीं तो यह निश्चय है कि यह मन्त्र तथा इस पर शतपथ और निरुक्त सब ही परमात्मा को निराकार अजन्मा और व्यापक वर्णन करके मूर्ति पूजा का घोर खंडन करते हैं।

(१२५) प्रश्न—"न तस्य" इस मन्त्र में दूसरी प्रतीक "मामाहिंसी है। इस मन्त्र में ईश्वर को "प्रथम शरीरी" कहा है। शरीर मूर्ति ही होता है। फिर इसी मन्त्र में ईश्वर को हवि देना लिखा है, फिर हम कैसे मान लें कि "नतस्य प्रतिमास्ति" इस मन्त्र में मूर्ति पूजा का खण्डन है।

पृ० १६८ पं० ५१।

उत्तर—इस मन्त्र में न तो परमात्मा को शरीर धारण करने वाला वर्णन किया है और न ही हवि के अर्थ भोजन करने के पदार्थ हैं। अपितु मन्त्र में परमात्मा को पृथिवी तथा द्यौ लोक को पैदा करके सब में व्याप्त वर्णन किया है। भला यदि वह शरीरधारी भोजन करनेवाला हो तो वह पृथिवी तथा द्यौ लोक का कर्ता तथा व्यापक कैसे हो सकता है!

अतः परमात्मा निराकार तथा व्यापक है। इस मन्त्र का ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

मामाहिꣳसीज्जनितायाः पृथिव्या योवादिवꣳ सत्य-धर्माव्यानट्। यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम। यजु० १२।१०२।

भावार्थ—जो जन्मादि से रहित आदि पुरुष सत्य धर्म वाला जगदीश्वर पृथिवी का उत्पन्न करने वाला अथवा जो सूर्य आदि जगत् को जल और वायु को उत्पन्न करके व्याप्त होता है। और जो चन्द्रमा आदि लोकों को उत्पन्न करता है। जिस सुख स्वरूप सुख करने हारे दिव्य गुणों के दाता विज्ञान स्वरूप ईश्वर का ग्रहण करने योग्य भक्ति योग से हम लोग सेवन करें, वह जगदीश्वर मुझको कुसंग से ताड़ित न होने दे।१०२।

भला इस मन्त्र में वह कौन से पद हैं जो ईश्वर को शरीर-धारी और भोजन करनेवाला वर्णन करते हैं।

(१२६) प्रश्न—"न तस्य" मन्त्र में तीसरी प्रतीक "यस्मान्न जातः" यह है, इस मन्त्र में ईश्वर को प्रजा रूप कहा, प्रजा में विना रूप के कोई पदार्थ रहता नहीं समस्त रूप उसी से निकले हैं। इससे वह मूर्तिमान है। फिर मूर्ति का निषेध करना हठ नहीं तो और क्या है। पृ० १९९ पं० ९।

उत्तर—इस मन्त्र में न तो परमात्मा को प्रजा रूप कहा है और न ही रूप धारी वर्णन किया है। अपितु परमात्मा को प्रजापति अर्थात् प्रजा का पालक और समस्त लोकों में व्यापक वर्णन किया है। भला जो व्यापक है वह कभी शरीरधारी हो सकता है। या उसकी कोई मूर्ति बना सकता है, कदापि नहीं।

अतः सिद्ध हुआ कि परमात्मा निराकार अजन्मा तथा सर्व व्यापक है। मन्त्र का ठीक अर्थ इस प्रकार है—

यस्मान्नजातः परोऽन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥ यजु० ८। ३६ ॥

भाषार्थ—जिस परमेश्वर से उत्तम और दूसरा नहीं हुआ और जो परमात्मा समस्त लोकों को व्याप्त हो रहा है वह सब संसार से उत्तम दाता होता हुआ इच्छा, प्राण, श्रद्धा, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश दशों इन्द्रिय मन अन्न वीर्य तप मन्त्र लोक और नाम इन सोलह कलाओं के स्वामी संसार मात्र के स्वामी परमेश्वर तीन ज्योति अर्थात् सूर्य बिजली और अग्नि को सब पदार्थों में स्थापित करता है॥३६॥

बताइये इस मन्त्र में वह कौनसा पदार्थ है। जिससे ईश्वर का रूप धारी होना सिद्ध होता है।

आप ने देख लिया कि ये तीनों मन्त्र भी परमात्मा को व्यापक अजन्मा और निराकार ही वर्णन करते हैं। और "नतस्य" इस मन्त्र का उत्तरार्द्ध भी पूर्वार्द्ध की बल पूर्वक ताईद करता है कि उस सब जगत में व्यापक निराकार परमात्मा की मूर्ति नहीं बन सकती।

(१२७) प्रश्न—आर्य समाजी लोग मूर्ति पूजा के खण्डन में निम्न भजन गाते हैं।

तुम्हीं हो मूर्ति में भी तुम्हीं व्यापक हो फूलों में।
भला भगवान् पर भगवान् को क्योंकर चढ़ाऊँ मैं॥

यदि यही बात है तो हम भी कहते हैं कि—

तुम्हीं हो पेट में व्यापक तुम्हीं व्यापक हो भोजन में।
भला भगवान् को भगवान् में क्यों कर घुसाऊं मैं ॥

इस प्रकार से तो दुनियाँ चलेगी तो पैर के ईश्वर से पृथिवी का ईश्वर दब जायेगा। बैठोगे तो आदमी के ईश्वर से चारपाई का ईश्वर दबा धरा है। पाख़ाने फिरोगे तो आदमी के ईश्वर में से ईश्वर निकल भागेगा, पेशाब करोगे तो पेशाब का व्यापक ईश्वर लुढ़क चलेगा इत्यादि इत्यादि आंज से सब काम बन्द करो और सीधे टिकट कटाकर यमराज के वेटिंग रूमों में पहुँचो ॥ पृ० २०० पं० २५।

उत्तर—धन्य हो महाराज! आप आर्यसमाज के सवाल को खूब समझे और उस का जवाब भी खूब दिया। एक ने कहा "जाट रे जाट तेरे सिर पर खाट" दूसरे ने जवाब दिया कि "तेली रे तेली तेरे सिर पर कोल्हू" तीसरे ने कहा कि तुक जुड़ी नहीं। चौथे ने कहा जुड़े न जुड़े बोझ से तो मरेगा ही। वही हाल आपका है। बात बने न बने, लोग यह तो कहेंगे कि खूब जवाब दिया। लेकिन इस पर ग़ौर भी किया था कि कहीं यह मिसाल उलटी न पड़ जावे और लेने के देने पड़ जावें।

श्रीमान् जी! आर्यसमाज परमात्मा को सारे संसार में एकरस व्यापक मानता है और प्राकृतिक जगत् तथा जीवों को व्याप्य मानता है। आर्यसमाज मानता है कि व्याप्य के दुख सुख हानि लाभ से व्यापक को दुख सुख वा हानि लाभ नहीं होता। किन्तु सनातन धर्म मानता है कि जैसे "माता पिता का पूजन पंच तत्वात्मक शरीर के द्वारा होता है। इसी प्रकार ईश्वर का पूजन भी उस के शरीर पंच तत्वों के द्वारा होता है"। आपकी पुस्तक पृ० १६२ पं० १।

इससे साफ़ साबित है कि सनातन धर्म पाँच तत्त्वों को माता पिता के शरीर की भाँति ईश्वर का शरीर मानता है। जैसे माता पिता को शरीर के द्वारा सुख दुख हानि लाभ प्रतीति होती है वैसे ही ईश्वर को भी पाँचों तत्वों के द्वारा सुख दुख हानि लाभ होता है। इसलिये सनातन धर्म यह मानता है कि पंच तत्त्वात्मक मूर्ति की पूजा से परमेश्वर प्रसन्न होता है। अतः आर्यसमाज यह शंका करता है कि जब परमात्मा फूलों में भी व्यापक है और मूर्ति में भी व्यापक है तो फिर फूलों को मूर्तिपर चढ़ाना ईश्वर को ईश्वर पर चढ़ाने के समान है। फिर सनातन धर्म यह भी मानता है कि "सृष्टि में जितने आकार हैं वे सब ब्रह्म के स्वरूप हैं।" (आपका पुस्तक पृ० १५८ पं० १२.) अब फूल भी ब्रह्म है और मूर्ति भी ब्रह्म है। इसलिये मूर्ति पर फूलों का चढ़ाना ईश्वर पर ईश्वर का चढ़ाना है। और आपने जितने भी प्रश्न किये हैं वे आप पर ही लागू होते हैं। आर्यसमाज का यह भजन ठीक है और मूर्ति पूजा पर एक घोर प्रहार है। किंतु हम लोग जो भोजन करते हैं वह ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये थोड़ा ही करते हैं। हम तो अपनी तृप्ति के लिये करते हैं। और हम लोग व्याप्य के दुख सुख हानि लाभ से व्यापक का दुख सुख हानि लाभ भी नहीं मानते और न ही हम संसार के आकारों को ब्रह्म के आकार मानते हैं। अतः आपका जो भजन का फिक़रा है वह तो सनातन धर्म पर ही विकट सवाल है। और इन दोनों शेरों में की गई शंकाओं का सनातन धर्म प्रलय तक भी उत्तर नहीं दे सकता। अब इस प्रश्न का उत्तर सोचने के लिये चाहे आप यमराज से मशविरा करने के लिये यमपुरी को पधारें,

विष्णु से पूछने के लिये समुद्र में गोते खावें यह आपकी इच्छा पर निर्भर है।

(१२८) प्रश्न—मूर्ति पूजा के उड़ाने के लिये "अन्धन्तमः प्रविशन्ति" इस मन्त्र के अर्थ में संभूति और असंभूति इन दो पदों के अर्थों में घपला मचाकर वेद से मूर्ति पूजा का खंडन निकाला गया है। पृ० २०१ पं० १६।

उत्तर—स्वामी जी ने वेद मंत्र के अर्थ में कोई घपला नहीं डाला, अर्थ मन्त्र का बिलकुल साफ है। (देखो नं० १०६) आप के भाष्यकार महीधर भी इस मंत्र के वही अर्थ करते हैं जो स्वामी जी महाराज ने किये हैं। ज़रा ध्यान से पढ़ने की कृपा करें।

अधुना व्याकृता व्याकृतोपासनयोः समुच्चिचीषया प्रत्येकं निंदोच्यते। संभवनं संभूतिः कार्य्यस्योत्पत्तिः तस्या अन्या असंभूतिः प्रकृतिः कारणमव्याकृताख्यम्। तामसंभूतिमव्याकृताख्यां प्रकृतिं कारणमविद्याकामकर्मबीजभूताम दर्शनात्मिकां ये उपास्ते ते तदनुरूपमेवान्धंतमोऽदर्शनात्मक संसारं प्रविशन्ति। ये संभूत्यां कार्य्यं ब्रह्मणि हिरण्यगर्भाख्ये रताः ते ततस्तस्मादपि भूयो बहुतरमिव तमःप्रविशन्ति ॥९॥

भाषार्थ—अब कारण कार्य रूप प्रकृति की उपासना को छुड़ाने की इच्छा से प्रत्येक की निन्दा कहते हैं। संभूति कार्य-रूप में उत्पन्न हुई प्रकृति का नाम है। तथा उससे भिन्न अविकारिणी कारण रूप प्रकृति का नाम असंभूति है। जो लोग उस अनुत्पन्न नित्य अविकारिणी कारण रूपा अविद्या तथा काम से हुए कर्मों की बीजभूत अदृश्य प्रकृति की उपासना करते हैं

वे तदनुरूप ही अज्ञान रूप अन्धकारमय संसार में प्रवेश करते हैं। और जो संभूति अर्थात् हिरण्यगर्भ मन्त्र में प्रतिपादित ब्रह्म से कार्य रूप जगत् में तबदील हुई प्रकृति में रत हैं। वे उससे भी अधिकतर अन्धकार में प्रवेश होते हैं॥ ८॥

कहिये महाराज! अब तो आप ऐसा न कहेंगे कि स्वामीजी ने मूर्तिपूजा के खंडन के लिये मंत्र के अर्थों में घपला कर दिया।

(१२९) प्रश्न—इस मन्त्र का देवता आत्मा है। जाती अर्थ में आत्मा परक अर्थ ही नहीं बनता। वेद मंत्र का जो देवता होता है। वही मन्त्र का वर्णनीय विषय होता है। नये अर्थ में वेद के साथ यह अन्याय किया गया है कि जो आत्मा के वर्णन को उड़ाकर प्रकृति और लकड़ी पत्थर का वर्णन कर दिया। पृ० २०२ पं० ४।

उत्तर—आप तो यूँही बिना सोचे समझे बिला वजह रो-पीट रहे हैं। यदि इस मंत्र का देवता आत्मा है तो अर्थ भी तो यही किया गया है कि जो लोग परमात्मा के स्थान में प्रकृति या प्रकृति के बने पदार्थों की पूजा करते हैं वे घोर नरक में पड़ते हैं।

फिर यह अर्थ आत्मा परक क्यों नहीं। और जब आपके आचार्य भी वही अर्थ करते है तो फिर आपको ज़ाली कहने का क्या हक़ है।

(१३०) प्रश्न—मन्त्र का अर्थ यह है। जो असंभूति शरीर की उपासना करते हैं वह नरक को जाते हैं। और जो संभूति केवल आत्मा ज्ञान में रत हैं। अपने आपको ब्रह्म मानते हैं। वे उनसे भी अधिक भयंकर नरक में जाते हैं। पृ० २०३ पं० ५।

उत्तर—आपने असंभूति के अर्थ शरीर किये हैं। जो सर्वथा मिथ्या हैं। क्योंकि असंभूति की व्युत्पत्ति यह है कि "संभवनं संभूतिः, तस्याः, अन्या असंभूतिः" पैदा होने वाली वस्तु का नाम संभूति तथा उससे भिन्न का नाम असंभूति है। इससे दो वस्तुओं का नाम असंभूति हो सकता है ईश्वर का, या प्रकृति का, क्योंकि दोनों ही अनुत्पन्न नित्य हैं। यहाँ ईश्वर अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर अर्थ करने से यह वाक्य बनेगा कि "जो ईश्वर की उपासना करते हैं वे नरक में जाते हैं" अतः मानना पड़ेगा कि यहाँ यही अर्थ ठीक है कि "जो लोग असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न नित्य प्रकृति की उपासना करते हैं अर्थात् उस को ईश्वर के स्थान में पूजते हैं वे नरक में जाते हैं" आगे आपने संभूति का अर्थ आत्मा किया है। क्योंकि संभूति नाम पैदा हुई वस्तुओं का है। और आत्मा अनुत्पन्न अनादि है। यह अर्थ भी संगत नहीं होता कि "जो लोग आत्मा की उपासना करते हैं वे उससे भी अधिक भयंकर नरक में जाते हैं"। अतः यही अर्थ ठीक है कि "जो लोग संभूति अर्थात् प्रकृति के कार्य पृथिवी वृक्ष, पाषाण आदि वस्तुओं को परमात्मा के स्थान में पूजते हैं वे उनसे भी अधिक भयंकर नरक में जाते हैं।" यह तो रही अर्थों के ग़लत होने की बात। किंतु यदि आपके अर्थ को ठीक भी मान लिया जावे तो भी बोरी-बिस्तरा गोल कर के आपको ही नरक में पधारना पड़ेगा क्योंकि आप मूर्ति पूजा और अवतार पूजा में शरीर की ही पूजा करते हैं। और भयंकर नरक में भी आप ही तशरीफ़ ले जावेंगे। क्योंकि आप एक ब्रह्म के बिना कोई भिन्न सत्ता न मानकर अपने आपको

भी ब्रह्म हीं कहते हैं। बहर हाल दोनों सूरतों में आप ही नरक के अधिकारी होंगे।

(१३१) प्रश्न—जितने भाष्य मिलते हैं सब में यही अर्थ है जो हमने किये हैं।

उत्तर—आप ग़लत कह रहे हैं, हमने महीधर भाष्य अपनी पुष्टि में लिख दिया है। वैसे भी सिद्धान्तानुसार आपका अर्थ ग़लत है।

(१३२) प्रश्न—वेद ने स्वयं "संभूति च विनाशंच" इस मन्त्र में संभूति शब्द का अर्थ आत्मा तथा असंभूति शब्द का अर्थ शरीर किया है। बनावटी अर्थ कैसे सत्य सिद्ध होगा। पृ० २०२ पं० २१।

उत्तर—इस मन्त्र में असंभूति शब्द ही नहीं है, यदि आप चाहें कि "तीर्त्वा संभूत्या" में से संधि विच्छेद करके "तीर्त्वा असंभूत्या" इस प्रकार से असंभूति शब्द निकाल लेंगे। तो नहीं निकाल सकते। क्योंकि आप उत्तरार्ध में वही शब्द निकाल सकेंगे जो पूर्वार्द्ध में दिये हुए हैं। पूर्वार्द्ध में तो संभूति और विनाश शब्द दिए हैं। तब यदि आप असंभूति शब्द निकालेंगे तो अर्थ यूं होगा कि "जो आदमी संभूति और विनाश को इकट्ठा जानता है वह विनाश से मौत को तैर कर असंभूति से अमृत पान करता है"। अब बतलाइये यह बात कैसे बनेगी "जानता तो है वह संभूति को और अमृत पान करता है असंभूति से।" अतः आपका अर्थ क़तई ग़लत है। वास्तव में इस मन्त्र में असंभूति के स्थान में उसका पर्यायवाची शब्द "विनाश" आया है। जिसको आपने समझा नहीं। यहाँ बिनाश का अर्थ

नाशवान् नहीं अपितु "विनश्यन्ति अदृश्याः पदार्थाः भवन्ति यस्मिन् स विनाशः । नित्या प्रकृति असंभूति इस मन्त्र का ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेद उभय ँ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्या अमृतमश्नुते ॥

यजु० ४० । ११ ।

भाषार्थ—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् (संभूतिम्) जिसमें सब पदार्थ उत्पन्न होते उस कार्य रूप सृष्टि और उसके गुण कर्म स्वभावों को तथा (विनाशम्) जिसमें पदार्थ नष्ट होते उस कारण रूप जगत् और उसके गुण कर्म स्वभावों को एक साथ दोनों उन कार्य और कारण स्वरूपों को जानता है वह विद्वान् (विनाशेन) नित्य स्वरूप जाने हुए कारण के साथ शरीर छूटने के दुःख से पार होकर (संभूत्या) शरीर इन्द्रिय और अन्तः-करण रूप उत्पन्न हुई कार्यरूप धर्म में प्रवृत्त करानेवाली सृष्टि के साथ मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ॥११॥ आशा है कि आप इस प्रकरण को भली-भाँति समझने का यत्न करेंगे ।

———

शिवलिंग पूजा

(१३३) प्रश्न—वेद ब्रह्म को संसार का "अभिन्ननिमित्तो-पादानकारण" मानता है । यजुर्वेद अध्याय १६ और अथर्ववेद काण्ड ११ में शंकर को ब्रह्म तथा सर्व स्वरूप कहा है । शंकर की वे अष्ट मूर्तियां प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी हैं । इन ही अष्ट मूर्तियों में शंकर का पूजन होता है । पृ० २०३ पं० १२ ।

उत्तर—वेद ब्रह्म को संसार का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" नहीं मानता। अपितु वेद "द्वासुपर्णा" इत्यादि अनेकों मन्त्रों से ईश्वर जीव तथा प्रकृति को अनादि वर्णन करता है। इन तीनों में से प्रकृति संसार का उपादान कारण है। ईश्वर निमित्त कारण तथा जीव साधारण कारण है। यजुर्वेद अध्याय १६ तथा अथर्ववेद काण्ड ११ में रुद्र शब्द से दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाले ईश्वर, राजा, सभापति, सेनापति, तथा ४४ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण करने वाले ब्रह्मचारियों और पाँच प्राण पाँच उपप्राण ग्यारहवां मन इन ग्यारह का भी वर्णन आता है। और शंकर नाम से भी कल्याणकारी परमेश्वर का ही वर्णन वेदों में मिलता है। किन्तु सती और पार्वती के पति गणेश तथा कार्तिकेय के पिता भस्मधारी नर-मुण्डमालाधारी, भस्मभूषण भूषित, वृषारोही, सर्पकण्ठ, नटवर, नृत्यप्रिय नन्दा वेश्यागामी, अनुसूया धर्मनाशक, हस्ते लिंगधृक्, व्यभिचारप्रवर्तक महादेव नामक पौराणिक व्यक्ति का वर्णन चारों वेदों में कतई नहीं है। और न ही वेदों में कहीं शंकर को सर्व स्वरूप कहा गया है। महतत्त्व अहंकार आकाश, वायु इत्यादि यह प्रकृति के ही रूपान्तर हैं। ब्रह्म के नहीं हैं। इसी लिये वेद ने "अंधतम" इत्यादि मंत्र में परमात्मा के स्थान में प्रकृति की पूजा करने वाले को नरक गामी बतलाया है। अतः उपरोक्त प्रपञ्च सर्वथैव मिथ्या निर्मूल तथा वेदविरुद्ध होने से त्याज्य है।

(१३४) प्रश्न—जो मनुष्य अष्टक प्रकृति में इकट्ठा ही शंकर का पूजन करे उसके लिये ब्रह्माण्ड का पूजन है। इसका छोटा रूप ऋषियों ने शिवलिंग बनाया। शिवलिंगब्रह्माण्ड का नक़शा है। जैसे यह ब्रह्माण्ड ऊपर से नीचे तक और चारों

तरफ कुछ गोल होता है। इसी प्रकार शिव के लिंग की आकृति का वर्णन है। पृ० २०३ पं० २०।

उत्तर—चूँकि वेद ने ब्रह्म के स्थान में प्रकृति की पूजा को पाप वर्णन किया है और फिर प्रकृति के विकार ब्रह्माण्ड की पूजा तो महापाप और भयंकर नरक में जाने का साधन बतलाया है। इसलिये यह शिवलिंग वैदिक ऋषियों का बनाया हुआ ब्रह्माण्ड का छोटा रूप नहीं है। और न ही शिवलिंग ब्रह्माण्ड का नक़शा है। और न ही ब्रह्माण्ड की शिवलिंग से शकल मिलती है। क्योंकि ब्रह्माण्ड की शकल आपने स्वयं ही पृ० १५५ पं० १४ में बतलाई है कि "मटर या गेंद की शकल का ब्रह्माण्ड है" और शिवलिंग की शकल गोल-गोल लम्बी मूसल के समान है। और न ही शिवलिंग का इस प्रकार से पुराणों में वर्णन मौजूद है। पुराणों के पढ़ने से पता लगता है कि शिवालयों में जो नीचे गोल दाइरे की शकल है वह पार्वती की योनि तथा जो बीच में गोल मूसल सा गड़ा हुआ है वह शिवलिंग की अर्थात् दोनों के मूत्रेन्द्रिय की आकृति अर्थात् मूर्ति है। इसके पूर्ण ज्ञानार्थ हम नीचे शिवपुराण का पूरा प्रमाण उपस्थित करते हैं। पढ़िये—

———

शिवलिंग की स्थापना

दारुनाम वनं श्रेष्ठं तत्रासन्नृषिसत्तमाः।
शिवभक्ताः सदा नित्यं शिवध्यान परायणाः ॥ ६ ॥
ते कदाचिद्वने याताः समिधा हरणाय च।
सर्वे द्विजर्षभाःशैवाः शिवध्यान परायणाः ॥ ८ ॥

एतस्मिन्नंतरे साक्षाच्छंकरो नीललोहितः ।
विरूपं च समास्थाय परीक्षार्थं समागतः ॥ ९ ॥
दिगम्बरोऽति तेजस्वी भूतिभूषण भूषितः ।
सचेष्टां सकटाक्षांच हस्ते लिंगं विधारयन् ॥ १० ॥
मनसा च प्रियं तेषां कर्तुं वै वनवासिनाम् ।
जगाम तद्वनंप्रीत्या भक्तप्रीतो हरः स्वयम् ॥ ११ ॥
तं दृष्ट्वा ऋषिपत्न्यस्ताः परंत्रासमुपागताः ।
विह्वला विस्मिताश्चान्याः समाजग्मुस्तथा पुनः ॥ १२ ॥
आलिलिंगुस्तथा चान्याः करंधृत्वा तथा पराः ।
परस्परंतु संघर्षात्संमग्नास्ताः स्त्रियस्तदा ॥ १३ ॥
एतस्मिन्नेव सये ऋमषिवर्याः समागमन् ।
विरुद्धं तं च ते दृष्ट्वा दुःखिताः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ १४ ॥
तदा दुःखमनुप्राप्ताः कोऽयंकोऽयं तथा ब्रुवन् ।
समस्ता ऋषयस्ते वै शिवमाया विमोहिताः ॥ १५ ॥
यदा च नोक्तवान् किंचित्सोऽवधूतो दिगम्बरः ।
ऊचुस्तं पुरुषं भीमं तदा ते परमर्षयः ॥ १६ ॥
त्वया विरुद्धं क्रियते वेद मार्ग विलोपि यत् ।
ततस्त्वदीयं तल्लिंगं पततां पृथिवी तले ॥ १७ ॥
इत्युक्ते तु तदा तैश्च लिंगंच पतिते क्षणात् ।
अवधूतस्य तस्याशु शिवस्याद्भुतरूपिणः ॥ १८ ॥
तल्लिंगं चाग्निवत्सर्वं यद्ददाह पुरः स्थितम् ।
यत्र यत्र च तद्याति तत्र तत्र दहेत्पुनः ॥ १९ ॥
पाताले च गतं तच्च स्वर्गे चापि तथैवच ।
भूमौ सर्वत्र तद्यातं न कुत्रापि स्थिरं हि तत् ॥ २० ॥
लोकाश्च व्याकुला जाता ऋषयस्तेऽति दुःखिताः ॥ २१ ॥

दुःखिता मिलिताः शीघ्रं ब्रह्माणं शरणं ययुः ॥ २२ ॥
मुनीशांस्तांस्तदा ब्रह्मा स्वयं प्रोवाच वै तदा ॥ ३१ ॥
आराध्य गिरिजां देवीं प्रार्थयन्तु सुराः शिवम् ।
योनिरूपा भवेच्चेद्वै तदा तत्स्थिरतां व्रजेत् ॥ ३२ ॥
पूजितः परया भक्त्या प्रार्थितः शंकर स्तथा ।
सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा तानुवाच महेश्वरः ॥ ४४ ॥
हे देवा ऋषयः सर्वे मद्वचः शृणुतादरात् ।
योनि रूपेण मल्लिंगं धृतं चेत्स्यात्तदा सुखम् ॥ ४५ ॥
पार्वतीं च विना नान्या लिंगं धारयितुं क्षमा ।
तया धृतं च मल्लिंगं द्रुत शान्ति गमिष्यति ॥ ४६ ॥
प्रसन्नां गिरिजां कृत्वा वृषभध्वजमेव च ।
पूर्वोक्तं च विधिं कृत्वा स्थापितं लिंगमुत्तमम् ॥ ४८ ॥

कोटिरुद्र संहिता ४ अध्याय १२ ।

भाषार्थ—दारु नाम का एक वन था. वहां पर सत्पुरुष लोग रहते थे, जो शिव के भक्त थे, तथा नित्यप्रति शिव का ध्यान किया करते थे ॥६॥ वे कभी लकड़ियाँ चुनने के लिये सबके सब श्रेष्ठ ब्राह्मण, शिव के भक्त, तथा शिव का ध्यान करनेवाले थे ॥८॥ इतने में साक्षात् महादेव जो विकट रूप धारण कर उनकी परीक्षा के निमित्त आ पहुँचे ॥ ९ ॥ नंगे अति तेजस्वी विभूति भूषण से शोभायमान, कामियों के समान दुष्ट चेष्टा करते हुए, हाथ में लिंग धारण करके ॥१०॥ मन से उन वनवासियों का भला करने के लिये भक्तों पर प्रसन्न होकर शिव जी स्वयं प्रीति से उस वन में गये ॥११॥ उसको देखकर ऋषियों की पत्नियाँ अत्यन्त भयभीत हो गईं, व्याकुल तथा हैरान हुईं, कई वापस आ गईं ॥१२॥ कई आलिंगन करने लगीं, कई ने हाथ में धारण कर लिया

तथा परस्पर के संघर्ष से वे स्त्रियाँ मग्न हो गईं ॥ १३ ॥ ऋ
ही ऋषि महात्मा आ गये । इस प्रकार के विरुद्ध का
देखकर वे दुःखी हुए । क्रोध से मूर्छित होगये ॥१४। तब
को प्राप्त हुए कहने लगे—ये कौन है, ये कौन है ? वे सब
ऋषि शिव की माया से मोहित हो गये ॥ १५ ॥ जब उस
अवधूत ने कुछ भी उत्तर न दिया, तब वे परम ऋषि उस
पुरुष को यों कहने लगे ॥१५॥ तुम जो यह वेद के मार्ग को
करने वाला विरुद्ध काम करते हो इसलिये तुम्हारा यह
पृथिवी पर गिर पड़े ॥ १७ ॥ उनके इस प्रकार कहने पर
अद्भुत रूप धारी अवधूत शिव का लिंग उसी समय गिर
॥ १८ ॥ उस लिंग ने सब कुछ जो आगे आया अग्नि की
जला दिया। जहाँ जहाँ वह जाता था वहाँ वहाँ सब कुछ
देता था ॥१९॥ वह पाताल में भी गया, वह स्वर्ग में भी
वह भूमि में सब जगह गया किन्तु वह कहीं भी स्थिर
हुआ ॥२०॥ सारे लोक-लोकान्तर व्याकुल हो गये तथा वे
अति दुखित हुए ॥२१॥ वे दुखी हुए सब मिलकर ब्रह्मा के
गये ॥२२॥ तब ब्रह्मा उन ऋषियों को स्वयं कहने लगे ॥३
देवताओ ! पार्वती की आराधना करके शिव की प्रार्थना
यदि पार्वती योनि रूप हो जावे तो तब वह लिंग स्थिरता
प्राप्त हो जावेगा ॥३२॥ तब उन ऋषियों ने परम भक्ति से
की प्रार्थना और पूजा की । तब अति प्रसन्न होकर महादेव
उनसे बोले ॥४४॥ हे देवता और ऋषि लोगो ! आप सब
बातको आदर से सुनें । यदि मेरा लिंग योनिरूप से धारण
जावे तब शान्ति हो सकती है ॥ ४५ ॥ मेरे लिंग को पार्वती

बिना और कोई धारण नहीं कर सकता। उससे धारण किया हुआ मेरा लिंग शीघ्र ही शान्ति को प्राप्त हो जावेगा ॥ ४६ ॥ पार्वती तथा शिव को प्रसन्न करके और पूर्वोक्त विधि के अनुसार वह उत्तम लिंग स्थापित किया गया ॥४८॥

अब इंसाफ़ से बतलावें कि क्या यह ब्रह्माण्ड का नक़्शा है या पार्वती की योनि में शिव का लिंग स्थापित किया हुआ है।

(१३५) प्रश्न—लौकिक ग्रन्थों में योनि और लिंग इन शब्दों से स्त्री पुरुष की मूत्रेन्द्रिय का भी बोध होता है। किन्तु वेद पुराण और दर्शन इन में इन अर्थों का बोध नहीं होता। पृ० २०३ पं० २८।

उत्तर—यह ठीक है कि लिंग शब्द के और योनि शब्द के मूत्रेन्द्रिय से भिन्न और अर्थ भी हैं परन्तु यह प्रतिज्ञा भी निर्मूल है कि पुराण आदिकों में लिंग योनि शब्द के मूत्रेन्द्रिय अर्थ होते ही नहीं। हाँ यह ठीक है कि अर्थ प्रकरणानुसार लिये जाने चाहियें। जैसे (नं० १३४) में लिखी हुई कथा में महादेव जी ने जो लिंग को हाथ में पकड़ रक्खा था और ऋषियों के शाप से कट कर गिर पड़ा। यहाँ लिंग से मूत्र इन्द्रिय ही मुराद है और पार्वती की योनि में स्थिर होना, यहाँ योनि से मुराद भी मूत्रेन्द्रिय ही है। क्योंकि महादेव का मादरज़ाद नंगा होना, महादेव जी का नापाक हरकत करना ऋषियों का उसको इख़लाक़ के बरख़िलाफ़ देखना। और ऋषियों का यह कहना कि तू जो इख़लाक़ के विरुद्ध कर रहा है यह तेरा काम वेदमार्ग को लोप करने वाला है। इत्यादि बातों के कारण यहाँ लिंग का अर्थ मूत्रेन्द्रिय के सिवाय और

कुछ हो ही नहीं सकता तथा महादेव का यह कहना कि मेरे लिंग को पार्वती के बिना और कोई भी धारण नहीं कर सकती इस से साबित है कि इस कथा में योनि के अर्थ भी पार्वती की मूत्रेन्द्रिय से ही है। इसके अतिरिक्त हम और प्रमाण उपस्थित करते हैं।

लिंग—

दक्षिणावर्तलिंगश्चनरो वै पुत्रमान् भवेत्।
वामावर्तें तथा लिंगेनरः कन्या प्रसूयते ॥ १ ॥
स्थूलैः शिरालैर्विषमैर्लिंगै र्दारिद्र्यमादिशेत्।
ऋजुभिर्वर्तुलाकारैः पुरुषाः पुत्रभागिनः ॥ २ ॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० २५)

कटु तैलं भल्लातकं वृहतीफलदाडिमम् ॥ १७ ॥
कल्कैः साधितैर्लिप्तं लिंगं तेन विवर्द्धते ॥ १८ ॥
(गरुड़० आचार० अ० १७६)

कर्पूरं देवदारुं च मधुना सहयोजयेत्।
लिंगलेपाच्च तेनैव वशी कुर्यात् स्त्रियं किल ॥ २ ॥
(गरु० अचार० अ० १९०)

सैंधवं च महादेव पारावतमलं मधु।
एभिर्लिप्तेतु लिंगे वै कामिनीवशकृद्भवेत् ॥ १६ ॥
(गरु० आचार० अ० १८५)

ब्रह्मचर्य्ये ऽपिवर्तन्त्याः साध्व्या ह्यपि च श्रूयते।
हृद्यंहि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः संक्लिद्यते स्त्रियाः ॥ २८ ॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ७२)

सुस्नातं पुरुषं दृष्ट्वा सुगंधं मलवर्जितम्।
योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रीणां हृते पात्रादिवोदकम् ॥ ३१ ॥
(शिव० उमा० अ० २४)

पुलकांकित सर्वांगं धर्म्म कर्म समन्वितम् ।
बभूव काममत्ताया योनौ कंडूयनं जलम् ॥ २५ ॥
(ब्रह्मवैवर्त खं ४ अ० २३)

ततो जलाशयात् सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः ।
पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीत कर्षिताः ॥ १७ ॥
(भागवत० स्कं० १० अ० २२)

कर्पूर मदन फल मधुकैः पूरितः शिवः ।
योनिः शुभास्याद् वृद्धा या युवत्याः किंपुनर्हर ॥ १६ ॥
(गरु० आचार० अ० २०२)

नमस्ते ईश वरदाय आकर्षिणि विकर्षिणि मुग्धे स्वाहा इति ।
योनिलिंगस्य तैलेन शंकरम्लक्षणात्ततः ॥ १६ ॥
(गरु० आचार० अ० १८४)

प्रजग्मुर्गोपिका नग्ना योनिमाच्छाद्यपाणिना ॥ ८३ ॥
(ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० २७)

भाषार्थ—जिस आदमी का लिंग दायें तरफ झुका हुआ हो वह पुत्र वाला होता है। जिसका बायें तरफ को झुका हुआ लिंग हो उस के कन्या पैदा होती हैं ॥ १ ॥ मोटे रगों वाले टेढ़े लिंगों से दरिद्रता होती है। जिन पुरुषों के लिंग सीधे गोल होंवे, पुत्रों के भागी होते हैं ॥ २ ॥ (भविष्य)

कडवा तेल भलावा बहेडा तथा अनार इनकी चटनी से लेप करने से लिंग बढ़ता है ॥ १८ ॥ (गरुड़)

काफूर देवदारु को शहद के साथ मिलाकर लिंग के लेप करे तो स्त्री वश में हो जाती है ॥ २ ॥ (गरुड़)

हे महादेव ! नमक और कबूतर की बीठ शहद में मिलाकर यदि लिंग पर लेप करे तो स्त्री वश में हो जाती है ॥ १६ ॥ (गरुड़)

ब्रह्मचर्य में रहती हुई भलीमानस स्त्री की भी सुन्द
पुरुष को देखकर योनि टपकने लग जाती है ॥ २८ ॥ (भविष्य

स्नान किये हुए निर्मल सुगंधित पुरुष को देखकर स्त्रि
की योनि ऐसे टपकने लगती है जैसे मशक में से पानी ॥ ३१
(शिव)

रोमांचित हुई धर्म युक्त स्त्री के भी काम में मत्त होने प
योनि में खुजली तथा जल टपकने लगता है। २५। (ब्रह्मवैवर्त

तब तालाब से सारी स्त्रियाँ जाड़े से काँपती हुई दुख
दोनों हाथों से योनि को ढक कर बाहर निकल आईं ॥१
(भागवत

हे शिव ! यदि योनि को काफूर मैनफल तथा शहद से भ
दिया जावे तो बूढी स्त्री की भी बढ़िया हो जाती है, जवान क
तो कहना ही क्या ॥ १६ ॥ (गरुड़)

नमस्ते इत्यादि मन्त्र को पढ़ कर तेल से योनि और लिं
को मालिश करे ॥ १६ ॥ (गरुड़)

योनि को हाथ से ढक कर सब गोपियां चलीं ॥ ८३
(ब्रह्मवैव

हम बलपूर्वक घोषणा करते हैं कि इन स्थानों में लिं
तथा योनि के अर्थ सिवाय मूत्रेन्द्रिय के और कुछ हो ही नहीं
सकते। अतः आपकी उपरोक्त प्रतिज्ञा सर्वथा निर्मूल त
असत्य है।

(१३६) प्रश्न—"लिंगानांचक्रमंवक्ष्ये शिव० विद्येश्वर० अ० १
इत्यादि से शिव पुराण में बतलाया है कि शंकर का सूक्ष्म
लिंग प्रणव (ओंकार) है तथा स्थूललिंग यह समस्तब्रह्मांड
फिर प्रकृति, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी और पाषाण

ये शंकर के अनेक लिंग हैं। पृथिवी विकारलिंग, स्वयंभूलिंग १ विंदुलिंग २ प्रतिष्ठा किये लिंग ३ चरलिंग ४ गुरुलिंग ५ बस इतने ही लिंग के पूजने की विधि है तथा इतने ही लिंग पूजे जाते हैं। पृ० २०४ पं० ४।

उत्तर—यदि आपका यह अभिप्राय हो कि ओंकार परमात्मा का वाचक होने से तथा आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, पाषाणादि समस्त ब्रह्माण्ड अपने कर्ता ईश्वर की महिमा का वर्णन प्रकाश करने से परमात्मा की महिमा के प्रकाशक होने से लिंग कहाते हैं। तो इन के विषय में तो आर्यसमाज के प्रश्न ही नहीं हैं। हां, ये जो आप पाँच प्रकार के लिंगों की पूजा बतला रहे हैं। ये वही शिवालयों में गड़े हुए लिंगों की तरफ आपका संकेत है या ये भी कुछ और ही हैं। यदि ये कुछ और प्रकार के हैं तो आपको इन की व्याख्या करनी चाहिये थी। और यदि ये पाँच भी उन्हीं में से हैं जोकि शिवालयों में गड़े हुए हैं। तो फिर आप ग़लत कह रहे हैं। क्योंकि उनकी उत्पत्ति पुराणों ने और ही प्रकार से वर्णन की है। शिवपुराण का एक वर्णन तो हम (नं० १३४) में बयान कर आये हैं। दूसरी कथा जो लिंगों की पैदाइश के विषय में आती है, वह इस प्रकार से है—

देवाद्याऊचुः

भूत्वातु दक्ष कन्या त्वं शंकरं परिमोहय।
अस्माकं वाँछितश्चैतत् कुरु सिद्धिं सदा शिवे॥ १॥
एतत् श्रुत्वा वचस्तेषां निरीक्ष्य कमलासनम्।
उवाच विस्मयाविष्टा कालिका जगदीश्वरी॥ २॥

देव्युवाच

शंभुरद्य तनोबाल: किं मां संतोषयिष्यति ।
मम योग्यं पुमांसं तु अन्यं वै परिकल्पय ॥ ३ ॥

ब्रह्मोवाच

शंभुः सर्वगुरुर्देवो ह्यस्माकं परमेश्वरः ।
महासत्वो महातेजाः स ते तोषं करिष्यति ॥ ४ ॥
शंभुतुल्यः पुमान् नास्ति कदाचिदपि कुत्रचित् ।
इत्युक्ता ब्रह्मणा देवी बाढमित्याह चेश्वरी ॥ ५ ॥
ततो विवाहं निर्वर्त्य कृतकृत्या यथागताः ।
गताः सर्वे महेशोऽपि सत्या सह तदा गृहम् ॥ ६ ॥
जगाम रेमे सत्याच चिरं निर्भर मानसः ।
अथ काले कदाचित्तु सत्या सहमहेश्वरः ॥ ७ ॥
रेमे न शेके तं सोढुं सती श्रान्ताभवत्तदा ।
उवाच दीनया वाचा देवदेवं जगद् गुरुम् ॥ ८ ॥
भगवन्नहि शक्नोमि तवभारं सुदुः सहम् ।
क्षमस्व मां महादेव कृपांकुरु जगत्पते ॥ ९ ॥
निशम्य वचनं तस्या भगवान् वृषभध्वजः ।
निर्भरं रमणं चक्रे गाढं निर्दयमानसः ॥ १० ॥
कृत्वा संपूर्णरमणं सती च त्यक्त मैथुना ।
उत्थानाय मनश्चक्रे उभयोस्तेज उत्तमम् ॥ ११ ॥
पपातधरणी पृष्ठे तै र्व्याप्तमखिलं जगत् ।
पाताले भूतले स्वर्गे शिवलिंगास्तदाभवन् ॥ १२ ॥
तेन भूता भविष्याश्च शिवलिंगाः सयोनयः ।
यत्रलिंगं तत्र योनिर्यत्र योनिस्ततः शिवः ॥ १३ ॥

उभयोश्चैव तेजोभिः शिव लिंगं व्यजायत ।। १४ ।।
इति शिवलिंगोत्पत्तिकथनमिति नारदा पंच रात्रान्तर्गत
तृतीय रात्रे प्रथमाध्याये नारद ब्रह्मा संवादः ।।
शब्द कल्पद्रुमः कोषः चतुर्थ कांड प्रथम द्वितीय खंडो ।
पृष्ठ २२२ लिंग शब्द पर ।

भाषार्थ—देवता इकट्ठे होकर ब्रह्मा के पास गये कि हम तो विवाहित हैं किंतु महादेव अविवाहित है । उसका भी विवाह कराना चाहिये, यह सोच कर सब देवता ब्रह्मा तथा विष्णु को साथ लेकर दुर्गा के पास गये और दुर्गा से प्रार्थना की कि आप दक्ष की कन्या बनकर महादेव जी को मोहित करें, हे सदा शिवे यही हमारी इच्छा है। आप सिद्ध कीजिये ।।१।। उनकी यह बात सुनकर ब्रह्मा की तरफ देखते हुए हैरान होकर जगदीश्वरी काली दुर्गा बोली ।।२।। यह शंभु आज का बालक क्या मुझे संतुष्ट कर सकेगा । मेरे योग्य कोई और आदमी तजवीज़ करें ।।३।। ब्रह्मा जी बोले कि यह शंभुदेव सबके गुरु तथा हमारे स्वामी हैं । बड़े बलवान् और वीर्य्यवान् हैं यह आप की संतुष्टि करदेंगे ।।४।। शंभु के तुल्य कोई आदमी नहीं है। न ही कोई कहीं इनके तुल्य होगा । ब्रह्मा की यह बात सुनकर देवी बोली कि बहुत अच्छा ।।५।। तब देवी दक्ष के यहां सती रूप में पैदा हुई, तब देवता लोग विवाह से निवृत्त होकर कृतार्थ होगये और अपने घर चले गये महादेव जी भी सती के साथ अपने घर चले गये ।।६।। और सती के साथ रमण करके मनभर प्रसन्न हुए कुछ दिनों के पीछे कभी महादेव जी सती के साथ ।।७।। रमण करने लगे तो सती थक गई और महादेव जी के बोझ को सह न सकी तब बड़ी

दीन वाणी के साथ जगत् के गुरु महादेव को कहने लगी ॥८॥ हे भगवन् मैं आपके दुःसह भार को सह नहीं सकती। हे महादेव जी मुझे क्षमा करो; हे जगत्पते मेरे पर कृपा करो ॥९॥ भगवान् महादेव ने उसके वचन को सुनकर खूब पेट भरकर निर्दयता से मैथुन किया ॥१०॥ संपूर्ण मैथुन करके छोड़ी हुई सती ने उठने की इच्छा की, तब दोनों का उत्तम वीर्य ॥११॥ पृथिवी पर गिर पड़ा और उस वीर्य से सारा जगत् व्याप्त होगया। और उस से पृथिवी स्वर्ग पाताल में योनियों समेत शिवलिंग पैदा होगये ॥१२॥ जितने लिंग हो चुके, जितने आगे को होंगे वे योनियों समेत इस तेज से ही पैदा हुए तथा होंगे। जहां लिंग होगा वहाँ योनि अवश्य होगी और जहां, योनि होगी वहां शिव अवश्य होंगे ॥१३॥ दोनों के तेज से ही शिवलिंग पैदा हुआ ॥१४॥ अब आप बतलावें कि लोगों की पैदाइश के बारे में आपका लेख ठीक है या पुराणों का। और यहां पर लिंग तथा योनि मूत्रेन्द्रिय का नाम है या किसी और वस्तु का। अब आपका लेख "मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त" के सदृश ही है ॥

(१३७) प्रश्न—लिंग के चारों तरफ जलहरी होती है। यह जल को बाहर नहीं जाने देती इस से इसका नाम जलहरी है। जलहरी का अपभ्रंश जलरुरी है। वह सप्तावरण का नक़्शा है। ब्रह्माण्ड के चारों तरफ सात आवरण रहते हैं। वह ब्रह्माण्ड की चीज़ को बाहर नहीं जाने देते। उनका ही नक़्शा यह जलहरी है यह बेद शास्त्रों का अभिप्राय है। पृ० २०५ पं० २७

उत्तर—कृपया वेद शास्त्रों को बदनाम और कलंकित न कीजिये। क्योंकि वेद शास्त्रों में शिवलिंग तथा जलहरी का

वर्णन है ही नहीं। तो फिर उनका अभिप्राय यह कैसे हो सकेगा। हां पुराणों में इसका वर्णन है। और पुराणों ने स्पष्ट रूप से बतलाया है कि लिंग और योनि मूत्रेन्द्रिय का नाम है। और उसी योनि की शकल जलहरी रूप में बना कर उसमें लिंग कायम किया गया है। आप हज़ार बनावटी बातें बनावें इस से इस बात पर परदा नहीं पड़ सकता। भला जो जल को बाहर जाने से रोकती है अर्थात् जल की रक्षा करती है। उसका नाम जलहरी अर्थात् जल को हरने वाली नाम क्यों हुआ। हां यह तो अर्थ हो सकता है कि जो लिंग के जल अर्थात् वीर्य को हर लेती है अतः जलहरी योनि का ही नाम है। जब लिंग ही ब्रह्माण्ड का नक़शा नहीं तो फिर जलहरी यानी योनि सप्तावरण का नक़शा कैसे होगा। अच्छा यह तो बतलावें कि शिवलिंग पर पानी डालने का क्या प्रयोजन है। अतः आपकी यह सारी ही कल्पना मिथ्या है। वास्तव में (नं० १३४) की कथा साफ़ बतला रही है कि शिव के लिंग को पार्वती की योनि में स्थापित किया गया। और उस योनि का नाम बाण रक्खा गया। देखिये —

गिरिजां योनि रूपां च बाणं स्थाप्य शुभं पुनः।
तत्र लिंगं च तत्स्थाप्यं पुनश्चैवाभि मन्त्रयेत् ॥ ३७ ॥

(शिव० कोटिरुद्र० अ० १२)

भाषार्थ—गिरजा योनि रूप को शुभ बाण (जलहरी) बना कर उस में लिंग को स्थापन करना चाहिये फिर उसका अभिमंत्रण करे ॥ ३७ ॥ इसके अतिरिक्त (नं० १६६) में भी वर्णन है कि शिव तथा सती के वीर्य से योनि समेत लिंग पैदा

हुए। इसे अधिक स्पष्ट करने के लिये हम एक कथा नीचे और देते हैं। ताकि आपकी भ्रांति दूर हो जावे। पढ़िये—

न शुश्रुम यदन्यस्य लिंगमभ्यर्चितं सुरैः ॥२२६॥
कस्यान्यस्य सुरैः सर्वै लिंगमुक्त्वामहेश्वरम्।
अर्च्यतेऽर्चितपूर्ववा ब्रूहि यद्यस्ति ते श्रुतिः ॥ २२७ ॥
यस्य ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वं चापि सहदेवतैः।
अर्चयेथाः सदा लिंगं तस्मात्श्रेष्ठतमोहिसः ॥ २२८ ॥
न पद्मांका न चक्रांका न वज्रांका यतः प्रजाः।
लिंगांका च भगांका च तस्मान्माहेश्वरी प्रजाः ॥ २२९ ॥
देव्याः कारण रूप भावजनिताः सर्वा भगांकाः स्त्रियो।
लिंगेनापि हरस्य सर्व पुरुषाः प्रत्यक्ष चिह्नाकृताः ॥
योऽन्यत्कारण मीश्वरात् प्रवदते देव्या च यन्नांकितम्।
त्रैलोक्ये स चरा-चरे स तु पुमान् वाह्यो भवेद्दुर्मतिः ॥२३०॥
पुंलिंगं सर्वमीशानं स्त्रीलिंगं विद्धि चाप्युमाम्।
द्वाभ्यां तनुभ्यां व्याप्तं हि चराचरमिदं जगत् ॥ २३१ ॥

(महाभारत अनुशा० अ० १४)

भाषार्थ—हमने यह नहीं सुना कि देवताओं ने किसी और के लिंग को पूजा हो ॥ २२६ ॥ महेश्वर को छोड़ कर दूसरे किस के लिंग को सब देवताओं ने पूर्व या अब पूजा हो कहिये, यदि आपने सुना हो ॥ २२७ ॥ जिस के लिंग को ब्रह्मा और विष्णु तथा आप सब देवताओं के साथ सदा पूजते हैं। इस लिये वह ही इष्टतम है ॥ २२८ ॥ जिस कारण से प्रजा न पद्म-चिह्न वाली है न चक्र चिह्न वाली और न वज्र चिह्न वाली है। अपितु सारी प्रजा लिंग तथा भग के चिह्न से अंकित है इसलिये सारी प्रजा महादेव की है ॥ २२९ ॥ देवी ने कारण रूप-भाव

से भग के चिह्न से अंकित सब स्त्रियाँ पैदा कीं। और सारे ही पुरुष प्रत्यक्ष में महादेव के लिंग से चिह्नित हैं। जो महादेव से भिन्न किसी और को कारण कहता है और जो देवी से अंकित नहीं हैं। वह पुरुष चराचर त्रिलोकी में बाहर करने के योग्य है क्योंकि वह बेवकूफ है॥ २३०॥ जितने पुँलिंग हैं वे सब महादेव हैं। तथा जो स्त्रीलिंग हैं वे सब पार्वती हैं। इन दोनों के शरीर से ही सारा जगत् व्याप्त है॥ २३१॥

अब तो आपको निश्चय हो गया होगा कि लिंग के चारों तरफ जो गोल दाइरा बना हुआ है वह केवल जलहरी ही नहीं है अपितु पार्वती की भग की तसवीर है।

१३८—(प्रश्न) इससे भिन्न लिंग जलहरी का जो कोई मन माना अर्थ करता है वह मिथ्या और अमान्य है।

उत्तर—पुराणों के इन प्रकरणों में लिंग तथा योनि का मूत्रेन्द्रिय ही अर्थ है। हम कितने प्रमाण दे चुके हैं। और भी देते हैं। पढ़ियेगा—

नित्यं च ब्रह्मचर्येण लिंगमस्य यदास्थितम्।
महयन्त्यस्य लोकाश्च प्रियं ह्येतन्महात्मनः॥१५॥
विग्रहं पूजयेद्यो वै लिंगं वापि महात्मनः।
लिंग पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते॥१६॥
ऋषयश्चापि देवाश्च गंधर्वाप्सरसस्तथा।
लिंग मेवार्चयन्ति स्म यत्तदूर्ध्वं समास्थितम्॥१७॥

महा० अनुशा० अ० १६१

भाषार्थ—जब इसका लिंग नित्य ब्रह्मचर्य से स्थित है और लोग उसको पूजते हैं, महात्मा को यही प्रिय है॥१५॥ जो

महात्मा के शरीर को पूजता है या महात्मा के लिंग को पूजता है वह बड़ी भारी सम्पत्ति को प्राप्त होता है ।।१६।। ऋषि और देवता गंधर्व और अप्सरायें उसी लिंग की पूजा करते हैं जो ऊपर को खड़ा है ।।१७।।

इस प्रमाण में लिंग का ब्रह्मचर्य से रहना तथा ऊपर को खड़ा हुआ ये दोनों विशेषण सिद्ध करते हैं कि जिस लिंग की पूजा होती है वह महादेव की मूत्र इन्द्रिय ही है, कोई और वस्तु नहीं है। जब लिंग नाम मूत्र इन्द्रिय का है तो इसके सहचार्य से योनि नाम भी पार्वती की मूत्रेन्द्रिय का ही है और उसी की पौराणिक लोग पूजा करते हैं। हम इस बारे में एक अन्य प्रमाण और देते हैं। जिससे क़तई आपकी तसल्ली हो जावेगी देखिये—

कदाचिद्भगवानत्रिर्गंगा कूलेऽनसूयया ।।६७।।
तस्य भावं समालोक्यत्रयो देवाः सनातनाः ।
अनसूयां तस्य पत्नीं समागम्यवचोऽ ब्रुवन् ।।७०।।
लिंग हस्तः स्वयं रुद्रो विष्णुस्तद्रसवर्द्धनः ।
ब्रह्मा काम ब्रह्मलोपः स्थितस्तस्यात्रशंगतः ।।
रतिं देहि मदाघूर्णे नोचेत्प्राणांस्त्यजाम्यहम् ।।७१।।
मोहितास्तत्रतेदेवा गृहीत्वा तां बलात्तदा ।
मैथुनाय समुद्योगं चक्रुर्माया विमोहिताः ।।७३।।
तदा क्रुद्धा सती सा वै तान्शशाप मुनिप्रिया ।।७४।।
महादेवस्य वै लिंगं ब्रह्मणोऽस्यमहाशिरः ।
चरणौ वासुदेवस्य पूजनीया नरैः सदा ।
भविष्यन्ति सुरश्रेष्ठा उपहासोऽयमुत्तमः ।।७५।।

भविष्य० प्रति० खं० ४ अ० १

भावार्थ—कभी भगवान् अत्रि अपनी धर्मपत्नी अनसूया के साथ गंगा के किनारे रहते थे ॥ ६७ ॥ उसके भाव को देखकर सनातनधर्म के तीनों देवता उसकी पत्नी अनसूया को यह बात कहने लगे ॥ ७० ॥ हाथ में लिंग लिये हुए महादेव जो और विष्णु उसके रस को बढ़ाते हुए तथा ब्रह्मा जी कामवश वेद का लोप करते हुए उस अनसूया के वश में होकर स्थित हो गये। हे मस्त आँखोंवाली ! हमें जवानी का दान कर, वरना हम प्राण छोड़ते हैं ॥ ७१ ॥ मोहित होकर वहाँ वे देवता अनसूया को जबरन पकड़कर मैथुन करने के लिये यत्न करने लगे ॥ ७३ ॥ उस मुनिपत्नी ने जब क्रोध में आकर उनको शाप दिया ॥ ७४ ॥ कि महादेव जी का लिंग ब्रह्मा का सिर और विष्णु के चरण संसार में मनुष्यों से पूजे जावेंगे और हे देवताओ ! तुम्हारा उपहास होगा ॥ ७५ ॥ इस प्रमाण में सिर और पाओं के सहयोग से लिंग भी शरीर के अंग मूत्रेन्द्रिय का ही नाम है और वस्तु का नाम नहीं है।

पुराणों के इन तमाम प्रमाणों से साबित है कि शिवालयों में जो नीचे गोल आकार दाइरा है वह पार्वती की भग तथा जो गोल २ मूसल सा गड़ा हुआ है वह शिव का लिंग है और इन ही की पौराणिक लोग पूजा करते हैं।

(१३९) प्रश्न—स्वामी जी ने यह मजा किया कि पति के लिए उसकी स्त्री को पूज्या लिख दिया ॥ पृ० २१९ पं० २८।

उत्तर—आप पूजा शब्द के ग़लत अर्थ समझने के कारण भ्रम में पड़े हुए हैं। पूजा शब्द के अर्थ धूप दीप आरती उतारना

घंटा घड़ियाल शंख बजाना तथा परिक्रमा करना नहीं है। पू॰ शब्द शास्त्रों में तीन अर्थों में आता है (१) किसी चीज़ की मुनासिब इज्ज़त (२) किसी चीज़ का मुनासिब इस्तेमाल (३) किसी चीज़ की मुनासिब हिफाज़त॥ हम यह ज़बानी नहीं कहते अपितु प्रमाणों के आधार पर कहते हैं।

विवाह संस्कार में जब वर वधू के मकान पर पहुँचता है तो वधू तथा कार्य्य कर्ता आदि कहते हैं कि "साधु भवानास्तामर्चयिष्यामो भवन्तम्" आप आइये हम आप की पूजा करेंगे। वर उत्तर देता है "अर्चय" आप पूजा करें। अब क्या पूजा होती है। क्या वर की धूप दीप आरती उतारी जाती है या घंटा घड़ियाल शंख बजाया जाता है या उसकी परिक्रमा की जाती है। हर्गिज़ नहीं। अपितु उसे बैठने के लिये आसन पाँओं तथा मुख धोने के लिये, जल पीने के लिये लिये जल, तथा भोजनार्थ मधुपर्क और उसकी भेंटार्थ गौ दी जाती है। और इसी का नाम पूजा या मुनासिब सत्कार है।

पूजा किसने किसकी की

वशिष्ठ ने विश्वामित्र की

तमागतमभिप्रेक्ष्य वशिष्ठः श्रेष्ठवागृषिः।
विश्वामित्रं नर श्रेष्ठं प्रतिजग्राह पूजया॥

महा॰ आदि॰ अ॰ १७७ श्लो॰

ब्राह्मणों ने विदुर की

ततः प्रायाद्विदुरो ऽश्वैरुदारैः॥ १॥
प्रविवेश महाबुद्धिः पूज्यमानो द्विजातिभिः॥ २॥

महा॰ सभा॰ अ॰ ५

ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर की

ऐते चान्ये च बहवो ब्राह्मणाः शंसितव्रताः ।
अजातशत्रुमानर्चुः पुरंदरमिवर्षयः ॥ २५ ॥

महा० वन० अ० २६

ब्राह्मणों ने अर्जुन की

स तथ्यं मम तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणो राजसत्तम ।
अपूजयत मां राजन् प्रीतिमांश्चाभवन्मयि ॥ १३ ॥

महा० वन० अ० १६७

ब्राह्मणों से कर्ण की

शुभे तिथौ मुहूर्ते च पूज्यमानो द्विजातिभिः ॥ २८ ॥

महा० वन० अ० २५२ ।

ब्राह्मणों ने बलराम की

प्रायाद्बलो राजन् पूज्यमानो द्विजातिभिः ।

महा० शल्य० अ० ३७ श्लो० ५७

ऋषियों ने राजा की

तं कार्मुकधरं दृष्ट्वा श्रमार्त्तं क्षुधितं तदा ।
समेत्य ऋषयस्तस्मिन् पूजां चक्रुर्यथा विधिः ॥ २ ॥

महा० शांति० अ० १२६ ।

तपस्वियों ने शूद्र की

तत्र कश्चित् समुत्साहं कृत्वा शूद्रो दयान्वितः ।
आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्च तपस्विभिः ॥ ११ ॥

महा० अनुशा० अ० १० ।

प्रत्येक ने शूद्र की

ज्यायांसमपि शीलेन विहीनं नैव पूजयेत् ।
अपि शूद्रं च धर्मज्ञं सद्वृत्तमपि पूजयेत् ॥ ४८ ॥

महा० अनुशा० अ० ४८ ।

ऋषियों ने राम की

सहस्त्वारान्नखान् सर्वान् यज्ञविघ्नान् रघुनन्दनः ।
ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा ॥ २४ ॥

बाल्मी० बाल० स० ३०

राम लक्ष्मण ने अहल्या की

राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा ।
स्मरन्तौ गौतमवचः प्रतिजग्राहसाहितौ ॥ १७ ॥

बाल्मी० बाल० स० ४९

गौतम अहल्या ने राम की

गौतमोऽपिमहातेजा अहल्या सहितः सुखी ।
रामं संपूज्य विधिवत्तपस्तेपे महातपाः ॥ २१ ॥

बाल्मी० बाल० स० ४९

इत्यादि अनेक स्थलों में छोटे बड़े इत्यादि सब के लिये यथा योग्य सत्कार के अर्थों में पूजा शब्द आता है। जैसे और सब के लिये आता है वैसे ही स्त्रियों के लिये भी यथा योग्य सत्कारार्थ पूजा शब्द आता है। देखिये—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ५५ ॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाक्रियाः ॥ ५६ ॥
तस्मादेताः सदा पूज्याः भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरै र्नित्यं सत्कारे षूत्सवेषु च ॥ ५९ ॥

मनु० अ० ३

इयं हि नः प्रिया भार्य्या प्राणेभ्योऽपिगरीयसी ।
मातेव परिपाल्या च पूज्या ज्येष्ठेव च स्वसा ॥ १३ ॥

महा० विराट० अ० ३

भाषार्थ—पिता भाई पति तथा देवरादि को चाहिये कि यदि वह कल्याण की इच्छा रखते हैं तो वह इन स्त्रियों की पूजा करें तथा उन को भूषित करें ॥ ५५ ॥ जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता सन्तान होती है। जहाँ इन की पूजा नहीं होती वहाँ सारे ही काम निष्फल होते हैं ॥ ५६ ॥ इसलिये कल्याण चाहने वालों को हमेशा सत्कार, उत्सवों में इन की गहने कपड़ों तथा खाने की चीज़ों से पूजा करनी चाहिये ॥५६॥ इसकी पुष्टि करते हुए युधिष्ठिर कहते हैं। यह हमारी प्रिय पत्नी जो प्राणों से भी प्यारी है माता के समान पालन करने के योग्य है। तथा बड़ी बहन के समान पूजने के क़ाबिल है ॥ १३ ॥

यह तो रही स्त्री की पूजा अर्थात् यथा योग्य सत्कार की बात, हाँ यदि आप को पत्नी के पाओं पड़ने का शौक़ है तो उसकी पुष्टि में आप को दशरथ का प्रमाण याद रखना चाहिये।

अपि ते चरणौ मूद्र्ध्ना स्पर्शाम्येव प्रसीद मे ॥ १५ ॥
अंजलिं कुर्मि कैकेयि पादौ चापि स्पृशामि ते ॥ ३६ ॥

बाल्मी० अयो० स० १२।

भषार्थ—यह मैं तेरे पैरों को मुख से स्पर्श करता हूं मेरे पर कृपा करो ॥ १५ ॥ हे कैकेयि ! मैं हाथ जोड़ता हूँ और तेरे पाओं को छूता हूँ।

आशा है अब आपको पत्नी के पूज्या होने में संदेह न रहेगा

———

किन्तु हम आप को पूजा शब्द के और भी विचित्र अर्थ बताते जावें तो और भी आप की तृप्ति हो जावेगी। शिव पुराण में देखें जब गणेश जी चौकीदारी का काम कर रहे थे तो महादेव जी ने विष्णु को गणेश के समझाने के लिए भेजा। तब-

अथ शक्तिसुतो वीरो वीर गत्या स्वयष्टितः।
प्रथमं पूजया मास विष्णुं सर्व सुखावहम् ॥ ११ ॥

शिव० रुद्र० कुमार० अ० १६।

अर्थ—पार्वती के वीर गणेश ने अपनी लाठी से प्रथम हो सुखकारी विष्णु की पूजा की ॥ ११ ॥

कहिये महाराज! यहां पूजा के अर्थ मरम्मत करना है या धूप दीप आरती उतारना और परिक्रमा करना। अतः पूजा के अर्थ यथा योग्य वर्ताव के हैं। जोकि प्रत्येक स्त्री पुरुष को परस्पर करना चाहिये।

(१४०) प्रश्न—जड़ शरीर के ज़रिये से जैसे औरत का व्यापक आत्मा प्रसन्न होकर आर्य्य समाजियों को मोक्ष देता है। वैसे ही जड़ मूर्ति के ज़रिये से उस में व्यापक ईश्वर प्रसन्न होकर बैदिक लोगों को मोक्ष देता है॥ पृ० २२० पं २५

उत्तर—औरत का जीवात्मा अपने पुण्य, पापों, का फल भोगने के लिये शरीर को धारण करता है। और उस शरीर में रहते हुए इन्द्रियों के द्वारा सुख दुख को महसूस करता है। किंतु ईश्वर न तो पुण्य, पाप करता है और न ही पुण्य पाप का फल भोगने को शरीर धारण करता है। और न ही वह व्यापक होते हुए मूर्ति आदि व्याप्य वस्तुओं के द्वारा मनुष्य शरीर वत् सुख वा दुख महसूस करता है। यदि परमात्मा व्यापक होने से मूर्ति के द्वारा प्रसन्न हो जाता है तो

क्या लोहे पीतल को कूटने से, पहाड़ पत्थर तोड़ने से, कुंआ खोदने से, लकड़ी फाड़ने आदि कर्मों से नाराज़ होकर पौराणिकों को नरक में अवश्य भेजेगा। स्त्री का आत्मा आर्य्य समाजियों को मोक्ष नहीं दे सकता क्योंकि मोक्ष का दाता निराकार व्यापक परमात्मा है। हां स्त्री का ग्रहण गृहस्थ मोक्ष में साधन अवश्य है। जैसा कि मनु ने लिखा है कि—

स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखंचेहेच्छतां नित्यं योऽधार्योदुर्बलेन्द्रियैः ॥ मनु० ३ । ७९

भावार्थ—अक्षय स्वर्ग की इच्छा करने वाले तथा इस संसार में नित्यसुख की इच्छा करने वाले को प्रयत्न से इस गृहस्थ का धारण करना चाहिये। किन्तु यह निर्बल इन्द्रिय लोगों से ग्रहण करने के योग्य नहीं है॥ ७९ ॥

अपत्यं धर्म्मं कार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा ।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्चह ॥ २८ ॥ मनु० ६

अर्थ—सन्तान धर्म्म कार्य्य सेवा उत्तम रति और अपना और पितरों का स्वर्ग सब पत्नी के आधीन है ॥ २८ ॥

फ़रमाइये, अब तो स्त्री के मोक्ष हेतु होने में आपको संदेह न रहेगा।

१४१ (प्रश्न)—"यद्वाचानाभ्युदितम्" इत्यादि केनोपनिषत् की श्रुतियों पर हमारी कुछ शंकायें हैं। पृ० २२० पं० २।

उत्तर—हां महाराज! आप श्रुतियों पर शंका कर लीजिये। आज तक तो हम यही समझते थे कि श्रुतियों पर नास्तिक लोगों को ही शंका हुआ करती है किन्तु अब पता लगा कि आप जैसे पौराणिकों को भी शंका है।

१४२ (प्रश्न)—स्वामी दयानन्द जी केवल चार सं ताओं को स्वतः प्रमाण मानते हैं । उपनिषदों को नहीं। उ निषत् वेदानुकूल होने पर प्रमाण हैं। वेद में एक भी मन्त्र ऐ नहीं। जो ईश्वर को निराकार कहे ऐसी दशा में केन की श्रुति का वेदानुकूलत्व क्या लट्ठ के ज़ोर से सिद्ध होगा।

पृ० २२१ पं०३।

उत्तर—बस श्रीमान् जी यही शंका है। "खोदा प और निकला चूहा" ऐसी बातों पर ही संगत होता है। के का यह पाठ जहां स्वामी जी ने दिया है वहां पर पहिले "अं न्तमः" तथा "नतस्यप्रतिमा" यह दो मन्त्र देकर फिर केन पाठ दिया है। यह दोनों मन्त्र परमात्मा को निराकार त परमात्मा के स्थान में और की पूजा के निषेध को प्रतिपाद करते हैं। इन दोनों मन्त्रों के अनुकूल होने से ही केन का पाठ प्रमाण है। आप को केन का पाठ तो नज़र आगया कि वेद के दो मन्त्र नज़र न आये, यह हम को भी आश्चर्य है।

(१४३) प्रश्न)—इन्हीं श्रुतियों के आगे मूल में य वतार का वर्णन आता है।

उत्तर—न तो वहां अवतार शब्द है न परमात्मा के ज लेने का वर्णन आता है। अपितु ब्रह्म को सर्वोत्कृष्ट वर्णन क के लिये लाक्षणिक लेख शैली से वर्णन किया गया है (दे २नं० ६) यदि आप यह मानते हैं कि इस लेख में वास्तव परमात्मा का वर्णन है तो वह "सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्" इ वेद मन्त्र के विरुद्ध होने के कारण मानने के काबिल नहीं है।

१४४ (प्रश्न) जब वेद ब्रह्म को रूप और अरूप कह

है। तब उस के रूप प्रतिपादक मंत्र पबलिक के आगे नहीं आने पाते।

(उत्तर)—परमात्मा निराकार एकरस रूपरहित सर्वं संसार में व्यापक है। वेद का एक मंत्र भी ऐसा आप पेश नहीं कर सके जो परमात्मा के दो रूप वर्णन करता हो। यदि किसी भी पौरुषेय पुस्तक में परमात्मा के दो रूप वर्णन हों तो वह पुस्तक अपौरुषेय वेद के विरुद्ध होने से अप्रमाण मानी जावेगी क्योंकि वेद परमात्मा को "सपर्य्यगात्" "नतस्य प्रतिमाऽस्ति" इत्यादि मंत्रों द्वारा निराकार शरीर रहित परिमाण शून्य व्यापक वर्णन करता है।

१४५ (प्रश्न) यदि ब्रह्म हमेशा न आंख से दीखता है। न कान से सुनाई देता है, न वाणी उस को कह सकती है। और न वह किसी के मन में आता है। तो फिर ऐसे ब्रह्म का ध्यान पूजन कोई कैसे कर सकेगा। निराकार का ध्यान आज तक कभी हुआ नहीं और आगे को कभी हो नहीं सकता।

उत्तर—निःसन्देह वह ब्रह्म आंख नाक वाणी जिह्वा तथा स्पर्श का विषय नहीं है और न ही वह ब्रह्म मन का विषय है। क्योंकि प्राकृतिक शरीरकी ये प्राकृतिक इन्द्रियां प्राकृतिक विषयों को ग्रहण कर सकती हैं। परमात्मा प्रकृति से परे हैं। वह प्राकृतिक इन्द्रियों से जाना नहीं जा सकता। परमात्मा तो समाधि द्वारा आत्मा से ही अनुभव किया जा सकता है। हां परमात्मा की बनाई हुई स्थूल सृष्टि को प्राकृतिक इन्द्रियों से जान कर और परमात्मा की अद्भुत कारीगरी का मन से ध्यान करके परमात्मा को हस्ती का निश्चय किया जा सकता है। यथा

साकार वस्तुओं की प्रतीक के द्वारा निराकार परमात्मा का अनुभव न आज तक हुआ है और न ही होगा। इस बात को वेद स्वयं कहता है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
(यजु० ३१।१८)

भाषार्थ—मैं आत्मा उस व्यापक महान् प्रकाशस्वरूप अंधकार से दूर परमात्मा को जानता हूं। उस को जान कर मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होता हैं और कोई रास्ता मोक्ष प्राप्ति का नहीं हैं॥ १८॥

इसी को स्पष्ट करने के लिये वेदान्त दर्शन कहता है।

न प्रतीके न हि सः॥ ४। १४॥

भाषार्थ—प्रतीक में परमात्मा की उपासना नहीं करनी चाहिये। क्योंकि प्रतीक परमात्मा नहीं है।

सारांश यह है कि प्राकृतिक इन्द्रियें परमात्मा की कारीगरी से परमात्मा की हस्ती का निश्चय तो कर सकती हैं। परमात्मा का साक्षात्कार तो केवल आत्मा ही समाधि द्वारा कर सकता है। हां यदि आप परमात्मा को प्रसन्न करना चाहते हैं। तो परमात्माकी आज्ञानुसार वेदानुकूल काम करें, और आप को अपने विचारानुसार भी परमात्मा की पूजा करने के लिये परमात्मा की मूर्ति कल्पित करने की जरूरत नहीं हैं क्योंकि आप ने अपनी किताब के पृ० ३१० पं० ६ में इस प्रकार लिखा है कि—

"जहां वेद ने ईश्वर के मुख का पूजन लिखा है वहां

ब्राह्मण का पूजन होगा, जहां ईश्वर की भुजाओं का पूजन होना है वहां क्षत्रियों का और ईश्वर के ऊरु पूजनमें वैश्यों का पूजन तथा पाद के पूजन में शूद्रों का पूजन हो जावेगा।"

आप के इस लेखानुसार चारों वर्णों की पूजा ही समस्त ईश्वर की पूजा है। बस अब आप को मूर्ति कल्पना की आवश्यकता नहीं है। चारों वर्णों की सेवा कीजिये। इसी से ईश्वर आप पर प्रसन्न होजावेंगे।

१४६ (प्रश्न) "यथाभिमतध्यानाद्वा। योग० पाद १ सू० ३६" में लिखा हैं कि अत्यन्त प्रिय पदार्थ के ध्यान से मन स्थिर होता है। प्रिय पदार्थ साकार ही हो सकता है। अतः साकार के बिना ध्यान न होगा। पृ० २२१ पं० २२।

उत्तर—अत्यन्त प्रिय पदार्थ दो प्रकार के होते हैं। एक ईश्वर कृत दूसरे मनुष्यकृत। यदि ईश्वर की बनाई हुई वस्तुओं में मन को लगाया जावेगा तो मन को उन वस्तुओं का ज्ञान हो जावेगा। और उन वस्तुओं में विद्यमान् कारीगरी को जान कर उन वस्तुओं के बनाने वाले ईश्वर को महान् महिमा को जानकर उसके अस्तित्व में निश्चय हो जावेगा। किन्तु उस का साक्षात्कार अनुभव आत्मा ही कर सकेगा मन नहीं, कर सकेगा। और यदि मनुष्य जीव कृत पदार्थों में ध्यान लगावेगा तो उन पदार्थों का ज्ञान होकर उनके बनाने वाले मनुष्य की कारीगरी से उस की महिमा से उस के कर्ता होने का निश्चय हो जावेगा। अतः इससे मूर्ति के कर्ता की कारीगरी ही जानी जा सकेगी, ईश्वर की नहीं। अतः मूर्ति में ईश्वर का ध्यान निरर्थक है।

१५७ (प्रश्न)—"परमाणु परममहत्वान्तोऽस्य वशी-कारः। यो० पा० १ सू० ४०" में लिखा है कि परम अणु से लेकर परम महत् तक इस चित्त का वशीकार होता है। इस से सिद्ध है कि ध्यान साकारमें ही हो सकता है, निराकार में नहीं। पृ० २२१ पं० २६

उत्तर—इस में संदेह नहीं कि परम अणु से परम महत् तक ध्यान करने से मन को इन वस्तुओं का ज्ञान हो जावेगा परन्तु उस को परमात्मा का साक्षात्कार न हो सकेगा। क्योंकि प्राकृतिक मन प्रकृतिक वस्तुओंको ही जान सकता है। परमात्मा को नहीं। परमात्मा को तो आत्मा ही समाधि द्वारा अनुभव करके साक्षात्कार कर सकता है। अतः परमात्मा को साक्षा-त्कार करने के लिये मूर्ति की कल्पना निरर्थक है। मूर्ति के ध्यान से तो परमात्मा की कारीगरी तथा उसकी महिमा का भी ज्ञान नहीं हो सकेगा अपितु मूर्ति के कारीगरी तथा मूर्ति की सुन्दरता का ही ज्ञान हो सकेगा।

१४८ (प्रश्न) "अर्चत प्रार्चत" इस मंत्र को स्वामी जी ने ईश्वर की पूजा से हटा कर स्त्री की पूजा में लगा दिया। पृ० २२२ पं० १२

उत्तर—इस मंत्र का देवता इन्द्र है। ऐश्वर्य वाला होने से ईश्वर का भी नाम है। तथा इन्द्रियों का स्वामी होने से जीव को भी इन्द्र कहते हैं। यदि इस मंत्र को परमात्मा की पूजा में लगा दिया जावे तब भी इस से मूर्ति पूजा साबित नहीं होती अपितु ईश्वर पूजा ही सिद्ध होगी। किन्तु वास्तव में यह मंत्र मनुष्यों को परस्पर सत्कार की आज्ञा देता है। विशेष देखो (नं० ६८)।

१४९ (प्रश्न) स्वामी जी कहते हैं कि "जो फूल संसार को सुगंधित करते हैं। वह मूर्ति पूजा के जल में सड़कर बदबू देने लगते हैं इस कारण मूर्ति पूजा छोड़ दो"। यह रूल आर्य्य समाज को मान्य है तो आर्य्यसमाजियों को खाना पीना सब छोड़ देना चाहिये। क्योंकि घृत दूध फल मिठाई अन्न जो पदार्थ सुगंधित और सुहावने हैं। खाने से उन सब का बदबूदार पाखाना बन जाता है। पृ० २२२ पं० २०

उत्तर—आपको कभी तो ईमानदारी से काम लेना चाहिये। क्या स्वामी जी ने यही लिखा है जो आपने ऊपर दिया है। आप अपनी ही पुस्तक के पृ० २१५ पं० १२ पर देखें। स्वामी जी की असल इबारत यह है कि—

"सोलहवां-पत्थर पर चढ़े हुए पुष्पचन्दन और अक्षत आदि सब का जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आ कर सड़ के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का और सहस्रों जीव उस में पड़ते उसी में मरते और सड़ते हैं। ऐसे २ अनेक मूर्ति पूजा के करने में दोष आते हैं। इसलिये सर्वथा पाषाणादि मूर्ति पूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है। और जिन्हों ने पाषाणमय मूर्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं और न बचेंगे"

१५२ (प्रश्न)—स्वामी जी नें आर्य्याभिविनय पृ० १८ में "वायवायाहि दर्शते ऋ० १।१।३।१ "में ईश्वर से प्रार्थना की है कि "हे परमेश्वर हमने सोमादि औषधियों का रस बनाया है आप स्वीकार करें (सर्वात्मा से पान करो)" यहां पर आर्य्य

समाज ने निराकार ईश्वर को गुर्च के अर्क का भोग लगाया है गुर्च के अर्क का ईश्वर को भोग लगाने वाला आर्यसमाज स्पष्ट रूप में मूर्ति पूजक है॥ पृ० १३ पं० १।

उत्तर—इस मन्त्र में प्रथम तो "स्वीकार करो" इस वाक्य को ही कोष्ठ में (सर्वात्मा से पान करो) लिखकर स्पष्ट किया है। अतः यह स्वतन्त्र वाक्य नहीं अपितु इस का अभिप्राय "स्वीकार करो" ही है। दूसरे इस में मुख से पान करना नहीं लिखा अपितु सर्वथा से पान करना लिखा है। जिससे ईश्वर की सर्वव्यापकता दिखाना मक़सद है।

तीसरे "पान करना" का अर्थ भी पीना नहीं है। अपितु रक्षा करना अर्थ है। क्योंकि यह रूप "पा पाने" का नहीं है अपितु "पा रक्षणे" का रूप है। जिस से पिता पति शब्द भी बनते हैं। अतः इसका अर्थ यह हुआ कि "आप स्वीकार करो अर्थात् सर्वात्मा से रक्षा करो' इसी मन्त्र का ऋग्वेद के भाष्य में अर्थ करते हुए स्वामी जी लिखते हैं। कि—

(तेषां) तान् पदार्थान्। षष्ठी शेषे अ० २। ३। ५० इतिशेषत्व विवक्षायां षष्ठी। पाहि) रक्षयति वा (पृ० ३६ प्रथमभाग)

भाषार्थ—(तेषां) आप ही उनपदार्थों के रक्षक हैं इस से उनकी (पाहि) रक्षा भी कीजिये।

अतः यहां पर ईश्वर को भोग लगाने की कल्पना करके मूर्ति पूजा सिद्ध करने का यत्न वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध दुराग्रह मात्र ही है।

———

स्वामी दयानन्द और मूर्ति पूजा

मनसा परिक्रमा

१२० (प्रश्न) संस्कार विधि पृ० १६४ में आर्य समाज की संध्या में मनसा परिक्रमा लिखी है। प्रथम तो ऊपर लिखा है कि—"अथ मनसा परिक्रमामन्त्राः।" इस हैडिङ्ग के बाद नीचे "प्राची दिगग्निरधिपतिः" इत्यादि वेद के ६ मन्त्र परिक्रमा करने के लिखे हैं। जिन मन्त्रों से हमारे समाजी भाई नित्य-प्रति ईश्वर की मानसिक परिक्रमा करते हैं। मन से परिक्रमा करना तब ही हो सकता है जब कि ईश्वर की मूर्ति कायम कर ली जावे। मूर्ति कायम करके उसके चारों तरफ घूमना मूर्ति-पूजा है क्योंकि विना स्वरूप शरीर या मूर्ति के परिक्रमा हो ही नहीं सकती। हमारे आर्यसमाजी भाइयों को ईश्वर की मूर्ति नित्य बनानी पड़ती है। यह बात दूसरी है कि—सनातनधर्मी चार अंगुल या दो बालिश्त की मूर्ति बनाते हैं और आर्यसमाजी सौ दो सौ मील लम्बी और पचास साठ मील चौड़ी बनाते हैं, परन्तु विना मूर्ति के इनकी सन्ध्या हो ही नहीं सकती। जब यह प्रति दिन परमात्मा की मूर्ति बनाकर उस की परिक्रमा करते हैं तो क्या कोई विचार शील मनुष्य कह सकता है कि ये मूर्तिपूजा नहीं करते? पृ० ६ पं० १६

उत्तर—न्यायदर्शन में गौतमाचार्य ने लिखा है—

अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम्
१।२।१२॥

जहां ख़ास अर्थ न किया हो। साधारणतया जो बात कही हो वहां वक्ता के अभिप्राय (मतलब) को न लेकर उससे

उलटा परिणाम निकालना वाक्छल यानी वाणी का छल होता है। जितने भी प्रमाण महर्षिकृत पुस्तकों में से पौराणिक मूर्ति पूजा की पुष्टि में पेश करते हैं उन सब में वाक्छल होता है। इस बात को हम स्थान २ पर दर्शायेंगे। ताकि पाठकों को पता लग जावे कि ये किस ढंग से अपना कार्य सिद्ध करते हैं।

मनसा परिक्रमा के मन्त्रों के विषय में ऋषि संस्कार विधि में लिखते हैं—नीचे लिखे मन्त्रों से "सर्वव्यापक परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करे। इन मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन से चारों ओर बाहिर भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय निःशंक उत्साही आनन्दी पुरुषार्थी रहना।"

उपर्युक्त लेख में कितनी साफ़ परमात्मा की सर्वव्यापकता वा पूर्णता दिखलाई है। कभी साकार मूर्ति वाला सर्वव्यापक हो सकता है? ऐसा साफ़ ऋषि का लेख होने पर भी उससे मूर्तिपूजन सिद्ध करना दुराग्रह नहीं तो और क्या है? यहाँ परिक्रमा के अर्थ परमात्मा के चारों तरफ़ चक्र लगाना है, किन्तु जो मनुष्य सन्ध्या करता है उस की अपेक्षा (निस्बत) से चारों तरफ़ नीचे ऊपर भाग से है। जब अघमर्षण मन्त्र में मन परमात्मा की महिमा को देखता है तो पाप की इच्छा से घबराकर चारों ओर भागता है किन्तु जिधर भी जाता है उधर भगवान् को मौजूद, सर्वव्यापक पाता है, परिणाम स्वरूप थक कर उसी ब्रह्म में स्थित हो जाता है। बस यह सिद्ध होगया कि—परिक्रमा के अर्थ हमारे शरीर की अपेक्षा (निस्बत) से चारों तरफ नीचे ऊपर भागने के हैं, परमात्मा के चारों ओर घूमने के नहीं।

१५१ (प्रश्न)—स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश पृ० ६६ तथा संस्कार विधि में पृ० १९८ में बलिवैश्वदेव विधि में इन्द्र यम वरुण सोम मरुत जल देवताओं को तथा ओखल मूसल और लक्ष्मी और भद्रकाली दुर्गा को भोग लगाना लिखा है। इससे मूर्ति पूजा साफ साबित है। पृ० १० पं० ७

उत्तर—प्रतीत होता है कि आपने झूठ बोलने तथा जनता को भ्रम में डालने का ठेका ही ले रक्खा है। वरना आप को यह मालूम है कि यह बलि वैश्व देव का प्रकरण है जो कि पंच महायज्ञों में चौथा यज्ञ है। जिस की विधि मनु में अध्याय ३ श्लोक ८४ से ९२ तक में दी गई है। उसीके आधार पर यह स्वामी जी का लेख है। जो कि स्वामी जी ने "अहरहर्बलि-मित्ते इत्यादि अथर्व १९।५५।७" के अनुकूल होने से ग्रहण किया है। मनु ने इस का प्रयोजन भी लिख दिया है कि 'भूतानि बलिकर्मणा—मनु० ३।८१" प्राणियों को बलि वैश्व देव यज्ञ से सत्कृत करे। इससे साफ साबित है कि बलिवैश्व देव का प्रयोजन अन्न से प्राणियों को तृप्त करना है। फिर ना मालूम आपको प्रकरण विरुद्ध झूठ बोल कर मूर्ति पूजा सिद्ध करने का क्यों ख़बत समाया है। आपकी कल्पना निम्न हेतुओं से सर्वथा मिथ्या है।

(क) यह बलिवैश्व देव यज्ञ का प्रकरण है। उपासना का प्रकरण ही नहीं है।

(ख) स्वामी जी के लेख में कहीं भी "भोग" शब्द मौजूद नहीं है।

(ग) स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश तथा संस्कार विधि दोनों में "सानुगायेन्द्राय नमः। सानुगाय यमाय नमः" इत्यादि

मन्त्रों के नीचे यह पाठ दिया है। जिस को आपने चुरा लिया है। "इन मंत्रों से एक पत्तल वा थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग धरना। यदि भाग धरने के समय कोई अतिथि आजाये तो उसी को दे देना, नहीं तो अग्नि में धर देना" और स्वामी जी का यह लेख भी स्वयं कल्पित नहीं है। देखिये व्यास जी कहते हैं कि—

एवं कृत्वा बलिं सम्यक् दद्याद् भिक्षां द्विजातये।
अलाभे ब्राह्मणस्याग्नावग्रमुद्धृत्य निक्षिपेत् ॥१५।
(महा० अनु० अ० ९७)

इससे भला मूर्ति पूजा कैसे साबित हो सकती हैं।

(घ) स्वामी जी ने मूर्ति पूजा को वेद विरुद्ध साबित करते हुए उसका घोर खंडन किया है। उनके लेख से तोड़ मरोड़ कर मूर्ति पूजा सिद्ध करने का प्रयत्न करना महा धोका और झूठ है।

(ङ) इन मंत्रों में आपके कल्पित देवताओं का नाम तक भी नहीं है। स्वामी जी ने इन मंत्रों के अर्थ स्वयं ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पंच महायज्ञ प्रकरण में किये हैं जो निम्नप्रकार से हैं—

इन्द्र—परमैश्वर्य युक्त परमेश्वर और उस के गुण।

यम—सत्य न्याय करने वाला और उस की सृष्टि में सत्यन्याय करने वाले सभासद्।

वरुण—सब से उत्तम परमात्मा और उसके धार्मिक भक्त जन!

सोम—पुण्यात्माओं को आनन्द करने वाला परमात्मा और वे लोग।

मरुत्—प्राण जिन के रहने से जीवन और निकलने से मरण होता है उन की रक्षा करना।

आप—सर्वव्यापक परमात्मा।

वनस्पति—ईश्वर के उत्पन्न किये हुए वायु और मेघ आदि सब के पालन के हेतु सब पदार्थ तथा जिनसे अधिक वर्षा और जिन के फलों से जगत् का उपकार होता है। उनकी रक्षा करनी।

श्री—जो सेवा करने के योग्य परमात्मा और पुरुषार्थ से राज्य श्री की प्राप्ति करने में सदा उद्योग करना।

भद्रकाली—जो कल्याण करने वाली परमात्मा की शक्ति और सामर्थ्य है उसका सदा आश्रय करना।

ब्रह्मपति—जो वेद के स्वामी ईश्वर की प्रार्थना विद्या के लिये करना।

वास्तुपति—जो गृहसंबंधी पदार्थों का पालन करने वाला ईश्वर इत्यादि में मूर्ति पूजा का नाम मात्र भी नहीं है अपितु परमात्मा का नाम लेकर समस्त प्राणियों के उपकार का काम करना लिखा है।

स्वामी जी सोलह हेतुओं से मूर्ति पूजा को त्याज्य बतलाते हैं। आप ने पंद्रह हेतुओं को तो छुआ तक नहीं। केवल एक हेतु पर ही आप नुक्ताचोनी कर सके हैं और उस का भी आपने अधूरा और मन माना पाठ देकर जनता को भ्रम में डालना चाहा है। इस के अतिरिक्त अपने जो इस काम को मनुष्य के

भोजन के साथ तुलना दी है। वह युक्ति शून्य है। क्या मनुष्य के किये हुए भोजन का मल बनना और मूर्ति के ऊपर चढ़े हुए पदार्थों का सड़ कर बदबू पैदा करना बराबर है। अन्न का भोजन करना मनुष्य के प्राणों का आधार है भोजन के बिना पुरुष की मृत्यु हो जाती है तो क्या पुष्प आदि पदार्थ भी मूर्ति के प्राणों का आधार हैं वा उन के बिना मूर्ति मर जाती है। और फिर जिस भोजन को पुरुष खाता है मेदा उस को हज़म करके उस के रस को खैंच कर उस का खून बना कर सारे शरीर की पुष्टि करता है। और फोक सार हीन को पाखाने के रास्ते बाहर फैंक देता है। किंतु मूर्ति पर चढ़ाये पदार्थों का कोई भी उपयोग नहीं होता। और मूर्ति को उस से कोई लाभ नहीं होता। अपितु वह पदार्थ व्यर्थ ही नष्ट हो जाते हैं। अतः पुरुषों का भोजन करना सार्थक और भोजन में प्रयुक्त पदार्थों का सदुपयोग तथा मूर्ति पर पुष्पादि का चढ़ाना निरर्थक और मूर्ति पर चढ़ाये पदार्थों का दुरुपयोग है। इस से स्वामी जी का लेख सत्य और आप का असत्य सिद्ध होता है।

१५३ (प्रश्न)—स्वामी जी ने 'घृतेन सीता इत्यादि यजु० १२। ७०' इस मन्त्र के भाष्य में लकड़ी के पटेले अर्थात् जिस से खेत की मिट्टी एक सी की जाती है। उस पर जल, घी, दूध, शक्कर, शहद चढ़ा कर पूजा करना लिखा है। इस से मूर्ति पूजा साफ तौर से सिद्ध होती है। पृ० १४ पं० १०।

उत्तर—प्रथम स्वामी जी के अर्थ में कहीं पूजा करो शब्द मौजूद नहीं है आप ने चालाकी करके अपनी तरफ से

शामिल कर दिया है। दूसरे 'पटेले' के ऊपर शहदादि चढ़ाना स्वामी जी के भाष्य में नहीं अपितु 'पटेला' घी तथा शहद वा शक्कर आदि से संयुक्त करो' ऐसा पाठ है। तीसरे यहां उपासना का प्रकरण नहीं अपितु कृषिका प्रकरण है। क्योंकि इस मन्त्र का देवता कृषि है।

चौथे—पटेला से स्वामी जी का अभिप्राय खेत में हल चलाने से पैदा हुई उस गहरी लकीर का है जिस में बीज बोया हुआ उगता है। क्योंकि यह अर्थ मन्त्र में विद्यमान सीता शब्द का है और सीता शब्द का अर्थ हल या सुहागा हो ही नहीं सकता। जैसा कि—

सीता लांगल पद्धतिः (अमरकोष १९। १४)

अर्थात् सीता यह एक नाम हल की रेखा का है। इसी को स्वामी जी ने पटेला शब्द से वर्णन किया है। आप ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के मन माना अर्थ लकड़ी का सुहागा निकाल मारा।

पांचवें—स्वामी जी के स्वयं लिखे हुए मन्त्र के नीचे के भावार्थ को आप ने चुरा लिया है। जिस से स्वामी जी का अभिप्राय स्पष्ट होता है वह यह है कि—

सब विद्वानों को चाहिये कि किसान लोग विद्या के अनुकूल घी मीठा और जल आदि से संस्कार कर स्वीकार की हुई खेत की पृथिवी को अन्न से सिद्ध करने वाली करें। जैसे बीज सुगन्धि आदि युक्त करके बोते हैं वैसे इस पृथिवी को भी संस्कार युक्त करें।

कहिये इस भावार्थ में साफ तौर से 'पृथिवी को भी

संस्कार युक्त करें' लिखा है या नहीं। और अब बतावें कि पहले का कथं सुहागा कैसे हो सकता है। इस मन्त्र का सारा अभिप्राय यह वाजह हो गया कि जैसे नमक, हड्डी, मछलियां, राख, पाखाना, खून आदि खास २ पौदों की परवरिश के लिये खाद के तौर पर ज़मीन में डाले जाते हैं। वैसे ही खास पौदों की परवरिश के लिये जल, दूध, घी, शक्कर, शहद आदि पदार्थों से ज़मीन को खाद देकर ठीक संस्कार युक्त करो, ताकि अन्नादि पदार्थ पुष्कल पैदा हों। इस लेख से मूर्ति पूजा निकालना बालू से तेल निकालने के समान सर्वथा असंभव है।

१५४ (प्रश्न)—स्वामी जी ने संस्कार विधि के मुण्डन संस्कार में लिखा है कि—

"ओं औषधे त्रायस्व एन ꣳ मैन ꣳ हि ꣳ सीः"

जिस का अर्थ यह है कि "हे औषधि कुश! इस बालक की रक्षा कर इस को मत मार" कुशा तृण हैं तृण से जीव प्रार्थना करना निःसंदेह मूर्ति पूजा है। पृ० १५ पं० ११

उत्तर—हमारे सामने संस्कार विधि मौजूद है। इस में केवलयह लिखा है कि "तत्पश्चात्—

ओं औषधे त्रायस्वैनम्

इस मंत्र को बोल के तीन दर्भ लेके दाहिनी बाजू के केशों के समूह को हाथ से दबा के"

इस के विना संस्कार विधि में न तो इस मंत्र के अर्थ दर्ज हैं। और न ही तृण से जीव की प्रार्थना की गई है "किसी वाक्य के स्वयं मन माने अर्थ करके स्वयं ही एतराज़ करना

कहांकी ईमानदारी है† । अतः यदि आप एतराज़ करना ही चाहते हैं तो इस मंत्र का अर्थ भी स्वामी जी कृत लिखिये "यजु० ४।१" में स्वामी जीने इस प्रकारसे इस मंत्रके अर्थ किये हैं कि—

"हे विद्वन् जैसे सोमलता आदि ओषधिगण सब रोगों से रक्षा करता है। वैसे तू भी हम लोगों की रक्षा कर। इस यजमान वा प्राणि मात्र को कभी मत मार"

अब बतलाइये, इस अर्थ में से मूर्ति पूजा कहां से सिद्ध होती है।

१५५ (प्रश्न)—संस्कार विधि के मुण्डन संस्कार में लिखा है कि—

"ओं विष्णो दंष्ट्रोऽसि"

इस का अर्थ यह है कि—"कि हे छुरे तू विष्णु की दाढ़ है" क्या निराकार की दाढ़ हो सकती है, इस से ईश्वर का साकार होना तथा मूर्तिपूजा साबित है॥ पृ० १५ पं० १६

उत्तर—झूठ बोलना आपका मौरूसी पेशा मालूम होता है। वरना संस्कार विधि का मुण्डन संस्कार हमारे सामने

---

† स्वामी जी के लेख पर शंका करने के लिये स्वामी जी के ही अर्थ लिखने चाहिये, जैसा कि स्वामी जी ने स्वयं लिखा है कि "यहां सब मन्त्रों का अर्थ नहीं लिखा है। क्योंकि इस में कर्मकाण्ड का विधान है। इस लिये विशेष कर क्रिया विधान लिखा है। और जहां २ अर्थ करना आवश्यक है वहां २ अर्थ भी कर दिया हैं। और मन्त्रों के यथार्थ अर्थ मेरे किये वेद भाष्य में लिखे हैं, जो देखना चाहें वहां से देख लेवें"

(संस्कार विधि की भूमिका)

पड़ा है, इस में यह लिखा है कि—"ओं विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि"

इस मन्त्र से छुरे की ओर देख के"

बस इस के बिना संस्कार विधि में न तो मन्त्र के अर्थ लिखे हैं और न छुरे को विष्णु की दाढ़ बतलाया गया है। आप ने स्वयं ही मन माने अर्थ करके प्रश्न भी कर डाला यह शरीफ आदमियों का काम नहीं है। हां यदि आपको प्रश्न करना है तो पहिले आर्य्य समाज से इस के अर्थ पूछें, फिर प्रश्न करें। देखिये "यज्ञो वै विष्णु:॥ शत० १।२।१३" विष्णु नाम यज्ञ का है। और "दंश्यतेऽनेनेति दंष्ट्र:" जिस से काटा जावे उसका नाम दंष्ट्र है। अब ऊपर के मन्त्र के अर्थ यह हुए कि—"छुरा यज्ञ में वस्तुओं को काटने का साधन है"

अब बतलाइये, इसमें ईश्वर का साकार होना तथा मूर्ति पूजा किस प्रकार से सिद्ध हो सकती है।

१५६ (प्रश्न)—संस्कार विधि के मुण्डन संस्कार में लिखा है कि—

ओं शिवोनामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते मा मा हिंसी:॥ इसका अर्थ यह है कि "हे तेज़ धार वाले छुरे। शिव तेरा नाम है और लोहा तेरा बाप है, मैं तुझे नमस्ते करता हूं। हे छुरे तू इस बच्चे को मत मार"। छुरे को संबोधन करके नमस्ते कहना तथा छुरे से यह प्रार्थना करना कि तू बच्चे को मत मार निःसंदेह मूर्ति पूजा है॥ पृ० १६ पं० १

उत्तर—या बेईमानी तेरा आश्रय। हमारे सामने संस्कार विधि का मुण्डन संस्कार प्रकरण है। इस में केवल यह लिखा हुआ है कि—

शिवोनामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽस्तु मा माहि ३० सीः ॥ इस मंत्र को बोलके छुरे को दाहिने हाथ में लेवे" इस के सिवाय यहां कुछ भी नहीं लिखा। न तो यहां पर मंत्र का अर्थ किया हुआ है। और न ही कहीं छुरे को नमस्ते लिखा हुआ है। और न ही कहीं पूजा शब्द मौजूद है। स्वयं ही मनमाने ऊट पटांग अर्थ करके स्वयं ही उस पर प्रश्न करना यह शराफ़त नहीं है। हां, यदि आपको अर्थ पर शंका करनी है। तो इस मंत्र के अर्थ का ऋषि दयानन्द कृत अर्थ यजु० ३।६३ में देखें। इस प्रकार हुआ है कि—

"हे जगदीश्वर ! और उपदेश करने हारे विद्वान्। जो आप आप अविनाशी होने से वज्र मय (निश्चल-दृढ़) हैं। जिस आपका सुख स्वरूप विज्ञान का देने वाला नाम है। सो आप मेरे पालन करने वाले हैं। आपके लिये मेरा सत्कार पूर्वक नमस्कार विदित हो"

अब फरमाइये इस में छुरे को सम्बोधन करना और उसे नमस्ते करना कहां है, और इसे मूर्ति पूजा कैसे साबित होती है

पौराणिक लोग इसी तरह से संस्कार विधि का नाम लेकर कहा करते हैं कि स्वामी जी ने डंडे की पूजा, जूते की पूजा, ऊखल की पूजा, मूसल की पूजा इत्यादि इत्यादि चीज़ों की पूजा लिखी है। ऐसा सवाल करने पर बुद्धिमानों को निम्न बातों का ध्यान रख कर उत्तर देना चाहिये।

(१) संस्कार विधि में लिखा हुआ दिखाओ कि "डंडे की पूजा करो" 'जूते की पूजा करो' इत्यादि, इत्यादि।

(२) जिस मंत्र का अर्थ करके प्रश्न कर रहे हो वह अर्थ

स्वामी जी का किया हुआ है या किसी और का। स्वामी जी के लिखित मंत्र पर स्वामी जी का किया हुआ अर्थ ही प्रामाणिक हो सकता है, अन्य का नहीं। बस इतने से ही सनातन धर्म्म के प्रश्न इस तरह से गायब हो जावेंगे जैसे गधे के सिर से सींग।

मूर्ति पूजा (परिशिष्ट)

(प्रश्न) बाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग ३१ श्लोक ४२—४३ में लिखा है कि रावण शिवलिंग की पूजा करता था।

उत्तर—प्रथम तो उत्तर काण्ड प्रक्षिप्त है। क्योंकि फल-श्रुति युद्ध काण्ड के अखीर में आजाती है। तथा उत्तर कांड में प्रथम छे कांडों के विरुद्ध घटनायें हैं। और उत्तर कांड के नाम से ही प्रकट हैं कि यह पीछे से बनाकर शामिल किया है। तथा कलकत्ते छपी रामायण में यह कांड नहीं है। दूसरे यह रावण जैसे राक्षसों का ही काम है। राम तो संध्या किया करते थे। रावण का काम वेद विरुद्ध होने से पाप सूचक है।

(प्रश्न) राम ने सेतु बंध के समय शिवलिंग की पूजा की।

उत्तर—सेतुबंध के समय राम ने कोई मूर्ति पूजा नहीं की।,लंका से वापसी पर राम ने सीता को पुल दिखा कर कहा कि—

अत्रपूर्वंमहादेवः प्रसादमकरोद्विभूः युद्ध० १२३ श्लोक २०

उस व्यापक देवों के देव परमेश्वर ने यहां हमारे पर

कृपा की। यह "विभूः" व्यापक परमात्मा से मुराद है। शिव-लिंग से नहीं।

(प्रश्न) महाभारत में आता है कि एकलव्य ने द्रोणाचार्य्य की मूर्ति बना कर शस्त्र विद्या सीखी।

उत्तर—(१) एकलव्य ने परमेश्वर के स्थान में उसकी पूजा नहीं की।

(२) अभ्यास से शस्त्रविद्या सीखी, मूर्ति ने नहीं सिखाई।

(३) द्रोणाचार्य्य को इस का पता भी नहीं लगा।

(४) मूर्ति बनाने का फल अंगूठा काटा गया।

(५) एक भील का फेल अनुकरणीय नहीं है।

(६) यदि आपके विचार में ठीक हैं तो आप भी मूर्तियों से वेद पढ़ कर दिखलावें।

(प्रश्न) "देवताऽभ्यर्चनं चैव मनु० २।१७६" में देवताओं की पूजा से मूर्ति पूजा साबित है।

उत्तर—यहां देवता पूजा से विद्वानों की पूजा सत्कार सेवा अभिप्राय है। अथवा यदि सूर्य्य चांद हवादि को देवता माना जावे तो मनु स्वयं कहते हैं कि "होमैर्देवान् यथाविधि ३।८१" देवताओं की विधि पूर्वक होम से पूजा करे। यहां देवता पूजा से देव यज्ञ अर्थात् विद्वानों की सेवा तथा हवन करना लिखा है। मूर्ति पूजा का विधान नहीं है।

(प्रश्न) पत्थर में भी परमात्मा व्यापक है हम उसकी पूजा करते हैं।

उत्तर—पत्थर में परमात्मा तो है किंतु आत्मा नहीं है। किंतु तुम्हारे शरीर में परमात्मा तथा आत्मा दोनों मौजूद हैं।

अतः अपने शरीरस्थ आत्मा द्वारा परमात्मा का अनुभव करो।

(प्रश्न) पाषाण मूर्ति पूजा सीढ़ी है।

उत्तर—हिमालय पर्वत की प्राप्ति के लिये पाषाण सीढ़ी हो सकती है। परमात्मा की प्राप्ति के लिये आत्मा ही सीढ़ी है। इस से ज्ञान प्राप्ति द्वारा परमात्मा की प्राप्ति होगी।

(प्रश्न) प्रकृति की पूजा क्यों न करें।

उत्तर—जीव सत् चित् है। अतः उसे सत् प्रकृति की उपासना न करनी चाहिये, क्यूंकि सत् गुण तो उसमें मौजूद है। हां चूंकि परमात्मा सत् चित् आनन्द है। अतः आनन्द की प्राप्ति अर्थं परमात्मा की पूजा करनी चाहिये, प्रकृति की नहीं।

(प्रश्न)—मूर्ति के कारण नोटों रुपयों का व्यवहार सुख दायक है। इसी प्रकार मूर्ति पूजा सुखदायक है।

उत्तर—राजा शरीर धारी है उस की मूर्ति नोटों आदि पर बन सकती हैं, निराकार परमात्मा की नहीं।

नोट रुपये राजा की आज्ञा से राजा के ही कारखाने में बने हुए सुखदायक हैं। यदि कोई राजा की आज्ञा के विरुद्ध जाली सिक्का घर में बनावे तो जेल की हवा खाता है। इसी प्रकार से परमात्मा की आज्ञानुसार, परमात्मा की आज्ञा मूर्तियों चांदी, सूर्य, पहाड़, हवा, पानी, भूमि, इनसान, पशु, पक्षी आदिकों से यथा योग्य व्यवहार करके सुख लाभ करो। परमात्मा की आज्ञा के विरुद्ध परमात्मा के स्थान में पाषाण आदि की मूर्तियों की पूजा करके नरक गामी न बनो।

(प्रश्न) जैसे काल की मूर्ति घड़ी है वैसे परमात्मा की मूर्ति भी बन सकती है।

उत्तर—यह मूर्ति काल की नहीं सूर्य की है। क्योंकि सूर्य से ही काल का परिमाण है। यह सूर्य संसार में न रहे तो काल का कोई व्यवहार नहीं है। और न ही घड़ी की ज़रूरत।

प्रश्न—शब्दों की तसवीर अक्षरों की सूरत में बना लेते हैं, वैसे ईश्वर की मूर्ति बन सकती है।

उत्तर—शब्द की मूर्ति नहीं बनती। एक ही शब्द की विविध देशों में विविध मूर्तियां हैं। यदि वास्तव में मूर्ति बन सकती तो यकसां बनती। हां जो एक इन्द्रिय का विषय हो उस का दूसरी इन्द्रिय के लिये संकेत बनाया जा सकता है। शब्द चूंकि कान का विषय है। अतः उसे अक्षरों की सूरत में आंखों का विषय संकेत रूप से बनाया जा सकता है। परमात्मा चूंकि किसी इन्द्रिय का विषय नहीं है। अतः उस का कोई संकेत भी नहीं बनाया जा सकता।

(प्रश्न)—जैसे पानी से बर्फ बन जाती है और दियासलाई से अग्नि प्रकट होती है। ऐसे ही परमेश्वर साकार हो कर प्रकट हो जाता है।

उत्तर—आग, पानी, मिट्टी, हवा इन चारों तत्वों के चूंकि परमाणु हैं अतः ये चारों तत्व साकार हैं। जब यह परमाणु रूप होते हैं तो ये सूक्ष्म होने से नज़र नहीं आते स्थूल अवस्था में ये नज़र आते हैं। वरना ये प्रत्येक अवस्था में साकार होते हैं। निराकार नहीं हैं। अतः ईश्वर के लिये इन का दृष्टान्त युक्त नहीं है। क्योंकि ईश्वर निराकार सर्व व्यापक है। तथा ये चारों तत्व साकार होने से सर्व व्यापक नहीं हैं। साकार पानी का साकार बर्फ बनता है। तथा दियासलाई से साकार अग्नि प्रकट होती है।

त्रैतवाद

१५७ (प्रश्न)— वेद ने सृष्टि कर्ता ईश्वर को माना है। तथा वेद ने सृष्टि बनने का मैटर भी ब्रह्म को ही माना है। जैसे मिट्टी से घट, लोहे से कुठार, सूत से वस्त्र, और सुवर्ण से कटक कुण्डल बनते हैं। इसी तरह यह समस्त संसार ब्रह्म से बना है। पृ० २२३ पं० ४।

उत्तर—जहां वेद ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानता है। वहां वेद सृष्टि बनने का मैटर नित्य प्रकृति को मानता हैं। ईश्वर ऐसे है जैसे घड़े में कुम्हार, कुठार में लुहार, वस्त्र में जुलाहा तथा कटक कुण्डल में सुनार है। जैसे कर्ता कुम्हार के गुण घड़े में, लुहार के गुण कुठार में, जुलाहे के गुण वस्त्र में तथा सुनार के गुण कटक कुण्डल मे विद्यमान नहीं हैं। अपितु घड़े में उपादान कारण मिट्टी के गुण, कुठार में लोहे के गुण, वस्त्र में सूत्र कपास के गुण, तथा कटक कुण्डल में स्वर्ण के गुण विद्यमान है। इसी तरह से इस सृष्टि में ईश्वर के चैतन्यता सर्वव्यापकता सर्वज्ञता आदि गुण विद्यमान नहीं हैं अपितु जड़ता एकदेशिता आदि प्रकृति के गुण विद्यमान हैं। चूंकि उपादान कारण के गुण कार्य्य में अवश्य होता है। (कारण गुण पूर्वकः कार्य्यं गुणो दृष्टः॥ वै० अ० २ अ० १ सू० २४) इस से साबित हुआ कि ईश्वर इस सृष्टि का मिट्टी आदि की भांति उपादान कारण नहीं अपितु कुम्हारादि की भांति निमित्त कारण है। और मिट्टी आदि की भांति सृष्टि का उपादान कारण नित्य प्रकृति है। जिस को वेद के अनेकों मन्त्र वर्णन करते हैं, जैसे कि—

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ऋ० १ । ५० । १० ।

भाषार्थ—इस सब अंधकार अर्थात् प्रकृति से ऊपर उठ कर अधिक उच्च प्रकाशमान् देवों में देव उस उत्तम प्रकाश पूर्ण गति दाता प्रभु को अनुभव करते हुए प्राप्त करें। इस मंत्र में अंधकार (तम) नाम प्रकृति का है इसी का वर्णन करते हुए मनु जी महाराज कहते हैं कि—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ मनु० १॥ ५॥

भाषार्थ—यह जगत् प्रलयकाल में न जानने के योग्य लक्षण में भी न आने के काबिल, तर्क से भी न जानने योग्य अज्ञात रूप में सब ओर से सोये हुओं की भांति प्रकृति में लीन था ॥ १ ॥

इस पर कुल्लूक भट्ट लिखते हैं कि—

तमः शब्देन गुणवृत्या प्रकृतिर्निर्दिश्यते । तम इव तमः । यथा तमसि लीनाः पदार्था अध्यक्षेण न प्रकाश्यन्ते एवं प्रकृति लीना अपि भावा नावगम्यन्ते इति गुण योगः । प्रलय काले सूक्ष्म रूपतया प्रकृतौ लीनमासीदित्यर्थः ॥५॥

भाषार्थ—यहां तम शब्द से गुण वृत्ति से प्रकृति की तरफ संकेत हैं। जैसे अन्धेरे में लीन पदार्थ नज़र नहीं आते वैसे ही प्रकृति में लीन पदार्थ भी जाने नहीं जाते। यही अंधेरे तथा प्रकृति में समान गुण होने से प्रकृति को भी तम कहते हैं। प्रलय काल में सूक्ष्म रूप से यह जगत् प्रकृति में लीन था यह अर्थ है। इस पर व्यास जी कहते हैं कि—

सत्व क्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं विद्धि सूक्ष्मयोः
सृजतेऽत्र गुणानेक एको न सृजते गुणान् ॥३३॥
पृथग् भूतौ तु प्रकृत्या संप्रयुक्तौ च सर्वदा
यथा मत्स्योऽद्भिरन्यः स्यात् संप्रयुक्तो भवेत्तथा ॥ ३४॥
(महा० शान्ति० अ० २०५)

भाषार्थ—प्रकृति में तथा क्षेत्रज्ञ दोनों सूक्ष्मों का यह भेद जान। एक तो गुणों को पैदा करता है। दूसरा गुणों को पैदा नहीं करता ॥३३॥ ये दोनों प्रकृति से भिन्न हैं और सदा मिले रहते हैं। जैसे मछली जल से भिन्न है किंतु जल से मिली रहती है ।३४।

इस प्रकार से ईश्वर जीव प्रकृति तीनों स्वरूप से अनादि तथा, व्याप्य व्यापक भाव से मिले रहते हैं। स्वरूप से अनादि काल से भिन्न हैं तथा अनंत काल तक भिन्न रहेंगे ।

१५८ (प्रश्न)—"नासदासीत्" "नमृत्युरासीत्" "ऋ० १०।१२९।१-२" इन दो मन्त्रों से प्रकृति जीव का अभाव होकर केवल ईश्वर सत्ता का प्रलय में होना सिद्ध है। इसके ऊपर से ही वेद ने ईश्वर को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" माना है। पृ० २२३ पं० ६ ।

उत्तर—वेद ईश्वर को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" नहीं मानता। अपितु नित्य प्रकृति को संसार का उपादान कारण तथा ईश्वर को संसार का निमित्त कारण मानता है। और ईश्वर जीव प्रकृति तीनों ही स्वरूप से भिन्न अनादि काल से अनन्त काल तक कायम रहते हैं। आप ने जो दो मंत्र दिये हैं। इस स्थान में इस विषय के सात मंत्रों का सूक्त है।

जिनका मज़मूई तौर पर प्रकरणानुसार अर्थ लगाने से

ईश्वर जीव तथा प्रकृति तीनों अनादि सिद्ध होते हैं। आपने केवल दो मंत्र लिख कर मनमाना अर्थ करके प्रकरण विच्छेद किया। लीजिये हम आपके सामने इस सारे सूक्त का संगत अर्थ करके बतलाते हैं—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो-यत्। किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ॥१॥

भावार्थ—(तदानीं) उस समय (न असत् आसीत्) अभाव न था (नो सत् आसीत्) भाव पदार्थ प्रकट न था (रजः न आसीत) स्थूल मिट्टी न थी (यत् परः व्योम। नो) खाली स्थान भी न था। उस समय (कुह) कहां (किम्) क्या (आवरीवः) ढका हुआ था और (कस्य शर्मन्) किस के आश्रय से क्या था (किं) क्या (गहनं गभीरम्) बड़ा गंभीर (अम्भः) पानी सा उस समय (आसीत्) था ॥१॥

न मृत्युरासीत् अमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः। आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किंचनास ॥२॥

भावार्थ—उस समय मृत्यु न था। क्योंकि अमृत प्रकट न था। रात्री और दिन के विभाग का कोई ज्ञान न था। उस समय वह एक आत्मा प्रकृति के साथ प्राण वायु के बिना ही प्राण रूप में था। उससे भिन्न निश्चय से कोई भी श्रेष्ट नहीं था ॥२॥

तम आसीत्तमसा गूढ़मग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्। तुच्छ्येनाभ्यपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥३॥

भाषार्थ—आरंभ में अंधकार से व्यापी हुई मूल प्रकति थी। और यह सब जगत् अज्ञेय अवस्था में जल के समान एकाकार था। जब शून्यता से यह व्यापक प्रकृति ढकी हुई थी। उस समय ज्ञान मय तप की महिमा से वह एक बन गया ॥३॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसोरेतः प्रथमं यदासीत्। सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

भाषार्थ—इस पूर्व समय में मन का वीर्य जो पहिले था उसके ऊपर काम अर्थात् संकल्प हुआ। ज्ञानी लोगों ने हृदय में बुद्धि से ढूंढ़ कर जान लिया कि असत् में सत् का भाईपन है। अथवा असत् में सत् बंधा है ॥ ४ ॥

तिरश्चीनो विततोरश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि
स्विदासीत्। रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा
अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—इन तीनों का किरन तिरछा फैला है। नीचे भी आश्चर्य्यकारक रीति से है और ऊपर भी वैसा ही आश्चर्य्यकारक है। वीर्य का धारण करने वाले जीव थे, बलशाली महान् जीव थे। इधर आत्मा की धारणशक्ति अथवा प्रकृति थी और परे प्रयत्न का बल था ॥ ५ ॥

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं
विसृष्टिः। अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद
यत आबभूव ॥ ६ ॥

भाषार्थ—वास्तव रूप में कौन जानता है। और कौन इस विषय में कह सकता है कि कहां से बनी और कहां से यह विविध प्रकार की सृष्टि हुई है। इस की उत्पत्ति के पश्चात् सूर्य

अग्नि आदि दिव्य पदार्थ बने हैं। अब कौन जान सकता है कि जिससे यह संसार बना है ॥ ६ ॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
योऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अंग वेद यदि वा न वेद ॥ ७ ॥
(ऋग्वेद १० । १२६)

भाषार्थ—जिससे यह विविध प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई वह क्या इसको धारण करता है। या नहीं। परम अगाध आकाश में इसका जो अधिष्ठाता है। वह निश्चय से जानता है वा नहीं ॥ ७ ॥

इन मन्त्रों को मजमूई तौर से पढ़ने से साफ साबित हैं कि ईश्वर जीव तथा प्रकृति तीनों परस्पर भिन्न अनादि स्वरूप हैं। इसी बात को आपके यहां गरुड़ पुराण उत्तर खण्ड ब्रह्मकांड अध्याय २८ में स्पष्ट वर्णन किया है। कि—

जीवश्च सत्यः परमात्मा च सत्यस्तयोर्भेदः
सत्ये एतत्सदापि। जडश्च सत्यो जीवजडयो
श्चभेदो भेदः सत्यः किंच जडेशयोर्मिदा ॥ ६९ ॥
भेदः सत्यः सर्व जीवेषु नित्यं सत्या जडानांच
भेदाः सदापि। एतत्सर्वं यदि मिथ्या भवेत्तु तदा
त्वसौ दशतु मां ह्यहीन्द्रः ॥ ७० ॥
(गरु० उत्तर० ब्रह्म० अ० २८)

भाषार्थ—जीव सत्य है और परमात्मा सत्य है। और उन का भेद भी यह सदा से सत्य है। जड सत्य है, जीव जड का भेद सत्य है। और जड और ईश्वर का भेद सत्य है ॥ ६९ ॥ सारे जीवों में सदा से भेद सत्य है और सदा ही जडों में

परस्पर भेद सत्य हैं। यदि यह सब कुछ मिथ्या हो तो वह सर्प राज मुझको काट खाये॥ ७० ॥ आशा है कि अब "अभिन्न-निमित्तोपादान कारण" का खब्त आपके दिमाग़ से अवश्य ही निकल जावेगा।

१२६ (प्रश्न) "आत्मैवेदमग्रे आसीत् इत्यादि शत पथ १४।४।२।१" से सिद्ध है कि इसी ब्रह्म से समस्त संसार जड चेतन की उत्पत्ति हुई। पृ० २२४ पं० ६

उत्तर—आप की प्रतिज्ञा तो यह है कि वेद ब्रह्म को संसार का "अभिन्न निमित्तो पादानकारण" मानता है। किंतु आप प्रमाण दे रहे हैं शत पथ का। जोकि वेद नहीं है। और फिर शत पथ का भी आपने पूरा पाठ दर्ज नहीं किया। अधूरा पाठ देकर मनमाना अर्थ कर डाला। लीजिये हम शत पथ का पूरा पाठ और ठीक २ अर्थ नीचे दर्ज करते हैं—

आत्मैवेदमग्र आसीत्। पुरुषविधः सोऽनुवीक्ष्य नान्यदा त्मनोऽपश्यत् सोऽहमस्मीत्यग्रेव्याहरत्ततोऽहंनामाऽभ वत्तस्मादप्येतर्ह्यामीत्रतोऽहमयमित्येवाग्रे उक्त्वाथान्य न्नाम प्रब्रूते यदस्य भवति॥ शत पथ १४।४।२।१

भावार्थ—यह परमात्मा पहिले ही था। वह व्यापक था। उस ने विचारा अपने विना और परमात्मा न देखा। तब उसने "अहमस्मि" मैं हूं, यह पहिले कहा। तब से "अहं" नाम वाला हो गया। इस लिये भी तो इस संसार में यहां "अहम्" यह ही पहिले कर कह उस के पश्चात् और कोई नाम जो उसका हो बोलते हैं।

इस में परमात्मा के "अहम्" नाम की उत्कृष्टता वर्णन

की गई है। सारे पाठ में एक पद भी ऐसा नहीं है। जिसके यह अर्थ किये जासकें कि "इसी ब्रह्म से समस्त संसार जड चेतन की उत्पत्ति हुई"। न जाने आप ने यह इतना लम्बा अर्थ कहां से निकाल मारा। वेद तो ईश्वर जीव प्रकृति तीनों को अनादि मानता है। तथा इन तीनों से संसार की पैदाइश मानता है। देखिये—

त्रय: केशिन ऋतुथा विचक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्। विश्वमेको अभिचष्टे शचिभि र्ध्राजिरे कस्य ददृशे न रूपम्।

ऋ० १। १६४। ४४॥

भाषार्थ—तीन प्रकाशमय पदार्थ नियमानुसार विविध कार्य कर रहे हैं। इन में से एक वास योग्य संसार के लिये बीज डालता है। एक शक्तियों से, कर्म से, बुद्धि से संसार को दोनों ओर से देखता है। एक का वेग तो दीखता है किंतु रूप नहीं दीखता।

व्यास जी भी यही कहते हैं कि—

उभौ नित्यावावचलौ महद्भ्यश्च महत्तरौ।
सामान्यमेतदुभयोरेवं ह्यन्यद्विशेषणम् ॥ ८ ॥
प्रकृत्या सर्ग धर्मिण्या तथा त्रिगुण धर्मया।
विपरीतमतो विद्यात् क्षेत्रज्ञस्य स्वलक्षणम् ॥९॥
प्रकृतेश्च विकाराणां द्रष्टारमगुणान्वितम्।
अग्राह्यौ पुरुषावेतावलिंगत्वादसंहितौ ॥१०॥

(महा० शांति० अ० २१७)

भावार्थ—दोनों जीव तथा ब्रह्म अनादि, अचल, बड़ों से बड़े

यह दोनों में समानता है। ऐसे ही और एक दूसरे में विशेषतायें हैं ॥८॥
तीन धर्मों वाली तथा पैदा करने के धर्म वाली प्रकृति से विपरीत हैं। इससे परमात्माकी विलक्षणता जाननी चाहिये।९।
प्रकृति के विकारों को देखना निर्गुणता। ये दोनों पुरुष न मिले हुए निशान शून्य होने से अग्राह्य हैं॥१०॥

आशा है अब आप अवश्य ही मान लेंगे कि इस संसार का ब्रह्म 'अभिन्ननिमित्तोपादान कारण' नहीं है अपितु प्रकृति उपादान कारण तथा ब्रह्म निमित्त कारण है।

१६० (प्रश्न)—तस्माद्वा एतस्मादात्मन इत्यादि। तैत्ति० १ ब्रह्म वल्ली० अनु० १' में वर्णन है कि उस परमात्मा से ही आकाश आदि क्रमशः पैदा हुए। पृ० २२४ पं० १६।

उत्तर—आपने अपनी प्रतिज्ञा विरुद्ध फिर वेद का प्रमाण न देते हुए उपनिषद् का प्रमाण लिख दिया। उपनिषद् वेद नहीं हैं तथापि इस प्रमाण से भी यही सिद्ध होता है कि निमित्त कारण ईश्वर ने उपादान कारण प्रकृति से क्रमशः आकाशादि उत्पन्न किये। (विशेष देखो नं० १७) वेद, ईश्वर, जीव तथा प्रकृति को नित्य तथा भिन्न मानते हैं। जैसे कि—

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे। तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद।
ऋ० १। १६४। २२॥

भावार्थ—जिस वृक्ष में मीठा फल खाने वाले पक्षी रहते हैं। और सब सन्तान उत्पन्न करते हैं। उसी का ही मीठा फल है, ऐसा कहते हैं। जो आरम्भ में उस अपने पिता को नहीं

जानता वह उस आनन्द को प्राप्त नहीं कर सकता ॥२३॥ प्रकृति के जगत् रूपी वृक्ष पर जो मीठे फल लगते हैं उन को जीव आत्मा गण खाते हैं और उसी वृक्ष पर रह कर सन्तान उत्पन्न करते हैं। इन का पिता परमात्मा है, जो उस को जानते हैं वे बन्धन से छूट जाते हैं। परन्तु जो उस को जानने की परवाह नहीं करते वे सुख से दूर हो जाते हैं।

इसी बात को व्यास जी कहते हैं कि—

प्रोक्तं तद्व्यक्तमित्येव जायते वर्द्धते च यत्।
जीर्यते म्रियते चैव चक्षुर्भिर्लक्षणैर्गतम् ॥२९॥
विपरीतमतो यत्तु तदव्यक्तमुदाहृतम् ।
द्वावात्मानौ च वेदेषु सिद्धान्तेष्वप्युदाहृतौ ॥३०॥

(महा० शान्ति० अ० २३५)

भावार्थ—जो पूर्व कही प्रकृति प्रकट है वही पैदा होती, बढ़ती, क्षीण होती और मरती हैं। और आंखों से नज़र आती है ॥२९॥ इस के बरखिलाफ जो अव्यक्त कहा गया है वह कारण द्रव्य है। वेदों में सिद्धांत रूप से वर्णन किया गया है कि आत्मा दो हैं। अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा ॥३॥

आशा है कि अब आप का 'अभिन्न निमित्तोपादान कारण' का भ्रम दूर हो जावेगा।

१६१ (प्रश्न)—'सर्वेनिमेषा जज्ञिरे इत्यादि

यजु० ३२।२'

इस मन्त्र में काल विभाग और बिजली की उत्पत्ति ब्रह्म से बतलाई है। पृ० २२४ पं०२४

अपार्थंश्रुतिवाक्यानांदर्शयंल्लोक गर्हितम् ।
कर्म स्वरूपत्याज्यत्वमत्र च प्रतिपाद्यते ॥ २ ॥
सर्वं कर्म परिभ्रंशान्नैष्कर्म्यं तत्र चोच्यते ।
परात्मजीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते ॥ ३ ॥
ब्रह्मणोऽस्य परं रूपं निर्गुणंदर्शितं मया ।
सर्वस्य जगतोऽप्यस्य नाशनार्थं कलौयुगे ॥ ४ ॥
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम् ।
मयैव कथितं देवि ! जगतां नाश कारणात् ॥ ५ ॥

सांख्य दर्शनम् । विज्ञान भिक्षु विरचित भाष्य सहितम् । पण्डित कुल पतिना बी० ए० उपाधिधारिणा श्रीजीवानन्द विद्या सागर भट्टाचार्येण संस्कृतं प्रकाशितं च द्वितीय संस्करणं कलिकाता नगरे सरस्वती यंत्रे मुद्रितम् ।

ई० १८६३ भूमिकायां पृ० ५-६।

भाषार्थ—इस लिये पद्म पुराण में ब्रह्मयोग दर्शन को छोड़ कर दर्शनों की निन्दा भी की गई है। जैसे वहां पार्वती के प्रति शिव का वाक्य है। मायावाद झूटा शास्त्र है और वह गुप्त बोध मत है। हे देवि ! वह ब्राह्मण का रूप धारण करके मैं ने ही कथन किया है ॥ १ ॥ उसमें संसार से निन्दित श्रुति वाक्यों का झूटा अर्थ और कर्मस्वरूप का त्याग भाव प्रतिपादन किया है ॥ २ ॥ सब कर्मों से भ्रष्ट होकर निकम्मे पन का उसमें उपदेश किया गया है। परमात्मा तथा जीवात्मा का एक होना मैंने इसमें प्रतिपादन किया है ॥ ३ ॥ मैंने उसमें ब्रह्म का परम रूप निर्गुणता दिखाया है। यह काम मैंने कलियुग में सारे जगत् को नाश करने के लिये किया है ॥ ४ ॥ वेदों के अर्थ जैसा

माया वाद का महाशास्त्र वास्तव में वेद विरुद्ध है। हे देवि! यह जगत् को नाश करने के लिये मैंने ही उपदेश किया है ॥ ५ ॥ कहिये महाराज! अब तो हमारे कथन में संदेह की गुंजाइश नहीं है। आपके घर से ही आपके "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" का ज़बरदस्त खण्डन निकल आया। अब माथे पर हाथ रखकर इन पुराणों की जान को रोवें तथा यह शेर भी पढ़ते जावें कि— "इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से"

१६८ (प्रश्न.—यहां पर "नासदासीत्" प्रभृति सैंकड़ों मंत्र जो अद्वैत का प्रतिपादन करते थे वे तो छिपा लिये गये और "द्वासुपर्णा" इस एक मंत्र को लेकर द्वैत का प्रतिपादन कर दिया। पृ० २३१ पं० १६।

उत्तर—आपने सत्यार्थ प्रकाश का वह प्रकरण अपनी पुस्तक में उधृत तो किया। किंतु विवेचन करते समय तारे नज़र आने लगे। ज़रा स्वामी जी के प्रमाण और युक्तियों की विवेचना तो की होती। किंतु स्वामी जी के लेख का उत्तर देना कोई "ख़ाला जी का घर" थोड़ा ही है। हम ने यह साबित कर दिया कि "नासदासीत्" इत्यादि सूक्त के सात मंत्र मजमूई तौर से ईश्वर जीव तथा प्रकृति तीनों सत्ताओं को भिन्न २ अनादि मानते हैं। और "द्वासुर्णा" पर तो आप की लेखनी ही टूट गई। इस पर कुछ लिखने का तो आप साहस ही न कर सके। आप ये भूलते हैं कि वेद में दोनों प्रकार के मंत्र हैं। यदि वेद द्वैत तथा अद्वैत दोनों का ही प्रतिपादन करें तो न्याय के

तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तिदोषेभ्यः (न्याय)

अर्थ—जिस ग्रन्थ में झूट, परस्पर विरोध तथा पुनरुक्ति

हो वह ग्रन्थ प्रमाण के क़ाबिल नहीं होता। इस सूत्रानुसार वेद प्रमाण के क़ाबिल ही न रहेंगे। अतः हम इस बात को डंके की चोट घोषणा करते हैं कि वेदों में एक मंत्र भी ऐसा नहीं है जो ब्रह्म को जगत् का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" वर्णन करता हो। और "द्वासुपर्णा" इत्यादि अनेकों मंत्र मौजूद हैं। जो प्रकृति को जगत् का उपादान कारण ब्रह्म को निमित कारण तथा जीव को साधारण कारण वर्णन करते हुए तीनों को भिन्न तथा अनादि काल से अनन्त काल तक रहने वाला मानते हैं। अतः आपकी कल्पना सर्वथा वेद विरुद्ध और मिथ्या है।

१६६ (प्रश्न)—वेदान्त दर्शन को तो छिपा लिया और सांख्य दिखला दिया पृ० २३१ पं० २१।

उत्तर—हम यह दिखला चुके हैं कि वेदान्त भी प्रकृति को जगत् का उपादान कारण तथा ब्रह्म को निमित्त कारण मानता है। अतः वेदान्त और सांख्य में विरोध नहीं है। अपितु दोनों ही वैदिक सिद्धान्तों का निरूपण करते हैं। हां यदि आपके विचार से दोनों में विरोध है तो आप स्पष्ट रूप से घोषणा क्यों नहीं करते कि सांख्य का मत वेद विरुद्ध है। यदि सांख्य भी वेदानुकूल है तो आपको यह शिकायत फजूल है कि स्वामी जी ने वेदान्त को छिपा कर सांख्य दिखला दिया हर हालत में स्वामी जी ने आपके विचार अनुसार भी सांख्य को दिखाते हुए वैदिक सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया है।

१७० (प्रश्न)—न्याय शास्त्र परमाणुओं को नित्य मानता है। और सांख्य प्रकृति पुरुष इन दो को। इस झगड़े का भी स्वामी

अनादि वर्णन किया है। अतः यह मन्त्र आपके मत का मंडन नहीं, अपितु खण्डन करता है। और वेदान्त शास्त्र भी प्रकृति तथा जीव की हस्ती को तसलीम करता है। जैसे—

प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानु परोधात्। (वेदान्त० १।४।२३)

गुहां प्रविष्टावात्मा नाहि तद्दर्शनात्। (वेदांत १।२।११)

भाषार्थ—और प्रतिज्ञा दृष्टान्त में रुकावट न पाये जाने से प्रकृति भी जगत् कारण है। ब्रह्म से भिन्न जगत् का कोई उपादान कारण मानने पर ही प्रतिज्ञा तथा दृष्टान्त ठीक रह सकते हैं। इस लिये प्रकृति भी जगत् का कारण है यह अभिप्राय है॥२३॥ अतः करण रूप गुहा में दो आत्मा हैं क्योंकि श्रुति से ऐसा ही पाया जाता है। अतः करण रूपी गुहा में जीव और ईश्वर दोनों को विराजमान करके भिन्न वर्णन किया है यह अभिप्राय है॥११॥ अतः सिद्ध हुआ कि ब्रह्म संसार का अभिन्न निमित्तोपादान कारण नहीं है। अपितु प्रकृति उपादान करण और परमात्मा संसार का निमित्त कारण है।

१६५ (प्रश्न)—"सवै नैव रेमे इत्यादि शत० १४।४।२।४" में लिखा है कि आदि में केवल ब्रह्म ही अकेला था। पृ० २२६ पं० ३।

उत्तर—आपने अपनी प्रतिज्ञानुसार यहां भी वेद का प्रमाण न देकर शतपथ का प्रमाण दिया है। जोकि वेदानुकूल होने से ही प्रमाणित हो सकता है अन्यथा नहीं। तथापि आप ने शतपथ का भी पूरा पाठ नहीं दिया आधा चुरा लिया है। शतपथ का पूरा पाठ भी हमारे सिद्धान्त की ताईद करता है। यहां पर हम पूरा पाठ और वेदानुकूल यथार्थ अर्थ देते हैं।

सवै नैव रेमे । तस्मादेकाकीन रमते स द्वितीयमैच्छत् सहैतावानास यथा स्त्री पुमांसौ संपरिष्वक्तौ ॥४॥ (शत०१४।४।२।४)

भाषार्थ—उस ने सृष्टि रचना रूप क्रीड़ा न की। जिस कारण अकेला सृष्टि रचना रूप क्रीड़ा नहीं कर सकता। उस ने दूसरे (प्रकृति रूप उपादान) की इच्छा की वह सृष्टि के आरम्भ में (प्रकृति सहित) इस प्रकार का था जैसे स्त्री पुरुष आपस में मिले हुए होते हैं ॥४॥ कैसा साफ लेख है कि जैसे स्त्री और पुरुष वास्तव में दो शरीर होते हुए भी मिलने के पीछे अपना एक ही शरीर समझते हैं। और स्त्री पुरुष की अर्द्धांगी कहाती है और दोनों का मिला हुआ एक शरीर माना जाता है। वैसे ही परमात्मा भी पुरुष की भांति अकेला रचना नहीं कर सकता रचना के लिये उसे भी प्रकृति की इच्छा रहती है। अतः परमात्मा भी प्रकृति सहित ऐसा ही एक शरीर माना जाता है जैसे स्त्री पुरुष मिले हुये। कहिये महाराज! इस से यह कैसे सिद्ध हो गया कि अकेला ब्रह्म ही सृष्टि का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" है जबकि लिखा है कि वह प्रकृति के बिना अकेला रचना कर ही नहीं सकता। देखिये वेद क्या कहता है कि—

यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य प्रजापति स्तपसा ब्रह्मणे
अपचत्। योलोकानां विधृति र्नाभिरेषात् तेनौद
नेनाति तराणि मृत्युम् ॥ अथर्व० ४। ३५। १॥

भाषार्थ—सत्य के प्रथम प्रवर्तक प्रजापति ने अपने ज्ञान से जिस प्रकृति रूप ओदन को जीव के लिये कार्य्य में परिणित किया। और जो लोगों का विशेष धारण कर्ता और जो सब का केंद्र है उसकी उस प्रकृति के ज्ञान से मृत्यु के पार होजाऊं ॥१॥

इस मंत्र में स्पष्ट रूप से प्रकृति को संसार का उपादान कारण माना है। वेदान्त सूत्र भी ब्रह्म को संसार का उपादान कारण नहीं मानता जैसे—

कृत्स्न प्रसक्ति निरवयवत्व शब्द कोपोवा ॥ २६ ॥

भाषार्थ—जगत् को ब्रह्म का परिणाम मानने में उसके सारे देश में परिणाम की आपत्ति और निरवयव प्रतिपादक शास्त्र का विरोध होगा ॥ २६ ॥

स्वपक्षदोषाच्च ॥ २६ ॥ (वेदान्त ० २ । १ । २६-२६)

भाषार्थ—और माया वादियों के पक्ष में दोष पाये जाने से ब्रह्म कारणवाद ठीक नहीं। मायावादियों के मत में यह दोष आता है कि निराकार ब्रह्म जगत् का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" कैसे बन गया क्योंकि उक्त कारण में कोई दृष्टान्त उपलब्ध नहीं होता इसलिये मायावादियों का उक्त कथन आदरणीय नहीं ॥२६॥

१६६ (प्रश्न)—"यस्मिन् सर्वाणि इत्यादि यजु० ४० । ७" इसमें वर्णन है कि यह समस्त प्रपंच आत्मा ही है। पृ० २२६ पं० ७।

उत्तर—इस मंत्र में प्रपंच अर्थ का कहने वाला कोई शब्द नहीं है। तथा इस मन्त्र से पूर्व के तथा पीछे के सारे मंत्र ईश्वर जीव प्रकृति को भिन्न २ तथा नित्य वर्णन कर रहे हैं। आपने इस मन्त्र का मन माना प्रकरण विरुद्ध अर्थ किया है। देखिये प्रकरणानुसार ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥६॥

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥
स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छा-
श्वती भ्यः समाभ्यः ॥८॥ (यजु० ४०)

भावार्थ—जो सब प्राणियों को आत्मा में और आत्मा को सब प्राणियों में देखता है, तब वह संशय में नहीं पड़ता ॥६॥ और जिस ज्ञानी की दृष्टि में सब प्राणी अपने समान हैं उस एक ज्ञा देखने वाले में शोक और मोह क्या ॥७॥ वह परमात्मा व्यापक, शीघ्रकारी, शरीर रहित, व्रण शून्य, नस-नाड़ी बंधन से रहित, शुद्ध, पाप शून्य, सर्वज्ञ मन का ज्ञाता, श्रेष्ठ तथा नित्य है। उस परमात्मा ने अपनी नित्य प्रजा जीवों के लिये अनेक प्रकार के पदार्थों को रचा है ॥८॥ कहिये प्रकरण में ईश्वर जीव प्रकृति तीनों का वर्णन मौजूद है या नहीं। फिर केवल एक मन्त्र का प्रकरण के विरुद्ध मन माना अर्थ करके स्वार्थ सिद्धि करना ईमानदारी में दाखिल नहीं है। देखिये वेदान्त शास्त्र भी इस जगत् को आत्मा का प्रपंच नहीं कहता जैसे—

आत्म कृतेः परिणामात् ॥ वेदान्त० १।४।२६ ॥

भाषार्थ—परमात्मा के यत्न तथा जगत् रूप परिणाम के पाये जाने से भी उक्त अर्थ की सिद्धि होती है। परमात्मा के यत्न और प्रकृति के परिणाम से यह जगत् उत्पन्न होता है। इस प्रकार प्रकृति को परिणामी उपादान कारण ब्रह्म को कूटस्थ नित्य होने से केवल निमित्त कारण वर्णन किया गया है ॥ २६ ॥

इस से सिद्ध है कि संसार का उपादान कारण प्रकृति

का एक दूसरे से मेल रहता है ॥ ३९ ॥ वह दोनों प्रकृति से भिन्न हैं। और सदा मिले रहते हैं। जैसे मछली और जल मिले हुए रहते हैं। वैसे ही जीव और परमात्मा मिले रहते हैं ॥४० ॥ आशा है अब आप ब्रह्म को संसार का "अभिन्ननिमित्तोपादान कारण" मानने की ग़लती न करेंगे।

१६२ (प्रश्न)—तदेवाग्नि इत्यादि यजु० ३२। १" इस मन्त्र में अग्नि आदित्य आदि सब को ही ब्रह्म बतलाया है। पृ० २२५ पं० ७।

उत्तर—इस मन्त्र में एक ब्रह्म के गुण कर्म स्वभाव से अनेक नामों का वर्णन है। यहां अग्नि और आदित्य; ये ब्रह्म के नाम हैं, यह बतलाया है। यह नहीं कहा कि अग्नि आदि परमात्मा है। (देखो नं० १९) इस मन्त्र में प्रकृति तथा जीव का निषेध क़तई नहीं किया गया। वेद ईश्वर जीव तथा प्रकृति को भिन्न २ तीनों को अनादि मानता है। जैसे—

ये अर्वाङ् मध्य उतवा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति।
आदित्यमेव ते परिवदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृत्तं च हंसम्।
अथर्व० १०।८।१७॥

भाषार्थ—जो विद्वान् इस समय बीच में अथवा पूर्वकाल में पुरातन वेद के जानने वाले का सब ओर वर्णन करते हैं। वे सब मानो अखंडनीय एक रस प्रभु की तथा दूसरे ज्ञान स्वरूप जीव की और त्रिगुणात्मक प्रकृति की पूर्णतया स्तुति करते हैं॥ इसी सिद्धान्त को व्यास जी भी प्रतिपादन करते हैं। कि—

परिद्रष्टा गुणानांच परिस्रष्टा यथातथम्।
सत्त्व क्षेत्रज्ञयोरेतदन्तरं विद्धिसूक्ष्मयोः ॥२२॥

सृजतेऽत्रगुणानेक एको न सृजते गुणान् ।
पृथग् भूतौ प्रकृत्या तौ संप्रयुक्तौ च सर्वदा ॥२३॥
यथा मत्स्योऽद्भिरन्यः स्यात् संप्रयुक्तौ तथैव तौ ।
मशकोदुम्बरौ वापि संप्रयुक्तौ यथा सह ॥२४॥
इषीका वा यथा मुंजे पृथक् च सह चैव च ।
तथैव सहितावेतावन्योऽन्यस्मिन् प्रतिष्ठितौ ॥२५॥
(महा० शांति० अ० २४७)

भाषार्थ—गुणों का देखने वाला तथा गुणों का यथा योग्य करने वाला जीव और ईश्वर दोनों सूक्ष्मों में यह भेद जानना चाहिये ॥२२॥ यहां एक तो गणों अर्थात् कर्मों को करता है तथा एक कर्मों को नहीं करता। ये दोनों प्रकृति से भिन्न हैं। और दोनों सदा मिले रहते हैं ॥२३॥ जैसे मछली पानी से भिन्न है। किंतु पानी तथा मछली मिले रहते हैं। जैसे मच्छर तथा गूलर आपस में साथ मिले रहते हैं ॥२४॥ सरकंडे की तीली अपने छिलके मुञ्ज में जैसे पृथक् भी है और इकट्ठी भी है। वैसे ही ये दोनों जीव तथा ईश्वर इकट्ठे एक दूसरे में प्रतिष्ठित हैं ॥२५॥

कहिये महाराज! अब तो आप ईश्वर को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" न मानेंगे।

१६३ (प्रश्न)—"पुरुष एवेदमित्यादि यजु० ३१।२" इस मन्त्र में भूत भविष्यत् वर्तमान सब जगत् को ही ब्रह्म बतलाया है। पृ० २२५ पं० १२।

उत्तर—इस मंत्र में भूत भविष्यत् वर्तमान सब को ब्रह्म नहीं कहा गया, अपितु यह बतलाया गया है कि भूत भविष्यत् और वर्तमान सब जगत् का बनाने वाला परमात्मा है।

महीधर ने भी यह अर्थ किया है कि ईश्वर सब का स्वामी है। इस मन्त्र में प्रकृति तथा जीव की हस्ती का निषेध नहीं अपितु उनका स्वामी ईश्वर को प्रतिपादन किया गया है। जिससे तीनों अनादि सिद्ध होते हैं। मन्त्र का विशेष अर्थ (देखें न० २२) वेद सब स्थानों में ईश्वर जीव तथा प्रकृति तीनों को परस्पर भिन्न अनादि मानता है। जैसे कि "द्वा सुपर्णा सयुजा" इत्यादि में स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया है (देखो नं० १०) आपका ब्रह्म को संसार का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" मानने का सिद्धान्त सर्वथा वेद विरुद्ध होने से मिथ्या ही है। वेद के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए व्यास जी कहते हैं कि—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एवच।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥१६॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥१७॥

(महा० भीष्म० अ० ३६)

इस संसार में दो पुरुष हैं एक क्षर दूसरा अक्षर। क्षर ये सारे भूत अर्थात् पांच स्थूल तत्त्व हैं। और अक्षर वह है जो प्रकृति में वास करता है॥ १६॥ एक और दूसरा उत्तम पुरुष है जिसको परमात्मा कहते हैं। जो तीनों लोकों में प्रवेश करके उनको धारण करता है। और स्वयं कभी नाश नहीं होता॥ १७॥ यहां पुरुष से जीव पुरुषोत्तम से परमात्मा तथा तीन लोक और सब भूतों से स्थूल तथा सूक्ष्म प्रकृति मुराद है। जो कि तीनों स्वरूप से भिन्न अनादि है।

१६४ (प्रश्न)—"एकः सुपर्णः इत्यादि ऋ० १०।११४।४०"

इस मन्त्र में समस्त जगत् की प्रलयकाल में ब्रह्म में ही लीनता बतलाई है। पृ० २२५ पं० २०।

उत्तर—आप का अर्थ क़तई कल्पित है। यह मन्त्र ब्रह्म का प्रतिपादन ही नहीं करता अपितु जीव का ही प्रतिपादन करता है। इस मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "विश्वेदेवाः" अर्थात् समस्त देवता है। ईश्वर केवल एक है उसे "विश्वेदेवाः" नहीं कहा जा सकता, जीव अनन्त हैं अतः उनही को विश्वेदेवाः से वर्णन किया गया है। फिर मन्त्र का अन्तिम भाग जिसका अर्थ है। "उसे माता चूम रही है और वह माता को चाट रहा है" ईश्वर में घटता ही नहीं।

क्योंकि ईश्वर तथा प्रकृति का माता पुत्र का सम्बन्ध नहीं अपितु स्व स्वामी सम्बन्ध है। हां जीव के साथ प्रकृति का माता पुत्र का सम्बन्ध कहा जा सकता है। अतः निश्चित् रूप से यहां ईश्वर का वर्णन नहीं अपितु जीवात्मा तथा प्रकृति का वर्णन है। जैसे कि—

> एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश स इदं विश्वं
> भुवनं विचष्टे। तं पाकेन मनसा पश्यमन्तितः
> तं माता रेळिह स उ रेळिह मातरम्॥ ऋ० १०। ११४।४॥

भावार्थ—एक सुपर्ण पक्षी है वह इस संसार अन्तरिक्ष के समुद्र में आया है वह इस संपूर्ण संसार को विविध प्रकार से देखता है। इसका मज़ा लेता है। परन्तु उसे परिपक्व ज्ञान वाले मन से समीपता से देखा है। तो मैं देखता हूं कि उसे माता चूम रही है और वह माता को चाट रहा है॥४॥ इस मन्त्र में पक्षी शब्द से जीवात्मा को तथा माता शब्द से प्रकृति को नित्य

दयानन्द जी फैसला न कर सके। पृ० २३२ पं० ७।

उत्तर—जहां न्याय प्रमाणुओं को नित्य मानता है वहां जीव तथा ब्रह्म दोनों का ही आत्मा शब्द से प्रतिपादन करता है। प्रमाणु तथा प्रकृति दो वस्तु नहीं हैं जहां पर न्याय, अग्नि, वायु, जल, पृथिवी के प्रमाणु तथा आकाश को विभू कह कर पांच तत्वों का वर्णन करता है वहां सांख्य इन ही पांच तत्त्वों को पंचतन्मात्रा कह कर इनके मजमूए को प्रकृति कह देता है। और सांख्य पुरुष शब्द से जीवात्मा तथा परमात्मा का वर्णन करता है जैसे—पुरुष बहुत्वं व्यवस्थातः ॥सांख्य० ६। ४५॥

भाषार्थ—यह निश्चय है कि जीव बहुत हैं। इससे जीवों का तथा—समाधि सुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता ॥सांख्य० ५। ११६॥

अर्थ—जीव को समाधि सुषुप्ति तथा मोक्ष में ब्रह्म के स्वरूप का अनुभव होता है। इस से परमात्मा का प्रतिपादन करता है। सारांश यह कि न्याय और सांख्य दोनों ही ईश्वर जीव प्रकृति तीनों को अनादि तथा जगत का कारण मानते हैं। अतः दोनों में विरोध नहीं है अपितु दोनों वैदिक सिद्धान्तों का निरूपण करते हैं और यही स्वामी दयानन्द जी का फैसला है।

१७१ (प्रश्न)—सांख्य प्रकृति पुरुष दो को और वेदान्त केवल ब्रह्म को मानता है सनातन धर्म के सम्प्रदाय में भी दो भेद हैं। शंकर अद्वैत और भगवान् माधव द्वैत मानते हैं। इसी प्रकार वेद "एकः सुपर्णः" इस मन्त्र से अद्वैत और "द्वासुपर्णा" इस मन्त्र में द्वैत कह रहा है। तो क्या अब हम वेदान्त दर्शन जगद् गुरु शंकराचार्य्य का सिद्धान्त और अद्वैत बतलाने वाले वेद मंत्र इन सब को मिथ्या कह कर जान बचाते हुवे धर्म्म निर्णय पर धूल डाल दें। पृ० २३२ पं० ११।

उत्तर—सांख्य प्रकृति को मानता हुआ पुरुष शब्द से ईश्वर तथा जीव को भी अनादि मानता है। तथा वेदान्त "प्रकृतिश्च" तथा "गुहा प्रविष्टावात्मानौ" इन दोनों सूत्रों में ईश्वर जीव प्रकृति को अनादि मानता है (देखो नं० १६४) और मोक्ष में भी जीव को "भोग मात्र साम्यलिङ्गाच्च। वेदान्त० ४।४। २१" अर्थात् मोक्ष में जीव केवल आनन्द भोगने में ईश्वर के सदृश होता है सत्ता उसकी भिन्न ही रहती है" इस सूत्र से ब्रह्म में लय होना नहीं मानता अतः सांख्य और वेदान्त में विरोध नहीं है। अपितु दोनों ही वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। और "एकः सुपर्णः" यह वेद मन्त्र भी ब्रह्म का वर्णन नहीं करता अपितु जीव का प्रतिपादन करता है। देखो (नं० १६४)

रही सनातन धर्म्म की बात यह तो चूं चूं का मुरब्बा है। इस में सब बादी बलग़म समा जाती है। जब मांसाहारी भी सनातन धर्म्मी और अनामिष भोजी भी सनातन धर्म्मी, शराबी भी सनातनी, मद्यत्यागी भी सनातनी, ब्रह्मचारी भी सनातनी, रंडीबाज़ भी सनातनी, राम और कृष्ण भी सनातनी, रावण और कंस भी सनातनी अद्वैतवादी शंकर भी सनातनी, तथा द्वैतवादी माधव भी सनातनी तो ऐसी सूरत में इस सनातन धर्म्म की आप कब तक खैर मनावेंगे। दो किश्तियों में सवार होने वाले की भांति सनातन धर्म यदि आज नहीं तो कल भी नहीं इस की जान बचाने के ख्याल को बालाये ताक़ रखकर आप इसकी कफ़न-काठी का प्रबन्ध करें यह तपेदिक इसके प्राण लेकर ही छोड़ेगा। रही वेद शास्त्र की बात सो न तो वेद का कोई मन्त्र ब्रह्म को

जगत् का "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" वर्णन करता है। और न ही वेदान्त दर्शन ऐसा मानता है। ऐसी सूरत में विरोध भंडार सनातन धर्म के धर्म निर्णय पर तो धूल पड़ ही चुकी अब यह धूल वेद शास्त्रों पर डालने की कृपा न करें।

१७२ (प्रश्न)—विश्व का उपादान कारण ब्रह्म है। जिस प्रकार घट मिट्टी से उत्पन्न होकर मिट्टी में ही लय होता है। इसी प्रकार यह समस्त विश्व प्रलय के पश्चात् ब्रह्म से उद्भूत होकर फिर प्रलय होने के अवसर पर ब्रह्म में मिल जाता है। बात यह सत्य है। और इसी का नाम पारमार्थिक सत्ता है।

पृ० २३२ पं० २३।

उत्तर—विश्व का उपादान कारण ब्रह्म नहीं अपितु प्रकृति है। जैसे घट मिट्टी से उत्पन्न होकर मिट्टी में ही लय होता है। वैसे ही यह समस्त विश्व प्रकृति से पैदा होकर प्रकृति में ही लय हो जाता है। ब्रह्म निमित्त कारण है। क्योंकि जैसे घट में मिट्टी के जडत्व आदि गुण मौजूद होते हैं, वैसे समस्त विश्व में चैतन्यता, सर्व व्यापकता, सर्वज्ञता, आनन्द स्वरूपता आदि गुण मौजूद नहीं हैं। अतः प्रकृति के उपादान कारण होने की बात सत्य तथा ब्रह्म के उपादान कारण होने की बात मिथ्या है। इस कारण इसका नाम परमार्थिकता नहीं अपितु मिथ्यार्थिकता है।

१७३ (प्रश्न)—संसार का व्यवहार चलाने के लिये हमको मिट्टी से भिन्न घट हांडी नांद आव मानने होंगे, ऐसा न मानें तो परमार्थिक सत्ता सत्य रहने पर भी व्यवहार नहीं चलता तथा उपास्य उपासक भाव नहीं बनता। सत्ता का व्यवहार

चलाने और जीव को अपवर्ग पद पर पहुंचाने के लिये व्यवहारिक सत्ता का मानना आवश्यकीय है। पृ० २३३ पं० ७।

उत्तर—संसार का व्यवहार भी सचाई से ही चलता है, मिथ्या कल्पनाओं से नहीं, जब हम यथार्थ रूप से यह मान लेंगे कि घट हांडी नांद आव आदि मिट्टी उपादान कारण के कार्य्य रूप हैं तो हम को इनके मिट्टी से भिन्न मानने की जरूरत ही न रहेगी। और यदि भिन्न मानेंगे तो वह मिथ्या ज्ञान होगा जो हमारे व्यवहार में मिथ्यात्व पैदा कर देगा। और हम घट आदि को मिट्टी से भिन्न स्वर्ण आदि मान कर व्यवहार में धोका खावेंगे। और वास्तविक बात के मानने से उपास्य उपासक भाव भी नहीं बिगड़ेगा। क्योंकि जीव जानता है कि मैं अनादि होने पर भी अल्पज्ञ, अल्प बल होने से सर्वज्ञ और सर्व शक्ति मान् प्रभु का उपासक हूं। और स्वयं ब्रह्म होने का मिथ्या ज्ञान होने पर न, वह ब्रह्म को उपास्य मानेगा और न उसे अपवर्ग पद पर पहुंचने की ज़रूरत महसूस होगी। क्योंकि वह जानता है कि जब मैं स्वयं ब्रह्म हूं मैं तो स्वयं मोक्ष स्वरूप हूं उपासना की क्या जरूरत है। अतः संसार का व्यवहार चलाने के लिये भी यथार्थ ज्ञान ही उपयोगी हो सकता है मिथ्या ज्ञान नहीं।

१७४ (प्रश्न)—वेद ने "नासदासीत्" प्रभृति मंत्रों में परमार्थिक सत्ता और "द्वासुपर्णा" मंत्र में व्यवहारिक सत्ता दिखलाई है। पृ० २३३ पं० २३।

उत्तर—आपके लेख से सिद्ध है कि ईश्वर मिथ्या ज्ञान का उपदेश भी करता है। और क्या ऐसा करने वाला ईश्वर

कहलाने का मुस्तहक़ हो सकता है। इस लिये चक्र में न पड़ियेगा। वेद का अटल सिद्धान्त है कि संसार का उपादान कारण प्रकृति, निमित्त कारण ईश्वर-तथा साधारण कारण जीव है। तीनों स्वरूप से भिन्न व्याप्य व्यापक भाव से एक हैं। और अनादिकाल से अनन्त काल तक कायम रहेंगे। यही पारमार्थिक सत्ता है और इसी का "नासदासीत" तथा "द्वासुपर्णा" इत्यादि मंत्रों ने वर्णन किया है। और यही व्यावहारिक सत्ता भी है। ब्रह्म का अभिन्न निमित्तोपादान कारण होना न कभी परमार्थिक सत्ता हुई, न है, न होगी और न ही इसका किसी भी वेद मंत्र ने वर्णन किया है। और न ही इसके व्यवहार में आने से मनुष्य का कल्याण हो सकता है। अपितु इस सिद्धान्त के मानने वालों को गरुड पुराण ने मूर्ख वर्णन किया है जैसा कि—

एक एव हरिः पूर्वं ह्यविद्यावशतः स्वयम्।
अनेको भवति ह्याराददादर्शं प्रतिबिंबवत् ॥१८॥
एवं वदन्ति ये मूढास्तेऽपि यांत्यधरंतमः ॥१९॥
(गरु० उत्तर० ब्रह्म० अ० २)

भाषार्थ—पहिले एक ही ब्रह्म था फिर वह स्वयं अविद्या के कारण अनेक होगया जैसे कि अनेक दर्पणों में एक सूर्य्य के अनेक प्रतिबिंब हो जाते हैं ॥१८। जो मूढ लोग ऐसा कहते हैं वे भी अत्यंत नीच गति को प्राप्त होते हैं ॥१९॥

कहिये महाराज! अब वैदिक सिद्धान्त को मान कर उच्च गति को प्राप्त करने की इच्छा है या इसी नीचगति में ही पडकर सड़ने का इरादा है।

सृष्टि

१७५ (प्रश्न)—वेद ने यजुर्वेद के ३१ अध्याय में सृष्टि कही। किंतु क्रमशः न कही। पृ० २३३ पं० २६।

उत्तर—ठीक है महाराज! ईश्वर ने तो क्रमशः नहीं कही अब आप कहेंगे। आप ईश्वर के दादा गुरु जो हुवे यदि आप ही ईश्वर की ग़लतियां न निकालें तो और कौन निकालेगा। अच्छा तो अब आप ही क्रमशः वर्णन कीजिये।

१७६ (प्रश्न)—"सवै नैव रेमे तस्मादित्यादि शत०१४।४। २।४ से १०" में से क्रमशः सृष्टि की पैदाइश लिखी है कि ईश्वर बहुत स्थूल पैदा हुवा फिर अपने दो हिस्से करके पती पत्नी बन गया। उस से मनुष्य पैदा हुवे। स्त्री लज्जा की मारी गौ, घोड़ी, गधी, बकरी, भेड, चींटी आदि बनती गई तथा पुरुष भी क्रमशः बैल, घोड़ा, गधा, बकरा, भेड, च्यूंटी आदि बन कर सन्तान पैदा करता गया। इस प्रकार सारी सृष्टि पैदा हुई। पृ० २३४ पं० २।

उत्तर—धन्य हो महाराज! अब आप सृष्टि का क्रमशः वर्णन करने लगे हैं। प्रथम तो वेद का नाम लिख कर शतपथ का पाठ नक़ल करदिया। धर्म से बतलाइये क्या शतपथ वेद है। यदि नहीं तो वेद के नाम से शतपथ का पाठ लिखना कहां की ईमानदारी है। और फिर शतपथ का भी पाठ पूरा नहीं लिखा बीच में से वाक्य के वाक्य चुरा गये। और फिर अर्थ करने में तो ईमानदारी का दिवाला ही निकाल दिया। "वह इतना मोटा हुवा" "उसने अपने मोटे शरीर के" "वह इस खेद

से छिप गई" इत्यादि, इस पाठ में से किन फिक़रों का अर्थ है। और फिर यह पता नहीं लगा कि इस पाठ के देने से आपका प्रयोजन क्या है। क्योंकि यह सारा ही पाठ आप के सिद्धान्त का खंडन तथा स्वामी जी के सिद्धान्त का मंडन करता है। लीजिये हम पूरा पाठ तथा उसका वेदानुकूल अर्थ नीचे देते हैं।

सवै नैव रेमे। तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ सम्परिष्वक्तौ ॥ ४ ॥ सइममेवात्मानं द्वेधापातयत्। ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धवृगलमिव स्व इति हस्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाश स्त्रियापूर्यत एव ता ँ समभवंत्ततो मनुष्या अजायन्त ॥ ५ ॥ सो हेयमीक्षां चक्रे कथं नु मात्मन एव जनयित्वा संभवति हन्त तिरोऽसानीति ॥ ६ ॥ सा गौरभवत्। वृषभ इतरस्ता ँ समेवाभवत्ततो गावो अजायन्त ॥ ७ ॥ वडवेतराभवत्। अश्ववृष इतरो गर्दभीतरा गर्दभ इतरस्ता ँ समेवाभवत्तत एकशफमजायत ॥ ८ ॥ अजेतराभवत्। वस्त इतरोऽविरितरो मेष इतरस्ता ँ समेव भवत्ततोऽजावयोऽजायन्तैवमेव यदिदं किं च मिथुनमा पिपीलिकाभ्यस्त त्सर्वमसृजत ॥ ९ ॥ सोऽवेत्। अहं वावसृष्टिरस्म्यह ँ हीद ँ सर्वमसृक्षीति ततः सृष्टिरभवत्सृष्टया ँ हास्यैतस्यां भवति य एवं वेद ॥ १० ॥

भाषार्थ—वह निश्चय रचना रूप क्रीडा न कर सका। इस कारण से कि अकेला रचना न कर सकता था उस ने दूसरे को चाहा वह ऐसा था जैसे स्त्री पुरुष मिले हुवे इकट्ठे ॥ ४ ॥ उसने जीवात्माओं को दो हिस्सों में तकसीम किया उससे पति पत्नि-

यां हुईं। इसलिये यह आधे की भांति मिलकियत यह कहा याज्ञवल्क्य ने इस लिये यह आकाश स्त्री से पूर्ण किया ही उस से संगम किया उससे मनुष्य पैदा हुवे ॥ ५ ॥ उसने यह इच्छा की कैसे मैं जीवात्माओं को पैदा करके सृष्टि उत्पन्न करूं, मैं गुप्त ही रहूं ॥ ६ ॥ वे गौवें हुईं बैल दूसरे आपस में मिले उन से गौवें पैदा हुईं ॥ ७ ॥ बडवा अलहदा हुई। घोड़े बैल अलहदा पैदा हुए। गधी अलहदा हुई, गधा अलहदा हुआ। वे आपस में मिले इस से एक खुर वाले पैदा हुए ॥८॥ बकरियां अलहदा पैदा हुईं। भेड़ें अलहदा हुईं भेड़े अलहदा हुए बकरे अलहदा। वे आपस में मिले। उस से बकरी, भेड़ पैदा हुए ऐसे ही यह जो कुछ जोड़े कीड़ियों तक वह सब पैदा किये। ९॥ उसने जाना मैं ही पैदा करने वाला हूं। यह सब कुछ पैदा किया उस से सृष्टि हुई और निश्चय वह इस सृष्टि में ही है। जो इस प्रकार से जानता है ॥१०॥

बतलाइये ! इसमें आप की वर्णन की हुई आंख मचोली कहा है। आपने लिखा कि वेद ने सृष्टि क्रमशः नहीं कही। यहां चांद, सूरज, सितारे, पृथिवी, जलवायु, अग्नि की पैदाइश का वर्णन ही नहीं है। क्या इन के बिना ही यह भेड़-बकरी आदि के जोड़े पैदा हो गये। इस से तो हज़ार दर्जा बेहतर यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। आप कृपया इस लेख में कोई ऐसी बात तो बतलावें जो यजुर्वेद में न हो। और यह भी बतलाने की कृपा करें कि इसमें वह कौन सी बात है जो आर्य्य समाज के सिद्धांत के विरुद्ध तथा आप के अनुकूल है। यदि नहीं तो वेद को छोड़ कर शतपथ का प्रमाण देना निरर्थक नहीं तो क्या है।

१७७ (प्रश्न)—"मनुष्या ऋषयश्च ये" वेद में यह कोई मन्त्र ही नहीं। स्वामी जी ने ताज़ा बना कर तय्यार किया है।

पृ० २३५ पं० १२।

उत्तर—सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जी ने "मनुष्या ऋषयश्चये" "यह पाठ लिख कर कोई यजुर्वेद के अध्याय का मन्त्र का ठिकाना नहीं लिखा अपितु "यह यजुर्वेद में लिखा है" ऐसा पाठ है प्रायः स्वामी जी के ग्रन्थों की शैली इस प्रकार की है कि जहां वह वेद का पाठ वेद के शब्दों में देते हैं वहां वह अध्याय मण्डल सूक्त तथा मन्त्र का नम्बर भी साथ में देते हैं। और जहां वह वेद के अभिप्राय को अपने शब्दों में रखना चाहते हैं वहां वह "यह वेद का वचन है" "वेद कहता है" "यह वेद में लिखा है" ऐसा कह कर वेद के अभिप्राय को अपने शब्दों में लिख देते हैं। ऐसा वह इसलिये करते हैं कि वेद का पूरा पाठ देने से पुस्तक बढ़ न जाये। यहां पर भी ऐसी ही बात है। यजुर्वेद के अध्याय ३१ में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। स्वामी जी ने सारा अध्याय न देकर उस का सारांश अपने शब्दों में रख दिया है। वैसे यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र ९ में यह पाठ मौजूद है कि "साध्या ऋषश्चये" अब स्वामी जी के तथा वेद के पाठ में यह फ़र्क है कि जहां वेद में "साध्याः" पाठ है वहां स्वामी जी के लेख में "मनुष्याः" लिखा गया है। यहां केवल शब्दों का फ़र्क है अर्थ में कोई फ़र्क नहीं है। दोनों का अर्थ एक ही है। महीधर ने "ये साध्याः सृष्टि साधन योग्याः प्रजापति प्रभृतय" "जो सन्तान पैदा करने के क़ाबिल प्रजापति आदि" ऐसा अर्थ किया है। अतः यहां

पर स्वामी जी का और वेद का अभिप्राय एक ही है। यह शैली केवल स्वामी जी की ही नहीं है अपितु "भाव प्रधाना आचार्य्या भवन्ति" सब आचार्य्य भाव प्रधान होते हैं अर्थात् सब आचार्य्यों की यह शैली है कि वे ग्रन्थों के भाव को अपने शब्दों में वर्णन करते हैं। उदाहरणार्थं आप वेदव्यास जी को लेवें वे महाभारत आदि पर्व अध्याय १०४ श्लोक ६ में नियोग की व्यवस्था करते हुए लिखते हैं कि 'पाणि ग्राहस्य तनय इति वेदेषु निश्चितम्" अर्थात् नियोग से पैदा हुआ पुत्र विवाहित पति का ही कहाता है यह वेदों में निश्चित है। यहां व्यास जी ने वेद के अभिप्राय को अपने शब्दों में वर्णन किया है। वरना अथर्व वेद कांड १८ सूक्त ३ मन्त्र २ में "हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदम्" यह पाठ है। और "पाणिग्राहस्य" यह पाठ कृतई 'हस्तग्राभस्य' का अनुवाद है। इस से व्यास जी की नीयत पर शक नहीं किया जा सकता। ऐसे ही स्वामी जी का पाठ "मनुष्या ऋषयश्चये" भी "साध्या ऋषयश्चये" का अनुवाद ही है। इस से स्वामी जी की नीयत पर शक नहीं किया जा सकता। यदि आप को ताज़े बने हुये मन्त्रों के देखने का शौक़ हो तो निम्न मन्त्रों की वेदों में से पड़ताल कर के बतलायें कि ये मन्त्र कौन से वेद के हैं। या व्यास जी ने ताज़ा बना कर रखे हैं।

अनृताः स्त्रिय इत्येवं वेदेष्वपि हि पठ्यते ॥७॥

महा० अनुशा० अ० १९

पिता यदाह धर्म्मः स वेदेष्वपि सुनिश्चितः ॥१६॥

महा० शांति अ० २६५

दर्पोनामश्रियः पुत्रोजज्ञेऽधर्मादितिश्रुतिः ॥२७॥
महा० शाँति० अ० ६०।

वचनं सामवेदोक्तं सन्तोजानन्ति सर्वतः ॥४॥
सूर्य्याद्धि जायते तोयं तोयात्सस्यानि शाखिनः ॥६॥
ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० २१।

मन्त्रस्तु सामवेदोक्तोऽयातयामः सबोजकः।
ॐ श्री दुर्गायै सर्वविघ्न विनाशिन्यै नम इति ॥८॥
ब्रह्मवैवर्त० खण्ड ४ अ० २७।

"ॐ सर्वेश्वरेश्वराय सर्व विघ्न विनाशिने।
मधुसूदनाय स्वाहेति" अयं मन्त्रो
महागूढ़ः सर्वेषां कल्प पादपः। साम-
वेदे च कथितः सिद्धानां सर्वसिद्धिदः ॥३७॥
ब्रह्म वैवर्त० खण्ड ४ अ० ७८।

आशा है आचार्य्यों की यह शैली आप की समझ में आ जावेगी।

१७८ (प्रश्न)—"ततो मनुष्य अजायन्त" यह शतपथ की श्रुति का टुकड़ा है। इसको यजुर्वेद के नाम से लिखा है। पृ० २३५ पं० १३।

उत्तर—प्रथम तो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि "यह यजुर्वेद के ब्राह्मण ने लिखा है" और शतपथ ही यजुर्वेद का ब्राह्मण है।

दूसरे यदि यजुर्वेद का ही लिखा हो तो क्या हानि है। क्योंकि स्वामी जी ने यजुर्वेद के इकतीसवें अध्याय का अभिप्राय अपने शब्दों में वर्णन कर दिया है। और यह

आचार्यों की शैली है (नं० १७७) तीसरे आप तो शतपथ को यजुर्वेद ही मानते हैं, आप को एतराज करने का क्या हक़ है कि यह वेद का पाठ नहीं है।

१७६ (प्रश्न)—जवान जवान मनुष्य, स्त्रियां, घोड़े, घोडियां, भैंस और भैंसे प्रभृति सब सृष्टि जवान २ पैदा हुई। नहीं मालूम ये निराकार के जवान २ जोड़े किसी के घर से भागे या आसमान से टपके। इस की पैदाइश कैसे हुई। पृ० २३५ पं० १८।

उत्तर—अमैथुनीसृष्टि में सब प्राणी मां बाप के बिना पदा होते हैं यह सिद्धान्त निर्विवाद है। अब सवाल यह है कि वे प्राणी किस अवस्था में पैदा होते हैं। इस पर स्वामी जी लिखते हैं कि 'आदिसृष्टि में मनुष्य आदि की सृष्टि। युवावस्था में हुई। क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है" इस में स्वामी जी ने जो सृष्टि के युवावस्था में युक्ति दी है। आप उस पर एक अक्षर भी नहीं लिख सके और स्वामी जी का यह लेख निराधार नहीं है अपितु वेद के आधार पर है। देखिये वेद क्या कहता है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरा वावृधुः सौभगाय।
युवापिता स्वया रुद्र एषां सुदुघापृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः॥
ऋ० ५।६०।५॥

भाषार्थ—सृष्टि के आरंभ में उत्पन्न मनुष्य ज्येष्ठ रहित कनिष्ठ रहित होते हैं। ये भाई कल्याण के लिये एक से

बढ़ते है सदा जवान सदा श्रेष्ठ कर्मा, पापियों को रुलाने वाला शक्तिशाली प्रभु इनका पिता है। और उद्यमी मनुष्यों के लिये सुकाल स्थित करने वाली प्रकृति अथवा पृथ्वी इनके लिये सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली होती है॥८॥ वेद ने कैसे स्पष्ट शब्दों में सृष्टि के आरंभ में प्राणियों की युवावस्था वर्णन की है।

आपने भी जो "सनैवरेमे" के अर्थ में पति पत्नी गौ बैल, घोड़ा घोड़ी, भेडा भेडी, बकरा बकरी, आदि के जोड़े पैदा हुए लिख कर उन के मैथुन से फिर मनुष्य, गौवें, भेड, बकरी आदि का पैदा होना लिखा है। उन जोड़ों की उस समय क्या आयु थी? यदि वे जोड़े बालक वा बूढ़े थे तो उन्हों ने मैथुन करके सन्तान कैसे पैदा की? निराकार परमेश्वर के तो जवान जोड़े प्रकृति के घर से निकल पड़े किन्तु आपके निर्गुण ब्रह्म के ये मनुष्य से कीड़ों तक मैथुन करके सन्तान पैदा करने वाले नौजवान जोड़े कहां से टपक पड़े। "छाज तो बोले छलनी क्या बोले जिसमें सत्तर छेद" पौराणिक भी जवान पैदा होने में शक कर सकते हैं जिनके सरस्वती नौजवान पैदा हुई जिसको देख कर ब्रह्मा जी विवश हो गये पार्वती ने गणेश को जवान पैदा किया जिसने ब्रह्म की दाढ़ी उखेड़ी, विष्णु को डंडे से पीटा तथा महादेव से युद्ध किया, वसिष्ठ की गौ के शरीर से नौजवान की फौज पैदा हुई जिसने विश्वामित्र से लड़ाई की दक्ष के यज्ञ को नाश करने के लिये महादेव ने जटों से नौजवान वीरभद्र को पैदा किया, नारद जी एक तालाब में स्नान करने से स्त्री बन गये, राजा तालध्वज ने विवाह कर लिया तो गर्भाधान किया तब—

ततस्त्रयोदशे वर्षे तस्या गर्भोऽभवन्महान् ॥७५॥
पंचाशत संख्यया जाता उपसर्गादि वर्जिताः ।
आरूढयौवनाः सर्वे सुताः संग्राम कोविदाः ॥७६॥
(भविष्य० उत्तर० अ० ३ श्लो० ४७ से ७७)

भावार्थ—इस के पीछे तेरहवें वर्ष में उस के बड़ा भारी गर्भ हुवा जिसमें से पचास नौजवान युद्ध विशारद लड़के पैदा हुवे ॥७५। ७६॥ कहिये कुछ और पौराणिक लीलायें सुनायें या तसल्ली होगई ।

१८० (प्रश्न)—शतपथ की समस्त श्रुति को छिपा कर "ततोमनुष्या अजायन्त" केवल इस टुकड़े को लिखना और मनमानी युवासृष्टि का पैदा होना स्वामी जी ने क्यों लिखा।
पृ० ३२५ पं० २३।

उत्तर—स्वामी जी ने प्रकरण की ज़रूरत के अनुसार वेदानुकूल पाठ को लेकर दर्ज कर दिया किन्तु शेष पाठ भी स्वामी जी के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं है। आप ने प्रकृति को नित्य सिद्ध करने वाला पाठ पांचवें मन्त्र में से आधा मन्त्र जिसमें "आकाश स्त्रियां पूर्यंत" आकाश उस प्रकृति रूपी स्त्री से पूर्ण था, छिपा लिया। नौजवान स्त्री, पुरुष, भेड़, बकरी आदि के जोड़े जिन्होंने मैथुन करके सन्तान पैदा की इस पाठ में आपने भी तसलीम किये हैं। अतः शतपथ का यह पाठ ईश्वर जीव प्रकृति को नित्य तथा सृष्टि के तीन कारण वर्णन करने से वेदानुकूल है। और आपकी कल्पनायें वेद विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

देव जाति

१८१ (प्रश्न)—"त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशा—यजु० २०। ११" इस मंत्र में तीन तथा ग्यारह और तेतीस देवताओं का वर्णन है। पृ० २३६ पं० ४।

उत्तर—यहां पर वेदों में कपोल कल्पित पौराणिक देवताओं का वर्णन नहीं है। और न ही वृहस्पति से मुराद यहां कल्पित देवताओं के गुरु से है। अपितु यहां देवता से मुराद दिव्य गुणों वाले संसार की उत्पत्ति में कारण पृथिवी आदि तेतीस देवताओं से है। और ये तीन और ग्यारह भी इन ही तेतीस में आजाते हैं। मन्त्र के यथार्थ अर्थ इस प्रकार से हैं—

त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशा सुराधसः।
वृहस्पति पुरोहिता देवस्य सवितुः सर्वे देवा
देवैरवन्तु मा॥ यजु० २०। ११॥

भाषार्थ—जो तीन प्रकार के दिव्य गुण वाले जिनमें कि बड़ों का पालन करने हारा सूर्य प्रथम धारण किया हुआ है। जिनसे अच्छे प्रकार कार्यों की सिद्धि होती वे ग्यारह तेतीस दिव्यगुण वाले पदार्थ सब जगत् की उत्पत्ति करने हारे प्रकाशमान ईश्वर के परमैश्वर्य युक्त उत्पन्न किये हुवे जगत् में हैं। उन पृथिव्यादि तेतीस पदार्थों से सहित मुझ को विद्वान् लोग रक्षा और पढ़ाया करें॥ ११॥

भावार्थ—जो पृथिवी जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ये आठ और प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म कृकल, देवदत्त, धनंजय, तथा ग्यारहवां जीवात्मा बारह महीने बिजली और यज्ञ इन तेतीस दिव्य गुण वाले

पृथिव्यादि पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव के उपदेश से सब मनुष्यों की उन्नति करते हैं वे सर्वोपकारक होते हैं ॥ ११ ॥

समस्त शास्त्रों में तेतीस देवताओं से मुराद उपरोक्त सब व्यवहार सिद्धि के लिये है। सब मनुष्यों को उपासना के योग्य तो देव एक ब्रह्म ही है। उपरोक्त समस्त लेख में प्रमाण निम्न प्रकार से है—

अथ हैनं विदग्धः शाकल्यः पप्रच्छ। कति देवा याज्ञवल्क्येति स हैं तयैव निविदा प्रतिपेदे यावन्तो वैश्वदेवस्य नि विद्यु च्यन्ते त्रयश्च त्रीच शता त्रयश्च त्रीचसहस्रेत्योमिति होवाच ॥१॥ कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति । त्रयस्त्रिंशदित्यो-मिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति षडित्योमिवि होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति त्रय इत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्कयेति द्वावित्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येति अध्यर्ध इत्योमिति होवाच कत्येव देवा याज्ञवल्क्येत्येक इत्योमिति होवाच कतमेते त्रयश्चत्रीचशता त्रयश्चत्रि च सहस्रेति ॥२॥ स होवाच महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिं शत्त्वेव देवा इति कतमेते त्रयस्त्रिंशदित्यष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या-स्त एक त्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति ॥३॥ कतमेवसव इति। अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चा-दित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदं सर्वं वसु हितमेते हीदं सर्वं वासयन्ते तद्यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥४॥ कतमे रुद्रा इति। दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्या च्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोद-यन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥५॥ कतम आदित्या इति।

द्वादशमासाः संवत्सरस्यैत आदित्या एते हीदं सर्वमाददाना यन्ति तस्मादादित्या इति ॥६॥ कतम इन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति। स्तनयित्नुदेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति कतम स्तनयित्नुरित्यशनिरिति कतमो यज्ञ इति पशव इति ॥७॥ कतमे षडिति। अग्निश्च पृथिवीच वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्चैते षडित्येह्येवेदं सर्वं षडिति ॥८॥ कतमेते त्रयो देवा इतीम एव त्रयो लोका एषु हीमे सर्वे देवा इति कतमौद्वौ देवावित्यन्नंचैव प्राणश्चेति कतमोऽध्यर्ध इति योऽयं पवत इति ॥९॥ तदाहुः। यदयमेक एव पवते अथ कथमध्यर्ध इति यद स्मिन्निदं सर्वमध्यार्ध्नोत्तेनाध्यर्ध इति कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥१०॥

(शतपथ० १४।६।६।१—१०)

भावार्थ—उस के पीछे उसको चतुर शाकल्य ने पूछा। हे याज्ञवल्क्य! देवता कितने हैं? उस ने उसी बुद्धि से प्रतिपादन किया जिस से सारे विद्वान् प्रतिपादन करते हैं—तीन और तीन सौ और तीन और तीन हज़ार ऐसा ऐसा कहा ॥१॥ कितने देव हैं हे याज्ञवल्क्य ऐसा पूछा। तेतीस हैं ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा हे याज्ञवल्क्य कितने देव हैं, छे हैं, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा हे याज्ञवल्क्य कितने देव हैं, तीन हैं, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा कितने देव हैं, याज्ञवल्क्य! दो हैं, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा कितने देव हैं याज्ञवल्क्य! डेढ़ है, ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा कितने देव हैं याज्ञवल्क्य, एक है, तो ऐसा उत्तर दिया। फिर पूछा वे कौन से तीन और तीन सौ तीन और तीन हज़ार देव हैं ॥२॥ वह बोला ये सब इनकी ही महिमायें हैं वैसे देवता तो तेतीस ही हैं। वे कौन से

तेतीस देवता हैं। आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य ये इकत्तीस, इंद्र और प्रजापति कुल तेतीस हुए॥ ३॥ कौन से वसु हैं? अग्नि, पृथिवी, वायु, आकाश, आदित्य, जल, चन्द्रमा, नक्षत्र ये आठ वसु हैं। इनका वसु नाम इस कारण से है कि सब पदार्थ इन्हीं में बसते हैं। और यही सब के निवास करने के स्थान हैं॥ ४॥ कौनसे रुद्र हैं। ग्यारह रुद्र ये कहाते हैं। जो शरीर में दश प्राण हैं अर्थात् प्राण, अपान, व्यान समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय और ग्यारहवां जीवात्मा है। क्योंकि जब ये इस शरीर से निकल जाते हैं तब मरण होने से उसके सम्बन्धी लोग रोते हैं। वे निकलते हुए उनको रुलाते हैं। इस से इनका नाम रुद्र है॥ ५॥ इसी प्रकार आदित्य बारह महीनों को कहते हैं। क्योंकि सब जगत् के पदार्थों का आदान अर्थात् सबकी आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं। इसी से इनका नाम आदित्य है॥ ६॥ ऐसे ही इन्द्र नाम बिजली का है क्योंकि यह उत्तम ऐश्वर्य की विद्या का मुख्य हेतु है और यज्ञ को प्रजापति इस लिये कहते हैं कि उससे वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा प्रजा का पालन होता है तथा पशुओं की. यज्ञ संज्ञा होने का यह कारण है कि उन से भी प्रजा का जीवन होता है॥ ७॥ कौन से छः देवता हैं—अग्नि, पृथिवी, वायु, अंतरिक्ष, आदित्य, और जल ये छः देवता हैं॥८। कौन से तीन देवता हैं—यही तीन लोक अर्थात् स्थान नाम और जन्म क्योंकि इन में ही सब देवता हैं। कौन से दो देवता अन्न और प्राण को कहते हैं। कौनसा अध्यर्ध देव है॥ ९॥ वायु का नाम अध्यर्द्ध देव इस लिये है कि वह सब का धारण और वृद्धि कर्ता है। कौन एक देव है

ब्रह्म एक देव है ऐसा कहा जाता है ॥ १० ॥

ये हैं वेद मन्त्रों में प्रतिपादित तेतीस देवता और चौंतीसवां इन सब का स्वामी महादेव ब्रह्म, बस दुनिया के समस्त पदार्थ इनही चौंतीस के अन्तर्गत आ जाते हैं। रह गए आपके फरज़ी पौराणिक देवता उनका न वेदों में वर्णन है और न वह इस क़ाबिल ही हैं कि उनका किसी भली पुस्तक में वर्णन हो सके। उदाहरणार्थ हम यहाँ पर समस्त देवताओं के गुरु वृहस्पति के जीवन की एक पौराणिक गाथा का वर्णन काफी समझते हैं। जैसे कि महाभारत में आता है कि—

अथोतथ्य इति ख्यात आसोद्धोमानृषिः पुरा।
ममता नाम तस्यासीद्भार्य्यापरम सम्मता ॥ ८ ॥
उतथ्यस्य यवीयांस्तु पुरोधास्त्रिदिवौकसाम् ।
वृहस्पतिर्वृहत्तेजा ममतामन्वपद्यत ॥ ९ ॥
उवाचममतातंतु देवरंवदतां वरम् ।
अन्तर्वत्नी त्वहं भ्रात्रा ज्येष्ठेनारम्यतामिति ॥ १० ॥
अयंच मे महाभाग कुक्षावेत्र वृहस्पते ।
औतथ्यो वेदमत्रापि षड्ङ्गं प्रत्यधीयत ॥ ११ ॥
अमोघरेतस्त्वंचापि द्वयोर्नास्त्यत्र संभवः ।
तस्मादेवंच न त्वद्य उपारमितुमर्हसि ॥ १२ ॥
एवमुक्तस्तदा सम्यग्वृहस्पतिरधोरधीः ।
कामात्मानं तदात्मानं न शशाकनियच्छितुम ॥ १३ ॥
स बभूव ततः कामी तया सार्द्धमकामया ।
उत्सृजन्तन्तुतं रेतः स गर्भस्थोऽभ्यभाषत ॥ १४ ॥

श्रोत्स्यात मागमः कामं द्वयोर्नास्तीह संभवः ।
अल्पावकाशो भगवन् पूर्वं चाहमिहागतः ॥ १५ ॥
अमोघरेताश्च भवान्न पीडां कर्त्तु मर्हसि ।
अश्रुत्वैव तु तद्वाक्यं गर्भस्थस्य वृहस्पतिः ॥ १६ ॥
जगाम मैथुनायैव ममतां चारुलोचनाम् ।
शुक्रोत्सर्गं ततो बुद्ध्वा तस्या गर्भगतोमुनिः ।
पद्भ्यामरोधयन् मार्गं शुक्रस्य च वृहस्पतेः ॥१७॥
स्थानमप्राप्तमथ तद्रेतः प्रतिहतं तदा ।
पपात सहसा भूमौ ततः क्रुद्धो वृहस्पतिः ॥ १८ ॥
तदृष्ट्वा पतितं शुक्रं शशाप स रुषान्वितः ।
उतथ्यपुत्रं गर्भस्थं निर्भर्त्स्य भगवानृषिः ॥ १९ ॥
यन्मांत्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति ।
एवमात्थ वचस्तस्मात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यति ॥ २० ॥
सवै दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत ।
वृहस्पतेर्वृहत्कीर्तेर्वृहस्पतिरिव तेजसा ॥ २१ ॥
जात्यंधोवेदवित् प्राज्ञः पत्नीं लेभे सविद्यया ॥ २२ ॥

(महा० आदि० अ० १०४)

भाषार्थ—पूर्वकालमें उतथ्य नाम का बुद्धिमान् प्रसिद्ध ऋषि था। उस की अति सुन्दरी ममता नाम पत्नी थी॥ ८॥ उतथ्य का छोटा भाई देवताओं का गुरु महान् तेजस्वी वृहस्पति ममता के पास समागम की इच्छा से गया॥ ९॥ ममता उस वागीश देवर को कहने लगी मैं तुम्हारे बड़े भाई से गर्भवती हूं इस लिये सबर कर॥ १०॥ हे वृहस्पते! यह मेरी कोख में ही महाभाग उतथ्य का पुत्र यहां भी षडङ्ग वेद

पढ़रहा है ॥ ११ ॥ और तू भी अनिष्फल वीर्य वाला है और दो की यहां गुंजाइश नहीं। इस लिये आज ऐसा होना मुनासिब नहीं, सबर करना चाहिये ॥ १२ ॥ इस प्रकार कहने पर अधीर बुद्धि बृहस्पति काम में लिप्त हुई अपनी आत्मा को रोक न सका ॥ १३ ॥ वह कामी उस अकामा के साथ प्रवृत्त हो गया उस को वीर्य छोड़ते हुवे को देख कर गर्भ में बैठा मुनि बोला ॥ १४ ॥ हे चाचा काम को मत प्राप्त हो यहां दो का रहना मुमकिन नहीं। हे भगवन् यहां स्थान बहुत कम है। और मैं पहिले आ चुका हूं ॥ १५ ॥ और आपका वीर्य भी खाली जाने वाला नहीं, मुझे कष्ट न दें। उस गर्भ वाले की बात को सुने बिना ही बृहस्पति ॥ १६ ॥ उस सुन्दर नेत्रों वाली ममता के साथ मैथुन में प्रवृत्त हो गये। वीर्य के गर्भ में गिरने के समय को जान कर गर्भ में बैठे मुनि ने बृहस्पति के वीर्य जाने के रास्ते पाओं से रोक लिया ॥ १७ ॥ रोकने से स्थान को न प्राप्त हुवा वीर्य अचानक पृथ्वी पर गिर पड़ा तब बृहस्पति क्रोध में आ गये ॥ १८ ॥ अपने वीर्य को गिरा हुवा देखा कर बृहस्पति ने क्रोध से शाप दिया। गर्भ में बैठे हुवे उतथ्य के पुत्र को धमकाते हुवे ऋषि ने कहा ॥ १९ ॥ जो तूने मुझ को ऐसे समय में जो कि सब प्राणियों को प्रिय है इस प्रकार की बात कही इस लिए तेरे में तीव्र अंधकार प्रविष्ट होगा ॥ २० ॥ इस शाप से दीर्घतमा नाम का ऋषि पैदा हुआ। जो कि बृहस्पति के समान तेज वाला था ॥ २१ ॥ जन्म से अंधा वेद का जानने वाला बुद्धिमान् दीर्घतमा विद्या के बल से धर्मपत्नी को प्राप्त हुवा ॥ २२ ॥ क्या वह यही बृहस्पति हैं। कि जिन को आप देवताओं का पुरोहित वर्णन कर रहे हैं। और जिन

का जिकर वेदों में बतला रहे हैं। और क्या "स्थाली पुलाक" न्याय से सारे ही देवता इसी टाइप के हैं। यदि इनका नाम देवता है तो न मालूम फिर राक्षस किन का नाम है। इस लिये कृपया इन पौराणिक देवताओं की करतूतों को ढके ही रक्खें और वेदों में इन का वर्णन बतला कर वेदों को कलंकित करने की कुचेष्टा से बाज़ रहिये।

१८२ (प्रश्न)—"अग्निर्देवता वातो देवता इत्यादि यजु० १४।२०" इस मंत्र में वसु ८ रुद्र ११ आदित्य १२ मरुत ७ विश्वेदेवा १३ ऐसे सब मिलाकर ५८ देवता हैं। पृ० २३६ पं० ४।

उत्तर—आपने बतलाया नहीं कि वे सात मरुत देवता और १३ विश्वे देवा कौन कौन से हैं। तथा ५८ किस प्रकार से हो जाते हैं। अग्नि, वायु, सूर्य्य, चन्द्रमा तो आठ वसुओं में शामिल हैं ही और मरुत नाम वायु का तथा वरुण नाम जल का है। यह दोनों भी वसुओं में आ गये। रहा वृहस्पति यह नक्षत्रों में होने के कारण वसु संज्ञा में आ गया विश्वेदेवा संपूर्ण देवताओं का नाम है। इस हिसाब से ये सब तेतीस में ही शामिल हो गये। इन्द्र नाम भी विजली का है वह भी तेतीस में शामिल है। अब बतावें ५८ कैसे बन गये। और फिर जब अग्नि, वायु, सूर्य्य, चन्द्र, मरुत; विश्वे देवा, वृहस्पति तथा वरुण यह सब वसु रुद्र तथा आदित्यों में ही शामिल हैं तो इन को भिन्न क्यों गिनवाया गया। अतः पता लगा कि इस मंत्र में पूर्वोक्त ३३ देवताओं से अतिरिक्त दिव्य गुणों के कारण परमेश्वर तथा विद्वानों का नाम भी देवता

वर्णन किया गया है। अतः इस मंत्र का निर्दोष ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से होगा—

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्य्यो देवता चन्द्रमा
देवता वसवो देवता रुद्रा देवता ऽऽ दित्या
देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पति
र्देवतेंद्रो देवता वरुणो देवता ॥ यजु० १४।२०॥

भावार्थ—प्रकाश स्वरूप होने से परमात्मा अग्नि देवता है। बल स्वरूप होने से परमात्मा वायु देवता है। चराचर में व्यापक होने से परमात्मा ही सूर्य्य देवता हैं। आनन्द कारक होने से परमात्मा ही चन्द्रमा देवता है। आठ वसु देवता हैं ११ रुद्र देवता हैं १२ आदित्य देवता हैं। मनन करने वाले ऋत्विगादि विद्वान् लोग मरुतदेवता हैं। सब अच्छे गुणों वाले विद्वान् मनुष्य विश्वे देवता हैं। बड़े वचन वा ब्रह्माण्ड का रक्षक परमात्मा बृहस्पति देवता हैं। ऐश्वर्य से युक्त होने से राजा इन्द्र देवता हैं। श्रेष्ठ गुणों से युक्त होने के कारण परमात्मा वरुण देवता है ॥२०॥

इस मंत्र में तेतीस देवताओं के अतिरिक्त परमात्मा तथा विद्वानों को भी देवता शब्द से प्रतिपादन किया गया है। विद्वानों के देवता होने में निम्न प्रमाण उपस्थित हैं।

(अ) देवाः पितरः पितरो देवाः ॥ अथर्व० ६। १२३।३॥

(आ) वसून् वदन्ति तु पितृन् रुद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपिता महास्तथादित्या श्रुतिरेषा सनातनी ॥ मनु० ३।२८४

(इ) अन्न दाता भय त्राता पत्नी तातस्तथैव च।
विद्या दाता जन्म दाता पंचैते पितरो नृणाम् ॥१५३॥

(ब्रह्मवैवर्त० ब्रह्म० अ० १०)

(ई) द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति । सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवा नुपैति ॥ शत० १।१।१।४॥

(उ) उशिजो वह्नितमानिति विद्वा ७ सोह देवास्तस्मादाहोशिजो वह्नितमानिति ॥ शत० ३।७।३।१०॥

(ऊ) देवा योगिनः कपिलादयश्च ॥ उव्वट यजु० ३१।९॥

(ऋ) एवं योगिनोऽपि दीपनाद्देवा ॥ उव्वट यजु० ३१।१६॥

(ॠ) देवि देवश्च देवी च समागम्यमदन्तरे ।
मंत्रयेते ध्रुवं किंचिदभिषेचन संहितम् ॥१५॥
(वाल्मी० अयो० स० १६)

(लृ) धर्म्मं नित्या यथाकालमग्न्यागार परा भव ।
देवि देवस्य पादौ च देववत् परिपालय ॥१८॥
(बाल्मी० अयोध्या० स० ५८)

भाषार्थ—देवों का नाम पितर तथा पितरों का नाम देव है, (अ) २५ वर्ष के ब्रह्मचारी को पिता ४४ वर्ष वाले को पितामह तथा ४८ वर्ष वाले को प्रपितामह कहते हैं। अतः पितर होने से देव हुए, (आ) अन्न दाता, भय त्राता, पत्नीतात, विद्या दाता, जन्म दाता ये पांच पितर होने से देवता हुए, (इ) यह दो हैं तीसरा नहीं है। सत्य और झूठ। सत्य ही देवता हैं, झूठे मनुष्य हैं, यह मैं झूठ से सत्य को प्राप्त होता हूं, सो मनुष्यों से देवताओं को प्राप्त होता हूं, (ई) विद्वानों का नाम देवता है, (उ) कपिल आदि योगी देवता हैं, (ऊ) इस प्रकार से योगी भी दीप्तिमान् होने से देव हैं, (ऋ) जब दशरथ ने राम को कैकेयी के महल में बुलाया तो राम सीता से बोले। हे

देवि सीते देव दशरथ तथा देवी कैकेयी इकट्ठे होकर मेरे पीछे से अभिषेक के विषय में कुछ मशविरा कर रहे हैं, (ऋ) राम ने सूत के द्वारा कौशल्या को संदेश दिया। हमेशा अग्निहोत्र करती हुई धर्म पर दृढ़ रहना हे देवि कौशल्ये देव दशरथ के पाओं को देव परमात्मा की भांति पूजना (लृ)

इन प्रमाणों में सर्वत्र विद्वानों के लिये देव शब्द पाया है।

श्रीमान् जी ! इस मंत्र में पौराणिक देवताओं का वर्णन नहीं है। न मालूम आप इन कल्पित पौराणिक देवताओं की क्यों वकालत कर रहे हैं। महाराज ! जाने दीजिए पौराणिक देवता। इस योग्य ही नहीं कि वे धर्म्म ग्रन्थों में स्थान प्राप्त कर सकें। ज़रा उनका स्वरूप देखिये—

अग्नि—पावकोऽपि जगच्छ्रेष्ठो मोहितः शिवमायया।
कामाधीनः कृतो गर्वात्ततस्तेनैव चोद्धृतः ॥१९॥

वायु—जगत् प्राणोऽपि गर्वेण मोहितः शिवमायया।
कामेन निर्जितो व्यास चक्रे ऽन्यस्त्री रतिं पुरा ॥२०॥

सूर्य्य—चण्डरश्मितु मार्तण्डो मोहितः शिवमायया।
कामाकुलो बभूवाशु दृष्ट्वाश्वीं हय रूपधृक् ॥२१॥

चन्द्र—चन्द्रश्च मोहितः शंभोर्मायया काम संकुलः।
गुरु पत्नीं जहाराथ पुतस्तेनैव चोद्धृतः ॥२२॥

वरुण—पूर्वंतु मित्रावरुणौ घोरे तपसि संस्थितौ।
मोहितौ तावपि मुनो शिव माया विमोहितौ ॥२३॥
उर्वशीं तरुणीं दृष्ट्वा च स्कंभोभौ बभूवतुः।
मित्रः कुंभे जहौ रेतो वरुणोऽपि तथा जले ॥२४॥
ततः कुंभात्समुत्पन्नो वसिष्ठो मित्र संभवः।
अगस्त्यो, वरुणाज्जातो बडवाग्नि समद्युतिः ॥२५॥

बृहस्पति—बृहस्पति मुंनिवरो मोहितः शिवमायया ।
भ्रातृपत्न्या वशीरेमे भरद्वाजस्ततोऽभवत ॥३८॥
इन्द्र—इन्द्रस्त्रिदशयो भूत्वा गौतमस्त्री विमोहितः ।
पापं चकार दुष्टात्मा शापं प्राप्त मुनेस्तदा ॥१८॥
विश्वे देवा—कामेन स्व सहायेन प्रबलेन मनो भुवा ।
सर्वः प्रधर्षितो वीरो विष्णवादि प्रबलोऽपि हि ॥१६॥

भाषार्थ—अग्नि कामाधीन हुआ, वायु ने परस्त्री गमन किया, सूर्य्य ने घोड़ी से मैथुन किया, चन्द्रमा ने गुरु पत्नी से मैथुन किया, वरुण का वीर्य उर्वशी को देख स्खलित हो गया, बृहस्पति ने भाई की स्त्री से भोग किया, इन्द्र ने गौतम की स्त्री से भोग किया, सब को कामाधीन होना पड़ा।

यह है आपके पौराणिक देवताओं की करतूतें। जिनकी वकालत में ईमानदारी को भी आप धत्ता बतला रहे हैं। प्रार्थना यही है कि इस आचार हीन देवता समूह को सनातन धर्म्म मंदिर में ही निमन्त्रित कीजिये, इन श्लोकों को वेद मन्त्रों पर मढ़ने की कृपा न करें।

१८३ (प्रश्न)—'देवानां पत्नीरित्यादि अथर्व० ७।४६।१' इस मन्त्र में देवताओं की पत्नियों का वर्णन है। पृ० २३६ पं० १७।

उत्तर—यहां पर आपके पौराणिक देवताओं की पत्नियों का नाम मात्र भी नहीं है। अपितु विद्वानों की धर्म्म पत्नियों का वर्णन है। देखिये इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार से है।

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये। याः पार्थिवासो या अपामपि व्रतेता नो देवीः सुहवा शर्म्म यच्छन्तु ॥ अथर्व० ७।४६।१।

भाषार्थ—जो उपकार की इच्छा करती हुई विद्वानों वा राजाओं की पत्नियां हमें तृप्त करें और बल वा स्थान के लिये और अन्न देने वाले संग्राम जीतने के लिये हमारी अच्छी प्रकार रक्षा करें और भी जो पृथिवी की रानियां जलों के समान उपकार वाली हों वे सब सुन्दर बुलावे योग्य देवियां हमें घर वा सुख देवें ॥२॥

आपको पौराणिक कल्पित देवता तथा उनकी पत्नियों के सिद्ध करने का व्यर्थ ख़बत समाया हुआ है। इन देवताओं की पत्नियों के वर्णन से भला संसार का क्या उपकार होगा। यदि आपको इनके वर्णन देखने का शौक है तो देखिये—

या तु ज्ञान मयीनारी वृणोद्यं पुरुषं शुभम्।
कोऽपि पुत्रः पिता भ्राता स च तस्याः पतिर्भवेत ॥२६॥
स्वकीयांच सुतां ब्रह्मा विष्णुदेवः स्वमातरम्।
भगिनीं भगवाञ्छंभु गृंहीत्वा श्रेष्ठतामगात् ॥२७॥
इति श्रुत्वा वेदमयं वाक्यं चादिति संभवः।
विवस्वान् भ्रातृजां संज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठवानभूत ॥२८॥

(भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ अ० १८)

भाषार्थ—जो ज्ञान वाली स्त्री हो वह चाहे किसी शुभ पुरुष को वर ले। वह चाहे उसका पुत्र लगता हो चाहे पिता वा भाई लगता हो वही उसका पति बन जाता है ॥२६॥ ब्रह्मा ने अपनी पुत्री को विष्णु ने अपनी मां को तथा महादेव ने अपनी बहिन को पत्नी ग्रहण करके श्रेष्ठता को प्राप्त किया ॥२७॥ इस वेद अनुकूल वाणी को सुन कर सूर्य्य ने भी भतीजी से विवाह करके श्रेष्ठता को प्राप्त किया ॥२८॥

यह है पौराणिक देवता तथा उनकी पत्नियों की हक़ीक़त कृपया इस पौराणिक शिक्षा तथा तदनुकूल आचरण को सनातन धर्म्म की चार दीवारी तक ही महदूद रक्खें तो बेहतर है।

१८४ (प्रश्न)—इन्द्राणीमासु इत्यादि अथर्व० २०। १२६। ११" इस मंत्र में इन्द्र देवता की पत्नी इन्द्राणी के सौभाग्य का वर्णन है। पृ० २३७ पं० ४।

उत्तर—इस मंत्र में न तो इन्द्र की पत्नी का वर्णन है। और न उसके सौभाग्य की चर्चा है, अपि तु ऐश्वर्यवान् पुरुष की शक्ति का वर्णन है देखिये मंत्र के अर्थ यों हैं—

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरं चनजरसा मरते पतिर्वि
श्वस्मादिन्द्र उत्तरः॥ अथर्व० २०।१२६।११

भाषार्थ—इन चलायी गई प्रजाओं के बीच बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष की विभूति वा शक्ति को बड़ी भगवती ऐश्वर्य वाली मैंने सुना है। इस विभूति का पालन करने वाला यह मनुष्य दूसरे प्राणियों के समान वयो हानि से नहीं मरता है। बड़े ऐश्वर्य वाला मनुष्य सब प्राणी मात्र से उत्तम है॥ ११॥

इन्द्र तथा इन्द्र-पत्नी के वर्णन से आप क्या लाभ समझते हैं। क्या इन्द्र देवता कहलाने के क़ाबिल था। हम आपको पौराणिक इन्द्र की एक और करतूत सुनाते हैं—

सुचन्द्रस्य गृहे रंभा ललाभ जन्म भारते॥ ४४॥

नाना कौतुक संयुक्तां ददौ जन्मेजयायच॥ ४६॥

एकदा नृपति श्रेष्ठश्चाश्वमेधेनदीक्षितः॥ ४७॥

अश्व संगोपनं कृत्वा तस्थौ शक्रश्च मंदिरे।
यज्ञाश्वं रुचिरं मत्वा कौतुकेन च सुन्दरी ॥ ४८ ॥
द्रष्टुं जगाम सासाध्वी चाश्वमेकाकिनी मुदा।
शक्रो अश्वनिकटे भूत्वा धर्षयामासतां सतीम् ॥ ४६ ॥
तया निवार्यमाणश्चरेमे तत्र तया सह।
मूर्छामवाप शक्रश्च बुबुधेन दिवानिशम् ॥ ५० ॥
साच संभोग मात्रेणदेहं तत्याज योगतः।
नृपस्य लज्जया भीत्या शक्रः स्वर्गेजगामह ॥ ५१ ॥

(ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० १४)

भाषार्थ—राजा चन्द्र के घर में भारत में रंभा ने जन्म लिया ॥ ४४ ॥ उसने नाना प्रकार की सज धज से अपनी कन्या जन्मेजय को व्याह दी ॥ ४६ ॥ एक वार राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया ॥ ४७ ॥ इन्द्र मकान में घोड़े के पीछे छिप कर बैठ गया। यज्ञ के घोड़े को खूबसूरत जानकर आनन्द पूर्वक वह सुन्दरी देखने गई ॥ ४८ ॥ वह साध्वी प्रसन्नता से अकेली गई। इन्द्र ने घोड़े के समीप जाकर उस सती को क़ाबू कर लिया ॥ ४६ ॥ उससे मना करने पर भी इन्द्र ने उस से भोग किया। और इन्द्र मूर्छा को प्राप्त हो गया दिन रात न जागा ॥ ५० ॥ उस स्त्री ने संभोग मात्र से योग द्वारा शरीर छोड़ दिया और इन्द्र राजा के भय तथा लज्जा से स्वर्ग को चला गया ॥ ५१ ॥

कहिये महाराज! क्या पौराणिक देवताओं की इन्हीं कारनामों के लिये कल्पना की गई है या कोई और प्रयोजन भी है। परमात्मा इन देवताओं से भारत को बचावे।

१८५ (प्रश्न)—"उतग्नाव्यन्तु देवपत्नीरित्यादि अथर्व० ७।४९।२" इस मन्त्र में इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी, अग्नि की पत्नी अग्नायी, रुद्र की पत्नी रोदसी तथा वरुण की पत्नी वरुणानी और अश्विनी कुमारों की पत्नी का वर्णन मौजूद है। पृ० २३७। पं० ११।

उत्तर—जब इन्द्र अर्थात् बिजली, अग्नि और वरुण अर्थात् जल जड़ पदार्थ हैं तो इन की पत्नी होना असम्भव है। अश्विनी कुमारों का तेंतीस में कहीं नाम ही नहीं है। और रुद्र ११ हैं उन की पत्नी की कल्पना निरर्थक है। हां इन गुणों से युक्त पुरुषों की स्त्रियों का वर्णन ठीक है। देखिये इस मन्त्र का ठीक अर्थ इस प्रकार है:—

उतग्नाव्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राणी अग्नायी
अश्विनी राट्। आरोदसी वरुणानी शृणोतु-
व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्॥ अथर्व० ७।४९।२॥

भाषार्थ—और भी विद्वानों वा राजाओं की पत्नियां ऐश्वर्य वाली, बड़े ऐश्वर्य वाले पुरुष की पत्नी, अग्नि सदृश तेजस्वी पुरुष की स्त्री, शीघ्रगामी पुरुष की स्त्री, प्रजा की वाणियों को प्राप्त हों और ज्ञानवान पुरुष की स्त्री अथवा श्रेष्ठ-जन की पत्नी वाणियों को सुने और जो स्त्रियों का न्याय का काल है यह सब देवियां उस की चाहना करें॥२॥

भावार्थ—स्त्रियां स्त्रियों को अपनी न्याय सभा के अधिकारी बना कर घर और बाहर के झगड़ों को उचित समय पर निर्णय करें और बालकों को भी वैसी शिक्षा दें॥२॥

१८६ (प्रश्न)—"ब्रह्मचारिणंपितरो इत्यादि अथर्व०

११।५।२" इस मंत्र में पितर गंधर्व तथा छः हज़ार तीन सौ तीस देवताओं का वर्णन है। पृ० २३७ पं० २०।

उत्तर—वे छः हज़ार तीन सौ तीस देवता कौन २ से हैं जरा उन की गिनती तो गिना दी होती। वैसे देवता तेतीस ही हैं। जहां अधिक गिनाये गये हैं वहां उनकी ही महिमा मात्र है (देखो नं० १८१) इस मंत्र में तो देवता आदि विद्वानों का ही नाम है। क्यों कि यज्ञ में उनका ही सम्मिलित होना संभव है। संख्या अधिक उपस्थिति की सूचक है। मंत्र का अर्थ इस प्रकार से हैं—

ब्रह्म चारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनु
संयन्ति सर्वे। गंधर्वाए नमन्वायन् त्रय
स्त्रिंशत् त्रिशताः षट् सहस्राः सर्वान्त्स
देवांस्तपसा पिपर्ति। अथर्व० ११।५।२॥

भाषार्थ—सब व्यवहार कुशल पालन करने वाले विजय चाहने वाले पुरुष नाना प्रकार से ब्रह्मचारी के पीछे २ चलते हैं। तेंतीस तीन सौ और छे सहस्र [६३३३ अर्थात् बहुत से] पृथ्वी के धारण करने वाले (पुरुषार्थी पुरुष) इस ब्रह्मचारी के साथ साथ चले हैं। वे सब विजय चाहने वालों को अपने तप से भरपूर करता है॥२॥

भावार्थ—सब विद्वान् पुरुषार्थी जन पूर्व काल से जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी के अनुशासन में आनंद पाते आये हैं और पाते हैं इस प्रकरण में इस मंत्र से पूर्व और पश्चात् भी वेदारंभ संस्कार का वर्णन है। अतः उपरोक्त हमारा अर्थ ही ठीक है आपका नहीं।

१८७ (प्रश्न)—"त्रीणिशता त्रीणि सहस्राणीत्यादि यजु० ३३।७" इस मंत्र में किसी के मत में तो ३३३० में ९ को मिलाकर ३३३९ तथा किसी के मत में ३००० को ३०० से गुणा करके ३० तथा ९ का योग देकर ९०००३९ तथा किसी के मत में ३३३० को इन ही के स्वरूप में ९ अंक करके ३३३३३३३३० देवताओं का वर्णन पाया जाता हैं। पृ० २३८ पं० ४

उत्तर—देवता तेतीस ही हैं। आप चाहे करोड़ की गिनती गिनें, चाहे तेतीस अर्ब की। वे सब तेतीस की ही महिमा है (देखो नं० ११८) परन्तु यहाँ पर तो शिल्प विद्या के जानने वाले विद्वानों का वर्णन है। मंत्र का ठीक अर्थ इस प्रकार से है।

त्रीणी शतात्रीसहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैरस्तृणन बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त॥
यजु० ३३।७"

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जैसे पृथिवी आदि तीस और नव प्रकार के ये सब और विद्वान् लोग तीन सौ तीन हज़ार कोस मार्ग में अग्नि को सेवन करें, घी वा जलों से सींचे, अंतरिक्ष को आच्छादित करें, इस अग्नि के अर्थ हवन करने वाले को सब ओर से ही निरन्तर स्थापित करें, वैसे तुम लोग भी करो॥ ७॥

भावार्थ—जो शिल्पी विद्वान् लोग अग्नि जलादि पदार्थों को यानों में संयुक्त कर उत्तम मध्यम निकृष्ट वेगों से अनेक सैंकड़ों हज़ारों कोस मार्ग को जा सकें वे आकाश में भी जा आ सकते हैं॥ ७॥ इस का नाम है अर्थ जो प्रकरण तथा सृष्टि नियम के सर्वथा अनुकूल है।

१८८ (प्रश्न)—"इन्द्रोदिव इन्द्र ईशे इत्यादि निरुक्त दैवत कांड पाद १" तथा "आह्वाभ्यां हरिभ्यामित्यादि निरु० दैवत० पा० २ " में देवताओं को चैतन्य वर्णन किया है।
पृ० २३८ पं० २४।

उत्तर—भला इन दोनों प्रमाणों से आपकी क्या प्रयोजन सिद्धि हुई। आपने इन प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि देवता चेतन वर्णन किये हैं। हम पहिले से ही विद्वानों का नाम भी देवता मानते हैं। और वे चेतन होते ही हैं। आप के दिये हुए मंत्रों में इन्द्र शब्द के कितने अर्थ हैं देखिये।

इन्द्रः—(अग्निर्विद्युत् सूर्य्यो वा) अग्नि, बिजली' सूर्य्य (अध्यापको राजा वा) अध्यापक, राजा (सभा ऽध्यक्षः) सभापति (दुखविदारकः) दुख का नाशक (परमैश्वर्यवान् सभा शाला सेना न्यायाधीशः) संपत्ति वाला, सभापति, शालापति, सेनापति, न्यायपति, (इन्द्रियवान् जीवः) जीव इत्यादि इत्यादि इन्द्र शब्द के सैंकड़ों अर्थ हैं (देखो वेदार्थ-कोष पृ० १८२ से १८७ तक) जहां जैसा प्रकरण अनुसार अर्थ मुनासिब हो वैसा ले लेना चाहिये। जहां जडत्वादि गुणों से इन्द्र का वर्णन होगा वहां इन्द्र शब्द से बिजली सूर्य्य आदि अर्थ लिये जायेंगे। और जहां चेतनता आदि गुणों से इन्द्र का वर्णन होगा वहां इन्द्र शब्द से राजा सेनापति जीवात्मा आदि अर्थ लिया जावेगा। अतः आप की लेख निष्प्रयोजन ही है।

१८९—(प्रश्न) स्वामी दयानन्द जी शतपथ के आधार पर तेंतीस देवता मानते हैं, और उन देवताओं को चैतन्य नहीं मानते वरन जड़ मानते हैं पृ० २४० पं० १

उत्तर—आप कतई झूठ कह रहे हैं। प्रथम तो तेतीस देवताओं में से भी ग्यारह रुद्रों में दश प्राण तथा ग्यारहवां जीवात्मा हैं। जीवात्मा चेतन है। तथा स्वामी जी विद्वानों का नाम देवता मानते हैं। स्वामी जी देवता शब्द से चेतन तथा अचेतन दोनों प्रकार के पदार्थों का ग्रहण मानते हैं।

१९० (प्रश्न)—"अथाकार चेतनं देवतानामित्यादिनिरु० दैवत० पा० २" इसमें यास्क ने जड और चेतन दोनों को वेद से दिखलाया है। यह नियम अटल है कि जहां पर श्रुति में विरोध होगा। वहां दोनों श्रुतियों का कथन सत्य स्वीकार किया जावेगा। यहां पर भी सूर्य्य आदि ग्रह मंडल जड और इन के अधिष्ठातृ देव चेतन हैं। पृ० २४२ पं० ६

उत्तर—आप यों ही विना प्रयोजन निरुक्त आदि के लंबे-लंबे पाठ दर्ज करदेते हैं। हम स्वयं मानते हैं कि देवता दो प्रकार के होते हैं। बत्तीस देवता जड तथा जीवात्मा परमात्मा विद्वान् देवता चेतन हैं। वेदों में परस्पर विरोध नहीं है। यह नियम अटल है कि जिस पुस्तक में व्याघात दोष अर्थात् परस्पर विरोध हो वह पुस्तक प्रमाण के योग्य नहीं होती। विकल्प अर्थात् दोनों पक्ष तभी सत्य माने जाते हैं यदि उनका अधिकरण एक न हो यहां चेतन तथा अचेतन देवताओं का अधिकरण एक नहीं है अतः विरोध ही नहीं है 'इन के अधिष्ठातृ देव चेतन हैं" यह निरुक्त के किस पाठ का अर्थ है। आपको झूठ बोलते ज़रा भी शर्म नहीं आती। यदि अधिष्ठातृ देव से आपका मतलब व्यापक परमात्मा से या जीवात्मा से है। तो हमें कोई ऐतराज़ नहीं। और यदि अधिष्ठातृदेव से कोई

पौराणिक कल्पित देवता मकसद हैं तो उस के लिये प्रमाण चाहिये अन्यथा आपका लिखना मिथ्या ही है । हां, सूर्य्य पृथिवी आदि बत्तीस देवता जड तथा जीवात्मा परमात्मा विद्वान् चेतन । इस प्रकार से जड़ और चेतन देवता दो प्रकार के हैं । यही वेद का सिद्धान्त है इसी को उपरोक्त निरुक्त ने प्रतिपादन किया है ।

१६१ (प्रश्न)—"ब्रह्मचारिणम मानते इस में ६३३३ और "त्रीणिशता" इस मंत्र में ३३३३३३३३० देवता वेद ने बतलाये, स्वामी दयानन्द जी इन दोनों मंत्रों को गपोडा मानते हुए देवताओं की संख्या केवल तेंतीस लिखते हैं । पृ० २४२ पं० १२

उत्तर— स्वामी जी वेद के अक्षर अक्षर को सत्य मानते हैं । आप किसी ऐसी वस्तु का नाम तो लें जो तेंतीस देवता तथा एक उनका मालिक महादेव ब्रह्म इन चौंतीस से बाहर हो । इसी लिये शत पथ ने लिखा कि "महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिंशत्त्वेव देवा इति" देवता तो तेतीस ही हैं बाकी सब इन की ही महिमा है । इस से साफ है कि चाहे देवताओं की गिनती करोड नहीं अरब भी हो वे सब तेंतीस में ही आ जाती है । अतः स्वामी जी का मानना वेदानुकूल सत्य है ।

१६२ (प्रश्न)—स्वामी जी मनुष्यों से भिन्न देव जाति नहीं मानते, मनुष्यों में जो लिख पढ़ गये हैं उन्हीं को आप देवता मानते हैं । पृ० २४२ पं० १७

उत्तर—बेशक तेतीस देवताओं को मानते हुवे स्वामी जी मनुष्यों में से विद्वान् योगी माता पिता आदि को देवता

मानते हैं और इस में अनेकों प्रमाण हैं (देखो नं० १८२) किन्तु आपके कपोल कल्पित आचार हीन पौराणिक देवों की हस्ती में कोई प्रमाण ही नहीं है।

१६३ (प्रश्न)—"द्विधा देवा इत्यादि" दो प्रकार के देवता हैं। एक देव योनि के देवता दूसरे मनुष्यों में देव। देव योनि के सभी देवता जन्म से विद्वान् होते हैं। यह शत पथ का कथन है। इस में से विद्वा ँ्सो हि देवाः" श्रुति के इस छोटे से टुकड़े को चुरा कर विद्वानों को देवता लिखते हैं।
पृ० २४२ पं० २०

उत्तर—प्रथम तो आपने इस प्रमाण का पता नहीं लिखा कि कहां का यह पाठ है। दूसरे आपने इस के अर्थ भी मनमाने किये हैं। भला आप बतलावें आपने "योनि" और "जन्म" से यह अर्थ किन शब्दों का किया है। और यह कहां लिखा है कि देव योनि वाले ही विद्वान् होते हैं। लीजिये हम इस का ठीक २ अर्थ करते हैं:—

द्विविधा देवा देवदेवा मनुष्यदेवाश्च
विद्वा ँ्सो हि देवा।

भाषार्थ—देव दो प्रकार के होते हैं। देव देव तथा मनुष्य देव। विद्वान् ही देव होते हैं।

फरमाइये इस सारे पाठ के अर्थ में कौन सी बात स्वामी जी के सिद्धान्त के विरुद्ध है। स्वामी जी ने विस्तार भय से प्रकरणानुसार जितनी ज़रूरत थी उतना पाठ दे दिया। चोरी तो आप ने की है कि प्रमाण का ठिकाना ही नहीं दिया। विशेष प्रमाण देखिये (नं० १८२)

१९४ (प्रश्न)—इसी प्रकार दैत्य, गन्धर्व और अप्सरा प्रभृति देव योनियों के वेद ने जाति भेद माने हैं। स्वामी दयानन्द जी की दृष्टि में ये सब मनुष्य ही हैं। पृ० २४२ पं० २७।

उत्तर—बेशक, दैत्य, राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा, देव ये सब देश गुण नाम के कारण मनुष्य जाति के ही भेद हैं। इन की पशु-पक्षीवत् भिन्न जाति नहीं है। वेद में एक शब्द भी ऐसा नहीं मिलता जो इन को भिन्न जाति वर्णन करता हो। आप के पुराणों से भी इन सब का एक जाति होना सिद्ध होता है। इन्द्र, धर्म, वायु ने कुन्ती से, अश्विनी कुमारों ने माद्री से अर्जुन, युधिष्ठिर, भीम तथा नकुल-सहदेव पैदा किये तथा विश्वामित्र आदि ने मेनका आदि में शकुन्तला आदि को पैदा किया। देवों की स्त्रियों से मनुष्यों का तथा मनुष्यों की स्त्रियों से देवों का भोग विलास सन्तानोत्पत्ति आदि व्यवहार होना लिखा है। अतः देव तथा मनुष्य जाति एक है। केवल कर्म भेद ही है। रावण राक्षस सीता को रानी बनाना चाहता था तथा शूर्पणखा राम मनुष्य को पति बनाना चाहती थी, भीम मनुष्य ने हिडम्बा राक्षसी में घटोत्कच पैदा कर लिया। अतः मनुष्य और दैत्य जाति एक ही हुई। गन्धर्वों के साथ दुर्योधन की लड़ाई हुई। गन्धर्वों ने दुर्योधन को स्त्रियों समेत कैद कर लिया पांडवों ने छुड़ाया। अतः गन्धर्व तथा मनुष्य जाति एक हुई। इस के अतिरिक्त देव, गन्धर्व, दैत्य, मनुष्य, अप्सराओं का विवाहों, स्वयम्बरों, युद्धों, बरातों जंगलों में एक स्थान में निवास, खान-पान नृत्य-गीत युद्ध-यात्रा आदि अनेक व्यवहार सम्मिलित पुराणों में पाये

जाते हैं। इस से सिद्ध है कि ये सब मनुष्य जाति के ही गुण देश नाम के कारण भेद हैं। इन की जाति भिन्न नहीं है।

स्वामी दयानन्द और देवजाति

१९५ (प्रश्न)—स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश पृ० १०० में इन्द्र यम वरुण सोम मरुत् जल वनस्पति श्री भद्रकाली वास्तु-पति देवताओं को एक एक ग्रास का भोग लगाना लिखते हैं। इस से साबित है कि स्वामी जी देवजाति को मनुष्य जाति से भिन्न मानते हैं। पृ० २५ पं० ४

उत्तर—स्वामी जी ने न तो इन को देवता लिखा है। और न इनको भोग लगाना लिखा है। अपितु इन मंत्रों से पत्तल पर भोजन के भाग रख कर अतिथि को खिलाना तथा अग्नि में होम करना लिखा है। और ये उपरोक्त नाम वाले पदार्थ तेंतीस देवता तथा चौंतीसवां इनका स्वामी ब्रह्म इन से बाहर भी नहीं है। इस से साबित है कि स्वामी जी इन चौंतीस और मनुष्य योनि से भिन्न कोई देव योनि नहीं मानते इस विषय में विशेष देखें (नं० १५१)

१९६ (प्रश्न)—नाम करण संस्कार में स्वामी जी ने सोलह तिथियों के सोलह देवता और सताईस नक्षत्रों के सताईस देवता लिखे हैं। इस से सिद्ध है कि स्वामी जी देवता जाति को मनुष्य जाति से भिन्न मानते थे। पृ० २५ पं० २१

उत्तर—ये तो तिथि और नक्षत्रों के देवता लिखे हैं। ये तिथि और नक्षत्रों के दूसरे नाम हैं। जोकि इनके द्योतक

(प्रकाशक) होने के कारण इन के देवता कहाते हैं। ये इन तिथि और नक्षत्रों को प्रकट करने के लिये सांकेतिक नाम हैं। इस प्रकार के सांकेतिक नामों का व्यवहार प्रत्येक भाषा और प्रत्येक जाति में पाया जाता है। उदाहरणार्थ इस समय भी वायसराय की तरफ से जो विलायत को तार भेजे जाते हैं वे साधारण तारों की भांति नहीं होते अपितु उनमें वाक्यों के लिये अंक नियत हैं। जिन को या वायसराय जानते हैं या वज़ीरेहिन्द जानते हैं। और लोग नहीं जानते। इनका व्यवहार प्रायः प्रबंध कार्यों में या फौजों में युद्ध के समय होता है। इनको अंगरेज़ी में "कोडवर्ड" कहते हैं। ऐसे ही सिक्खों में चनों को बादाम, प्याज़ को रूपा प्रसाद, मिर्चों को लड़ाकियां' बासी रूटी को मिठ्ठा परशादा, दूध को समुद्र, घी को पंजवां' इत्यादि अनेक सांकेतिक नाम हैं जो उन वस्तुओं के द्योतक होने से देवता कहे जा सकते हैं। जैसे संस्कृत साहित्य में चांद सूर्य्य से एक का, चक्षु से दो का, राम से तीन का, वेद से चार का, इंद्रिय से पांच का, अंग से छे का, मुनि से सात का, वसु से आठ का, अंक से नौ का बोध होता है। ये नाम भी अंकों के द्योतक होने से उनके देवता कहा सकते हैं। ऐसे ही तिथि और नक्षत्रों लिये भी कर्म कांड में उनके दूसरे सांकेतिक नाम नियत हैं। जिन को तिथि तथा नक्षत्रों का द्योतक होने से उनके देवता कहते हैं। जैसा कि गोभिलीय गृह्य सूत्र में प्रपाठक २ काण्डिका ८ के सूत्र नं १२ की टीका में श्रीचन्द्रकान्त तर्कालंकार लिखते हैं कि—

अथ जुहोति प्रजापतये तिथये नक्षत्राय देवताया इति ॥ १२ ॥ (गोभिलीयं प्र० ५ का० ८) पृ० ३८४ पं० १२

तत्र तिथयः प्रतिपदाद्याः। तासां देवताश्चामावस्या-पर्य्यन्तानां ब्रह्म, त्वष्टृ, विष्णु, यम, सोम, कुमार, मुनि, वसु पिशाच, धर्म्म, रुद्र' वायु, मन्मथ, यक्ष, पितरः। पौर्णमास्यास्तु विश्वे देवाः। (पृ० ३८५ पं० ३)

नक्षत्र देवताश्च यथा क्रमम्, अश्वि, यम, अग्नि, प्रजापति, सोम, रुद्र, अदिति, बृहस्पति सर्प, पितृ, भग, अर्य्यमन्, सवितृ, त्वष्टृ, वायु, इन्द्राग्नि, मित्र, इन्द्र, निऋति, अप, विश्वेदेवा, विष्णु, वसु, वरुण, अजपाद्, अहिब्रध्न, पूषाणः' (पृ० ३८६ पं० ७)

गोभिल गृह्य सूत्रम्। श्री चन्द्रकान्त तर्कालंकार कृत भाष्य सहितम् कलिकाता राजधान्यां वाप्तिस्तमिषण यन्त्रे मुद्रितम्। शकाः १८०२

तैत्तरीय संहिता में भी नक्षत्रों तथा उन के देवताओं का वर्णन इस प्रकार से आता है—

कृत्तिका नक्षत्र मग्निर्देवता......रोहिणी नक्षत्रं प्रजापति र्देवता मृगशीर्षं नक्षत्रं सोमो देवता द्रार्द्रा नक्षत्रं रुद्रो देवता पुनर्वसु नक्षत्र मदिति र्देवता तिष्योनक्षत्रं बृहस्पति र्देवता श्लेषा नक्षत्रं सर्पोदेवता मघा नक्षत्रं पितरो देवता फाल्गुणी नक्षत्रम् ॥ १ ॥ अर्यमा देवता फल्गुनी नक्षत्रं भोगो देवता हस्तो नक्षत्रं सविता देवता चित्रा नक्षत्र मिन्द्रो देवता स्वाती नक्षत्रं वायुर्देवता विशाखे नक्षत्र मिन्द्राग्नी देवतानुराधा नक्षत्रं मित्रो देवता रोहिणी नक्षत्र मिन्द्रो देवता विचृतौ नक्षत्रं पितरो देवता अषाढ़ा नक्षत्र मापो देवता ऽषाढ़ा नक्षत्रं विश्वे

देवा देवता श्रोणा नक्षत्रं विष्णुर्देवता श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवः ॥ २ ॥ देवता शतभिषङ्नक्षत्र मिन्द्रो देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्र महिर्बुध्न्यो देवता रेवतीनक्षत्रं पूषा देवता श्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवताय भरणी नंक्षत्रं यमो देवता ॥ ३ ॥

तैत्तरीय संहिता भाष्ये वेदार्थ प्रकाशे कां० ४ प्र० ४ अ० १० पृ० ४८१-४८२ । कलकत्ता १८८९ ।

इसी को ही स्वामी जी ने अपनी संस्कार विधि में लिखा है। अतः ये सिद्ध है कि ये तिथि तथा नक्षत्रों के द्योतक दूसरे नाम होने से देवता कहाते हैं। और कोई विशेष बात नहीं है इस से साबित है कि स्वामी जी उन तेतीस देवता चौंतीसवां उन का स्वामी ब्रह्म तथा विद्वानों के सिवाय देव-जाति को कोई भिन्न जाति न मानते थे।

वेदोत्पत्ति

१६७ (प्रश्न)—वेदों की उत्पत्ति वैदिक साहित्य में ब्रह्म से मानी है। इस विषय में वेद का सिद्धांत यह है कि उस निराकार ब्रह्म ने ब्रह्मा शरीर धारण किया, ब्रह्मा ने अपने मुख से ऋषियों को वेदों का उपदेश दिया। पृ० २४३ पं० १।

उत्तर—वेद ने परमात्मा को "अकाय" वर्णन किया है। वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं है जो परमेश्वर को शरीर-धारी वर्णन करता हो। परमात्मा सर्व व्यापक होने से सब के हृदयों में विराजमान है। अतः परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों श्री अग्नि, श्री वायु, श्री आदित्य, श्रीअङ्गिरा

के हृदयों में चारों वेदों का प्रकाश कर दिया। उन्हों ने आगे ब्रह्मादि ऋषियों को वेदों का ज्ञान दिया। यही वैदिक सिद्धांत है।

१९८ (प्रश्न)—स यथार्द्रेन्धनाग्ने रित्यादि शत० १४। ५।४।१०" इस से सिद्ध है कि वेदों का प्रादुर्भाव ब्रह्म से ही हुआ है। पृ० २४३ पं० ४।

उत्तर—यद्यपि आपने वेद प्रमाण देने की प्रतिज्ञा कर के शतपथ का प्रमाण लिख दिया, क्या शतपथ वेद है ? और क्या इस प्रकार का धोका ईमानदारी में शामिल है ? तथापि यह ठीक है कि सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा से वेदों का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु इस प्रमाण में यह कहां लिखा है कि परमेश्वर ने ब्रह्मा शरीर धारण कर के वेदों को पढ़ाया। यदि श्लोक, सूत्र आदि सारे ही ब्रह्म से हुए तो फिर वेदों में दूसरे ग्रन्थों की निस्बत क्या विशेषता है। अतः आप ने इस का अर्थ ठीक नहीं किया। इस का ठीक २ अर्थ इस प्रकार से है—

> सयथाद्रेन्धनाग्नेरभ्याहितस्य पृथग्धूमाविनिश्च—
> रन्त्येवं वारेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमे
> तद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इति—
> हासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्य—
> नुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वा—
> णि निश्वसितानि ॥ शत० १४।५।४। १० ॥

भावार्थ—जैसे अग्नि में गीली लकड़ी लगाने से धूवां उठता है और वह धुवां चारों तरफ फैलता है। वैसे ही उस महान् सत्य स्वरूप परमात्मा से निश्वास की भांति सहज

से यह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के ज्ञान द्वारा पुराण, इतिहास, उपनिषद, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान, अनुव्याख्यान आदि विद्या इस से ही ये सब प्रकट हुईं।

इस से सिद्ध हुआ कि संसार की सारी विद्याओं का आदि स्रोत वेद ही है।

१९९ (प्रश्न)–'तस्माद्यज्ञादित्यादि यजु० ३१। ७' जिस यज्ञ भगवान् का सब से प्रथम उत्पन्न होना 'तं यज्ञं' इस मंत्र में लिखा है उसी ईश्वर से ऋग्वेद, सामवेद, गायत्री आदि छन्द और यजुर्वेद उत्पन्न हुए। पृ० २४३ पं० १३

उत्तर—परमात्मा का पैदा होना वेदों में एक भी मंत्र प्रतिपादन नहीं करता। क्योंकि परमात्मा अजन्मा,अजर, अमर है। "तं यज्ञं यजु० ३१। ९" में परमात्मा का पैदा होना नहीं लिखा अपितु ऋषियों से परमात्मा का पूजा जाना वर्णन किया है। यज्ञ शब्द का अर्थ भी पूजनीय है। जब वेदों में गायत्री आदि छन्द हैं तो फिर गायत्री आदि छन्दों का पैदा होना पृथक् लिखना व्यर्थ होने से छन्द शब्द से अथर्व वेद का ग्रहण है। मंत्र का ठीक अर्थ इस प्रकार से है—

तस्मद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दा ꣡ꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७॥
(यजु० ३१)

भाषार्थ—हे मनुष्यो! तुम को चाहिये कि उस पूर्ण अत्यन्त पूजनीय जिसके अर्थ सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते उस परमात्मा से ऋग्वेद सामवेद उत्पन्न होते उस परमात्मा से अथर्ववेद उत्पन्न होता और उस से यजुर्वेद उत्पन्न होता है। उसको जानो ॥७॥

इस से सिद्ध हुआ कि चारों वेदों को उस निराकार अजन्मा परमात्मा ने संसार के उपकारार्थ प्रकट किया।

२०० (प्रश्न) "ऋचः सामानि इत्यादि अथर्व० ११। ७। १। २४" प्रलय काल में शेष रहने वाले परमात्मा से ऋक् साम अथर्व और पुराण यजुर्वेद के साथ उत्पन्न हुए।

पृ० २४३ पं० २०।

उत्तर—आप ने आधे मंत्र का अर्थ ही छोड़ दिया क्योंकि उस से परमात्मा की व्यापकता सिद्ध होकर परमात्मा निराकार साबित होते हैं। देखिये मंत्र का अर्थ इस प्रकार से है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टा ज्जज्ञिरे सर्वेदिवि देवा दिविश्रितः ॥

अथर्व० ११। ७। २४॥

भाषार्थ—ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद सहित अथर्ववेद और पुरातनवृत्तान्त यह सब और आकाश में वर्तमान सूर्य्य के आकर्षण में ठैरे हुवे सब गतिमान लोक शेष रहने वाले परमात्मा से उत्पन्न हुवे ॥ २४ ॥

ये सब उपरोक्त पदार्थ उस व्यापक निराकार परमात्मा से पैदा हुवे।

२०१ (प्रश्न)—"ब्रह्मज्येष्ठा इत्यादि अथर्व० १९।२३।३०" इस मंत्र में "प्रथम ब्रह्म ने ब्रह्मावतार धारण किया" यह वर्णन है ॥ पृ० २४४ पं० ८।

उत्तर—इस मंत्र में परमात्मा के ब्रह्मावतार का धारण नाम मात्र भी नहीं है। अपितु इस में परमात्मा की उत्कृष्टता दिखलाई गई है। पूरा मंत्र और अर्थ देखो (नं० ३१)

२०२ (प्रश्न)—"योब्रह्माणं विदधाति पूर्वं श्वेताश्वेतर ६।१८" यहां पर परमात्मा के दो रूप माने हैं। एक ब्रह्म निराकार और एक ब्रह्मावतार इस कारण यह कहा गया कि उस निराकार और ब्रह्म ही की कृपा से ब्रह्मा के अंतःकरण में वेद आये। पृ० २४४ पं० १४।

उत्तर—प्रथम तो यह प्रमाण वेद का नहीं हैं अपितु उपनिषत् का है। अतः वेद प्रमाण की प्रतिज्ञा करके उपनिषत् का प्रमाण देना प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान में आकर पराजय प्राप्त करना है। तथापि इस पाठ में कहीं भी ब्रह्म के दो रूप नहीं लिखे और न कहीं ब्रह्मावतार का वर्णन है। मंत्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है—

यो ब्रह्माणं विदधातिपूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोतितस्मै।
तं ह देवमात्म बुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥
(श्वेताश्वे० ६।१८)

भावार्थ—जो परमात्मा सृष्टि आरंभ में ब्रह्मा को पैदा करता है। और जो उस ब्रह्मा के लिये वेदों को भेजता है। मैं मोक्ष की इच्छा करने वाला उस आत्मा में बुद्धि का प्रकाश करने वाले देव की शरण में जाता हूं।

यहाँ पर ब्रह्मावतार का लेश मात्र भी नहीं है। अपितु 'परमात्मा ने ब्रह्मा के लिये अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा द्वारा वेद भेजे' ऐसा साबित होता है। परमात्मा ने आदि में चार ऋषियों पर वेद प्रकाशित किये एक पर नहीं जैसा कि 'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' योग० समाधि० सू० २६॥ वह ईश्वर प्रथम उत्पन्न होने वालों का भी गुरु है क्यों

कि वह नाश रहित है। यहां 'पूर्वेषाम्' पद से साबित है कि वेद का प्रकाश चार पर हुआ यदि एक पर होता तो 'पूर्वस्य' पद यहां होता।

२०३ (प्रश्न)—'ब्रह्मा देवानां प्रथमः इत्यादि मुण्डकोपनिषत्' यहां पर ब्रह्मा द्वारा ही सृष्टि के आरंभ में वेदों का प्रकाश हुआ ऐसा लिखा है। पृ० २४५ पं० १।

उत्तर—आपने आरंभ में प्रतिज्ञा की थी कि वेद का प्रमाण देंगे। अब मुण्डन का प्रमाण दे दिया यद्यपि मुण्डकोपनिषत् वेद नहीं है तथापि इस पाठ में न तो सृष्टि के आरंभ का वर्णन है। और न ही ब्रह्मा द्वारा चारों वेदों के प्रकट होने का जिकर है। यहां तो एक ब्रह्मा नाम ऋषि ने अपने पुत्र को पढ़ाया इत्यादि वर्णन है। हम पूरा पाठ और अर्थ नीचे दर्ज करते हैं।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता। स ब्रह्म विद्यां सर्व विद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥१॥ अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्मा अथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्म विद्या। स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥२॥

(मुण्डकोपनिषत् प्रथम मुण्डके १-२)

भावार्थ—ब्रह्मवेत्ता विद्वानों में प्रसिद्ध ब्रह्म विद्या के उपदेश द्वारा सब का उत्पादक संसार का रक्षक ब्रह्मा नामक ऋषि उत्पन्न हुआ। उसने अथर्वा नामक अपने बड़े पुत्र को सब विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्म विद्या का उपदेश किया ॥१॥ पहिले अथर्वा को जिस विद्या का ब्रह्मा ने उपदेश किया अथर्वा ने

अङ्गिरा ऋषि के लिये उस ब्रह्म विद्या को कहा उस ने भारद्वाज गोत्र वाले सत्यवाह को और सत्यवाह ने अङ्गिरा ऋषि को पर और अवर विद्या का उपदेश किया ॥२॥ बतलाइये इस में चारों वेदों के प्रादुर्भाव का वर्णन कहां है ?

२०४ (प्रश्न)—ईश्वर का ज्ञान अग्नि, वायु, रवि इन ऋषियों के अन्तः करण में आया। तब इनहों ने अपने मुंह से जो कहा वही वेद है। चोखी रही संभव है ऋषियों ने अपने ही तरफ से कुछ कहा हो उनके अंतःकरण में ईश्वरीय ज्ञान आया इसका क्या सबूत। पृ० २४७ पं० १।

उत्तर—संसार में कोई मनुष्य बिना पढ़ाने वाले के अपने आप ज्ञानी वा विद्वान् नहीं बन सकता। यदि अपने आप विद्या आजावे तो अफरीका के हवशी भी एम० ए० हो जावें किन्तु ऐसा नहीं होता। सृष्टि के आरंभ में जो चार ऋषि हुये उनहें अपना कोई ज्ञान न था क्यों कि उस समय उन को ज्ञान देने वाला सिवाय परमात्मा के और कोई न था अतः उन के अंतः करण में जिस ज्ञान का प्रकाश हुआ वह ईश्वर का ही ज्ञान था, ऋषियों का अपना ज्ञान न था। ऋषि तो ग्रामो फोन के रिकार्ड की भांति निमित्त मात्र ही थे अतः आपकी शंका सर्वथा निर्मूल है। और यही शंका आपके सिद्धान्त पर भी की जा सकती है। क्यों कि इस में कोई सबूत नहीं कि ब्रह्मा ईश्वर के अवतार थे। संभव है किसी चालाक आदमी ने अपना नाम ब्रह्मा रखकर और अपने को ईश्वर का अवतार बताकर मनमाना ज्ञान वेद के नाम से सनातनियों के गले मढ दिया हो। भला एक और बात

तो बतलावें कि हम तो कहते हैं चार वेद चार ऋषियों पर प्रकट हुवे। आप कहते हैं कि चारों वेद चार मुख वाले आठ हाथों वाले ब्रह्मा पर प्रकट हुवे इस में फर्क क्या हुवा सिर्फ इतना ही न कि आप ने चार आदमियों को जोड़ कर एक बना दिया और हमने चार पृथक् २ रक्खे। जिस में हमारा कहना संभव तथा सत्य है तथा आपकी कल्पना असंभव और असत्य है।

२०८ (प्रश्न)—मनुस्मृति और शतपथ ब्राह्मण दयानंद की दृष्टि में बहुत पश्चात् बने इस कारण यह नहीं माना जा सकता कि वेदों के प्रादुर्भूत काल में वह ज्ञान ईश्वरीय समझ लिया गया हो क्यों कि उस समय कोई ग्रंथ साक्षी देने वाला नहीं था। पृ० २४७ पं० ५।

उत्तर—सृष्टि के आरंभ में चार ऋषियों की ओर से चारों वेदों के ज्ञान का प्रादुर्भूत होना उस ज्ञान के ईश्वरीय होने का स्वयं सबूत है। क्यों कि उस समय कोई ईश्वर के बिना ज्ञान दाता था ही नहीं अपने आप ज्ञान होता नहीं। और सृष्टि के आरंभ के लोग इस बारे में स्वयं साक्षी थे। और उन की साक्षी से शतपथ और मनु ने लिखा जो कि वेदानुकूल और संभव होने से हमें प्रमाण हैं। और यही सवाल तो आप पर भी हो सकता है क्योंकि उपनिषत् भी आरंभ सृष्टि में न थे और किसी ग्रंथ की साक्षी के बिना ब्रह्मा के ज्ञान को भी ईश्वरीय न समझा गया हो यह भी संभव है। अतः यह युक्ति किसी दुरुस्त दिमाग़ से निकली प्रतीत नहीं होती।

२०६ (प्रश्न)—"ब्रह्मज्येष्ठा" इस मंत्र ने जो वेद में ब्रह्मा का अवतार बतलाया 'यो ब्रह्माणम्' इस श्रुति में ब्रह्मा के अंतःकरण में वेदों का आगमन बतलाया। इसी प्रकार मुंडकोपनिषत् ने ब्रह्मा का अवतार और ब्रह्मा के ज़रिये से संसार में जो वेदों का आगमन बतलाया इन सब श्रुतियों को तो स्वामी दयानन्द जी चाट गये केवल मनु और शतपथ से ऋषियों द्वारा वेद आगमन मानते हैं। पृ० २४७ पं० ६।

उत्तर—'ब्रह्मज्येष्ठा' में न तो ईश्वर के ब्रह्मा अवतार का वर्णन है। और न ब्रह्मा पर वेदों के प्रकाश का ज़िकर है। अपितु ईश्वर की उत्कृष्टता का वर्णन है 'योब्रह्माणम्' इस में यह वर्णन है कि 'परमात्मा ने पहले ब्रह्मा को बनाया फिर उस के लिये वेद भेजे' वेद कैसे भेजे इसका कोई वर्णन नहीं, यदि आप कहें हृदय में प्रकाशित किये तो भेजना शब्द उसके लिये मौज़ूं नहीं। इस लिये हमारा ही पक्ष ठीक है कि अग्नि आदि चार ऋषियों के द्वारा ही ब्रह्मा को चारों वेद प्राप्त करवाये या भेजे। फिर जब ब्रह्मा स्वयं ही ईश्वर थे तो फिर यह बात क्या बनी कि ईश्वर ने ब्रह्मा के लिये वेद भेजे इस से तो ब्रह्मा ईश्वर के अवतार सिद्ध नहीं होते। अब रही बात मुण्डकोपनिषत् की। सो यहां पर जिन ब्रह्मा जी का वर्णन है वह आपके सृष्टि के आरंभ वाले ब्रह्मा प्रतीत नहीं होते क्यों-कि सृष्टि के आरंभ वाले आपके अवतार ब्रह्मा के पुत्रों की गणना जहां पुराणों में है वहां अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, भृगु, अंगिरा, ऋतु, वसिष्ठ, वोढ, कपिल, आसुरि, कवि, शंकु, शंख, पंचशिख, प्रचेता, (ब्रह्मवै० ख० ४ अ० ३०।३३-३४) आदि नाम तो ब्रह्मा के पुत्रों के आते हैं किन्तु अथर्वा

नाम ब्रह्मा के पुत्र का कहीं नहीं आता, इस से पता लगा कि यह सृष्टि के आदि वाले वेदों के निर्माता पौराणिक ब्रह्मा न थे। अपितु यह कोई और ब्रह्मा थे जिन्हों ने अपने पुत्र अथर्वा को ब्रह्म विद्या पढ़ाई। अतः आप कोई ऐसा प्रमाण पेश नहीं कर सके जिस से ब्रह्म का सृष्टि के आदि में पैदा होना तथा उसका वेद कथन करना सिद्ध हो सके। और हमारे पास हैं प्रमाण—

(क) अग्ने ऋग्वेदो वायो र्यजुर्वेदः सूर्य्यात् सामवेदः॥
(शत० ११।५।८।३)

(ख) यदथर्वाङ्गिरसः स य एवं विद्वानथर्वाङ्गिरसो अहरहः स्वाध्यायमधीते। (शत० ११।५।६।७)

(ग) अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम।
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥
(मनु० १।२३)

(घ) श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन्।
(मनु० ११।३३)

भावार्थ—(क) अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद प्रकट हुवे (ख) जो अथर्ववेद वाला अंगिरा मुनि वह जो इस प्रकार से जानता है कि अथर्वाङ्गिरा हमेशा स्वाध्याय करता है। (ग) ब्रह्मा ने अग्निवायु रवि से तीनों सनातन वेद ऋग्, यजु, साम लक्षण वाले यज्ञ की सिद्धि के लिये प्राप्त किये। (घ) बिना किसी संदेह के अंगिरा ऋषि पर प्रकट हुई अथर्व-वेद की श्रुतियों का पाठ करे। अब आप स्वयं न्याय पूर्वक सोचें कि आप का पक्ष कितना निर्बल और स्वामी जी का पक्ष कितना प्रबल है।

२०७ (प्रश्न)—स्वामी जी की दृष्टि में मनुस्मृति और शतपथ ब्राह्मण जिसको स्वामी दयानन्द जी ने पुराण माना है। ये दोनों ही ग्रन्थ स्वतः प्रमाण नहीं हैं, वेदानुकूल होने पर प्रमाण हैं। किंतु "अग्निवायुरविभ्यस्तु" इत्यादि मनु के प्रमाण और "अग्नेऋग्वेदः" इत्यादि शतपथ के प्रमाण की वेदानुकूलता पाई नहीं जाती। फिर स्वामी दयानन्द जी ने इन दो प्रमाणों को स्वतः प्रमाण कैसे माना। पृ० २४७ पं० १४।

उत्तर—प्रथम आप ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद मानते हैं और श्लोक ग्रन्थों को भी वेदवत् ब्रह्म से ही प्रगट हुआ मानते हैं। इस से शतपथ और मनुस्मृति आप के लिये तो दोनों ही स्वतः प्रमाण हैं, आपको ननुनच करने का क्या हक़ है। दूसरे आप इन दोनों प्रमाणों के साथ वेद का विरोध नहीं दिखा सके, यदि आप वेद से ब्रह्मावतार द्वारा वेदों का प्रकट होना सिद्ध कर देते तो यह दोनों प्रमाण वेद विरुद्ध होने से न मानने के योग्य हो जाते, किंतु ऐसा करने में आप कृत कार्य्य नहीं हुए अतः विरोधाभाव में विधान वेदानुकूल होने से प्रमाण है।

तीसरे इस विषय में वेद स्वयं भी इसकी ताईद करते हैं जैसे:—

अग्नि से ऋग्वेद—अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्न धातमम् ऋ० १।१।१।
अग्निऋषिः पवमानः पांच जन्यः पुरोहितः।
ऋ० ९।६६।२०।

वायु से यजुर्वेद—इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता
प्रार्पयतु श्रेष्ठ तमाय कर्मणे इत्यादि यजु०।१।१

आदित्य से सामवेद—अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य दातये इत्यादि। साम० १।१।१।१।१।

अग्निर्वार्कः। शत० २।५।१।४।

अङ्गिरा से अथर्व वेद—

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पति र्बला तेषां तन्वोऽद्यदधातु मे। अथर्व० १।१।१।

अथर्वाङ्गिरसो मुखम्। अथर्व० १०।७।२०।

भावार्थ—मैं उस अग्नि की स्तुति करता हूं जो पुरोहित तथा यज्ञ का ऋत्विज देव है तथा होता है। और वेद रूप रत्न का धारण करने वाला है। जो पवित्र सब मनुष्यों का पुरोहित है, वह ऋषि अग्नि है। वह श्रेष्ठ कर्मों के लिये देव हमारा ज्ञान दाता वेद विज्ञान के बल के लिये वायु उपस्थित है। हे अग्नि तू हम को वेद वाणी का दान करने के लिये आ। यहां अग्नि नाम सूर्य का है। वाचस्पति वेद वाणी का धारण करने वाला है। अङ्गिरा का अथर्व वेद मुख्य है।

अर्थात् जिस ऋषि पर ऋग्वेद प्रकाशित हो उस का नाम अग्नि और जिस पर यजुर्वेद प्रकाशित हो उस का नाम वायु जिस पर साम वेद प्रकट हो उस का नाम आदित्य और जिस पर अथर्ववेद प्रकाशित हो उस ऋषि का नाम अङ्गिरा है।

शतपथ तथा मनु के प्रमाण उपरोक्त वेद मन्त्रों के अनुकूल होने से प्रमाण करने के योग्य हैं।

२०८ (प्रश्न)—'ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव' ब्रह्मा सब देवताओं से प्रथम प्रकट हुआ, मनु के प्रथम अध्यायानुकूल आदि में अयोनिज ऋषियों की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई है, फिर

वे चार ऋषि आये कहां से। इन ऋषियों के द्वारा ब्रह्मा ने वेद पढ़ा। इस का लेख वेद, धर्म शास्त्र, पुराण, इतिहास किसी में भी नहीं है। पृ० २४७ पं० २२।

उत्तर—हम यह साबित कर आये हैं कि 'ब्रह्मा देवानाम्' इत्यादि मुण्डक में जिस ब्रह्मा का वर्णन है। वह पौराणिक चतुर्मुख अष्ट भुज अवतार ब्रह्मा न थे। अपितु वह अन्य ब्रह्मा थे क्यों कि पौराणिक ब्रह्मा के पुत्रों में कहीं भी अथर्वा का नाम पुराणों में नहीं आता। अतः अथर्वा के पिता ब्रह्मा चतुर्मुख ब्रह्मा से भिन्न थे और वह सृष्टि की आदि में भी नहीं हुवे। यहां पर आदि का अर्थ श्रेष्ठ तथा प्रसिद्ध है अर्थात् "विद्वानों में प्रसिद्ध ब्रह्मा नाम ऋषि हुए।" रही मनु के प्रथम अध्याय की बात वहां भी सृष्टि के पैदा करने वाले चतुर्मुख पौराणिक ब्रह्मा नहीं हैं। अपितु ब्रह्मा अर्थात् परमात्मा हैं। जैसा कि—

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः सपुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥ (मनु० १।११)

भावार्थ—जो वह सदा सदात्मक, नित्य, अप्रकट, कारण अर्थात् सूक्ष्म प्रकृति है उस के सहित उस व्यापक परमात्मा को ब्रह्मा कहते हैं॥११॥ उसी ने सारी सृष्टि को बनाकर आरम्भ में-

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये। (यजु० ३१।९)
देवा योगिनः कपिलादयश्चसाध्याश्च अपरे ऋषयः।
(उवट भाष्य)

भावार्थ—योगी कपिलादि मनुष्य और ऋषियों को पैदा किया। यही बात मनुस्मृति कह रही है कि—

कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत् प्राणिनां प्रभुः।
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम्॥ (मनु० १।२२)

भावार्थ—उस परमात्मा ने कर्मशील देवों को और मनुष्यों की अल्प संख्या तथा सनातन यज्ञ को पैदा किया ॥२२॥ इन सृष्टि की आदि में पैदा होने वालों में अग्नि आदि चार ऋषि और ब्रह्मा भी थे। तब परमात्मा ने ब्रह्मा को इन चार ऋषियों के द्वारा चार वेद प्राप्त करवाये और ब्रह्मा ने प्राप्त किये। यह तो वेद तथा धर्म शास्त्र का प्रमाण है। अब पुराण इतिहास का प्रमाण भी सायणाचार्य की सम्मति सहित उपस्थित है। जरा पढ़िये—

जीव विशेषैरग्निवाय्वादित्यैर्वेदानामुत्पादितत्वात् 'ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्याद् (ऐतरे० ब्रा० ५।३२) इति श्रुतेरीश्वरस्याग्न्यादि प्रेरकत्वेन निर्मातृत्वं द्रष्टव्यम् ॥

(सायण भाष्य भूमिका पृ० ३ संग्रह पृ० ५ पं०४)

भावार्थ—अग्नि, वायु, आदित्य, विशेष जीवों से वेदों के पैदा होने से ऋग्वेद हो अग्नि से पैदा हुआ, यजुर्वेद वायु से, सामवेद आदित्य से, ऐसा श्रुति होने से ईश्वर के अग्नि आदि के प्रेरक होने से, ईश्वर में वेदों का निर्माण जानना चाहिये। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि चारों वेद चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा प्रकट नहीं हुए। अपितु अग्नि आदि चार ऋषियों द्वारा परमात्मा ने प्रकट किये और उन के द्वारा ही ऋषि ब्रह्मा को प्राप्त कराये।

२०६ (प्रश्न)—मनु और शतपथ इन दोनों में अग्नि, वायु, रवि इन तीन का नाम आता है। यह चौथा अङ्गिरा कहां से कूद बैठा। पृ० २४७ पं० ३०।

उत्तर—चौथे वेद अथर्व के साथ प्रायः अङ्गिरा का सर्वत्र

ही नाम आता है अतः इन तीन के साथ उस का नाम नहीं दिया गया। और शतपथ तथा मनु में भी नाम मौजूद है। (देखो नं० २०६) और आप ने अपने पुस्तक में पृ० ६७ पं० २७ में स्वयं भी लिखा है कि "अङ्गिरा ऋषि अवश्य थे" फिर अब बतलावें चौथे में क्या सन्देह है।

२१० (प्रश्न)—(१) अग्नि, वायु, रवि, अंगिरा यह ऋषि किस जमाने में हुए। (२) इनका होना वेद, धर्म्म शास्त्र, दर्शन, पुराण कहीं पर नहीं मिलता। (३) इन ऋषियों की उत्पत्ति कहां लिखी है। (४) यदि ये ऋषि थे तो इनकी माताओं का क्या नाम था। (५) और किन २ मनुष्यों के ये पुत्र थे। (६) ये किस देश में हुए। (७) इनके कितने २ भाई एवं कितनी २ बहनें थीं। (८) फिर ये किस २ के हां विवाहे गये। (९) इनके श्वसुरों और इनकी स्त्रियों का क्या क्या नाम था। (१०) तथा इन ऋषियों में से किस २ ऋषि के कितने २ पुत्र हुए। (११) इन ऋषियों के गोत्र और प्रवर क्या थे॥ पृ० २४८ पं० ४।

उत्तर—(१) सृष्टि के आरम्भ में प्रथम दिवस प्रातःकाल हुए। (२) इन का होना वेद में (देखो नं० २०७) धर्म्म शास्त्र में (देखो नं० २०६) पुराणों में (देखो नं० २०८) पर लिखा हुआ है (३) इनकी उत्पत्ति यजु० ३१। ६ में (देखो नं० २०८) लिखी है (४) अमैथुनी सृष्टि में होने के कारण इनकी गर्भ धारण करने वाली मां न थी (५) तथा नसली पिता भी न थे (६) ये त्रिविष्टप् अर्थात् तिब्बत देश में हुए। (७) नस्लन् इनके कोई भाई बहिन न थे आत्मिक सम्बन्ध से सब पुरुष भाई तथा स्त्रियां बहनें थीं (८) ये आयु भर ब्रह्मचारी रहे, विवाह नहीं करवाया (९)

जब विवाह ही नहीं हुए तो श्वसुर और स्त्रियां कहां (१०) इन के नसली पुत्र न थे आत्मिक पुत्र सब शिष्य वर्ग थे जिन में आप के ब्रह्मा भी शामिल हैं (११) मनुष्यों के गोत्र और प्रवर इन के पीछे कल्पित किये गये हैं।

२११ (प्रश्न)—"स्त्रब्रह्म विद्याम्" मुण्डक की इस श्रुति में ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को वेद पढ़ाये। और अथर्वा ने अंगिरा को अंगिरा ने सत्य बाह को वेदों का उपदेश किया यह जो क्रम वेद ने बतलाया है क्या यह झूठा है।

पृ० २४८ पं० १५।

उत्तर—यह क्रम वेद ने नहीं बतलाया उपनिषत् ने बतलाया है। उपनिषत् वेद नहीं है। इस क्रम को हम झूठा नहीं कहते किंतु यह क्रम पौराणिक चतुर्मुख ब्रह्मा का नहीं है। क्योंकि पुराणों में कहीं ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा का वर्णन नहीं है और क्योंकि प्रत्येक चार वेद वक्ता का नाम ब्रह्मा है। अतः यह क्रम किसी और ब्रह्मा का है जिस के पुत्र का नाम अथर्वा था। इससे ब्रह्मा पर वेदों का प्रकट होना सिद्ध नहीं होता।

२१२ (प्रश्न)—यह सब रचना ब्रह्मा ने की है। वही ब्रह्मा 'अग्निवायुरविभ्यस्तु' इस श्लोक में दुदोह क्रिया का कर्ता है। अर्थात् इस श्लोक में 'ऋग्यजुः साम लक्षणम्' यह कर्म है। ब्रह्मा कर्त्ता है दुदोह क्रिया है। अर्थात् 'ऋग्यजुः साम' फेल है और ब्रह्मा फाइल है एवं दुदोह मफ़ूल है। अर्थ हुआ कि 'अग्नि वायु रवि से ब्रह्मा ने वेदों को दुहा। पृ० २४६ पं० ५।

उत्तर—इस सारे संसार की रचना ब्रह्मा नाम परमात्मा ने की है जिस में अग्नि आदि तथा ब्रह्मादि ऋषि भी

शामिल हैं। 'अग्निवायु रविभ्यस्तु' इस श्लोक में ब्रह्मा कर्ता है। तथा ऋग्यजुः साम और अग्नि आदि ऋषि कर्म हैं। और दुदोह क्रिया हैं। दुह धातु द्वि कर्मक है तथा ण्यन्त गर्भा है। अतः अर्थ यह हुआ कि 'परमात्मा ने अग्नि वायु रवि के द्वारा ब्रह्मा को चारों वेद प्राप्त कराये'। जब आपको न संस्कृत का व्याकरण आता है न उर्दू का सरफ नहव। तो आप ख़ाह-मख़्वाह में टांग क्यों अड़ाते हैं। आपको फेल फाइल और मफ़ूल का ही पता नहीं है। देखिये कर्ता को फाइल कर्म, को मफ़ूल तथा क्रिया का नाम फेल हैं। आपने 'दुदोह' क्रिया को मफ़ूल तथा 'ऋग् यजु कर्म को फेल लिख दिया जो क़तई उलटा है।

२१३ (प्रश्न)—जो पदार्थ किसी पदार्थ में व्यापक होता है। वह उस में से दुहा जाता है। जैसे गौ के अंग अंग में दूध है। वह स्तनों के ज़रिये से दुह लिया जाता है। तो क्या इन तीन ऋषियों के हाड़ मांस रुधिर चमड़े में वेद व्यापक हो गया जो ईश्वर ने तीनों को पकड़ कर दुह लिया। पृ० २४६ पं० २२।

उत्तर—क़ुरबान जायें आप की दर्शन विद्या पर। यहां तो आप ने फिलासफी की टांग ही तोड़ दी। क्यों जी क्या दूध गाय के हाड, मांस, रुधिर, चमड़ा, गोबर, पेशाब सब में व्यापक है। यदि यही बात है तो आप उपरोक्त वस्तुओं को दूध के स्थान में इस्तेमाल क्यों नहीं करते। और यदि व्यापक है तो स्तनों द्वारा ही क्यों निकलता है मुख, नाक, कान, आंख, योनि, गुदा, द्वारा क्यों नहीं निकलता। जैसे खून गौ

के शरीर में व्यापक है। तो जहां ज़ख्म होगा वहीं से खून निकल पड़ेगा। इसी प्रकार से प्रत्येक स्थान से दूध निकलना चाहिये, किन्तु ऐसा नहीं होता। अतः पता लगा कि दूध गौ के शरीर में व्यापक नहीं है। अपितु कुछ नाड़ियां दूध बनाती हैं जिन का स्तनों से संबंध है। जिन से दूध निकलता है। फिर दूध का उदाहरण ग़लत है, क्योंकि वेद ज्ञान शारीरिक वस्तु नहीं अपितु आत्मिक वस्तु है। और वह ज्ञान परमात्मा ने ऋषियों की आत्मा में व्यापक होते हुए प्रकाशित किया और उन से ब्रह्मा ने पढ़ा, इसी का नाम दोहना या प्राप्त करना है। कहिये अब भी अक़ल ठिकाने आई या नहीं!

२१४ (प्रश्न)—अग्नि, वायु, सूर्य्य इन पद पदार्थों में जो सूक्ष्म होके वेद के सर्वव्यापक बन गया था। उसको ब्रह्मा ने खैंच कर वेद के स्थूल रूप में कर दिया यह असली अर्थ है। पृ० २५० पं० १।

उत्तर—वेद ज्ञान है वह आत्मा का गुण है अतः वह या परमात्मा में रह सकता है या जीवात्मा में, किंतु अग्नि वायु, सूर्य्य; ये तीनों जड़ पदार्थ हैं। इन में वेद का ज्ञान सूक्ष्म होकर कैसे व्यापक बन गया था। और ब्रह्मा ने उन में से कहां से खैंचकर स्थूल रूप में कर दिया। यह फ़िलासफ़ी किस दर्शन के अनुसार है, ज़रा बतलाने की कृपा करें। वरना सोच समझ कर बात किया करें। फ़ज़ूल गप्प बाज़ी से वैदिक सिद्धान्त का खंडन नहीं हो सकता। अतः मानना पड़ेगा कि अग्नि वायु सूर्य्य नाम वाले ऋषि थे जिनके द्वारा परमात्मा ने ब्रह्मा को वेद प्राप्त करवाये।

२१५ (प्रश्न)—चतुर्थ अथर्व वेद को दयानन्द जी के मत में पता नहीं कि अब्दुल रहमान ने बनाया या डाक्टर स्मिथ ने। पृ० २५० पं० ६।

उत्तर—यह सनातन धर्म्म में ही संभव हो सकता है कि ऐरे ग़ैरे नत्थू खैरे की बनाई हुई किताब को भी वेद का दर्जा दिया जा सके। वैदिक सिद्धान्त अटल हैं। उन में मनुष्य कृत बनावटी वस्तु शामिल नहीं हो सकती। यह ठग्गी सनातन धर्म्म में ही चल सकती है कि "आग़ाखां" और .गुलाम अहमद" क़ादयानी जैसे लोग अपने आप को कृष्ण का अवतार बता कर अपनी बाणी को वेद बताकर हज़ारों हिन्दुओं को मुसलमान बना रहे हैं। रही चौथे वेद अथर्व की बात सो वह अंगिरा ऋषि द्वारा परमात्मा ने ब्रह्मा को प्राप्त करवाया जिस का वर्णन शतपथ तथा मनु में मौजूद है (देखो नं० २६) तथा अथर्ववेद में स्वयं "अथर्वांगिरसो मुखम्" इन शब्दों में वर्णन मौजूद है। (देखो नं० २०७)

२१६ (प्रश्न)—जिस मनु के श्लोक को आगे रख कर तीन ऋषियों से वेदोत्पत्ति बतलाई उस के पहिले श्लोक में मनु जी कहते हैं कि ब्रह्मा ने देवता और साध्यों को पैदा किया। दयानन्द के मत में मनुष्यों से भिन्न देवता और साध्य होते ही नहीं। दयानन्द जी तो पढ़े हुए मनुष्यों को देवता एवं साध्य मानते हैं। जब हम यह श्लोक आर्य समाजियों के आगे रखते हैं कि देखो मनु ने मनुष्यों की उत्पत्ति तो पहिले लिख दी और अब इस श्लोक में देवता तथा साध्यों की उत्पत्ति बतलाई गई है। इस कारण देवता तथा साध्य सृष्टि मनुष्य सृष्टि से भिन्न है। तब आर्य समाजी कहते हैं कि 'कर्मा-

त्मनाम्' यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है। अत एव हम इस को नहीं मानते। जैसे 'कर्मात्मनाम्' वेदानुकूल नहीं है वैसे ही 'अग्नि वायु' यह श्लोक भी वेदानुकूल नहीं है। फिर इस को दयानन्द जी ने माना क्यों। पृ० २५० पं० ६

उत्तर—वेशक वैदिक सिद्धान्तानुसार देव साध्य, मनुष्य, राक्षस, गान्धर्व आदि सब की एक ही मनु जाति है (देखो नं० १६४) केवल देश, कर्म, नाम का भेद है 'कर्मात्मनाम्' मनु० १।२२' से पूर्व मनु में कहीं भी मनुष्यों की उत्पत्ति लिखी हुई नहीं है। आप ने यह सुफैद झूठ बोला है। यदि हिम्मत हो तो दिखलावें। वरना इस झूठ के लिये प्रायश्चित करें। और इस श्लोकका अर्थ यह है कि ब्रह्मा परमात्मा ने कर्मात्म प्राणि देव तथा साध्य पैदा किये जिन में ब्रह्मादि ऋषि भी थे। अगले श्लोक में बतलाया कि ब्रह्मा परमात्मा ने अग्नि आदि चार ऋषियों द्वारा चार वेद ब्रह्मा ऋषि को प्राप्त करवाये। अतः यह दोनों श्लोक वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं। और आप की सारी कल्पना निर्मूल और मिथ्या है।

२१७ (प्रश्न)—प्रजापतिर्वा इदमग्रे आसीदिति शत० ११।५।८—१से ४" इन श्रुतियों में स्पष्ट लिखा है कि तप के द्वारा प्रजापति ने तीन लोकों को बनाया। और उन तीन लोकों को तप कर अग्नि वायु सूर्य्य इन तीन ज्योतियों को बनाया। एवं इन तीन ज्योतियों को तपाकर उन से तीन वेदों को बनाया। अब पाठक विचार करें कि अग्नि वायु सूर्य्य ये तीनों ही ज्योतियां तत्व हैं या ऋषि और फिर इन ज्योतियों को तपाया है क्या वे ऋषि तपाये गये थे। पृ० २५० पं० २५।

उत्तर—यदि ऋषि न तपाये गये थे तो क्या ज्ञान शून्य जड़ तत्वों से वेद टपक पड़े थे। कभी तो बुद्धि पूर्वक विचार किया करें। यहां पर तप नाम तपाने का नहीं है अपितु ज्ञान विचार का नाम तप है। वरना वहां कोई लुहार की भट्टी थोड़ा ही थी जिसमें सब को तपाया जाता था। अपने पाठ का अर्थ भी पूरा नहीं किया हम इसका ठीक ठीक अर्थ नीचे कर देते हैं:—

प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत्। एक एव सोऽकामयत स्यां प्रजाययेति सोऽश्राम्यत्स तपोऽतप्यत तस्माच्छ्रान्तात्ते पानात् त्रयो-लोका असृज्यन्त पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौः ॥१॥ स इमांस्त्रींलोकामि-तताप। तेभ्य स्तप्तेभ्य स्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्नि र्योऽयंपवते सूर्यः ॥२॥ स इमानि त्रीणि ज्योतींष्यभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्ने ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः ॥३॥ स इमांस्त्रीन् वेदानभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्य स्त्रीणिशुक्राण्यजायन्त भूरित्यृग्वेदाद्भुवइति यजुर्वेदात् स्वरिति सामवेदात् तदृग्वेदेनैव होत्र-मकुर्वत यजुर्वेदेनाध्वर्यवं सामवेदेनोद्गीथं यदेव त्रय्ये विद्यायै शुक्रं तेन ब्रह्मत्वमथोच्चक्राम ॥४॥

(शत० ११।५।८। १ से ४)

भाषार्थ—यह एक ही प्रजापति पहिले था उसने सोचा कि मैं प्रजा के सहित हो जाऊं। उस ने ज्ञान पूर्वक प्रयत्न किया। उस ज्ञान तथा यत्नसे उसने तीन लोक बनाये पृथिवी अन्तरिक्ष द्यौ ॥१॥ उसने इन तीन लोकों को रचा, इन तीन लोकों के रचने पर उसने संसार को ज्ञान से प्रकाशित करने के लिये तीन प्रकाशमान् ऋषि पैदा किये अग्नि वायु सूर्य्य ॥२॥

उसने इन तीन ज्योतिमान् ऋषियों को ज्ञान दिया उनके ज्ञानवान् होने पर तीन वेद प्रकाशित हुए। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद, सूर्य से सामवेद ॥३॥ उसने इन तीन वेदों को प्रकाशित किया उन के प्रकाशित होने पर तीन शक्तियां पैदा हुईं भूः ऋग्वेद से भुवः यजुर्वेद से स्वः सामवेद से सो ऋग्वेद से ही होता हवन करता है। यजुर्वेद से अध्वर्यु, घी का हवन करता है सामवेद से मंगल गाया जाता है और इन तीनों विद्याओं से ज्ञानवान् हो कर ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥४॥ अब बतलावें यहां तीन ज्योतियां तत्त्व हैं या ऋषि, क्या ज्ञान तत्त्वों को दिया जा सकता है और क्या तत्त्वों से वेदों का ज्ञान प्रकाशित होना संभव है।

२१८ (प्रश्न)—अभी ब्रह्मलोक में बैठे हुवे प्रजापति ब्रह्मा ब्रह्मांड की रचना कर रहे हैं इस समय तो पृथिवी आदि लोकों में प्राण धारण करने वाले प्राणियों की उत्पत्ति ही नहीं हुई अभी तो पृथिवी पर एक मनुष्य भी पैदा नहीं हुवा। फिर ये अग्नि वायु रवि तीन ऋषि आये कहां से। पृ० २५१ मं० २१।

उत्तर—आप भंग की तरंग में कहां की बातें कर रहे हैं। प्रजापति परमात्मा ने तीनों लोक पैदा करके मनुष्य सृष्टि पैदा करदी और मनुष्यों को ज्ञान देने के लिये तीन प्रकाशमान् ऋषि पैदा किये जिन द्वारा वेद प्रकाशित किये। यदि आप को यह बात नज़र न आवे तो हमारा क्या कसूर ?

२१९ (प्रश्न)—अब तीन लोकों को तपाया गया उन का सार भूत तीन तत्त्व निकलेंगे या तीन लोकों में से तीन ऋषि कूद पड़ेंगे। पृ० २५१ पं० २४।

उत्तर—अब तीन लोकों में ज्ञान देने के लिये तीन ऋषियों की ज़रूरत है या तीन तत्त्वों की। तत्त्व तो पूर्व मौजूद ही थे। और तत्त्वों से ज्ञान प्रकाश असम्भव होने के कारण तीन ऋषि ही पैदा हुए तत्त्व नहीं।

२२० (प्रश्न)—जब शतपथ खुद अग्नि, वायु, रवि को ज्योति लिख रहा है फिर ये ऋषि कैसे होंगे। पृ० २५१ पं० २६।

उत्तर—जब शतपथ खुद वेदों का प्रकाश करने वाली तीन ज्योतियां लिख रहा है तो फिर ये ज्ञान-शून्य जड़ तत्त्व कैसे होंगे ? ज्ञान ज्योति से प्रकाशित ऋषि ही हो सकते हैं, तत्त्व नहीं।

२२१ (प्रश्न)—दयानन्द जी ने शतपथ की श्रुति से ज़रा से टुकड़े को चुरा कर आर्य्य समाजियों को जो धोके में डाला है, यह दयानन्द जी की चोरी और सीना ज़ोरी है। पृ० २५१ पं० २७।

उत्तर—यहां तप के अर्थ तपाना और वेद के प्रकाश करने वाली ज्योति का तत्त्व अर्थ कर के जो आप ने सनातन धर्म्मियों की आंखों में धूल डाल कर अपने जैसा बनाना चाहा है यह आप की ईमानदारी नहीं है।

२२२ (प्रश्न)—फिर यह श्रुति दयानन्द के अद्वैत सिद्धान्त पर चौका लगा देती है। इस में स्पष्ट लिखा है कि अकेला प्रजापति कामना करता है 'कि मैं प्रजा बनूं' श्रुति "अभिन्न निमित्तो पादान कारण" कह रही है। इसलिये दयानंद जी ने सब श्रुतियों को नहीं उठाया, जान गये कि अग्नि, वायु, रविऋषि न होकर तत्त्व बन जायेंगे। और इस से भिन्न प्रकृति

से जो हमने संसार की उत्पत्ति मानी है। वह भी मिट जायेगी।
पृ० २५२ पं०

उत्तर—आप गहरी भंग की तरंग में लिखने बैठे हैं। तभी तो स्वामी दयानन्द का अद्वैत सिद्धान्त बतला रहे हैं। होश से बात करें। स्वामी दयानन्द जी न द्वैतवादी हैं न अद्वैतवादी। वह तो त्रित्ववादी हैं। और ईश्वर जीव प्रकृति तीनों को अनादि मानते हैं। और शतपथ का यह पाठ स्वामी जी के सिद्धान्त की ताईद कर रहा है। प्रजापति एक ही था यह ठीक किन्तु उसकी प्रजा प्रकृति और जीव भी थे तभी तो प्रजापति नाम हुआ। यदि प्रजा का अभाव होता तो प्रजापति नाम कैसे होता। क्या कभी "बेमुल्क नवाब" भी होता है। इस में "अभिन्न निमित्तोपादान कारण" का गंध भी नहीं है। ऋषि दयानन्द जी ने उतना पाठ दे दिया जितने की जरूरत थी वरना यह पाठ शेष पाठ का विरोधी नहीं है। ऋषि जानते थे कि वेद ज्ञान का प्रकाश होना चैतन्य ऋषियों द्वारा ही सम्भव है। जड़ तत्वों द्वारा सम्भव नहीं अतः उन्हों ने सिद्धान्त निश्चित कर दिया कि परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों द्वारा ब्रह्मादि ऋषियों को वेद का ज्ञान दिया। स्वामी जी के इस सिद्धान्त की ताईद वेद, शतपथ, ऐतरेय, सायणाचार्य्य, मनुस्मृति तथा कुल्लूक भट्ट भी करते हैं। अतः यही सिद्धान्त वेदानुकूल सत्य है। और चतुर्मुख ब्रह्म द्वारा वेद का प्रकाश वेदविरुद्ध और मिथ्या पौराणिक कल्पना है।

परिणाम—

इस सारे लेख का परिणाम यह है कि सृष्टि के आरम्भ

में केवल एक ऋषि ही पैदा नहीं हुआ अपितु अनेक ऋषि पैदा हुए जैसे कि "तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये। यजु० ३१।९" में साफ लिखा है कि परमात्मा से देवता साध्य और ऋषि पैदा हुये। यहां बहुवचन से साबित है कि अनेक देवता साध्य तथा ऋषि पैदा हुए यदि एक ब्रह्मा ही आदि में पैदा हुआ होता तो वेद उसी का वर्णन करता। फिर इस की ताईद—

स पूर्वषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥ योग सू० समाधिपादे सू० २६।

अर्थात् वह परमेश्वर सृष्टि की आदि में अग्नि वायु आदित्य अंगिरा को वेदों का उपदेश करने के कारण गुरु नाम वाला है। अब यहां भी यही सिद्ध होता है कि परमात्मा ने आरंभ में कई ऋषियों को वेदों का उपदेश किया तभी तो "पूर्वेषाम्" शब्द बहुत का वाची आया, वरना यदि एक ब्रह्मा ही आदि में होता तो सूत्र में "पूर्वस्यापिगुरुः" "पहिले ब्रह्मा का गुरु" ऐसा पाठ होता। इस से साबित है कि परमात्मा ने चारों ऋषियों पर चारों वेदों का प्रकाश किया उन से ब्रह्मा ने पढ़े, यही निश्चित् सिद्धान्त है।

फलित ज्योतिष

२२३ (प्रश्न)—'यान्ति नक्षत्राणि इत्यादि अथर्व० १९।८। १' इस मन्त्र में नक्षत्रों से कल्याण करने की प्रार्थना करना लिखा है। पृ० २५२ पं० १४।

उत्तर—इस मन्त्र में नक्षत्रों से कल्याण की प्रार्थना नहीं की गई क्योंकि नक्षत्र सब ही जड़ हैं। इन का हमारी

तबीयत के अनुसार हमारे साथ गरमी सर्दी और रोशनी का सम्बन्ध तो है। इनका हमारे कर्मों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जीव स्वतन्त्रता से कर्म करता है। और परमात्मा की व्यवस्था से अपने पुण्य पाप कर्मों का फल सुख और दुःख के रूप में पाता है। यदि सुख दुःख के देने वाले नक्षत्र हों तो वेद का उपदेश कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ २॥
(यजु० ४० । २)

भावार्थ—मनुष्य इस संसार में धर्म्म युक्त कर्मों को करता हुवा ही सौ वर्ष जीवन की इच्छा करे। इस प्रकार धर्म्म युक्त कर्मों में प्रवर्तमान तुझ नर में अधर्म युक्त अवैदिक कर्म का लोप न होगा। इसके बिना और कोई रास्ता नहीं है॥२॥ सर्वथा निरर्थक हो जावेगा। वेद का उपदेश स्पष्ट है कि कर्म करने से ही कल्याण है। किये कर्मों का फल अवश्य मिलता है। ग्रहों के कारण किये कर्म के फल से छुटकारा नहीं मिल सकता। जैसे—

नाधर्मः कारणापेक्षो कर्तारमभिमुञ्चति।
कर्ता खलु यथा कालं ततः समभिपद्यते॥८॥
(महा० शांति० अ० १९८)

भावार्थ—अधर्म किसी कारण से कर्ता को छोड़ता नहीं। निश्चय रूप से करने वाला यथा समय उस के फल को अवश्य पाता है॥८॥ और ग्रहों के कारण बिना किये का फल मिलता नहीं। जैसे—

भोजनाच्छादने चैव मात्रापित्रा चसंग्रहम्।
स्वकृतेनाधिगच्छन्ति लोके नास्त्यकृतंपुरा ॥१७॥
(महा० शान्ति० अ० २८८)

भाषार्थ—भोजन आच्छादन तथा माता पिता का संग्रह जीव अपने कर्मों से प्राप्त करते हैं। बिना कर्म किये फल नहीं मिलता ॥१७॥ जब ग्रह किये हुवे पापों के फल को टाल नहीं सकते और बिना कर्म किये फल दे नहीं सकते तो उन का उपयोग क्या है। आप यदि फलित ज्योतिष को सिद्ध करना चाहते हैं तो ऐसा प्रमाण उपस्थित कीजिये जिस से यह साबित हो कि ग्रह किये कर्मों के फल को टाल सकते हैं या बिना कर्म किये भी फल दे सकते हैं। यदि ऐसा कोई प्रमाण नहीं तो जनता को ग्रहों का झूटा भय दिखला दिखला कर लूटना परले दरजे की बे ईमानी है। ये सब नक्षत्र ग्रह पृथ्वी की भांति जड़ हैं, न प्रार्थना से प्रसन्न और न निन्दा से अप्रसन्न होते हैं। हमारे विचार में तो फलित ज्योतिष के जानने बताने ठगने वाले ज्योतिषी ही जनता पर ग्रह रूप हैं। यदि जनता इन के पाखंड से वाकिफ़ हो जावे तो जनता को शान्ति प्राप्त हो जावे। इस मंत्र में ग्रहों से प्रार्थना नहीं अपितु आधिदैविक दुःखों की निवृत्ति के लिये परमात्मा से प्रार्थना है। मंत्र का अर्थ नीचे दिया जाता है

यानिनक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौयानि नगेषु दिक्षु।
प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणिममै तानि शिवानि सन्तु॥१॥
(अथर्व० १९।८।१)

भाषार्थ—हे परमेश्वर! जिन सितारों को आकाश के अंदर मध्यलोक में जिन को जल के ऊपर और जिन को पहाड़ों

के ऊपर सब दिशाओं में चन्द्रमा समर्थ करता हुआ चलता है। ये सब नक्षत्र मेरे सुख देने हारे हों ॥१॥

भावार्थ—जो नक्षत्र अपने तारागणों के साथ चन्द्रमा के आकर्षण और गति मार्ग में घूम कर वायु द्वारा जल पृथ्वी आदि पर प्रभाव डाल कर अन्न स्वास्थ्य आदि बढ़ाने का कारण हैं। विद्वान् लोग उन नक्षत्रों के ज्योतिष ज्ञान से लाभ उठावें ॥१॥ इस मंत्र में फलितज्योतिष का लेशमात्र भी नहीं है।

२२४ (प्रश्न)—"शन्नो ग्रहाश्च इत्यादि अथर्व १९।९।१०" इस मंत्र में ग्रहों से कल्याण की प्रार्थना करनी लिखी है।

पृ० २५२ पं० २८

उत्तर—इस मंत्र में भी परमात्मा से आधि दैविक दुखों को दूर करने की प्रार्थना है। आप को फलित ज्योतिष की सिद्धि के लिये कोई ऐसा मंत्र पेश करना चाहिये जिस से यह साबित हो जाये कि जन्म नक्षत्र के ज्ञान से उस के भविष्य सौभाग्य का ज्ञान हो जाता है किन्तु आप इस बारे में कोई मंत्र पेश नहीं कर सकते। किन्तु आये दिन बच्चों को जन्म पत्रियां बना बना कर जनता से हज़ारों रुपए ठगे जाते हैं। जिस नक्षत्र वा मुहूर्त्त में एक राजा का लड़का पैदा होता है उसी नक्षत्र में हज़ारों मनुष्य कुत्ते बिल्ली आदि प्राणी पैदा होते हैं। किन्तु सब का सौभाग्य एक सा नहीं होता। और भविष्य कर्मफल या सौभाग्य का यदि पता लग जावे तो संसार बहुत से कष्टों से बच जावे किन्तु ऐसा होता कदापि नहीं। सैंकड़ों ज्योतिषियों की खुद लड़कियां विधवा हो जाती हैं। किन्तु उन को पहिले से उन के सौभाग्य का ज्ञान नहीं हो सकता। ज्योतिषी सैंकड़ों लोगों को यह बतला कर कि तुम्हारे पर ग्रह चढ़ा हुआ है। जप पूजा पाठ के बहाने से हज़ारों रुपया

लोगों से ठगते हैं। लोगों को भविष्य में अनाज का भाव बतलाकर सैंकड़ों के दिवाले कर देते हैं। यदि इनको जिस भाव का पता लग जावे तो यह स्वयं करोड़पति न बन जावें, दो २ पैसे पर धक्के क्यों खाते फिरें। साबित करने की तो यह बातें हैं। जो साबित नहीं हो सकतीं। मंत्र का अर्थ नीचे दिया जाता है।

शन्नो ग्रहाश्च चन्द्रमसाः शमादित्यश्चराहुणा।
शन्नो मृत्यु धूमकेतुः शंरुद्रास्तिग्म तेजसः ॥१०॥

(अथर्व० १९।९।१०)

भाषार्थ—हे परमात्मन् ! चन्द्रमा के ग्रह कृत्तिकादि हमें शान्ति दायक होवें। और सूर्य्य, राहु के साथ शान्ति दायक हुवे। मृत्यु रूप धूम केतु पूछल तारा हमें शांतिदायक हो, तीक्ष्ण तेजवाले गतिमान बृहस्पति आदि ग्रह शांति दायक होवें॥ १० ॥ कहिये इस मंत्र से फलित ज्योतिष कैसे सिद्ध होता है। यह तो ऐसी ही शान्ति के लिये प्रार्थना है जैसे हम नित्य प्रति प्रार्थना करते हैं कि—

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ॐ शान्तिः पृथिवी
शान्ति रापः शान्ति रोषधयः शान्ति र्वनस्प
तयः शान्ति। विश्वेदेवाः शान्ति ब्रह्मा शांति
सर्वं ॐ शान्तिः शान्ति रेव शान्तिः सा मा
शान्ति रेधि॥ यजु० ३६। १७॥

भाषार्थ–हे परमात्मन् ? हमारे लिये द्यौ अंतरिक्ष पृथिवी जल समस्त देव ब्रह्म सब कुछ तथा शान्ति भी शान्ति दायक हो। बतलाईये आप के दिये हुए मंत्रों में से कौनसी वस्तु बाकी रह गई। ऐसी प्रार्थनाओं का यही प्रयोजन है कि इन पदार्थों का हमारे साथ जितना सम्बन्ध और उपयोग है उतने अंश

में हमें उन से सुख मिले। इस से ग्रहों का किसी पर चढ़ कर पीड़ा देना, जन्म पत्र में भविष्य भोगों को वर्णन करना, विवाह शादी के शुभलगन, सफर में दिशाशूल तथा योगिनी विवाह आदि में शुभाशुभ मुहूर्त, वैधव्य योग आदि फलित ज्योतिष की सिद्धि कैसे हो गई।

२२५ (प्रश्न)—"ज्येष्ठघ्न्यां जातो" व्याघ्रे अह्नि" इत्यादि अथर्व० ६। ११०। २-३। इन दोनों मंत्रों में ज्येष्ठा तथा मूल नक्षत्र में पैदा हुए बालक की कुशलता के लिये मूल शांति करनी लिखी है। पृ० २५३ पं० ३।

उत्तर—आपने प्रतिज्ञा तो की है वेद से फलित ज्योतिष सिद्ध करने की। और समय टाल रहे हैं इधर उधर की बातों में, भला इन मंत्रों में उपरोक्त जन्मपत्रादि फलित ज्योतिष का वर्णन कहां है। इन मन्त्रों में तो माता पिता की सेवा तथा नियम पूर्वक जीवन व्यतीत करने का वर्णन है। हम इन दोनों मंत्रों के अर्थ नीचे देते हैं—

ज्येष्ठघ्न्यां जातो विचृतो र्यमस्य मूल वर्हणात् परि पाह्येनम्। अत्येनं नेषद् दुरितानि विश्वा दीर्घायु-त्वायशत शारदाय॥ अथर्व० ॥ ६। ११०। २॥

भाषार्थ—ज्येष्ठ अर्थात् अतिवृद्ध वा उत्तम ब्रह्म को प्राप्त करने वाली क्रिया में प्रसिद्ध अंधकार से छुडाने वाले सूर्य और चन्द्रमा के नियम के मूल छेदन से इस जीव को सब प्रकार बचा। सब विघ्नों को उलांघ कर सौ वर्ष वाले दीर्घ जीवन के लिये इसको आप लेचलें॥ २॥

भावार्थ—मनुष्य श्रेष्ठ जनों के अनुकरण से पुरुषार्थ के साथ विघ्नों को हटा कर सूर्य्य और चन्द्रमा के समान सदा नियम में चल कर यश प्राप्त करे॥ २॥

व्याघ्रेऽह्न्यजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्रमिनी—
ज्जनित्रीम् ॥ अथर्व० ६ । ११० । ३ ॥

भाषार्थ—यह वीर पुरुष नक्षत्र के समान गति उपाय उत्पन्न करने वाला महावीर होता हुआ व्याघ्र के समान बलवान दिन में माता पिता के बल के समय उत्पन्न हुआ है वह बढ़ता हुआ पिता को न मारे और जन्म देने वाली माता को कभी न सतावे ॥ ३ ॥

भावार्थ—शूरवीर पुरुष सुरक्षित बलवान माता पिता से जन्म पाकर उनको कष्ट से बचा कर सदा सुखी रख कर अपना सौभाग्य बढ़ावे ॥ ३ ॥ न तो इन मंत्रों में मूल नक्षत्र में पैदा हुए को विघ्न आता है ऐसा वर्णन है, न उसकी शान्ति के उपाय का जिक्र है ।

२२६ (प्रश्न)—"मा ज्येष्ठं वधीदित्यादि अथर्व० ६ । ११२ । १" इस मंत्र में भी मूल नक्षत्र में पैदा हुए बालक के कल्याण की प्रार्थना है । पृ० २५३ पं० १६ ।

उत्तर—इस मंत्र में न तो मूल नक्षत्र में पैदा हुए बालक के विघ्न का वर्णन है और न ही उसके कल्याण की प्राथना है अपितु इस मंत्र में श्रेष्ठ पुरुष की रोगों से रक्षा का वर्णन है । हम इस मंत्र का ठीक ठीक अर्थ नीचे देते हैं ।

मा ज्येष्ठं वधीदयमग्न एषां मूलबर्हणात् परि—
पाह्येनं । स ग्राह्याः पाशान् विचृत प्रजानन्
तुभ्यंदेवा अनु जानन्तु विश्वे ॥ अथर्व० ६ । ११२ । १ ॥

भाषार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! यह रोग इन के बीच विद्या और वय में बहुत बड़े पुरुष को न मारे । इस पुरुष को मूल

छेदन से सर्वथा बचा। सो तू ज्ञानी होकर जकड़ने वाले गठिया आदि रोग के फंदों को खोलदे। सब विद्वान् लोग तुझ को अनुमति देवें ॥१॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वानों की सम्मति से श्रेष्ठ पुरुष की रक्षा का सदा उपाय करें ॥१॥

बतलाइये ! इससे फलित ज्योतिष सिद्ध होसकता है? वास्तव में किसी भी काल के साथ मनुष्य के अच्छे बुरे कर्मों का कोई संबंध नहीं है। कोई किसी समय पैदा हो अपने कर्मों का फल भोगता है। अतः किसी काल को मनुष्य के कर्मों से भी जोड़ना सिद्धान्त के विरुद्ध है। देखिये महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि—

यदिकालः प्रमाणं ते न वैरं कस्यचिद्भवेत् ।
कस्मात्त्वपचितिं यान्ति बांधवा बांधवैर्हतैः ॥५३॥
कस्माद्देवासुराः पूर्वमन्योऽन्यमभिजघ्निरे ।
यदि कालेन निर्याणं सुखं दुःखं भवाभवौ ॥५४॥
भिषजो भेषजं कर्तुं कस्मादिच्छन्ति रोगिनः ।
यदि कालेन पच्यन्ते भेषजैः किं प्रयोजनम् ॥५५॥
प्रलापः सुमहान् कस्मात् क्रियते शोक मूर्च्छितैः ।
यदिकालः प्रमाणं ते कस्माद्धर्मोऽस्ति कर्तृषु ॥५६॥
(महा० शांति० अ० १३९)

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्
इति ते संशयोमाभूद्राजा कालस्य कारणम् ॥७९॥
(महा० शांति० अ० ६९)

भाषार्थ—यदि तुझे काल प्रमाण है तो किसी से वैर नहीं होना चाहिये। फिर संबन्धी संबन्धियों से मारे हुए क्यों क्षय को प्राप्त होते हैं ॥५३॥ पूर्वकाल में देव और असुरों ने

एक दूसरे को क्यों मारा यदि सुख दुख जन्म मरण काल से ही होते हैं ॥५४॥ वैद्य रोगी की दवाई करने की क्यों इच्छा करते हैं। यदि काल से ही सब पकाये जाते हैं तो दवाई से क्या प्रयोजन ॥५५॥ शोक से मूर्च्छित हुए लोग महान् रोना पीटना क्यों करते हैं। यदि तुझे काल ही प्रमाण है तो कर्ता में धर्म की स्थिति क्यों है ॥५६॥ काल राजा का कारण है या राजा काल का कारण है, यह तुम को संदेह नहीं होना चाहिये राजा ही काल का कारण है ॥७६॥

इससे साबित है कि हमारे कर्मों में काल कारण नहीं है और काल का संबन्ध उत्पद्यमान चांद सूर्य ग्रहों से है इससे साबित है कि नक्षत्र हमारे अच्छे बुरे कर्मों में कारण नहीं हैं। अपितु हम कर्म करने में स्वतंत्र हैं।

२८७ (प्रश्न)—वेद ने नक्षत्र और ग्रहों से कल्याण की प्रार्थना करनी लिखी है। साथ ही साथ छः नक्षत्र मूल के हैं। उनमें पैदा हुए बालक की कुशलता के लिये मूल शांति करनी लिखी है। निःसंदेह वेदों ने नक्षत्र ग्रहों से कल्याण चाह कर मूल शांति द्वारा अरिष्टागमन की निवृत्ति कही है। स्वामी दयानन्द जी ने एक भी प्रमाण न देकर वेद के लेख पर चौका लगा दिया। पृ० ५५५ पं० १०।

उत्तर—'द्वासुपर्णा' से साबित है कि ईश्वर जीव प्रकृति नित्य हैं। इन में से जीव और परमात्मा चेतन तथा प्रकृति जड़ है। जीव स्वतंत्रता से कर्म कर्ता और परमात्मा कर्मों का फल दाता है। परमात्मा ने प्रकृति से जीवों के कर्म भोगार्थ 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता' इस सृष्टि को उसी प्रकार से बनाया जैसे पहले बनाया करता था। परमात्मा ने दो प्रकार का जगत्

बनाया। प्राणी जैसे मनुष्य, पशु,पक्षी, वृक्षादि, अप्राणी, आग, पानी, मिट्टी, हवा, आकाश, चांद, सूर्य्य, सितारे आदि। इस जगत् में परमात्मा द्रष्टा फल दाता जीव भोक्ता और शेष जगत भोग्य पदार्थ है। मनुष्य पृथिवी में रहता, अन्न पैदा करता, अग्नि से प्रकाश और गरमी ग्रहण करता, जल से प्यास बुझाता, हवा से सांस लेता, आकाश में रहता, चांद, सूर्य्य, सितारों से अपनी तबीयत के बमूजिब गरमी, सरदी, प्रकाश, बरसात, तथा जल वायु की शुद्धता से स्वास्थ्य ग्रहण करता, औषधियों से भूख दूर करता और भी धात, पत्थर, लकड़ी आदि से आवश्यकता अनुसार उपकार लेता है। इस के दुख सुख भी तीन प्रकार के हैं। आध्यात्मिक—जो अपनी आत्मा से ही मानसिक दुख सुख मिलते हैं। आधिभौतिक—जो दूसरे प्राणियों से मिलते हैं। आधिदैविक जो उपरोक्त पृथिवी सूर्य्य सितारों आदि से सरदी गरमी प्रकाश वर्षा आंधी भूँचाल आदि द्वारा मिलते हैं। आत्मा कर्म स्वयं स्वतंत्रता से करता है परमात्मा कर्मानुसार फल उपरोक्त तीन प्रकार से सुखों द्वारा देता है। अब यदि मनुष्य परमात्मा से प्रार्थना करता है कि पृथिवी, जल, नक्षत्र, औषधि मेरा कल्याण करें तो भी और यदि इनहीं पदार्थों से कल्याण की प्रार्थना करता है तो भी उसका यही अभिप्राय या इच्छा होती है कि इन पदार्थों के साथ मेरा जितना संबंध या उपयोगिता है उस बारे में मुझे इनसे सुख मिले, दुख न मिले। इस प्रकार की प्रार्थना से वस्तुओं की माहियत में फर्क नहीं आता, चेतन चेतन ही रहते हैं जड़ जड़ ही रहते हैं। अतः नक्षत्र और ग्रह हमारे योग्य पदार्थ हैं और जड़ हैं, उनसे या परमात्मा से कल्याण की प्रार्थना का यही अभिप्राय या

हमारी इच्छा है कि इनके साथ हमारा जितना संबंध है उतने संबंध में इन से हम को सुख मिले, दुख न मिले। इस से ये पदार्थ चेतन या हमारे कर्मों के फल दाता नहीं बन जाते और न वे प्रसन्न या नाराज़ होकर हमें स्वयं सुख या दुख दे सकते हैं अपितु परमात्मा हमारे कर्मों के अनुसार उन द्वारा हमें आधिदैविक सुख या दुःख देते हैं। अतः उनको नाराज़ कल्पना करके उनकी शान्ति के लिये कोई क्रिया करनी सर्वथा निर्मूल और व्यर्थ है। अब रही काल की बात, इस का सम्बन्ध नित्य पदार्थों से नहीं अनित्य पदार्थों से है। सृष्टि के पैदा होने के कारण सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ से इसका संबंध है कौन वस्तु कब हुई कब कैसी अवस्था में थी, है, और होगी इत्यादि। काल का पदार्थों के साथ संबंध है। काल जड़ वस्तु है। वे भी नक्षत्रों की भांति ही हमारे अच्छे या बुरे कर्मों में कारण नहीं है। अपितु कर्म करने में हम क़तई स्वतंत्र हैं। हम अच्छे कम करें या बुरे इसमें नक्षत्रों की भांति ही काल का कोई हस्ताक्षेप नहीं है। काल तीन हैं भूत, भविष्यत, वर्तमान। परमात्मा में भूत, भविष्यत, वर्तमान का हमारी अपेक्षा से ही व्यवहार होता है। परमात्मा भूत काल की समस्त घटनाओं को संपूर्ण जानता है। जीव होश आने के पीछे अपनी और अपने से संबन्ध रखने वाले प्राणियों की भूत काल की घटनाओं को जानता है। या किन ही कार्य्यों को देखकर उनके कारणों का अनुमान करते हुवे दूसरों के भूत काल को भी किसी हद तक जान सकता है। पिछले जन्म के भूत को योगी अपने विषय में योगाभ्यास द्वारा जान सकता है। ज्योतिष से नहीं क्योंकि उस की आत्मा में कार्य्य संस्कार मौजूद हैं। दूसरों के पिछले जन्म के भूत कालको योगी भी नहीं

जान सकता। क्योंकि उनके संस्कार उन की आत्मा में हैं योगी की आत्मा में नहीं हैं। वर्तमान काल को सर्वव्यापक होने से परमात्मा सबको संपूर्णता से जानता है। जीव अपने वर्तमान को तथा समीपस्थ दूसरों के वर्तमान को भी जान लेता है। और योगी जिस स्थान का भी ध्यान करे उस स्थान के वर्तमान को योगावस्था में जान सकता है। ज्योतिष से नहीं। अब रह गई भविष्य की बात सो परमात्मा सृष्टि संबन्धी बातों को तथा जीवों के कर्म फलों के सम्बन्ध में कौन कर्म का क्या फल किस काल में देना है इस को संपूर्णतया जानता है। जीवात्मा भी जो चीज़ काइदे कानून के मुताबिक़ मुक़र्रिर हो उसके भविष्य कालको जान लेता हैं। जैसे तारीखों तिथियों ऋतुओं का परिवर्तन हिसाब सूर्य्य चांद का ग्रहण इत्यादि। क्योंकि ये सब कुछ चांद, सूर्य्य, ज़मीन, सितारों की बाक़ाइदा गर्दश पर निर्भर है जो काइदे कानून के मुताबिक़ मुक़र्रिर हैं जिस में एक सैकिंड का भी फ़र्क़ नहीं पड़ सकता। तथा कारण को देखकर भविष्य के कार्य्य को भी जान सकता है जैसे विवाह को देखकर सन्तान होने के भविष्य को, बादलों को देखकर वर्षा के भविष्य को गरमी सरदी आदि की जांच से आने वाली आंधी या वर्षा को इत्यादि इत्यादि और ऐसा भविष्य के विषय में अनुमानित ज्ञान ६० फीसदी ठीक निकलना संभव है। किंतु मनुष्य के भविष्य में किये जाने वाले कर्मों के बारे में आज से आठवें दिन बारह बजकर एक मिंट गुज़रने पर मैं क्या करूंगा। इस बारे में मनुष्य की तो हस्ती ही क्या है इस को तो ईश्वर भी नहीं जानता कारण यह कि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है जिस काम के करने का अभी मैंने संकल्प भी नहीं किया उसके बारे

में ईश्वर भी यही जानता है कि मेरे दिल में संकल्प नहीं है। जब मेरे दिल में संकल्प पैदा होगा तो संकल्प के बारे में जब काम करूंगा तो काम के बारे में ईश्वर को फौरन से पहिले ज्ञान हो जावेगा। ईश्वर की सर्वज्ञता में इस से दोष नहीं आता क्योंकि सर्वज्ञ के अर्थ हैं जो सब कुछ जानता हो। सब कुछ क्या, जो दुनिया में मौजूद है। जो चीज़ दुनिया में गैर मौजूद है। उसके विषय में ईश्वर भी यही जानता है कि वह गैर मौजूद है। संकल्प से संकल्प का और कर्म से कर्म का ईश्वर को ज्ञान होने पर ईश्वर के ज्ञान में वृद्धि मानने से ईश्वर अनित्य हो जावेगा यह दोष नहीं आता। क्योंकि ईश्वर असूली तौर से इस बात को जानता है कि जीव शरीर को धारण करके दुनियां में क्या कुछ कर सकता है। उसमें से जीव जो करता है उस का फल ईश्वर दे देता है इससे ईश्वर के ज्ञान में वृद्धि क्या हुई। जो आदमी सौ तक गिनना जानता है उसके सामने कोई ५० तक ७० तक ६० तक गिन दे तो उस के ज्ञान में वृद्धि क्या हुई वह तो पहिले से ही सौ गिनना जानता है इसी बात को दृष्टि में रख कर ऋषि दयानन्द जी ने लिखा है कि "जो ईश्वर जानता है वह जीव करता है, जो जीव करता है वह ईश्वर जानता है" इस में पहिले हिस्से के यही अर्थ हैं। कि ईश्वर जिन बातों को जानता हैं कि जीव क्या कुछ कर सकता है। उन्हीं में से जीव करता है। इस से सिद्ध हुआ कि ईश्वर जीव से भविष्य में किये जाने वाले कर्मों को नहीं जानता यदि एक मिंट के लिये हम यह मान लें कि वह जानता है कि आज से आठवें दिन बारह बजकर एक मिंट गुजरने पर मैं चोरी करूंगा तो बतलाओ कि मैं उस चोरी करने के संकल्प

को तबदील कर सकता हूं या नहीं। यदि कहो तबदील कर सकता हूं तो ईश्वर का ज्ञान ग़लत होने से वह ईश्वर कहाने के क़ाबिल न रहा। यदि कहो तबदील नहीं कर सकता तो मेरे काम ईश्वर के ज्ञान में नियत होगये, जो मुझे मजबूरन करना पड़े उसके फल का मैं जुम्मेवार क्यूं। उसका फल उसी को भोगना चाहिये जिसने मेरे से कोई काम ज़बरन करवाया। इस से सिद्ध होगया कि मनुष्य के भविष्य में किये जाने वाले कर्मों को जब ईश्वर नहीं जानता तो मनुष्य की तो हस्ती ही क्या है। अतः जन्म पत्री तथा संपूर्ण भविष्य वाणियां असूल तौर पर गलत हैं। उन में से यदि कोई बात सच निकल जाती है तो वह घुनाक्षर न्याय से इतफाक़िया है दानिस्ता नहीं है। हम आपको आपके ही घर एक प्रमाण देते हैं कि जब राजा मुंज ने ज्योतिषी के कहने पर अपने वज़ीर वत्सराज को भोज के क़त्ल के लिये कहा तो वत्सराज ने उत्तर दिया वह यह है कि—

त्रैलोक्य नाथो रामोऽस्ति वसिष्ठो ब्रह्म पुत्रकाः।
तेन राज्याभिषेकेतु मुहूर्तः कथितोऽभवत्॥२०॥
तन्मुहूर्तेन रामोऽपि वनंनीतोऽवनिं विना।
सीतापहारोऽप्यभवद्विरंचि वचनं वृथा॥२१॥
जातः कोऽयं नृपश्रेष्ठ किंचिज्ञ उदरंभरिः।
यदुक्त्या मन्मथाकारं कुमारं हन्तु मिच्छसि॥२२॥

(भोज प्रबंध बल्लाल पंडित विरचित)

भाषार्थ—श्री रामचन्द्र जी त्रिलोकी के नाथ थे और वसिष्ठ ब्रह्मा का पुत्र था। उस त्रिलोकी नाथ के गद्दी पर

बठने का मुहूर्त ब्रह्मा के पुत्र वसिष्ठ ने निकाला ॥ २० ॥ उसी मुहूर्त में श्री राम तो पृथिवी के राज्य को छोड़ कर वन को चले गये, सीता भी चुराई गई वसिष्ठ का कहना फ़ज़ूल ही चला गया ॥ २१ ॥ तो यह थोड़ा सा जानने वाला पेटू क्या वस्तु है जिस के कहने पर कामदेव के समान सुन्दर कुमार को मारने को तैयार हुए हो ॥ २२ ॥ जो ज्योतिषी दो-दो पैसे पर जूती खोई जाने से पचास गप्प मारते हैं। वे मफ़रूरों को बता कर लाखों रुपया क्यों नहीं हासिल करते। खुफिया पुलीस के स्थान में ज्योतिष से माल और मुलज़म बतला कर क्यों लखपति नहीं बनते। इन की लड़कियां क्यों विधवा हो जाती हैं। इन के लड़के क्यों मरते हैं। जिन्स के मन्दे तेज़ को जान कर तिजारत से करोड़ पति क्यों नहीं बनते। पता लगा कि ये बातें जनता को धोके से ठग कर खाने की हैं। वास्तव में उपयोग में आने की नहीं हैं। हमारी ताईद में आप के हां तो साफ लिखा है कि—

अश्व प्लुं वासवगर्जितं च,
स्त्रीणां च चित्तं पुरुषस्य भाग्यम्।
अवर्षणं चाप्यतिवर्षणं च,
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः ॥१४२॥

(भोज प्रबन्ध)

भाषार्थ—घोड़े का कूदना, इन्द्र का गर्जना, स्त्री का हृदय, मनुष्य के भाग्य, न बरसना तथा अति बरसना देवता ही नहीं जानता तो मनुष्य की तो हस्ती क्या है ॥ १४२ ॥

अतः सूर्य, चांद आदि ग्रहों का चेतन मानने वालों की

बुद्धि चेतनता रहित और भविष्य वाणी से जनता को ठग कर खाने वालों की सर्वथा मक्कारी है। है कोई माई का लाल सनातन धर्म में पैदा हुआ जो ग्रहों को चेतन और भविष्य वाणी को सत्य साबित करके फलित ज्योतिष को मृत्यु मुख से निकाल सके।

स्वामी दयानन्द और फलित ज्योतिष

२२८ (प्रश्न)—गर्भाधान संस्कार में स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि 'उन ऋतुदान के सोलह दिनों में पौर्णमासी, अमावस्या, चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उसको छोड़ दें'। इन तिथियों का छोड़ना ज्योतिष के जातक और मुहूर्त ग्रन्थों में लिखा है। गर्भाधान में एकादशी आदि तिथियों का फल नेष्ट लिखा है इस कारण स्वामी दयानन्द जी ने इन का त्याग किया है। इस से साबित है कि स्वामी जी फलित ज्योतिष को मानते थे। पृ० २४ पं० ३०।

उत्तर—स्वामी जी के इस लेख का आधार कोई फलित ज्योतिष ग्रन्थ नहीं है अपितु स्वामी जी ने यह समस्त विधि मनुस्मृति अध्याय तीन श्लोक ४५ से ५० तक के आधार पर लिखा है। स्वामी जी ने तथा मनु ने जिस स्वास्थ्य की दृष्टि से पहिली चार रात्रियें मैथुन में वर्जित की हैं वैसे ही ग्यारहवीं तथा तेहरवीं रात्री मना की है। यहां एकादशी तथा त्रयोदशी रात्री हैं। तिथियें नहीं हैं। उसी बात को दृष्टि में रखकर पर्व अर्थात् पूर्णिमा, अमावस्या, चतुर्दशी तथा अष्टमी को छोड़ा है क्योंकि ऋतु का समुद्र के समान चन्द्रमा से

सम्बन्ध है इन रात्रियों में ऋतु कुपित होता है। अतः वैद्यक की दृष्टि से इन रात्रियों में समागम से नपुंसकता सोज़ाक आतशक आदि रोगों के होजाने का अंदेशा है। इसी कारण मना किया है। फिर युग्म रात्री में पुत्र अयुग्म में कन्या पुरुष वीर्य आधिक्य से पुत्र, स्त्री रजाधिक्य से कन्या तथा समान से नपुंसक वा वन्ध्या पैदा होना इत्यादि सारा प्रकरण ही ऋतु के उतार चढ़ाओ तथा वैद्यक की दृष्टि से लिखा गया है। इस में फलित ज्योतिष की गंध भी नहीं है।

२२६ (प्रश्न)—तिथि तिथि—देवता नक्षत्र नक्षत्र—देवताओं की नाम करण में आहुतियां देना इस को गोभिलीय गृह्य सूत्र शुभ फल दायक मानता है। इस कारण स्वामी जी ने संस्कार विधि में आहुति चतुष्टय का ग्रहण किया है। फिर कौन कहता है कि स्वामी जी फलित ज्योतिष को नहीं मानते। पृ० २४।

उत्तर—गोभिलीय गृह्यसूत्र में कहीं भी ज्योतिष की दृष्टि से शुभ फल दायक नहीं लिखा। वैसे आहुतियें जितनी दी जाँ जल वायु की शुद्धि का हेतु होने से उतनी ही शुभ फल दायक हैं। रहा तिथि और तिथि के देवता सो हम लिख चुके हैं कि ये तिथि तथा नक्षत्रों के सांकेतिक दूसरे नाम हैं। और तिथि तथा नक्षत्रों को द्योतित अर्थात् प्रकाशित करने के कारण देवता कहाते हैं। इनका विस्तृत वर्णन (देखो नं०१९६)

अतः स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों से फलित ज्योतिष की सिद्धि का प्रयत्न वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध वाक् छल मात्र है।

———

तीर्थ

२२८ (प्रश्न)—"नमः पार्याय चावार्य" यजु० १६।४२" इस मंत्र में तीर्थों का महात्म्य वर्णन किया गया है। पृ० २५६ पं० ८५।

उत्तर—इस मंत्र में पौराणिक तीर्थों का नामो निशान भी नहीं है। क्योंकि पौराणिक लोग जलों और स्थलों में स्नान भ्रमण, दर्शन, मरण आदि से मुक्त मानते हैं जैसे:—

स्नान से—पूर्ववयसि कर्माणि कृत्वापापानि येनराः।
पश्चाद्गङ्गां निषेवन्ते तेऽपियान्त्युत्तमांगतिम् ॥३०॥
(महा० अनु० अ० २६)

दर्शन से—भवंति निर्विषाः सर्पा यथा तार्क्ष्यस्य दर्शनात्।
गंगाया दर्शनात्तद्वत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४४॥
(महा० शल्य० अ० २६)

मरण से—इह ये पुरुषाः क्षेत्रे मरिष्यन्ति शतक्रतो।
तेगमिष्यन्ति सुकृतान् लोकान् पाप वर्जितान् ॥६॥
(महा० शल्य० अ० ५३)

भ्रमण से—पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुना समुदीरिताः।
अपिदुष्कृतकर्माणं नयन्ति परमांगतिम् ॥३॥
(महा० वन० अ० ८३)

नाम लेने से—गंगागंगेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥७१॥
(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति खं० १०)

भाषार्थ—जो मनुष्य अपनी पूर्व आयु में पाप कर्म कर के पीछे से गंगा का सेवन करते हैं वह भी परमगति को

प्राप्त होंगे ॥३०॥ जैसे गरुड के देखने से साँप विष रहित हो जाते हैं। वैसे ही गंगा के देखने से ही मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥ ४४ ॥ हे इन्द्र! जो लोग इस क्षेत्र में मरेंगे वह पापों से छूट कर पुण्य लोकों को प्राप्त होंगे ॥६॥ हवा से उड़े हुवे रेणु भी कुरुक्षेत्र में किसी पर पडेंगे वे अति पापी को भी परम गति प्राप्त करावेंगे ॥३॥ यदि कोई आदमी चार सौ कोस से गंगा गंगा ऐसा कहेगा तो वह सब पापों से छूट कर विष्णु लोक को प्राप्त होगा ॥७१॥

पौराणिक सिद्धान्त अनुसार इस का नाम तीर्थ है। हमारा यह दावा है कि मनुष्य की मुक्ति श्रेष्ठ कर्मों से होती है जल स्थल आदि में स्नान, दर्शन, भ्रमण, मरण आदि से नहीं हो सकती। आप ने जो मंत्र पेश किया है उससे पौराणिक तीर्थों की पुष्टि नहीं होती। हम मंत्र का ठीक ठीक अर्थ नीचे कर देते हैं:—

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्त-
रणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः
शष्प्याय च फेन्याय च ॥ यजु० १६।४२ ॥

भाषार्थ—जो मनुष्य दुःखों से पार हुवे और इधर के भाग में हुवे का भी सत्कार तथा उस तट से नौकादि द्वारा इस पार पहुंचे या पहुंचाने और इस पार से उस पार पहुंच कर पहुंचाने वाले का सत्कार करें। वेद विद्या के पढ़ाने वालों और सत्य भाषणादि कामों में प्रवीण और समुद्र तथा नदी आदि के तटों पर रहने वाले को भी अन्न देवें। तृण आदि काय्यों में साधु और फेन बुदबुदादि के काय्यों में प्रवीण

पुरुष को भी अन्न आदि देवें वे कल्याण को प्राप्त होवें ॥४२॥

भावार्थ—मनुष्यों को चाहिये कि नौकादि यानों में शिक्षित मल्लाह आदि को रख समुद्रादि के इसपार उस पार जा आ के देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तरों में व्यवहार से धन की उन्नति करके अपना अभीष्ट सिद्ध करें ॥४२॥

बतलाइए, इस मंत्र में जलस्थल में स्नान भ्रमण दर्शन मरण आदि से मुक्ति बताने वाले कौन २ पद हैं। यदि नहीं तो फिर इन पौराणिक भ्रमजालों को वेदों के सिर मढ़ना बुद्धिमत्ता नहीं है।

२२९ (प्रश्न)–"आपो भूयिष्ठा इत्यादि ऋ० १।१६१।९" इस मन्त्र में वर्णन है कि जितेन्द्रिय सत्यवादी को तीर्थ फल देते हैं। पृ० २५६ पं० ६।

उत्तर—प्रतीत यह होता है कि अब पुराण प्रतिपादित तीर्थों पर आप का भी विश्वास नहीं रहा। वरना आप जल, स्थल में स्नान, दर्शन, मरण आदि से पाप नाश तथा मुक्ति की पुष्टि में कोई प्रमाण पेश करते, किंतु आप भी विवश हैं वेद पौराणिक तीर्थों की ताईद करते ही नहीं क्योंकि वेद ज्ञान और कर्म से मोक्ष मानते हैं। जैसे कि—

विद्यांचा विद्यां च यस्तद्वेदोभयँ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ यजु० ४०।१४॥

भाषार्थ—जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तरके विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है ॥१४॥ इस से साबित है कि पुराणों का जल-स्थल को तीर्थ मान मुक्ति का साधन बताना वेद के विरुद्ध होने से

मिथ्या ही है। रही आप के पेश किये मन्त्र की बात। न वेद मन्त्र में तीर्थों का प्रतिपादन है और न ही मन्त्र का यह विषय है। इस मन्त्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "ऋभवः" अर्थात् "विद्वान लोग" हैं। इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है कि—

आपोभूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्।
वर्धयन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत।

ऋ० १।१६१।९॥

भापार्थ—एक तो कहता है कि जल बहुत हैं। दूसरा कहता है कि अग्नि बहुत हैं। एक उत्तमता से कहता है कि पृथ्वी बड़ी है। इस प्रकार से सत्य बातों को कहते हुए सज्जन बादलों की भाँति पदार्थों को भिन्न करें ॥९॥

भावार्थ—इस संसार में स्थूल पदार्थों के बीच कोई जल अधिक, कोई अग्नि अधिक और कोई भूमि को बड़ी बतलाते हैं। परन्तु स्थूल पदार्थों में भूमि ही अधिक है। इस प्रकार सत्य ज्ञान से मेघों के अंशों का जो ज्ञान उस के समान सब पदार्थों को अलग अलग कर सिद्धांतों की सब परीक्षा करें। इस काम के बिना ठीक प्रकार से पदार्थ विद्या को नहीं जान सकते ।। ९ ।।

बतलाइये इस मन्त्र में वे कौन से पद हैं जो पौराणिक तीर्थों को वर्णन करते हों। आप ने लिखा कि तीर्थ जितेन्द्रिय सत्यवादी को फल देते हैं। श्रीमान् जी जो सत्यवादी और जितेन्द्रिय होगा उस को पौराणिक तीर्थों की ज़रूरत ही क्या है। पौराणिक तीर्थों की तो उन को ज़रूरत है जिन्हों ने कुकर्म करते हुए मोक्ष प्राप्त करना हो। और सहज ही पापों का

नाश करना हो जैसे—

अग्नौ प्राप्तं प्रधूयेत यथा तूलं द्विजोत्तम ।
तथा गंगावगाढस्य सर्वं पापं प्रधूयते ॥ ४२ ॥
(महा० अनुशा० अ० २६)

यत्किंचित् दुष्कृतं कर्म स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ।
स्नातमात्रस्य तत्सर्वं नश्यते नात्र संशयः ॥ १६६ ॥
(महा० वन० अ० ८३)

यद्यकार्यशतं कृत्वा कृतं गंगावसेचनम् ॥ ८६ ॥
सर्वं तत्तस्य गंगापो दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥ ६० ॥
(महा० बन० अ० ८५)

ततो गच्छेत राजेन्द्र कुरु-क्षेत्रमभिष्टुतम् ।
पापेभ्यो यत्र मुच्यन्ते दर्शनात् सर्वजन्तवः ॥ १ ॥
(महा० वन० अ० ८३)

सप्तावरान् सप्त परान् पितृ स्तेभ्यश्च येऽपरे ।
पुम स्तारयते गङ्गांवीक्ष्य स्पृष्ट्वावगाह्यच ॥ ६२ ॥
यावदस्थि मनुष्यस्य गंगातोयेषु तिष्ठति ।
तावद्वर्षं सहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ३२ ॥
(महा० अनु० अ० २६)

भाषार्थ—हे उत्तम द्विज ! जैसे रूई अग्नि को प्राप्त हो कर जल जाती है वैसे ही गङ्गा में स्नान करने वाले के पाप नाश हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ स्त्री चाहे पुरुष का जो भी बुरा कर्म हो वे स्नान मात्र से ही नाश हो जाता है इस में संशय नहीं है ॥ १६६ ॥ यदि सैंकड़ों पाप करके भी गङ्गा में स्नान किया है ॥ ८६ ॥ उस को गङ्गा का पानी ऐसे ही नाश कर

देता है जैसे ईन्धन को अग्नि ॥ ६० ॥ हे राजेन्द्र ! फिर स्तुति के योग्य कुरुक्षेत्र में जावे जहां पर सारे जीव दर्शन से ही पापों से छूट जाते हैं ॥ १ ॥ सात वरे के तथा सात परे के और उन से भी जो आगे के पितर हैं उन सब को मनुष्य गङ्गा के स्पर्श दर्शन तथा स्नान से तार देता है ॥ ६२ ॥ मनुष्य की हड्डियां जब तक गङ्गा के पानी में रहती हैं तब तक सहस्रों वर्ष स्वर्ग लोक में रहता है ॥ ३२ ॥ यह है पौराणिक तीर्थों का प्रयोजन । इस को वेदानुकूल सिद्ध करने की कृपा करें।

२३० (प्रश्न)—"तीर्थैस्तरन्ति इत्यदि अथर्व० १८।४।७" में लिखा है कि बड़ी आपत्ति को तीर्थों से तर जाते हैं। अर्थात् बड़े बड़े भयंकर पापतीर्थों से क्षय हो जाते हैं।

पृ० २५६ पं० २०।

उत्तर—हां अब के आपने पौराणिक सिद्धान्त की बात कही कि बड़े २ पाप तीर्थों से क्षय हो जाते हैं। किन्तु उपरोक्त वेद मंत्र में इस भाव का प्रकट करने वाला कोई भी पद नहीं हैं। अपितु इस वेद मंत्र में यह प्रति पादन किया गया है कि तरने के साधनों वेद शास्त्रों से लोग मुसीबतों से नजात पा जाते हैं। देखिये मंत्र के अर्थ इस प्रकार से हैं—

तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति।
अत्रादधु र्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ॥

अथर्व० १८।४।७॥

भाषार्थ—तरने के साधनों शास्त्रों वा घाटों आदि द्वारा मनुष्य बहुत गतियों वाली बड़ी २ विपत्तियों वा नदियों

को उस प्रकार से पार करते हैं। जिस से यज्ञ करने वाले सुकर्मी लोग चलते हैं। ऐसा निश्चय है। यहां संसार में यजमान के लिये स्थान उन पुण्यात्माओं ने दिया है जब कि दिशाओं को सत्ता वाले प्राणियों ने समर्थ बनाया है ॥७॥

भावार्थ—मनुष्य विद्वान् धर्मात्माओं के वेद विहित मार्ग पर चल कर विपत्तियों से पार होवें, धर्मात्मा लोग ही संसार में मान्य होते हैं क्यों कि वे पुरुषार्थी जीव सब दिशाओं को उपकारी बनाते हैं ॥७॥

इस मन्त्र में कहीं भी पाप दूर होने की बात नहीं लिखी। और किये हुये पाप कभी दूर नहीं होते, अपितु उन का फल अवश्य ही भुगतना पड़ता है। देखिये वेद क्या कहता है—

असूर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति येके चात्महनो जनाः॥ यजु० ४०।३॥

भाषार्थ—जो कोई भी लोग आत्मा के विरुद्ध पापाचरण करने वाले हैं। वे जीते हुये भी दुःख पाते हैं। और मरने पर भी वे ऐसे जन्मजन्मान्तरों को प्राप्त होते हैं जो ज्ञान से रहित अन्धकार से युक्त दुःखमय लोक हैं ॥३॥

यह मन्त्र स्पष्ट रूप से वर्णन करता है कि किये हुये पाप कर्मों का फल अवश्य मिलता है वे टल नहीं सकते। महाभारत में लिखा है कि—

यथा धेनु सहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ॥२२॥
एवं पूर्वं कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति।
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च ॥२३॥

स्वकालं नाति वर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ॥२४॥

(महा० अनु० अ० ७)

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि ।

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥१७।

(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० ३७)

भावार्थ—जैसे हज़ारों गौवों में से बछड़ा अपनी माँ को ढूंढ़ लेता है ॥२२॥ ऐसे ही पूर्व किया हुआ कर्म कर्ता को प्राप्त होता है। बिना प्रेरणा के ही जैसे फूल और फल ॥२३॥ अपने समय का उलङ्घन नहीं करते। वैसे ही पूर्व में किया हुआ कर्म समय का उलङ्घन नहीं करता ॥२४॥ सौ करोड़ कल्पों तक भी किया हुआ कर्म बिना भोगे क्षय नहीं होता। किया हुआ शुभ तथा अशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है ॥१७॥ इस से यह तो सिद्ध हो गया कि किया हुआ पाप क्षय नहीं होता, अपितु भोगना पड़ता है। अब देखना यह है कि वे कौन से तीर्थ हैं कि जिन से मनुष्य आपत्तियों तथा दुःखों को तर सकता है। आया वे जल-स्थल रूप तीर्थ हैं या विद्यालय, वेद, शास्त्र, सत्सङ्ग आदि तीर्थ हैं। सो इस विषय में प्रमाण उपस्थित हैं—

मन तीर्थ—मनसा च प्रदीप्तेन ब्रह्म ज्ञान जलेन च।

स्नाति यो मानसे तीर्थे तत् स्नानं तत्त्वदर्शिनाम् ॥१३॥

(महा० अनु० अ० १०८।१३)

सत्संग—व्रजे वाप्यथवारण्ये यत्र सन्ति वहु श्रुताः।

तत्तन्नगरमित्याहुः पार्थ तीर्थं च तद्भवेत् ॥९०॥

(महा० वन० अ० १९९)

आत्मा—आत्मा नदी भारत पुण्य तीर्था
सत्ययोदका धृतिकूलादयोर्मिः।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्य कर्मा
पुण्योह्यात्मा नित्यमलोभ एव ॥२१॥
(महा० उद्योग० अ० ३६)

सत्संग—तदलं ते विरोधेन शर्म गच्छ नृपात्मज।
वासुदेवेन तीर्थेन कुलं रक्षितुमर्हसि ॥३६॥
(महा० उद्योग० अ० १०४)

ब्रह्म ध्यानं परं तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
दमस्तीर्थंतु परमं भाव शुद्धिपरं तथा ॥२३॥
ज्ञान ह्रदे ध्यान जले राग द्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥२४॥
(गरुड़० पूर्व अ० ८१)

योग—यौगिकं स्नानमाख्यातं योगेन हरिचिन्तनम् ॥१२॥
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ॥१३॥
(गरुड० पूर्व० अ० ५०)

भावार्थ—मन से प्रकाशित ब्राह्मज्ञान रूप जल से जो मन के तीर्थ में स्नान करता है। तत्त्व दर्शियों का यह स्नान है ॥१३॥ घर में वा जंगल में जहां ज्ञानी लोग रहते हैं उसी का नाम नगर है उसी को तीर्थ कहते हैं ॥९०॥ हे भारत आत्मा नदी है। यही पवित्र तीर्थ है। सत्य का इस में जल धैर्य के किनारे तथा दया की लहरें हैं। इसमें स्नान करने वाला पुण्यात्मा पवित्र हो जाता है। आत्मा पवित्र है नित्य निर्लोभ है ॥२१॥ हे राजपुत्र दुर्योधन! विरोध छोड़ दे शांत

हो। तू कृष्ण रूप तीर्थ से अपने कुल की रक्षा कर ॥३६॥ ब्रह्म का ध्यान परम तीर्थ है। इन्द्रियों का निग्रह तीर्थ है। मन का निग्रह तीर्थ है। भाव की शुद्धि परम तीर्थ है। ज्ञान रूप तालाव में ध्यान जल में जो मन के तीर्थ में स्नान करके राग द्वेष रूप मल को दूर करता है। वह परम गति को प्राप्त होता है ॥२२—२४॥ योग से हरि का चिन्तन यौगिक स्नान है॥१२॥ आत्मा रूप तीर्थ प्रसिद्ध ब्रह्मवादियों ने सेवन किया ॥१३॥

इन प्रमाणों से साफ सिद्ध होगया कि मोक्ष के हेतु जल स्थल स्नान दर्शन मरण आदि तीर्थ नहीं अपितु उपरोक्त तीर्थ ही दुख विनाशक ज्ञान प्रकाशक तथा मोक्ष दायक हैं।

२३१ (प्रश्न)—"सरस्वती सरयुः इत्यदि ऋ० १०।६४।९" इस मंत्र में सरस्वती सरयु आदि नदियों से रक्षा की प्रार्थना की गई है। पृ० २८७ पं० ६।

उत्तर—इस मंत्र में जल स्थल को तीर्थ मानने तथा उन के स्नान, दर्शन, भ्रमण आदि से मोक्ष प्राप्ति का वर्णन नहीं है। और नही इस मंत्र में नदियों से प्रार्थना की गई है। अपितु इस मंत्र में कृषि यज्ञ का वर्णन है। और इस मंत्र का अर्थात् प्रति पाद्य विषय "विश्वे देवाः" अर्थात् समस्त विद्वान् हैं। अतः इस मंत्र का अर्थ निम्न प्रकार से है—

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभि र्महो मही रवसा यन्तु वक्षणीः।
देवीरापो मातरः सूदयि त्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥६॥
(ऋ० १०।६४।९)

भावार्थ—हे विद्वान् लोगो! आपकी कृपा से बड़ी से

बड़ी लहरों सहित सरस्वती सिंधु सरयु आदि २१ प्रकार की नदी हैं वे हमारी खेत सिंचन आदि से रक्षा हेतु आवें और हमारे कृषि यज्ञ में प्राप्त हों और दिव्य शील माता के समान प्रेरणा वाली उन का जल मधुरता युक्त जल है, वे जल देवें ॥६॥

भावार्थ—विद्वान् लोग उक्त प्रकार की नदियों में से नहरें निकाल कर प्रजा की कृषि को पानी से सिंचन करके उन्हें सुखी बनावें। कहिये महाराज! इस मंत्र में आपके जल स्थल, स्नान, दर्शन, भ्रमण से मोक्ष देने वाले तीर्थों का वर्णन कहां हैं। वास्तव में ये तीर्थ हो भी नहीं सकते क्यों कि जल, स्थल, मोक्ष का हेतु नहीं हो सकते। जैसे—

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धि र्ज्ञानेन शुद्धयति ॥१०९॥
(मनु० अ० ५)

यमो वैवस्वतं देवो यस्तवैष हृदिस्थितः।
तेन चेदविवादस्ते मा गंगां कुरून्गमः ॥९२॥
(मनु० अ० ८)

जटा भाराजिनैर्युक्ता दाम्भिका वेषधारिणः।
भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्ति जनानपि ॥ ६३ ॥
गृहारण्य समा लोके गतव्रीडा दिगम्बराः।
चरन्ति गर्दभाद्याश्च विरक्तास्ते भवन्तिकिम् ।६५॥
मृद्भस्मोद्धूलनादेव मुक्ताः स्युर्यदिमानवाः।
मृद्भस्मवासी नित्यं श्वा सकिं मुक्तो भविष्यति ।६६॥
तृण पर्णोदकाहाराः सततं वन वासिनः।
जम्बूकाखुमृगाद्याश्च तापसास्ते भवन्तिकिम् । ६७॥

आजन्म मरणान्तं गंगादि तटिनी स्थिताः ।
मण्डूकमत्स्य प्रमुखा योगिनस्ते भवन्तिकिम् ॥६८॥

पारावतशिलाहाराः कदाचिदपि चातकाः ।
न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवन्तिकिम् ॥६९॥

तस्मान्तित्यादिकं कर्म लोकरंजन कारकम् ।
मोक्षस्य कारणं साक्षात्तत्त्वज्ञानं खगेश्वर ॥७०॥
(गरुड़० प्रेत० अ० ४९)

भावार्थ—जलों से शरीर शुद्ध होता है । मन सत्य से शुद्ध होता है । विद्या और तप से आत्मा शुद्ध होता है । और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है ॥ १०६ ॥ संसार को नियम में रखने वाला प्रकाशमान देव परमात्मा जो यह हृदय में मौजूद है । यदि तेरा उसके साथ विवाद नहीं है तो न गंगा को जा और न कुरुक्षेत्र को जा ॥ ६२ ॥ जटाओं के भार और मृगछाला से युक्त वेषधारी मक्कार ज्ञानियों की भांति संसार में जल स्थलों में भ्रमण करते हैं और लोगों को भ्रमण करवाते हैं ॥६३॥ जिन के लिये घर और जंगल समान है । नंगे लज्जा को छोड़ कर संसार में फिरने वाले गधे क्या विरक्त हो जाते है ॥६५॥ भस्म और धूल में लिप्त होने से यदि मनुष्य मुक्त हो जावे, मिट्टी और भस्म में निवास करने वाले कुत्ते की क्या मोक्ष गति होजावेगी ॥ ६६ ॥ घास, पत्ते, पानी का आहार करने वाले तथा नित्य वन में रहने वाले गीदड़, चूहे, मृगादि क्या तपस्वी हो जावेंगे ॥६७॥ जन्म से लेकर मरने तक गंगादि नदियों के किनारे रहने वाले मेंढक मछली आदि क्या योगी होजाते हैं ॥६८॥ पत्थरों का आहार

करने वाले कबूतर और कभी भी पृथ्वी का पानी न पीने वाले चातक क्या वे अती हो जाते हैं ॥ ६९ ॥ इस लिये नित्यादि कर्म लोगों को प्रसन्न करने के लिये है। मोक्ष का साक्षात् कारण तो ज्ञान ही है ॥ ७० ॥

अब आप को निश्चय हो गया होगा कि मोक्ष का कारण जल, स्थल, स्नान, दर्शन, भ्रमणादि कारण नहीं है। अपि तु ज्ञानादि ही मोक्ष के कारण होने से सच्चे तीर्थ हैं। जैसे—

अगाधे विपुले सिद्धे सत्य तीर्थे शुचि ह्रदे।
स्नातव्यं मनसा युक्तं स्थानंतत् परमं स्मृतम् ॥ ३४॥
(शिव० उमा० अ० १२)

भाषार्थ—मनुष्य को अति गहरे विशाल तथा सिद्धि से सम्पन्न सत्य रूपी तीर्थ तथा पवित्रता रूप तालाब में मानसिक स्नान करना चाहिये। वही अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान समझने योग्य है ॥ ३४ ॥

सर्वेषामेव तीर्थानां क्षान्तिः परमपूजिता।
तस्मात् पूर्वं प्रयत्नेन क्षान्तिः कार्या क्रियासुवैः ॥ ४७॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० १७८)

यत्स्नानं ज्ञान सलिलैः शीलभस्म प्रमार्जितम्।
तत्पात्रं सर्वपात्रेभ्य उत्तमं परिकीर्तितम् ॥ ७९ ॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० १८०)

भाषार्थ—सब तीर्थों में शांति परम पूजित है। इस लिये पहिले प्रयत्न से हर एक काम में शांति करनी चाहिये ॥ ४७ ॥

जो ज्ञान के जल से स्नान करना तथा शील की भस्म से मांजना है। यह पात्र सब पात्रों से उत्तम कहा गया है॥ ७६॥

इत्यादि पुराणों में भी सैंकड़ों श्लोक हैं। जो जल स्थल, स्नान, दर्शन, भ्रमण आदि से मुक्ति का खण्डन करके ज्ञान आदि से मुक्ति मानते हैं।

२३२ (प्रश्न)—"इमं मे गंगे यमुने इत्यादि ऋ० १०। ७५।५" इस मंत्र में गंगा यमुना को सेवन करने और प्रार्थना सुनने का वर्णन है। पृ० १५७ पं० १७।

उत्तर—इस मंत्र में भी नदियों में स्नान, दर्शन, स्पर्शन आदि से पाप दूर होने तथा मुक्ति मिलने का वर्णन नहीं है। अपितु इस मंत्र में नदियों की क़िस्में बयान की गई हैं। ऋषियों ने जिस नदी को जिस प्रकार की देखा वैसे ही उसका नाम वेद में से लेकर रख दिया। इस मंत्र में नदियों के लक्षण और नाम इस प्रकार से वर्णित हैं—

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या असिक्न्यामरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणु ह्यासु षोमया। ऋ० १०।७५।५।

भावार्थ—हे गंगे, यमुने, सरस्वति, शुतुद्रि, परुष्णि, असिक्नी, मरुद् वृधे, वितस्ता, सुषोमा, आर्जीकीये! तुम मेरे इस स्तोत्र को सेवन करो तथा सुनो—

इस मंत्र में से आप कोई एक ही शब्द बतलावें। जिससे इन नदियों में स्नान से पाप नाश तथा मोक्ष प्राप्ति वर्णन की गई हो। रहा नदियों को संबोधित करने तथा स्तुति

सुनने को कहना। सो यह बयान करने की वेद की शैली है कि अचेतनों को भी चेतनों की भांति स्तुति किया जाता है जैसाकि ईश्वर स्वरूप के बारे में हम विस्तार पूर्वक वर्णन कर आये हैं। इन नदियों के उपरोक्त नाम किन गुणों के कारण होते हैं इसका वर्णन निरुक्त में इस प्रकार से किया जाता है।

अथैकपदनिरुक्तम्—गंगा गमनात्। यमुनाप्रयुवतीगच्छतीति वा, प्रवियुतं गच्छतीति वा। सरस्वती सर इत्युदकनाम सर्त्तेस्त द्वती। शुतुद्री शुद्राविणी क्षिप्रद्राविण्याशु तुन्नेव द्रवतीति वा।

इरावतीं परुष्णीत्याहुः—पर्ववती भास्वती कुटिलगामिनी।

असिक्न्यशुक्लासिता—सितमिति वर्ण नाम तत्प्रतिषेधोऽसितम्।

मरुद्वृधाः सर्वा नद्यो मरुत एना वर्द्धयन्ति वितस्ताविदग्धाविवृद्धा महाकूला। आर्जीकीयां विपाडित्याहुः ऋजीक प्रभवावजुं गामिनीवा, सुषोमा सिन्धु यदेना अभिप्रसुवन्तिनद्यः। सिन्धुः स्यन्दनात् ॥ १ ॥

(निरु० अ० ६ ख० २६)

भाषार्थ—अब एक २ पदका निरुक्त कहते हैं। गमन से गंगा अर्थात् गति वा चाल वा बहाव जिस का प्रशंसित हो उसका नाम गंगा। जोड़ती हुई चलने वा जुड़ी हुई चलने वाली यमुना। सर यह पानी का नाम है उत्तम जल वाली का नाम सरस्वती। शीघ्र भागने वाली शीघ्र व्यथित सी चलने वाली शुतुद्री जानो। पर्वों जोड़ों वाली, प्रकाश वाली, कुटिल

गामिनी को परुष्णी जानो। अशुक्ला वा असिता होने से असिक्नी। सित वर्ण का नाम है। उसका उलट असित। मरुद्वृधा सब नदी हैं। क्योंकि मरुत् इनको बढ़ाते हैं। विदग्धा वा विशेष बड़ी वा बड़े किनारों वाली को वितस्ता जानो। ऋजु गामिनी को आर्जीकीया जानो। वात्रजीक पर्वत से निकले उसको। सिन्धु उस को कहते हैं जिस में सब नदियां गिरें वा जो विशेष तौर से बहे।

इस निरुक्त के देखने से ऐसा जान पड़ता है कि इन इन लक्षणों वाली नदी होती हैं। और जिस २ नदी में जो जो लक्षण पाये गये लोक में उस २ नदी को पीछे से उस २ नाम से पुकारने लगे। जैसे कि निरुक्तकार ने दो जगह स्वयं कहा है कि आर्जिकीया ऋजुगामिनी होने से विपाशा का नाम पड़ गया और पर्वों वाली आदि लक्षणों से इरावती का दूसरा नाम परुष्णी पड़ा।

इस से यह जानना चाहिये कि वेद में आये गंगादि नाम भागीरथी आदि का वाचक नहीं किन्तु वेदोक्त लक्षण युक्त होने से भागीरथी आदि के गंगा आदि नाम पीछे से प्रचलित हुए हैं।

इस से सिद्ध है कि वेद में जल स्थल के स्नान, दर्शन श्रमणादि को तीर्थ नहीं माना गया अपितु ज्ञान योग सत्संगादि को तीर्थ माना गया है। और पुराण भी उसका अनुमोदन करते हैं।

अब हम आपको पौराणिक तीर्थों का अनुपयोग उनही के पुराणों से दिखाते हैं कि इन की मियाद भी समाप्त होचुकी

है। जैसे—

नन्द उवाच—तीर्थान्येतानि सर्वाणि तिष्ठंत्येव कियद्दिनम्।
साधवो ग्राम्य देवाश्च शास्त्राण्येतानि वत्सक ॥३१॥
श्रीकृष्ण उवाच—कलौदश सहस्राणि हरिस्तिष्ठति मेदिनीम्।
देवानां प्रतिमा पूज्या शास्त्राणि च पुराणकम् ॥३२॥
तदर्धमपि तीर्थानि गंगा दीनि सुनिश्चितम्।
तदर्धं ग्राम देवाश्च वेदाश्च विदुषामपि ॥३३॥
(ब्रह्मवैवर्त० खं० ४ अ० ६०)

भावार्थ—नन्द ने पूछा कि हे बेटा ये सारे तीर्थ कितने दिन तक ठैरेंगे। तथा साधु ग्रामों के देवता तथा शास्त्र ये कितने दिन तक ठैरेंगे ॥३१॥ कृष्ण जी ने कहा कि कलियुग में दश हज़ार बरस तक हरि पृथिवी पर ठैरेंगे। और मूर्ति पूजा शास्त्र और पुराण भी दश हज़ार वर्ष ठैरेंगे ॥३२॥ इस से आधा समय अर्थात् पांच हज़ार तक निश्चय रुप से गंगा आदि तीर्थ ठैरेंगे उससे भी आधे समय तक अर्थात् ढाई हज़ार वर्ष तक ग्रामों के देवता ठैरेंगे तथा वेद और विद्वान् भी ढाई हज़ार वर्ष तक ठैरेंगे।

इस समय कलियुग के ५०३४ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस से पुराणों के कथनानुसार अब कोई गङ्गादि तीर्थ पृथिवी पर मौजूद नहीं है। अतः पौराणिकों को चाहिये कि वे तीर्थों को सिद्ध करने के स्थान में उनकी अंत्येष्टि आदि क्रिया कर्म में विशेष ध्यान दें।

२३३ (प्रश्न)—स्वामी जी कहते हैं कि पण्डों के वहीं खाते देख लो उन से मालूम हो जावेगा कि तीर्थ थोड़े ही

काल से बने हैं। पण्डों की वही क्यों देखें। ईश्वर का वही खाता वेद क्यों नहीं देखें जिस में तीर्थों का महत्त्व भरा है। क्या स्वामी जी की दृष्टि में वह पण्डों के वही खाते के तुल्य भी महत्त्व नहीं रखता। पृ० २५६ पं १८।

उत्तर—स्वामी जी तीर्थ मानते हैं, वेद शास्त्र अध्ययन सत्सङ्ग, ज्ञान, ध्यान आदि को, जो मनुष्य को सांसारिक दुःखों से तराने का हेतु हैं, या मानते हैं किशती को, जो जलों से तराने का हेतु हैं। और पुराण मानते हैं तीर्थ जलों और स्थलों को, और उन में स्नान, दर्शन, भ्रमण, निवास, मरण आदि से मानते हैं मुक्ति। स्वामी जी के माने हुए तीर्थों का तो वेदों में वर्णन है। किन्तु पौराणिक तीर्थों का वेदों में कतई वर्णन नहीं है। इस का सबूत स्पष्ट है कि आपने जितने भी वेद मन्त्र दिये हैं उन में से आप के किये अर्थों के अनुसार एक वेद मन्त्र भी जल स्थल में स्नान दर्शनादि से पापों का क्षय और मोक्ष की प्राप्ति वर्णन नहीं करता। अतः स्वामी जी ने लिखा है कि आज कल जो जल, स्थल, तीर्थ, पाप नाशक और मुक्तिदायक माने जाते हैं। वे प्राचीन नहीं हैं अपि तु उन की कल्पना एक हज़ार वर्ष से इधर उधर हुई है। क्योंकि पण्डों के पास एक हज़ार वर्ष से अधिक कोई भी लेख मौजूद नहीं है। अतः स्वामी जी का लिखना ठीक है। आप में हिम्मत हो तो एक हज़ार वर्ष से प्राचीन कोई ताम्र पत्र या वही खाता इन तीर्थों की प्राचीन स्थिति के सबूत में पेश करें।

२३४ (प्रश्न)—इस मन्त्र का तो समस्त भाष्यकारों ने

यह अर्थ किया है कि रुद्र आप समस्त तीर्थों में विचरते हैं। इस कारण आप तीर्थ हैं। आप को मैं प्रणाम करता हूं। अब आर्य्य समाजी विचारें कि "नमस्तीर्थाय च" इस में तीर्थ का खण्डन है या मण्डन ॥ पृ० २६० पं० ४ ॥

उत्तर -- श्रीमान् जी! तीर्थ शब्द पर तो कोई झगड़ा ही नहीं है। झगड़ा तो तीर्थ शब्द के अर्थ पर तथा उस से पाप नाश और मोक्ष प्राप्ति पर है। यद्यपि हम इस मन्त्र के सत्य अर्थ (नं० २२८) में कर आये हैं। तथापि यदि आप के और आप के पौराणिक भाष्यकारों के अर्थ को ही सामने रखा जावे तो भी उस से आप की प्रयोजन सिद्धि नहीं होती। क्योंकि इन अर्थों से न तो यह सिद्ध होता है कि गङ्गादि नदियों या कुरुक्षेत्रादि स्थलों का नाम तीर्थ है, और न ही इन में स्नान, भ्रमण, मरणादि से पाप नाश तथा मोक्ष होने का वर्णन है। रुद्र के समस्त तीर्थों में विचरने तथा रुद्र को तीर्थ मानने से तो पौराणिक जल-स्थलों की तीर्थ सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि हम आप के अर्थों के अनुसार भी यह कह सकते हैं कि "रुद्र सत्य, ज्ञान, ध्यान, शास्त्रादि तीर्थों में विचरने से स्वयं भी तीर्थ रूप थे" अतः उपरोक्त मन्त्र हर एक अवस्था में पौराणिक तीर्थों का खण्डन ही करता है। आप में हिम्मत हो तो वेद का कोई ऐसा मन्त्र पेश करें कि जिस से यह साबित हो सके कि "गङ्गा, कुरुक्षेत्र आदि जल-स्थलों में स्नान, दर्शन, भ्रमण, निवास, मरण आदि से पाप नाश तथा मोक्ष प्राप्ति होती है।

२३५ (प्रश्न)—रही बात 'समान तीर्थे वासी' इस सूत्र

की, इसके ऊपर तत्व बोधिनीकार लिखते हैं 'तीर्थं शास्त्र-ध्वर क्षेत्रोपायोपाध्याय मंत्रिषु योनौ जलावतारे च इति विश्व, शास्त्र, मार्ग क्षेत्र उपाय उपाध्याय मंत्री योनि जलावतार इन का नाम तीर्थ है। पृ० २६० पं० ७।

उत्तर—प्रथम तो आपने तत्व बोधिनी तो दे दी किन्तु सिद्धान्त कौमुदी के जिस पाठ पर तत्व बोधिनी है उसे हज़म कर गये। मूल के बिना टीका किसकी। लीजिये हम पहिले सिद्धान्त का मूल पाठ बतलाते हैं, देखिये—

समान तीर्थे वासी (४-४-१०७)

साधुः इति निवृत्तम्। वसतीति वासी। समाने तीर्थे गुरौ वसतीति सतीर्थ्यः। सिद्धान्त कौमुदी तद्धिते प्राग्विधीय प्रकरणम्।

इसमें सिद्धान्त कौमुदी वाले ने स्पष्ट लिखा है कि 'तीर्थं नाम गुरु का है'

दूसरे आपने तत्व बोधिनी टीका नहीं दिखाई। केवल कोष का प्रमाण दिखाया है। सो कोष में तीर्थ का अर्थ उपाध्याय कोष में मौजूद है। और उसी का इस सूत्र के साथ संबन्ध है। तीसरे तीर्थ शब्द के कितने अर्थ होते हैं इस कोष के अर्थों में भी आपने चालाकी से काम लिया है। कोष में आपने मार्ग कौन से शब्द का अर्थ किया है वहां तो "अध्वरक्षेत्र" शब्द है जिसका अर्थ है "यज्ञस्थल" आपने अध्वर का अर्थ मार्ग करके क्षेत्र को भिन्न दिखाकर धोका दिया है। चौथे—जलावतार का आपने अर्थ क्यों नहीं किया, जलावतार के अर्थ हैं जल से पार लेजाने वाली किश्ती

अतः कोष के यह अर्थ हुये कि "शास्त्र, यज्ञस्थल, उपाध्याय, मंत्रि, योनि, किश्ती" ये अर्थ तीर्थ शब्द के हैं। आपके इस लेख से स्वामी जी के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। जैसा कि—

'(प्रश्न) तो कोई तीर्थ नाम स्मरण सत्य हैं वा नहीं।

उत्तर—है, वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का सत्संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य्य, आचार्य्य, अतिथि, माता पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्म युक्त पुरुषार्थ, ज्ञान विज्ञान आदि शुभगुण, कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं। और जो जल स्थल मय हैं। वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि 'जना यैस्तरन्ति तानितीर्थानि' मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उन का नाम तीर्थ हैं। जल स्थल तराने वाले नहीं, किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है। क्योंकि उन से समुद्रादि को तरते हैं" (सत्यार्थ० समु० ११)

स्वामी जी के इस सिद्धान्त की ताईद वेद, धर्म्म शास्त्र, इतिहास यहाँ तक कि पुराण भी करते हैं, यह हम दिखा चुके हैं।

२३६ (प्रश्न)—क्या कोई सनातन धर्म्मी यह कहता है कि तीर्थ शब्द से केवल जल समूह का ही ग्रहण है शास्त्रादिकों का नहीं। पृ० २६० पं० १०।

उत्तर—तीर्थ शब्द के अर्थ जल स्थल के बिना और

भी होते हैं। चाहे सनातन धर्मी यह मानते भी हों तो भी वे पाप काटने और मोक्ष होने में तीर्थों के मुक़ाबले में वेद शास्त्रादि किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं समझते। क्योंकि वेद शास्त्र के तीर्थ मानने से तो गंगादि में स्नान का तथा काशी आदि निवास का कोई विशेष महत्व रहता ही नहीं। जल स्थल तीर्थों का तो महत्व ही इस बात में माना जाता है कि उनमें स्नान, दर्शन, स्मरण, श्रवण, निवास, मरण मात्र से ही जन्म जन्मान्तर के पाप कट कर मनुष्य ही नहीं पशु पक्षी भी मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं जैसे कि—

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम।
सर्वेषामेव जन्तूनां हेतु मोक्षस्य सर्वथा॥ ७॥
अत्रतीर्थे विशेषोऽस्त्यविमुक्ताख्ये पुरोत्तमे।
श्रूयतां तत्त्वया देवि परशक्ते सुचित्तया॥ १३॥
सर्वे वर्णा आश्रमाश्च बाल यौवन वार्द्धकाः।
अस्यां पुर्यां मृताश्चेत् स्युर्मुक्ता एव न संशयः॥ १४॥
अशुचिश्च शुचिर्वापि कन्या परिणता तथा।
विधवा वाथवा वंध्या रजोदोषयुतापि वा॥ १५॥
प्रसूता संस्कृता वापि यादृशी तादृशी द्विजाः।
अत्र क्षेत्रे मृता चेत्स्यान्मोक्षभाङ् नात्र संशयः॥ १६॥
स्वेदजश्चाण्डजो वापि ह्युद्भिजोऽथजरायुजः।
मृतो मोक्षमवाप्नोति यथात्र न तथा क्वचित्॥ १७॥
ज्ञानापेक्षा न चात्रैव भक्त्यपेक्षा न वै पुनः।
कर्मापेक्षा न देव्यत्र दाना पेक्षा न चैव हि॥ १८॥
संस्कृत्यपेक्षा नैवात्र ध्यानापेक्षा न कर्हिचित्।
नामापेक्षार्चनापेक्षा सुजातीनां तथात्र न॥ १९॥

ममक्षेत्रे मोक्षदे हि योवा वसति मानवः।
यथा तथा मृतः स्याच्चेन्मोक्षमाप्नोति निश्चितम् ॥ २० ॥
(शिव० कोटि रुद्र० अ० ३)

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका॥ ५ ॥
पुरी द्वारवतीज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥ ६ ॥
(गरुड़० प्रेत० अ० ३८)

नर्मदा—तर्पयित्वापितॄन् देवानग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ५१ ॥
वसिष्ठाश्रम—तत्रोष्य रजनीमेकां गोसहस्र फलं लभेत् ॥ ५६ ॥
पिङ्गतीर्थ—पिंगतीर्थमुपस्पृश्य ब्रह्मचर्यजितेन्द्रियः ।
कपिलानां नर श्रेष्ठ शतस्य फलमश्नुते ॥ ५७ ॥
ततो गत्वा सरस्वत्याः सागरस्य च संगमे ॥ ६० ॥
गो सहस्र फलं तस्य स्वर्गलोकं चविन्दति ॥ ६१ ॥
पिंडारके नरः स्नात्वा लभेद्बहु सुवर्णकम् ॥ ६५ ॥
सागरस्य च सिंधोश्च संगमं प्राप्य भारत ॥ ६८ ॥
प्राप्नोति वारुणं लोकं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ६९ ॥
द्रिमीतीर्थ—जन्मप्रभृति यत्पापं तत् स्नातस्य प्रणश्यति ॥ ७३ ॥
वसु धारा—गमनादेव तस्यां हि हयमेधफलं लभेत् ॥ ७६ ॥
पंच नद—पंचयज्ञानवाप्नोति क्रमशोऽयेनुकीर्तिताः ॥ ८३ ॥
वासव—सर्वपाप विशुद्धात्मा गच्छेत् परमां गतिम् ॥ ८८ ॥
नागभवन—तत्र स्नात्वा नरोनूनं वाजपेयमवाप्नुयात् ॥
सर्वं पापविशुद्धात्मा गच्छेच्च परमां गतिम् ॥ ९१ ॥
(महा० वन० अ० ८२)

भाषार्थ—यह काशी मेरा सदा से गुप्ततर क्षेत्र है।
जो कि सर्वथा सर्व प्राणियों के लिये मोक्ष का हेतु है ॥ ७ ॥

इस विमुक्ताख्य तीर्थ में विशेष उत्तमता है। हे देवि ! तुम्हें चित्त देकर सुननी चाहिये ॥ १३ ॥ सारे वर्ण सब आश्रम बालक जवान बूढ़े यदि इस पुरी में मरें तो मोक्ष को प्राप्त होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥ शुद्ध हो, चाहे अशुद्ध हो, कन्या हो चाहे विवाही हो, विधवा हो, वा बंध्या हो, चाहे रजो दोष से दूषित हो ॥ १५ ॥ प्रसूता हो, असंस्कृता हो, वा जैसी कैसी हो इस क्षेत्र में यदि मर जावे तो मोक्ष भागिनी होगी इस में संशय नहीं ॥ १६ ॥ स्वेदज हो, वा अंडज हो, अद्भिज हो वा जरायुज हो जैसे मर कर यहां मोक्ष को प्राप्त होता है वैसा कहीं नहीं ॥ १७ ॥ यहां ज्ञान की ज़रूरत नहीं न यहां पर भक्ति की अपेक्षा है। हे देवि ! न यहां कर्म की अपेक्षा है, न ही दान की अपेक्षा है ॥ १८ ॥ न संस्कार युक्त होने की ज़रूरत है और यहां पर न कभी ध्यान की अपेक्षा है न यहां पर नाम की अपेक्षा है न पूजा की ज़रूरत, न यहां सुजाति होने की अपेक्षा है ॥ १९ ॥ मेरे मोक्ष देने वाले नेत्र में जो भी मनुष्य बसता है जैसे कैसे भी मरा हुआ निश्चित रूप से मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ २० ॥ अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, कांची, अवन्तिका तथा द्वारवती पुरी ये सात मोक्ष के देने वाले हैं ॥ ५–६ ॥ नर्मदा नदी में पितरों तथा देवों का तर्पण करके अग्निष्टोम यज्ञ के फल को प्राप्त होता है ॥ ५१ ॥ एक रात वसिष्ठाश्रम में निवास करने से सहस्र गौ दान के फल को पाता है ॥ ५६ ॥ पिंग तीर्थ में स्नान से सौ कपिला दान के फल को पाता है ॥ ५७ ॥ तब सरस्वती और सागर के संगम में जाकर ॥६०॥ हज़ार गौ दान के फल को तथा स्वर्ग लोक को प्राप्त होता

है ॥ ६१ ॥ पिंडारक स्नान करके मनुष्य बहुत सोने को प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥ हे भारत सागर और सिंधु के संगम को प्राप्त होकर ॥ ६८ ॥ अपने तेज से दीप्त वरुण लोक को प्राप्त होता है ॥ ६९ ॥ द्रिमी तीर्थ में स्नान करके जन्म भर के पाप को नाश कर लेता है ॥ ७३ ॥ पंचनद में स्नान करने से पंच महा यज्ञ के फलों को प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥ वसुधारा में जाने मात्र से ही अश्वमेध के फल को पाता है ॥ ७६ ॥ वालव तीर्थ में स्नान से सब पापों से मुक्त होकर शुद्धात्मा परमगति को प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥ नागभवन तीर्थ में स्नान करने से निश्चय मनुष्य वाजपेय यज्ञ के फल को प्राप्त होता है। सब पापों से छूट शुद्धात्मा होकर परमगति मोक्ष को प्राप्त होता है ॥ ९१ । इत्यादि हज़ारों प्रमाण हैं जो कि जल स्थल में स्नान दर्शन निवास भ्रमण स्मरण मात्र से पाप का छूटना और मोक्ष को प्राप्त होना मानते हैं। क्या सनातन धर्म में कोई माई का लाल ऐसा पैदा हुआ है जो इस प्रकार के तीर्थों को वेदों में से सिद्ध कर सके—रहा ऋषि दयानन्द जी का सिद्धान्त उस को जहां वेद प्रतिपादन करते हैं। वहां सनातन धर्म के समस्त ग्रन्थ भी स्पष्ट शब्दों में मानते हैं। जैसे कि—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थ फलमश्नुते ॥ ९ ॥

प्रतिग्रहादपावृत्तः संतुष्टो येन केन चित्।
अहंकार निवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ १० ॥

अकल्कको निरारंभो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥ ११ ॥

अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः ।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥ १२ ॥

(महा० वन० अ० ८२)

भाषार्थ—जिसके हाथ और पैर तथा मन क़ाबू में है। और जिसके पास विद्या तप और कीर्ति है वह तीर्थ के फल को भोगता है ॥ ९ ॥ जो दान नहीं लेता जिस प्रकार से संतुष्ट है अहंकार से मुक्त है वह तीर्थ के फल को भोगता है ॥ १० ॥ जो बुद्धिमान् शीघ्रकारी भोजन संतुष्ट तथा जितेन्द्रिय और सब पापों से मुक्त है वह तीर्थ के फल को भोगता है ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! जो क्रोध से हीन, सत्यशील, दृढ़ प्रतिज्ञ, सब प्राणियों को आत्मा के समान देखने वाला है वह तीर्थ के फल को भोगता है ॥ १२ ॥ कहिये महाभारत ऋषि के सिद्धान्त का अक्षरशः अनुमोदन करता है या कि नहीं 'अतः इस सारे लेख का परिणाम यह है। कि—

(१) पौराणिक सनातन धर्म्म के सिद्धान्त में जल स्थल में स्नान दर्शन भ्रमण निवास मरण आदि से पापों का दूर होना तथा मोक्षप्राप्ति का नाम तीर्थ है। इसमें ज्ञानादि साधनों की अपेक्षा नहीं ।

(२) वैदिक सिद्धान्तानुसार ज्ञान शास्त्र सत्संगादि तीर्थ हैं तथा किश्ती नाम भी तीर्थ हो सकता है जल स्थल का नाम तीर्थ नहीं।

(३) वेदों में कहीं भी जल स्थल को तीर्थ नहीं कहा।

(४) वेदों में कहीं भी जल स्थल स्नान भ्रमण आदि से मोक्ष नहीं माना।

(५) वेदों में जहां गंगा यमुना सरस्वती सिंधु आदि नाम आते हैं वहां नदियों की क़िस्में तथा लक्षण और उनका उपयोग वर्णन है। न उनको तीर्थ कहा है न उनको पाप नाशक माना है और न ही उनको मोक्ष का साधन वर्णन किया है।

(६) वेदों में जहां जहां तीर्थ शब्द आया है वहां वहां ज्ञान वेद शास्त्र सत्संग माता पिता गुरु आदि का नाम है, जल स्थल का नहीं। क्योंकि मनुष्य को दुःख सागर से ज्ञानादि ही तैरा सकते हैं, जल स्थल नहीं।

(७) वेद की आज्ञा है कि ब्रह्म के ज्ञान से ही मोक्ष हो सकता है अन्यथा नहीं। जैसा कि—

वेदाहमेतं पुरुपं महान्तमादित्यवर्णंतमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥
(यजु० ३१ । १८)

भावार्थ—हे जिज्ञासु पुरुष ! मैं जिस इस पूर्वोक्त बड़े २ गुणों से युक्त सूर्य के तुल्य प्रकाश स्वरूप अंधकार वा अज्ञान से पृथक् वर्तमान स्वस्वरूप से सर्वत्र पूर्ण परमात्मा को जानता हूं। उसी को जानकर आप दुखदायी मृत्यु को जीत सकते हैं इससे भिन्न और कोई मार्ग मोक्ष प्राप्ति का नहीं है।

अतः ऋषि दयानन्द जी का सिद्धान्त वेदानुकूल होने से सत्य तथा पौराणिक सिद्धान्त वेद विरुद्ध होने से मिथ्या है।

———

पाप मोचन

२३७ (प्रश्न)—जब यह मनुष्य संसार में दुःखी होता है। या अन्यों को दुःखी देखता है। तब यह अपने दुःख दूर करने की आवाज़ों को ईश्वर के पास पहुंचाता है। इस आवाज़ पहुंचाने की विधि और इस क्रन्दन को सुन कर जगदीश्वर मनुष्य के दुःख को दूर करता है। पृ० २६०पं०२२।

(उत्तर)—परमात्मा न्यायकारी है। वह जीवों को उनके कर्मों का फल यथावत् देता है। यदि कोई मनुष्य अपने या दूसरों के दुःखों को देख कर अपने किये हुए पापों की क्षमा के लिये ईश्वर के सामने गिड़गिड़ाता है। तो उसका गिड़गिड़ाना फ़िज़ूल है। परमात्मा किये हुवे कर्मों का अवश्य फल देंगे। हां उसकी प्रार्थनाओं का यह फल हो सकता है कि वह अपनी पाप करने की वृत्तियों को नाश करके भविष्य में पाप करना छोड़ दे। बस जहां २ वेदों में पाप मोचन की प्रार्थनायें हैं। उनका यही प्रयोजन है कि जीव आत्मा से प्रतिज्ञा करता है कि मैं भविष्य में पाप न करूंगा।

२३८ (प्रश्न)—"तच्चक्षुर्देवहितमित्यादि यजु०३६।२४" इस मंत्र में अपने स्वतंत्र जीवन और इन्द्रियों के पुष्ट होने की सूर्य्य से प्रार्थना की है। पृ० २६० पं० २६।

(उत्तर)—इस मंत्र में सूर्य्य से नहीं अपितु परमात्मा से ही प्रार्थना की गई है। क्योंकि सूर्य्य जड़ है। और हमारी भांति ईश्वर का ही बनाया हुवा है। प्रार्थना करने का प्रयोजन यह है कि "जिन पदार्थों के लिये हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं। गोया हम परमात्मा के सामने इस बात की प्रतिज्ञा

करते हैं कि हम इन पदार्थों की प्राप्ति के लिये यत्न करें" इस मंत्र में एक शब्द भी ऐसा नहीं है जिसके यह अर्थ हों कि परमात्मा किये हुवे पापों को क्षमा कर देता है। इस मंत्र के यथार्थ अर्थ इस प्रकार से हैं—

तच्चक्षुर्देव हितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः
शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम
शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।
(यजु० ३६।२४)

भावार्थ—हे परमेश्वर! आप जो विद्वानों के लिये हितकारी शुद्ध नेत्र के तुल्य सब के दिखाने वाले पूर्वकाल अर्थात् अनादिकाल से उत्कृष्टता के साथ सब के ज्ञाता हैं। उस चेतन ब्रह्म आप की कृपा से हम सौ वर्ष तक देखें सौ वर्ष तक प्राणों को धारण करें जीवें, सौ वर्ष तक शास्त्रों वा मंगल वचनों को सुनें, सौ वर्ष पर्यन्त पढ़ायें वा उपदेश करें सौ वर्ष पर्य्यन्त दीनता रहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें जीवें सुनें पढ़ें उपदेश करें और अदीन रहें ॥२४॥ कहिये महाराज! इस में पाप मोचन कहां वर्णन किया गया है। श्रीमान् जी! वेद में पाप मोचन की आज्ञा नहीं है अपितु वेद पाप कर्मों का फल अवश्य देना वर्णन करता है जैसे:—

असुर्य्या नाम ते लोका अंधेन तमसा वृताः।
तांस्ते प्रेत्याभि गच्छन्ति येके चात्म हनोजनाः॥ यजु० ४०।३।

भावार्थ—जो लोक लोकान्तर वा जन्म जन्मान्तर अत्यन्त अज्ञानमय वा दुखमय हैं। उन लोकों को मरने के पश्चात् भी वह लोग जाते हैं जो कोई आत्मा का हनन करने वाले अर्थात् पापाचारी जन ॥३॥

२३६ (प्रश्न)—"सुमित्रया न आप इत्यादि यजु० ३६।२३" इस मंत्र में परमात्मा से औषधियों के हमारे लिये मित्र तथा शत्रु के लिये अमित्र होने की प्रार्थना है। पृ० २६१ पं० १२।

उत्तर—आप अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध करते हुवे प्रतिज्ञा हानि निग्रह स्थान में आ रहे हैं। इस मंत्र में भी पाप मोचन का क़तई जिकर तक भी नहीं है। न मालूम इन दोनों मंत्रों के देने से आप को क्या प्रयोजन सिद्धि हुई है। इस मन्त्र का ठीक ठीक अर्थ इस प्रकार से है कि—

सुमित्रया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रया—
स्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥यजु०६३।२३॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो यह प्राण वा जल जौ आदि औषधियां हमारे लिये सुन्दर मित्र के समान होवें वे ही जो अधर्मी हम धर्मात्माओं से द्वेष करें और जिस से हम लोग द्वेप करें उसके लिये शत्रु के तुल्य विरुद्ध होवें ॥ २३ ॥

भावार्थ—जैसे अनुकूलता से जीते हुवे इन्द्रिय मित्र के तुल्य हितकारी होते वैसे जलादि पदार्थ भी देश काल के अनुकूल यथोचित सेवन किये हितकारी और विरुद्ध सेवन किये शत्रु के तुल्य दुखदायी होते हैं ॥ २३ ॥

यहां वेद में पाप मोचन का वर्णन तो कहां धर्म्म से द्वेष करने वाले पापियों के लिये ओषधियों के शत्रुवत् विरुद्ध होने की प्रार्थना है। तथा वेद में भगवान् स्वयं कहते हैं कि—

आरादरातिं निर्ऋतिं परो ग्राहिं क्रव्यादः पिशाचान् ।
रक्षोयत्सर्वं दुर्भूतं तत्तम इवापहन्मसि ॥ अथर्व० ८।२।१२॥

भावार्थ—दान न करने का भाव दुखमय अवस्था दूर रहे। न छोड़ने वाली पीड़ा मांसभक्षक और रुधिर पान करने वाले और जो दुखदायी दुष्ट प्राणी हैं वे सब अंधकार के समान नष्ट कर देता हूं ॥१३॥ इससे साफ सिद्ध है कि परमात्मा पापियों को अवश्य दण्ड देते हैं।

२४० (प्रश्न)—"तनूपाऽग्नेऽसीत्यादि यजु० ३।१७" इस मंत्र में अग्नि से शरीर को रोग आदि से रक्षा करने दीर्घ आयु करने तेज देने आदि की प्रार्थना की गई है।

पृ० २६१ पं० २०

उत्तर—इस मंत्र में भी पाप मोचन का वर्णन नज़र नहीं आता अपितु अग्नि अर्थात् परमात्मा से आयु आदि की प्रार्थना है। जैसा—

तनूपा अग्नेऽसि तन्वंमे पाह्यायुर्दा अग्नेस्यायुर्मेदेहि।
वर्चोदा अग्नेसि वर्च्चो मे देहि। अग्ने यम्मे तन्वा ऊनन्तन्म आपृण ॥ यजु० ३।१७॥

भावार्थ—हे जगदीश्वर! जिस कारण आप सब मूर्तिमान पदार्थों के शरीरों की रक्षा करने वाले हैं। इससे आप मेरे शरीर की रक्षा कीजिये। हे परमेश्वर जैसे आप सब को आयु के देने वाले हैं। वैसे मेरे लिये पूर्ण आयु अर्थात सौ वर्ष तक जीवन दीजिये। हे सर्व विद्यामय ईश्वर! जैसे आप सब मनुष्यों को विज्ञान देने वाले हैं वैसे मेरे लिये भी ठीक २ गुण ज्ञान पूर्वक पूर्ण विद्या को दीजिये। हे सब कामों को पूर्ण करने वाले परमेश्वर! मेरे शरीर में जितना बुद्धि बल और शौर्यादि गुण कर्म है उतना अंग मेरा अच्छे प्रकार

पूर्ण कीजिये ॥ कहिये महाराज ! इस मंत्र में पाप मोचन को वर्णन करने वाले कौन से पद हैं। परमात्मा पाप मोचक नहीं अपितु पापियों को दण्ड देकर रुलाने के कारण रुद्र कहाते हैं जैसे कि—

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चोनु दाधृवि भरध्यै।
विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्व गर्भमाधात्
॥ ऋ० ६ । ६६ । ३ ॥

भावार्थ—एक दानवीर पापियों को दण्ड देकर रुलाने वाले रुद्र देव के जो अनेक पुत्र हैं। और जिन के निश्चय से भरण पोषण पालन करने की सब शक्ति वह एक अद्वितीय रुद्र धारण करता है। इस महान रुद्र की शक्ति को वह प्रकृति रूपी बड़ी माता प्राप्त करती है। और जीवों की उत्तम अवस्था होने के लिये वह विविध रंग रूप वाली प्रकृति माता निश्चय से जीवों को गर्भ में धारण करती है ॥३॥

परमात्मा का रुद्र नाम ही इस बात को सिद्ध करता है कि वह पापियों के पाप को मोचन नहीं करता अपितु उन के पापों का दण्ड देकर उनको रुलाता है।

२४१ (प्रश्न)—"नमस्तेऽग्ने ओजसे इत्यादि साम० पू० १ । १ ।" इस मंत्र में अग्नि से शत्रुओं के नाश करने की प्रार्थना की गई है। पृ० २६२ पं० ५ ।

उत्तर—आप भी अजीब आदमी हैं। प्रतिज्ञा तो करते हैं पाप मोचन सिद्ध करने की। किन्तु उस की सिद्धि के लिये मंत्र एक भी पेश नहीं कर सकते। भला बतलाइये। इस मंत्र में वे कौन से पद हैं जो यह बतलाते हों कि परमात्मा

पापों को क्षमा कर देता है। अपितु इस मंत्र में आपके अर्थ के अनुसार ही धर्म्म के शत्रुओं अर्थात् पापियों को नाश करने की प्रार्थना की गई है। मंत्र के ठीक अर्थ इस प्रकार से हैं—

नमस्ते अग्ने ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैरमित्रमर्दय ॥ साम० खं० । २ । १ ।

भाषार्थ—हे अग्ने ! हे देव ! परमात्मन् ! मनुष्य तुझे बल के लिये नमस्कार करते हैं तू बलों से धर्म के शत्रु को पीड़ित कर। भक्त भगवान से प्रार्थना मांगते हैं और वन्दना करते हैं कि खल दण्डित हों ॥१॥

इस मंत्र में पाप मोचन नहीं अपितु पापियों को दण्ड देने का वर्णन है वास्तव में यह पाप मोचन का सिद्धान्त वैदिक है ही नहीं। और वेद ही क्या इस ग़लत सिद्धान्त का सभी खंडन करते हैं। जैसे—

यदा चरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम्।
तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः ॥६॥
(वाल्मी० अयो० स० ६३)

अवश्यं लभते कर्ता फलं पापस्य कर्मणः।
घोरं पर्य्यागते काले द्रुमः पुष्पमिवार्तवम् ॥८॥
(वाल्मी० अरण्य० स० २६)

भाषार्थ—हे कल्याणि ! यदि जो कुछ भी शुभ अशुभ करता है। हे भद्रे ! करने वाला वही अपने किये कर्मों के फल को प्राप्त होता है।६। करने वाला अपने पाप कर्मों का फल घोर काल आने पर अवश्य प्राप्त करता है। जैसे मौसम

आने पर वृक्ष फूलों को प्राप्त होते हैं ॥८॥ अतः पाप मोचन का सिद्धान्त वेद विरुद्ध और मिथ्या है। और जनता को पाप करने के लिये उत्साहित करने में साधन है।

२४२ (प्रश्न)—'यद् ग्रामे यदरण्ये इत्यादि यजु० ३।४५' यह मंत्र पढ़ कर पाप नाशक देवता ईश्वर को हवि दी जाती है। पृ० २६२ पं० १०।

उत्तर—इस मंत्र में भी यह बात नहीं है कि ईश्वर पाप क्षमा कर देता है। अपितु आपके अर्थ के अनुसार ही इससे यह बात सिद्ध होती है कि 'पाप को हम क्षय करते हैं' अर्थात् हम पाप करना छोड़ते हैं। हम पाप करना छोड़ दें इस में तो कोई विवाद ही नहीं है। विवादास्पद तो यह विषय है कि ईश्वर किये हुए पापों को मोचन कर देता है वा नहीं। सो इस वारे में आप अभी तक एक मंत्र भी पेश नहीं कर सके। इस मंत्र का ठीक २ अर्थ इस प्रकार से है कि—

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वयमिदन्तदव यजामहे स्वाहा॥ यजु० ३।४५।

भाषार्थ—कर्म के अनुष्ठान करने वाले हम लोग, जो गृहस्थों से सेवित ग्राम वानप्रस्थों ने जिस वन की सेवा की हो, विद्वान लोग जिस सभा की सेवा करते हों और योगी लोग जिस मन वा श्रोत्रादिकों की सेवा करते हों, उस में स्थित होके जो पाप वा अधर्म्म करा वा करेंगे, सो सब दूर करते रहें तथा जो २ उन २ उक्त स्थानों में सत्य वाणी से पुण्य वा धर्माचरण करना योग्य है, उस २ को प्राप्त होते रहें ॥४५॥

भावार्थ—चारों आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों को मन वाणी और कर्मों से सत्य कर्मों का आचरण कर पाप वा अधर्मों का त्याग कर के विद्वानों की सभा विद्या तथा उत्तम शिक्षा का प्रचार कर के प्रजा के सुखों की उन्नति करनी चाहिये ॥४५॥

इस मन्त्र में पाप तथा अधर्म की वृत्तियों को बदल कर भविष्य में पाप न करने तथा धर्म्म आचरण करने का प्रतिपादन है। किये हुये पापों के क्षमा होने का वर्णन नहीं है। और न ही किये हुये पाप क्षमा हो सकते हैं। अपितु किये हुये कर्मों का पाप अवश्य भोगना पड़ता है और सब ग्रन्थ इस की ताईद करते हैं। जैसे—

अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः।
भर्तः पर्यागते काले कर्ता नाऽस्त्यत्र संशयः ॥२५॥

(वाल्मी० युद्ध० स० १११)

यत्करोत्यशुभं कर्म शुभं वा यदि सत्तम।
अवश्यं तत् समाप्नोति पुरुषो नात्र संशयः ॥

(महा० वन० अ० २०८)

भावार्थ—पाप कर्म का फल अवश्य ही प्राप्त होता है हे पते! समय आने पर कर्ता फल पाता है इस में संशय नहीं है ॥२५॥ हे उत्तम पुरुष! जो कोई शुभ या अशुभ कर्म करता है वह पुरुष अवश्य ही उस के फल को प्राप्त होता है इस में संशय नहीं है।

अतः सिद्ध हुआ कि पाप मोचन सिद्धांत वेद विरुद्ध होने से पाप जनक है।

२४३ (प्रश्न)—"अग्नेरक्षाणो इत्यादि साम० पू० ११

इस मंत्र में प्रार्थना है कि हे अग्निरूप परमेश्वर तुम हम को पाप से रक्षा करो। पृ० २६२ पं० १७।

उत्तर—इस मंत्र में भी आप के अर्थों के अनुसार भी पाप मोचन का वर्णन नहीं है अपितु "हमको पाप से रक्षा करो" अर्थात् पाप करने से बचाओ, ऐसा वर्णन है। और "परमात्मा को धर्म्म के शत्रुओं के मारने वाला तपाने वाला तथा भस्म करने वाला" वर्णन किया गया है। किये हुवे पापों को क्षमा करने वाला नहीं बताया। ऐसी सूरत में दुष्टों पापियों को दण्ड देने वाला तथा हम को पाप करने से रक्षा करने वाला वर्णन होने से यह मन्त्र हमारे सिद्धान्त का अनुमोदन तथा आपके सिद्धान्त का खण्न करता है। मंत्रार्थ इस प्रकार हैं—

अग्ने रक्षाणो अंहसः प्रति स्मदेव रीषतः।
तपिष्ठैरजरो दह ॥ साम० पू० १।३।४ ॥

भावार्थ—हे उपास्य देव प्रभो! हे अग्ने! स्व प्रकाश! हमें पाप और पापी हिंसक शत्रु से रक्षा कर, बचा और कभी हीन बल न होने वाला तू तपाने वाले तेजों शस्त्रों से पापो को भस्म कर डाल ॥ ४ ॥ कहिये इस मंत्र में पाप मोचन वर्णन करने वाले कौन २ से पद हैं। हैं ही नहीं और हों भी कैसे जबकि पाप क्षमा होते ही नहीं अपितु किये कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता हैं। जैसे कि महाभारत में आता है कि—

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
कुरुते यादृशं कर्म तादृशं प्रतिपद्यते ॥ १५ ॥

निरंतरंच मिश्रं च लभते कर्म पार्थिव ।
कल्याणं यदि वा पापं न तु नाशोऽस्य विद्यते ॥ १६ ॥
(महा० शान्ति० अ० २९८)

भाषार्थ—आंख से, मन से, वाणी से, कर्म से, चार प्रकार से जिस प्रकार का कर्म करता है। वैसा ही फल प्राप्त करता है ॥ १५ ॥ अकेला वा मिला हुवा कर्म हे राजन प्राप्त करता है। चाहे पुण्य हो चाहे पाप हो इस का नाश नहीं होता ॥१६॥

इस से साबित है कि पाप करने की वृत्तियों का नाश होकर भविष्य में पाप करने से छूट सकता है किन्तु किये कर्म के फल का नाश नहीं होता।

२४४ (प्रश्न)—"आनो अग्ने इत्यादि साम० पू० ४।१" परमेश्वर! शुद्ध करने वाले, पाप हर्ता, अन्न के बढ़ाने वाले, स्तुति योग्य धन को हमारे वास्ते दो इत्यादि।

पृ० २६२ पं० २२

उत्तर—इस मंत्र में भी किये हुये कर्मों के फल के नाश का वर्णन नहीं है अपितु परमात्मा को पाप हर्ता इस लिये वर्णन किया गया है कि परमात्मा हमारे पाप करने की वृत्तियों का नाश करके हमें पाप कर्म करने से बचा कर शुभ कर्म में लगा देता है। इसी से परमात्मा को पाप हर्ता शुद्धकर्ता वर्णन किया है। मंत्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है।

आनो अग्ने वायो वृध ७ रयिं पावकश ७ स्यम् ।
रास्वा धन उपमाते पुरुस्पृह ७ सुनीति सुयशस्तरम् ॥
(साम० पू० ख० ४।१)

भाषार्थ—हे अग्ने ! हे पवित्र करने हारे ! हमें प्रशंसा के योग्य आयु को बढ़ाने वाला धन ऐश्वर्य दे। हे ज्ञान सम्पन्न ! हे सृष्टि के कर्ता ! उत्तम धर्म्म की निति से हमें जिस धन को बहुत लोग चाहते हैं। और जिस के प्राप्त करने से उत्तम यश भी प्राप्त होता है, वह भी दे ।।६।। कहिये इस मंत्र में वे कौन से पद हैं जो किये कर्मों के कर्म फल का नाश या पाप मोचन वर्णन करते हैं। मंत्र में जो पावक अर्थात् पवित्र करने वाला परमेश्वर को कहा है उस के यह अर्थ हैं कि हमें पाप करने से रोक कर पवित्र कर्मों में लगाने वाला है कि कर्मों के फल का नाश या पाप मोचन नहीं हो सकता किये कर्मों का फल अवश्य ही मिलता है जैसे—

सुशीघ्रमपि धावन्तं विधानमनुधावति।
शेते सह शयानेन येन येन यथा कृतम् ।।८।।
उपतिष्ठति तिष्ठन्तं गच्छन्तमनुगच्छति।
करोति कुर्वतः कर्म छायेवानुविधीयते ।।६।।
येन येन यथा यद्यत् पुरा कर्म समीहितम्।
तत्तदेव नरो भुङ्क्ते नित्यं विहितमात्मना ।।१०।।
(महा० शान्ति० अ० १८१)

भाषार्थ—जिस ने जो कर्म किया है वह कर्म शीघ्र दौड़ते हुवे के साथ दौड़ता है, सोये हुये के साथ सोता है ।।८।। बैठे के साथ बैठता है, और चलते हुये के साथ चलता है, करते हुये के साथ करता है। सारांश यह कि किया हुवा कर्म छाया के समान मनुष्य के साथ रहता है ।।६।। जिस जिस ने जैसे जो जो पहिले कर्म किया है। वह वह ही मनुष्य अपने किये कर्मों को नित्य भोगता है ।।१०।।

अतः सिद्ध है कि पाप मोचन का सिद्धान्त वेद विरुद्ध तथा युक्ति शून्य होने से सर्वथैव मिथ्या है।

२४५ (प्रश्न)—"अग्नेनय सुपथाराये इत्यादि यजुः ४० । १६" इस मन्त्र में है कि हे परमेश्वर कुटिल वञ्चनात्मक पाप को हम से पृथक् करो। पृ० २६३ पं० ४।

उत्तर—इस मन्त्र में भी परमात्मा से कुटिल वञ्चनात्मक पाप स्वभाव को पृथक् करने की प्रार्थना की गई है। किये हुये पापकर्मों के फलभोग को पृथक् करने की प्रार्थना नहीं है। इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव
वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराण-
मेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ यजु० ४० । १६॥

भावार्थ—हे दिव्य स्वरूप प्रकाश स्वरूप करुणामय जगदीश्वर! जिससे हम लोग आप के लिये अधिकतर सत्कार पूर्वक प्रशंसा का सेवन करें। इस से सब को जानने वाले आप हम लोगों से कुटिलता रूप पापाचरण को पृथक् कीजिये। हम जीवों को विज्ञान धन वा धन से हुये सुख के लिये धर्मानुकूल मार्ग से समस्त प्रशस्त ज्ञानों को प्राप्त कीजिये ॥१६॥

श्रीमान् जी! बतलाईये इसमें पापों को क्षमा करने या पाप मोचन का कहां वर्णन है, यहां तो पापाचरण को दूर करने तथा धर्माचरण में प्रवृत्ति की प्रार्थना है। किये हुये पाप कर्मों का फल कभी भी क्षमा नहीं हो सकता, देखिये—

बालो युवाच वृद्धश्च यत्करोतिशुभाशुभम्।
तस्यां तस्यामवस्थायां तत् फलं प्रतिपद्यते ॥ १५ ।

यथा धेनु सहस्रेषु वत्सोविन्दति मातरम् ।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ॥ १६ ॥
(महा० शांति० अ० १८१)

भाषार्थ—बालक हो, चाहे जवान हो, चाहे बूढ़ा हो, जो भी पुण्य पापकर्म करता है। उस उस अवस्था में उसके फलको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ जैसे हज़ारों गौवों में बछड़ा अपनी माता को प्राप्त होता है वैसे ही पूर्व में किया हुआ कर्म कर्ता को प्राप्त होता है ॥ १६ ॥

अतः साबित हुआ कि किये हुये पाप कर्मों का फल मुलतवी या पाप मोचन नहीं हो सकता हां पापाचरणों को छोड़ कर धर्म्माचरण में मनुष्य की प्रवृत्ति हो सकती है।

२४६ (प्रश्न)—"अपनः शोशुचदित्यादि ऋ० १।९७।१" हमारा जो पाप है वह हम से निकल कर शोक में पड़ कर नष्ट हो जावे। पृ० २६३ पं० १२।

उत्तर—इस मन्त्र में भी पूर्व किये हुवे पाप कर्मों के फल का क्षमा वा पाप मोचन नहीं है अपितु पाप करने की आदत को दूर करके पुण्य करने की आदत डालने का अभिप्राय है। मन्त्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है—

अपनः शोशुचदघमग्ने शुशुध्यारयिम् ।
अपनः शोशुचदघम् ॥ ऋ० १। ९७। १ ॥

भाषार्थ—हे प्रकाश स्वरूप परमेश्वर हमारे पाप स्वभाव को काष्ठ की आग के समान भस्म करके दूर कीजिये। और हमारे प्राण देह और ऐश्वर्य को शुद्ध प्रकाशित और उज्ज्वल कीजिये। पुनः प्रार्थना है कि हमारे पाप करने के स्वभाव को भस्म करके दूर कीजिये ॥ १ ॥

इस मन्त्र से पूर्वकृत पाप मोचन सिद्ध नहीं होता अपितु पाप करने का स्वभाव दूर होकर पुण्य करने का स्वभाव हो जावे यही सिद्ध होता है। और पूर्वकृत पाप का फल टल भी नहीं सकता।

नाधर्मः कारणापेक्षी कर्तारमभिमुञ्चति।
कर्ताखलु यथा कालं ततः समभिपद्यते ॥ ८ ॥

(महा० शान्ति० अ० २९८)

भाषार्थ— अधर्म किसी भी कारण की अपेक्षा से कर्ता को नहीं छोड़ता निश्चय रूप से करने वाला समयानुसार किये कर्म के फल को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

अतः सिद्ध हुआ कि पाप मोचन का सिद्धान्त वेद विरुद्ध और मिथ्या है।

२४७ (प्रश्न)—"सुक्षेत्रिया सुगातुया इत्यादि ऋ० १। ९७। २" आप की कृपा से हमारा पाप संकट में पड़ कर नष्ट हो जावे। पृ० २६३ पं० १७।

उत्तर—इस मंत्र में भी ईश्वर से अपने पाप करने के स्वभाव को नष्ट करने की प्रार्थना है। मंत्र का यथार्थ अर्थ इस प्रकार से है कि—

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजा महे
अप नः शोशुचदघम्। ऋ० १। ९७। २॥

भाषार्थ—हे परमेश्वर! हम लोग उत्तम क्षेत्र को प्राप्त करने की इच्छा से, उत्तम मार्ग को प्राप्त करने की इच्छा से, और उत्तम धन के प्राप्त करने की इच्छा से, हम तेरी उपासना करें। हे ज्ञान वान्! तेजस्विन्! आप हमारे पाप करने के

स्वभाव को भस्म कर डालें ॥ २ ॥

इस से पाप मोचन सिद्ध नहीं होता अपितु पाप करने के स्वभाव को दूर करना सिद्ध होता है। देखिये पुराण भी यही कहते हैं—

कृतकर्म क्षयोनास्ति कल्पकोटि शतैरपि।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ ३६ ॥
(शिव० कोटी रुद्र० अ० २३)

भावार्थ—किये हुवे कर्म का सौ करोड़ कल्प तक भी क्षय नहीं होता, किया हुआ शुभ तथा अशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ेगा ॥ ३६ ॥ इस से स्पष्ट हो गया कि किये हुवे पाप कर्मों का क्षय नहीं होता। अतः पाप मोचन का सिद्धान्त वेद शास्त्र पुराण विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है। पाप करने के स्वभाव को छोड़ कर आगे को पुण्य कर्म करना ही पाप दूर होने का प्रयोजन है।

२४८ (प्रश्न)—इस स्थल में "अपनः" इस मंत्र से लेकर "सनः सिंधुम्" इस मंत्र तक ८ मन्त्र पाक्षमायन के हैं। जिनको देखना हो, ऋग्वेद देख लें। पृ० २६३ पं० २२।

उत्तर—इन मन्त्रों में भी किये हुवे पाप के फल को क्षमा करने पाप मोचन वा पाप क्षमा का वर्णन नहीं हैं अपितु पाप करने के स्वभाव को नाश कर के सदाचारी बन कर आगे को पाप कर्म की निवृत्ति तथा पुण्य कर्म में प्रवृत्ति का वर्णन है। पापों का क्षमा करना ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध है। क्योंकि परमात्मा न्याय कारी है। और जो जैसा काम करे उस को वैसा फल देना न्याय है। तो किसी के पाप क्षमा

करने से परमात्मा न्यायकारी नहीं रह सकता परमात्मा का एक नाम यम है जिस का यह अभिप्राय है कि परमात्मा सब को नियम में रखता है। पाप क्षमा करने से परमात्मा का नियम भंग होजावेगा। परमात्मा का नाम रुद्र है। रुद्र उसको कहते हैं जो पापियों को दंड देकर रुलाता है। यदि पाप क्षमा कर दे तो उस का रुद्र नाम व्यर्थ हो जावे। परमात्मा का नाम दयालु है। यदि परमात्मा दुष्टों के पाप क्षमा कर दे तो जिन निर्बलों पर अत्याचार कर के दुष्टों ने पाप किया है। उन को दंड न देने से उन निर्बलों पर अत्याचार करने वाला परमात्मा माना जावेगा। परमात्मा को न्यायकारी, यम, रुद्र तथा दयालु प्रतिपादन करने वाले मंत्र निम्नलिखित हैं—

न्यायकारी—विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम्।
अग्निमीले स उ श्रवत् ॥ ऋ० ८। ४३। २४॥

यम— परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्। वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥ ऋ० ८। ६। २४। १॥

रुद्र— इमा रुद्राय स्थिरधन्वने वगिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने। अषाळ्हायसहमानाय वेधसे तिमायुधाय भरता शृणोतु नः। ऋ० ५। ४। १३। १॥

दयालु—यन्न नमश्यां गतिं मित्रस्य या यां पथा।
अस्य प्रियस्य शर्मण्य हिंसानस्य सश्चिरे॥ ऋ० ५।६४।३॥

भाषार्थ—प्रजाओं के अद्भुत राजा धर्म्म कार्यों के योग्य अध्यक्ष अर्थात् कर्म फल प्रदाता इस तेजस्वी देव की मैं स्तुति करता हूं। वही हमारी स्तुति सुनता है ॥२४॥ उस

व्यापक भूत समूह को अर्थात् सब प्राणियों को पुण्य-पाप के मार्गों से नियम में चलाने वाले तेजस्वरूप सब मनुष्यों को एक ही न्याय के रास्ते में चलाने वाले यम राजा परमात्मा की श्रद्धा भक्ति से स्तुति करो ॥१॥ ये स्तुतियें दृढ़ दण्ड धारी सुखदाता अन्न से पालन करने वाले, दुष्टों को दण्ड देने वाले रुद्र के लिये हैं वे इन स्तुतियों को सुने ॥१॥ यदि सद्गति प्राप्त करना चाहूं तो स्नेह मय दयालु प्रभु के बताये मार्ग से जाऊं, क्योंकि इस हिंसा न करने वाले अर्थात् दया भाव-युक्त परम प्रिय परमेश्वर के कल्याणमय मार्ग में विद्वान् आश्रय पाते हैं ॥३॥ इस से साबित हो गया कि पापों का क्षमा करना परमेश्वर के न्यायकारी यम, रुद्र, दयालु आदि गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध हैं। अतः पाप मोचन वेद-विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

२४६ (प्रश्न)—स्तुति करने का मतलब ईश्वर के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव बनाना है। आप की दृष्टि में ईश्वर में भी गुण-कर्म हैं। आप को यह भी मालूम है कि गुण जब रहेगा तब किसी आधार में रहेगा। और आधार जो होगा वह निःसन्देह साकार होगा। जब आप की दृष्टि में ईश्वर साकार ही नहीं तो उस में गुण कैसे ठहरेंगे? पृ० २६५ पं० ४।

उत्तर—बेशक स्तुति करने का प्रयोजन ईश्वर में प्रीति तथा उस के गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना है। और निःसन्देह ईश्वर में गुण और कर्म हैं। क्योंकि—

पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥

वैशे० अ० १ आ० १ सू० ५।

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन इन नौ द्रव्यों में आत्मा भी एक द्रव्य है। और-

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्य लक्षणम् ॥

वैशे० अ० १ आ० १ सू० १५।

जिस में क्रिया गुण या केवल गुण रहें उस को द्रव्य कहते हैं। उन में से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, मन और आत्मा। ये छः द्रव्य क्रिया और गुण वाले हैं। तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन क्रिया से रहित गुण वाले द्रव्य हैं।

इस प्रमाण से आत्मा, क्रिया तथा गुण वाला द्रव्य है। आत्मा दो प्रकार का है। जीवात्मा तथा परमात्मा। जीवात्मा तथा परमात्मा दोनों स्वरूप से निराकार हैं। वैसे ही आकाश, दिशा और काल भी स्वरूप से निराकार हैं। जीवात्मा को पुण्य-पाप कर्म करने के कारण उन का फल दुःख-सुख भोगने के लिये नैमित्तिक रूप से शरीर मिलता है। किन्तु शरीर धारण पर भी आत्मा के स्वरूप में फ़र्क़ नहीं आता रहता, वह निराकार ही है। साकार तो शरीर ही होता है जीवात्मा नहीं। शरीर के सम्बन्ध से वह सुख-दुःख कर्म फल भोगता है। परमात्मा न पुण्य-पाप कर्म करता है, न उस के फल भोगने के लिये शरीर धारता है। उस के कर्म स्वभाविक ही हैं॥ यह ठीक है कि गुण आधार अर्थात् द्रव्य में रहते हैं। किंतु आधार साकार ही होता है निराकार नहीं। यह वेद, शास्त्र, दर्शन के विरुद्ध युक्ति-शून्य उन्मत्त प्रलाप है। मालूम होता है कि आप दर्शन-ज्ञान से सर्वथा शून्य हैं। वरना यह न लिखते कि आधार साकार ही होता है। देखिये, जैसे निराकार दिशा में परत्व, अपरत्व गुण रहते हैं। काल में भी

निराकार होने पर भी पहिले, पीछे गुण रहते हैं। निराकार आकाश में शब्द गुण रहता है। निराकार जीवात्मा में शरीर रहित निराकार होने पर भी मोक्षावस्था में भी ज्ञान-यत्न आनन्द गुण रहते हैं। वैसे ही निराकार परमात्मा में भी ज्ञान, प्रयत्न, आनन्द, दया, न्याय, आदि गुण विद्यमान हैं। देखो यजुर्वेद अध्याय ४० में सपर्य्यगादित्यादि ईश्वर के स्वरूप के प्रतिपादक मंत्र।

२५० (प्रश्न)—न्याय दर्शन ने उत्क्षेपन, अवक्षेपन, कुञ्चन, प्रसारण, गमन, ये पांच कर्म माने हैं। ईश्वर में उत्क्षेपन कर्म है। वह किस को उठा कर ऊपर फैंकता है। या बराबर में फैंकता है। किसी को लम्बा-चौड़ा करता है या किसी को घिस डालता है, अथवा वह चलता है। उस में कौन कर्म है। पृ० २६५ पं० ६।

उत्तर—ऊपर-नीचे, दायें-बायें आदि शब्द ईश्वर में प्रयुक्त नहीं हो सकते, क्योंकि वे परिमित्त वस्तु के लिये प्रयुक्त हो सकते हैं। और ईश्वर सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। हां, जीवों की अपेक्षा से ये शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं। सूर्य्य, चांद, सितारों को ईश्वर ऊपर को भी चलाता है, नीचे को भी चलाता है। अतः उत्क्षेपण, अवक्षेपन कर्म ईश्वर में हुआ। ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति के समय प्रकृति के बिखरे हुये प्रमाणुओं को इकट्ठा करता है, इस से कुञ्चन कम ईश्वर में है। प्रलय के समय ईश्वर पृथिवी आदि स्थूल वस्तुओं को नाश कर के उन के प्रमाणुओं को आकाश में बखेर देता है, इस से ईश्वर में प्रसारण कर्म है। हां, गमन वह स्वयं नहीं चलता क्योंकि परिपूर्ण

व्यापक में चलना नहीं हो सकता। हां, संसार के सम्पूर्ण पदार्थों को नियम में ईश्वर चलाता है, अतः गमन कर्म उस में है। इस प्रकार से ईश्वर में पांचों प्रकार के कर्म वर्तमान हैं।

२५१ (प्रश्न)—आपने तो ईश्वर को अविज्ञेय और अनिर्वचनीय तथा इच्छा रहित माना है। इच्छा रहित में कभी कर्म का करना बन सकता है। पृ० २६५ पं० १२।

उत्तर—स्वामी जी ने ईश्वर को अविज्ञेय तथा अनिर्वचनीय माना हैं इस का आपने कोई ठिकाना नहीं लिखा कि कहां माना है अविज्ञेयका यदि यह अभिप्राय हो कि वाह्येन्द्रियों से न जानने के क़ाबिल है तो ठीक है। यदि आपका अभिप्राय यह हो कि ईश्वर सर्वथा अविज्ञेय है तो यह स्वामी जी का मत नहीं है। स्वामी जी तो उपासना द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार मानते हैं। फिर वह अविज्ञेय कैसे मान सकते हैं। अनिर्वचनीय हम किसी भी पदार्थ को नहीं मानते और स्वामी जी ने लिखा है। रहा इच्छा का सवाल सो ईश्वर में नहीं है क्योंकि इच्छा अप्राप्त वस्तु की होती है और परमात्मा को कोई पदार्थ अप्राप्त नहीं है। हां ईश्वर में ईक्षण अर्थात् दर्शन विचार और कामानां हैं जैसा कि आपने ही अपनी पुस्तक के पृ० २३१ पं० १६ में लिखा है। सो ईश्वर अपने ईक्षन से सृष्टि उत्पत्ति प्रलय कर्म फल देना आदि कर्म करता है इस में कोई भी आपत्ति नहीं है।

२५२ (प्रश्न)—एवं ईश्वर जैसे गुण मनुष्यों में आवेंगे कैसे। वह सर्वज्ञ है, सर्व व्यापक है, सर्वशक्तिमान है। आपके मत में शरीर रहित है, तो क्या दुनिया के मनुष्य

सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् बन कर अपने शरीर को छोड़ दें, ज़हर खाकर मर जावें। पृ० २६५ पं० १४।

उत्तर—आपके दिमाग़ में भी कुछ पागलपन का अंशप्रतीत होता है। वरना स्वामी जी ने यह कहां लिखा है कि मनुष्य ईश्वर जैसा बन जाये, अपितु आपने ही अपनी किताब में पृ० २६४ पं० ६ में सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ७ पृ० १८२ का पता देकर पाठ नकल किया है जिसमें लिखा है कि "स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधारना" बस स्वामी जी के लेखानुसार ईश्वर के प्रत्येक गुण से शिक्षा लेकर मनुष्य अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधार कर सकता है। जैसे परमात्मा की सर्वज्ञता से यह सुधार करें कि हम अधिक से अधिक ज्ञान की प्राप्ति का यत्न करें थोड़े से ज्ञान से संतुष्ट होकर न बैठ जावें। तथा परमात्मा की सर्वव्यापकता से यह सुधार करें कि हम एक ही स्थान में कूप मण्डूक बन कर न बैठे रहें अपितु देश देशान्तर में घूम कर विद्या धन ऐश्वर्य की वृद्धि करें। परमात्मा की सर्व शक्तिमत्ता से यह सुधार करें कि हम अधिक से अधिक शक्ति का संपादन कर के दुष्टों को दण्ड दें श्रेष्ठों का पालन करें तथा शत्रुओं का पराजय करके चक्रवर्ती राज्य की प्राप्ति का यत्न करें। तथा परमात्मा के शरीर रहित से यह सुधार करें कि पाप कर्मों का त्याग श्रेष्ठ कर्मों का आचरण तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति से मोक्ष प्राप्ति का यत्न करें कि जिस से जन्म मरण से छूट शरीर से रहित हो परमानन्द को प्राप्त हों। बस यही स्वामी जी का प्रयोजन है। जिस को आप की अल्पबुद्धि समझने में असमर्थ रही।

२५३ (प्रश्न)—आपने सत्यार्थ प्रकाश में ईश्वर के तीन कर्म बतलाये। सृष्टि का रचना, प्रलयका करना, जीव को उस के क्रमानुसार फल देना, वेद का बनाना क्या अब ये चारों काम आर्य्य समाजी करने लगेगें।

पृ० २६५ पं० १७।

उत्तर—आर्य्य समाजी ही नहीं अपितु प्रत्येक मनुष्य ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव सुधार सकता है। जैसे ईश्वर के सृष्टि रचना कर्म से मनुष्य यह शिक्षा ले सकता है कि जैसे ईश्वर ने अग्नी, पानी, मिट्टी, हवा आकाश इन पांच ही तत्वों की कमी ज्यादती के हेर फेर से संसार की अनेकों वस्तुएँ बनाकर अपनी कारीगरी का सबूत दिया है। वैसे ही मनुष्य को भी धातु, मिट्टी, पत्थर, लकड़ी, आग, पानी, हवा, आकाश आदि वस्तुओं के मेल से अनेक प्रकार की वस्तुयें यान आदि बनाकर अपनी कारीगिरी का सबूत देना चाहिये। तथा परमात्मा के प्रलय कर्म से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जैसे परमात्मा इस सृष्टि को पुरानी शक्ति हीन देखकर इस की प्रलय करके फिर से उसको नई और शक्तिशाली बनाता है वैसे ही हम लोगों को भी अपने घर, पुल, चारपाई, रेल के अंजन, यन्त्र, कलायें, इत्यादि सब वस्तुओं को पुरानी तथा शक्ति हीन देखकर उन के पुरज़ों को खोल ठीक करके फिर से नई तथा शक्तिशाली बना लेना चाहिये। परमात्मा के न्याय-पूर्वक सब जीवों को कर्मफल देने से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जैसे परमात्मा निष्पक्षपात होकर न्याय से दुष्टों को दण्ड श्रेष्ठों का पालन तथा कर्मों का फल देता है, ऐसे ही हमको भी

अपने परिवार, माता, पिता, गुरु, आचार्य्य, पुत्र, पत्नी, भृत्य, प्रजा आदिकों के साथ निष्पक्ष हो कर न्याय अनुसार पालन, पोषण, शिक्षा, दण्ड आदि व्यवहार उन के कर्मों के अनुसार यथा योग्य करना चाहिये। परमात्मा के वेद प्रकाश कर्म से हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जैसे परमात्मा ने सब मनुष्यों के ज्ञानार्थ अपनी कल्याणी वाणी वेद का मनुष्य मात्र के लिये प्रकाश किया है, वैसी हम भी वेद विद्या तथा अपनी अन्य भी हर एक प्रकार की विद्या को मनुष्य मात्र को पढ़ा कर संसार में विद्या तथा ज्ञान की वृद्धि करें। परमात्मा के इन चारों कर्म्मों से शिक्षा ले कर हम इस प्रकार से अपने गुण, कर्म, स्वभाव को सुधार सकते हैं।

२५४ (प्रश्न)—स्वभाव नाम तो शरीर का है। "स्वभवनं स्वभावः" जो साथ में पैदा हो उसका नाम स्वभाव है। क्या ईश्वर के भी शरीर है। यदि स्वभाव नाम आप आदत का मानें तो ईश्वर कैसी आदत जीवों की तो नहीं हो सकती संभव है आर्य्य समाजियों की हो जावे। पृ० २६५ पं० १६।

उत्तर—स्वभाव शब्द के बहुत से अर्थ हैं। स्वभाव स्वयं किसी वस्तु के नित्य गुण का भी नाम है। जैसे जल में शीतता पृथिवी में गंध, अग्नि में उष्णता। दूसरे स्वभाव नाम आदत का है। स्वभाव नाम शरीर का तो हो ही नहीं सकता। स्वभाव की व्युत्पत्ति है "स्वयं भवति इति स्वभावः" जो स्वयं हो हो, पैदा हुआ न हो; वह स्वभाव है। जो पैदा होता है वह स्वभाव नहीं अपितु नैमित्तिक होता है। शरीर स्वभाविक नहीं अपितु नैमित्तिक है। यदि शरीर स्वभाविक हो तो मोक्ष कोई हो ही न

सके। अतः शरीर स्वभाविक नहीं कर्मों के निमित्त से कर्म फल भोगार्थ मिलता है। ईश्वर के न पाप पुण्य कर्म हैं न उन के भोगार्थ ईश्वर को शरीर धारना पड़ता है। "अतः स्वभवनं स्वभावः" का अर्थ भी यही है कि "स्वयं होना स्वभाव है।" साथ में पैदा होना अर्थ गलत है। जब ईश्वर स्वयं पैदा नहीं होता तो उसके साथ पैदा होने के क्या माने। अतः स्वभाव शरीर का नाम तो है ही नहीं। जीव विषय में स्वभाव का नाम आदत भी हो सकता है। क्योंकि जीव में नैमित्तिक गुण भी होते हैं। किंतु ईश्वर विषय में स्वभाव के अर्थ हैं। ईश्वर के नित्य गुण। आदत अर्थ ईश्वर विषय में नहीं है। ईश्वर जैसे गुण कर्म स्वभाव जीव के नहीं हो सकते अपितु जीव ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से शिक्षा लेकर अपने गुण कर्म स्वभाव सुधार सकता है।

२५५ (प्रश्न)—फिर आपने यह किस आधार पर माना कि स्तुति करने का मतलब यही हैं कि ईश्वर के सदृश जीव के गुण कर्म स्वभाव हो जाना, स्वभाविक धर्म्म किसी का बदलता नहीं, नीम में कटुत्व और नींबु में खट्टापन, कोइले में स्याही, नमक में खारा पन, ऊख में मिठास कभी बदलते हैं? आप बातें कैसी करते हैं। पृ० २६५ पं० २३।

उत्तर—यह सिद्धान्त वेद से ही लिया गया है कि ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव में सुधार किया जावे। हम इस विषय में वेद के प्रमाण उपस्थित करते हैं।

ईश्वर के अनन्त गुण—नहि नु ते महिमानः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म। न राधसो राधसो नू तनस्येन्द्र न किर्ददृश इन्द्रियंते। (ऋ० ६।२७।३)

ईश्वर के कर्म—विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ऋ० १।२२।१९ ॥

ईश्वर गुण कर्म का अनुकरण—तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बल मसि बलं मयि धेह्योजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि । यजु० १९।९ ।

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन । स्तोतारस्ते इह स्मसि । (यजु० ३४।४१)

भावार्थ— हे ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र ! तेरे संपूर्ण गुणों का ज्ञान हमें नहीं है । तेरे ऐश्वर्य का भी पूर्ण ज्ञान हम नहीं कर सकते । तेरी नूतन नूतन सिद्धियों का भी हमें ज्ञान नहीं है । हे भगवन् ! तेरी शक्तियों का भी हमें दर्शन नहीं हुआ है ।३। सर्व व्यापक ईश्वर के ये सब कर्म देखिये । जिस से व्रतों को अर्थात् धर्म नियमों को जाना जाता है । वह जीवात्मा का योग्य मित्र है ।१९। हे सकल शुभ गुणों के भंडार ईश्वर ! जो तेरे में तेज है । उस तेज को मेरे में धारण कीजिये । जो तेरे में प्राक्रम है उस प्राक्रम को मुझ में धरिये । जो तेरे में बल है उस बल को मुझ में भी धरिये । जो तेरे में सामर्थ्य है । उस सामर्थ्य को मुझ में धरिये । जो तुझ में दुष्टों पर क्रोध है उस क्रोध को मुझ में धरिये जो तुझ में सहन शीलता है उस सहन शीलता को मुझ में भी धारण कीजिये ।९। हे पुष्टि कारक परमेश्वर ! हम लोग आपके स्वभाव वा नियम में इससे वर्तें कि जिससे कभी भी न चित्त बिगाड़ें । इस जगत् में आपके स्तुति करने वाले हुए हम सुखी होते हैं ।४१।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल वर्तते हैं वे कभी नष्ट सुख वाले नहीं होते हैं।४१।

कैसे स्पष्ट शब्दों में वेद ने ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव सुधारने का उपदेश दिया है। और स्तुति का प्रयोजन बतलाया है।

वेशक किसी वस्तु का स्वाभाविक गुण नाश नहीं होता किंतु नैमित्तिक गुणों का प्रवेश भी पदार्थों में होता है। जैसे जल का स्वाभाविक गुण शीतता है किंतु आग पर उबालने से वह इतना गर्म होजाता है कि मनुष्य पर पड़ जावे तो जला देता है। इससे उसका स्वभाविक गुण शीतलता नष्ट नहीं होती क्यों कि ऐसी अवस्था में भी आग को बुझा देता है किंतु आग के संयोग से उसमें गर्मी आगई है। इस प्रकार से नीम, नींबु आम नारंगी आदि वृक्षों में भी एक दूसरे के साथ पैवन्द लगाने से एक दूसरे के नैमित्तिक गुण प्रवेश कर जाते हैं। कोयला आग के संयोग से आग की भांति चमकने लगता है इसी भांति नमक और गुड़ में भी दूसरी वस्तुओं के संयोग से नैमित्तिक गुणों का प्रवेश होजाता हैं। जैसे प्रत्येक पदार्थ में अपने स्वभाविक गुण रहते हुए भी दूसरे पदार्थों के संयोग से नैमित्तिक गुण आजाते हैं। ऐसे ही जीवात्मा अपने स्वाभाविक गुणों को स्थिर रखते हुए भी परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव से शिक्षा लेकर अपने गुण कर्म स्वभाव में नैमित्तिक सुधार कर सकता है। आप कैसी बहकी २ बातें बनाते हैं। क्या आपको पदार्थों में नैमित्तिक गुणों के आजाने का भी ज्ञान नहीं है।

२५६ प्रश्न)—आप लिखते हैं कि "प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहायता का मिलना" "उपासना से परम

ब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना" उपासना से जो आपने सहायक का मिलना माना है। यह सहाय कौन देगा। यह सहाय कौन देगा। आप लिखते हैं कि यदि ईश्वर पापों को क्षमा करदे तो वह दयालु न रहे। हम भी यही कहेंगे कि ईश्वर प्रार्थना से सहाय करता है। तो वह दयालु नहीं रहा। क्योंकि जिन्हों ने प्रार्थना की उन को सहाय दी और जिन्हों ने नहीं की वे टका से रह गये। प्रार्थना की रिशवत खाने वाला ईश्वर कभी दयालु हो नहीं सकता। यह आप ही का सिद्धान्त था कि पाप क्षमा कर देने से ईश्वर दयालु नहीं रहता। पृ० २६५ पं० २८।

उत्तर—कर्म तीन प्रकार के हैं। मानसिक, वाचिक, तथा शारीरिक, इस लिये प्रार्थना भी मानसिक तथा वाचिक कर्म है। यदि प्रार्थना धर्म्मानुकूल है तो उसे शुभ कर्म तथा यदि प्रार्थना धर्म्म के प्रतिकूल है तो उसे अशुभ कर्म माना जावेगा। अशुभ प्रार्थना रूप कर्म का फल मन तथा वाणी के द्वारा अशुभ मिलेगा। तथा शुभ प्रार्थना रूप कर्म का फल मन वाणी द्वारा शुभ मिलेगा। इसी का नाम सहायता है। और वह सहायता भी कर्मों का फल है। परमेश्वर अपनी तरफ से विना कर्म के सहायता रूप फल नहीं देता। अतः उस के दयालु होने में कोई दोष नहीं आता। क्योंकि जो शुभ प्रार्थना करता है उसे शुभ फल मिलता है जो अशुभ प्रार्थना करता है उस का अशुभ फल मिलता है और जो नहीं करता उसको फल नहीं मिलता। इससे ईश्वर पर कोई दोष पक्षपात या रिश्वत का नहीं आता। चूंकि प्रार्थना रूप कर्म मन वाणी तक ही महदूद है अतः उसका फल भी मन वाणी तक ही महदूद

रहेगा। उस प्रार्थना का शारीरिक फल तभी मिलेगा यदि वह उस प्रार्थना के अनुकूल शारीरिक कर्म करेगा अन्यथा शारीरिक फल न मिलेगा। इसी बात को स्वामी जी ने यजुर्वेद अध्याय ३ मंत्र २६ के भाष्य में इन शब्दों में वर्णन किया है "मनुष्य लोग जैसी परमेश्वर की प्रार्थना करें वैसा ही उन को पुरुषार्थ भी करना चाहिये जैसे विद्या आदि धन वाला परमेश्वर है ऐसा विशेषण ईश्वर का कहवा सुन कर कोई मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् विद्यादि धन वाला नहीं हो सकता किंतु अपने पुरुषार्थ से विद्या आदि धन की वृद्धि वा रक्षा निरन्तर करनी चाहिये, हां पाप कर्मों को क्षमा करने से ईश्वर अवश्य दयालु न रहेगा। क्योंकि पापियों को दण्ड न देने से लोगों को पाप करने में उत्साह होगा। तथा पापियों ने जिन पर अत्याचार किया है उनके साथ अन्याय होने से दयालुता नष्ट हो जावेगी। अतः पाप मोचन की बात सर्वथा सिद्धान्त विरुद्ध है।

२५७ (प्रश्न)—आप उपासना से ईश्वर मेल बतलाते हैं, ग़ज़ब कर रहे हैं। समुद्र में मिला हुआ गंगा जल कभी अलहिदा नहीं हो सकता। फिर आप यहां जीव ब्रह्म का मेल करके अपने लिखे मुक्ति से पुनरागमन का क्यों कचूमर निकाल रहे हैं। पृ० २६६ पं० ७।

उत्तर—स्वामी जी उपासना में ईश्वर तथा जीव का समुद्र और गंगाजल की भाँति मेल नहीं मानते अपितु उपासना में जीव ईश्वर का मछली जल की भांति मेल मानते हैं। जीव और ईश्वर उपासना में स्वरूप से भिन्न भिन्न रहते हैं किंतु उपास्य उपासक भाव से प्रेम में एक हो जाते हैं। अतः मोक्ष से पुनरावृत्ति सिद्धान्त में कोई दोष नहीं आता।

२५८ (प्रश्न)—फिर आप ईश्वर का साक्षात्कार होना भी मानते हैं। क्या ईश्वर शरीरी है जिस का साक्षात्कार होगा। साक्षात्कार इन्द्रिय और मन से होता है, ये सब साकार हैं। इस कारण ये साकार का ही साक्षात्कार कर सकते हैं। आपने ईश्वर का साक्षात्कार लिख कर यहां पर ईश्वर निराकार है इस सिद्धान्त को रगड़ डाला। पृ० २६६ पं० १०।

उत्तर—यहां पर साक्षात्कार से स्वामी जी का मतलब इन्द्रिय प्रत्यक्ष से नहीं है। अपितु स्वामी जी का मतलब आत्मानुभव से है। चूंकि आत्मा भी निराकार है और परमात्मा भी निराकार है अतः निराकार आत्मा निराकार परमात्मा का अनुभव करता है। इससे ईश्वर निराकार है इस सिद्धान्त पर कोई आक्षेप नहीं आता।

२५९ (प्रश्न)—आप ने यह खूब लिखा कि 'जो केवल भांड के समान ईश्वर की स्तुति करता है" ईश्वर स्तुति करने वालों को भांड की उपमा देने वाला या तो नास्तिक चार्वाक ही हुआ था या आप ही हुए। पृ० २६६ पं० १५।

उत्तर—आपने स्वामी जी के आधे लेख को चुरा लिया। पूरा पाठ इस प्रकार से है कि 'इस का फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवें और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उस की स्तुति करना व्यर्थ है' अब साफ हो गया कि स्वामी जी कहते हैं कि मनुष्य को स्तुति के अनुकूल अपना आचरण भी बनाना चाहिये। जो मनुष्य ईश्वर की

स्तुति तो करता है किंतु अपने चरित्र को नहीं सुधारता वह केवल भांड के समान ही है उसको स्तुति करने का कोई लाभ नहीं है। यही बात गरुड़ पुराण में भी लिखी है जैसे—

नाम मात्रेण संतुष्टाः कर्मकांड रता नराः।
मंत्रोच्चारण होमाद्यैर्भ्रामिताः क्रतुविस्तरः॥ ६० ॥
संसारज सुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम्।
कर्म ब्रह्मोभय भ्रष्टं तंत्यजेदन्त्यजं यथा ॥ ६४ ॥

भाषार्थ—जो लोग नाम अर्थात् ईश्वर स्तुति मात्र से संतुष्ट हैं। और केवल मंत्रोच्चारण होम आदि यज्ञों के विस्तार में भ्रमते हैं॥ ६० ॥ और जो मनुष्य संसार के सुखों में फंसा हुआ कहता है कि मैं ब्रह्म हूं। ऐसा कर्म तथा ब्रह्म दोनों से भ्रष्ट हुए मनुष्य को अन्त्यज की भांति छोड़ देना चाहिये॥६४॥ कहिये महाराज क्या गरुड़ पुराण के कर्ता को भी आप के दरबार से चार्वाक की पदवी मिलेगी। यदि नहीं तो स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य है कि चरित्र सुधार के बिना केवल ईश्वर स्तुति भांड के सदृश ही है।

२६० (प्रश्न)—आपने यह लिखा है कि 'ऐसी स्तुति कभी न करनी चाहिये कि मेरे शत्रुओं का नाश हो और मेरे धन हो एवं मैं प्रतिष्ठावान् बनूं' इस से तो यही जाना जाता है कि आप ने कभी स्वप्न में भी वेद नहीं देखे। जो मंत्र हम ने दिये हैं। उनमें शत्रुओं के नाश और धनी होने की प्रार्थना स्पष्ट लिखी है। क्या आप की दृष्टि में इन मंत्रों के बनाने वाले जगदीश्वर की बे समझी तो नहीं हैं। पृ० २६६ पं० १७।

उत्तर—आप ने यहां पर भी स्वामी जी के लेख को आगे

पीछे से चुरा कर बीच में से अधूरा पाठ दे दिया है। जब तक पूरा पाठ न हो नतीजा ठीक नहीं निकल सकता। स्वामी जी के पूरे पाठ का अभिप्राय यह है कि बिना पुरुषार्थ के इस प्रकार की प्रार्थनायें व्यर्थ हैं। परमेश्वर इन को नहीं सुनता। परमेश्वर भी उसी की प्रार्थना सुनता है जो पुरुषार्थ करता है पूरा पाठ इस प्रकार है—

'जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उस को वैसा ही वर्त्तमान करना चाहिये अर्थात् जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करे उस के लिये जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना किया करे। अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है। ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उस को स्वीकार करता है कि जैसे हे परमेश्वर ! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझ को सब से बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जायें इत्यादि क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरे के नाश के लिये प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनों का नाश कर दे ? जो कोई कहे कि जिस का प्रेम अधिक उस की प्रार्थना सफल हो जावे तब हम कह सकते हैं कि जिस का प्रेम न्यून हो उस के शत्रु का भी न्यून नाश होना चाहिये। ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा कि हे ईश्वर ! आप मुझ को रोटी बना कर खिलाइये, मेरे मकान में झाड़ू लगाइये, वस्त्र धो दीजिये और खेती बाड़ी भी कीजिये। इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे आलसी हो कर बैठे रहते हैं वे महा मूर्ख हैं क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उस को जो कोई

तोड़ेगा वह सुख कभी न पावेगा। जैसे—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः॥

(यजु० अ० ४०। मं० २)

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवे तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे, आलसी कभी न हो। देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं वे सब अपने २ कर्म करते ही रहते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि सदा बढ़ते घटते रहते हैं वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरुष को भृत्य कहते हैं और अन्य आलसी को नहीं, देखने की इच्छा करने और नेत्र वाले को दिखलाते हैं अन्धे को नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर भी सब के उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है, हानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई गुड़ मीठा है ऐसा कहता है उस को गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है।'

(सत्यार्थ प्रकाश सप्तम समुल्लास)

इस पाठ से पता लगता है कि स्वामी जी का अभिप्राय यह है कि धर्मानुकूल सब के उपकारार्थ प्रार्थना में ईश्वर सहायक होता अधर्म है युक्त स्वार्थ की प्रार्थना में ईश्वर सहायक नहीं होता। अतः यदि मनुष्य धर्म के विरोधी शत्रुओं के नाश की प्रार्थना करे और परोपकार के लिये धन

की प्रार्थना करे तथा प्रजा की रक्षार्थ प्रतिष्ठावान् बनने की प्रार्थना करे। इस प्रकार की प्रार्थना धर्मानुकूल है, करना चाहिये तथा पुरुषार्थ करना चाहिये। ईश्वर सहायक होंगे किंतु इस से विपरीत ज़ाती दुश्मनी में शत्रु के नाश की तथा स्वार्थ के लिये धन की और प्रजा को दुःख देने के लिये प्रतिष्ठावान् बनने की न प्रार्थना करनी चाहिये और न परमात्मा ऐसी प्रार्थनाओं को स्वीकार करके सहायता करता है और पुरुषार्थ से हीन किसी प्रकार की भी प्रार्थना व्यर्थ है। वेद मन्त्रों में जो शत्रुओं के नाश तथा धन प्राप्ति की प्रार्थनायें हैं वे सब धर्म के शत्रुओं के नाश तथा परोपकारार्थ धन प्राप्ति की प्रार्थनाएं हैं। ज़ाती दुश्मनी से शत्रु के नाश तथा स्वार्थ के लिये धन की प्रार्थना नहीं हैं। अतः स्वामी जी ने पुरुषार्थ पूर्वक धर्म के शत्रुओं के नाश करने परोपकारार्थ धन प्राप्ति की प्रार्थनाओं का अनुमोदन तथा आलस्य पूर्वक ज़ाती दुश्मनी में शत्रुओं के नाश की तथा स्वार्थ के लिये धन प्राप्ति की प्रार्थनाओं का बल पूर्वक खण्डन किया है—

२६१ (प्रश्न) यह आपने खूब लिखा कि हम को रोटी बना कर खिलाइये ऐसा तो आप ने ही किया होगा।

पृ० २६६ पं० २५

उत्तर—स्वामी जी ने केवल प्रार्थना पर भरोसा रखने वाले पुरुषार्थ हीन लोगों की मनोवृत्ति का खण्डन किया है ताकि लोग धर्मानुकूल प्रार्थना के साथ पुरुषार्थ भी किया करें वरना प्रार्थना पर भरोसा करने वाले आलसी बहुत हैं। जैसे बाबा अटल के पुजारी।

बाबा टल्ल-पल्ली पकाईं घल्ल—

का नारा लगाते हैं। तथा राम के भक्त कहते हैं—

राम राम का नाम लो, रहो खाट पर सोय
अनहोनी होनी नहीं, होनी हो सो होय

और कृष्ण के भक्त इस प्रकार आलस्य का प्रचार करते हैं कि—

ऐहिकं तु सदा भाव्यं पूर्व चरित कर्मणा ॥२६॥
आमुष्कि तथा कृष्णः स्वयमेव करिष्यति ।
अतो हि तत्कृते त्याज्यः प्रयत्नः सर्वथा बुधैः ॥२७॥
(पद्म पुराण पाताल खंड अध्याय ८२)

भावार्थ—वर्तमान में तो सदा वही होगा जो पूर्व कर्म का फल है ॥२६॥ भविष्य के लिये स्वयं कृष्ण जी करेंगे। अतः उसके लिये बुद्धिमानों को यत्न का त्याग कर देना चाहिये ॥२७॥ यह है आलस्यवाद जिसका खंडन करके स्वामी जी पुरुषार्थ का प्रचार करना चाहते थे ।

२६२ (प्रश्न)—अनेक ईश्वर भक्त हुए हैं। कौन कहता है कि ये सब आलसी थे। आलसी तो आप हैं। जो ईश्वर की स्तुति प्रार्थना से ही पिंड छुड़ा रहे हैं। पृ० २६६ पं० २५।

उत्तर—वैदिक ईश्वर भक्त ऋषि महर्षि जितने हुए हैं वे सब पुरुषार्थी थे क्योंकि वेद पुरुषार्थ की शिक्षा देता है। किंतु जितने भी पौराणिक भक्त हुए हैं वे सभी आलसी थे क्योंकि पुराण आलस्य की शिक्षा देते हैं। और पौराणिकों का परमेश्वर भी अजीब है। धन्ने भक्त के कट्टे बच्छे चराने लगा। तो नरसी की हुंडी ही तारदी, द्रौपदी के चीर बढ़ा दिये इत्यादि

आलस्य की सैंकड़ों मिसालें हैं। आज भी आलसी पौराणिक आलस्य में पड़े कृष्ण की इन्तज़ार में व्याकुल हैं कि—

'बंशी वालिया काहना तेरे आवन दी लोड़।' इस प्रत्यक्ष में और प्रमाण की ज़रूरत ही क्या है। रही स्वामी जी की बात। वे स्तुति प्रार्थना करने का निषेध नहीं करते अपितु केवल स्तुति प्रार्थना के भरोसे पर न रहो साथ में पुरुषार्थ भी करो यह उपदेश करते हैं।

२६३ (प्रश्न)—आपने यह भी अच्छा इनसाफ किया। कि ईश्वर भक्तों के पाप ही क्षय नहीं करता। यदि ऐसा है तो फिर ईश्वर के मानने की क्या आवश्यकता। पृ० २६६ पं० २८।

उत्तर—आपके न मानने से ईश्वर की हस्ती थोड़ा ही मिट सकती है। ईश्वर मोम की नाक नहीं है कि जैसा आप चाहें वैसा ही करे, उस के नियम हैं वह नियम के अनुसार सृष्टि को चला रहा है। उस की ज़रूरत है सृष्टि उत्पत्ति के लिये वेद का ज्ञान प्रकाशित करने के लिये तथा श्रेष्ठों का पालन और दुष्टों को पाप कर्म का फल देने के लिये वह पापों को क्षमा करके अन्याय का भागी नहीं बन सकता स्वामी दयानन्द जी भी यही लिखते हैं कि—

(प्रश्न)—ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं? (उत्तर) नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट होजाय और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह होजाये। जैसे राजा अपराध को क्षमा करदे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक २ बड़े २ पाप करें क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा कर देगा और उनको भी भरोसा होजाय कि

राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डरकर पाप करने में प्रवृत्त हो जावेंगे इसलिये सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है।" क्षमा करना नहीं।

(सत्यार्थ० समु० ७)

अतः सिद्ध हुवा कि पाप मोचन का सिद्धान्त वेद विरुद्ध और मिथ्या है।

२६४ (प्रश्न)—"त्वंहि विश्वतो मुख इत्यादि ऋ० १।७। ५।६" का मंत्र आर्याभिविनय में नं० ३६ पर देकर पाप नष्ट होने की प्रार्थना की है। पृ० २६७ पं० ७।

उत्तर—यहां पर भी किये हुए पाप कर्मों के फल अर्थात् पाप मोचन की प्रार्थना नहीं है अपितु अपनी पाप करने की वृत्तियों को नष्ट करने की प्रार्थना है। वेद मंत्र तथा उसका अर्थ यों है।

त्वंहि विश्वतो मुखः विश्वतः परिभूरसि ।
अपनः शोशुचदघम् ॥ ऋ० १ । ७ । ५ । ६ ॥

भाषार्थ—हे अग्ने परमात्मन् आपही सब जगत में सब ठिकानों में व्याप्त हो। अतएव आप विश्वतो मुख हो। हे सर्वतो मुखाग्ने स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो वही आपका मुख है। कृपालो आपकी इच्छा से हमारा पाप (पाप करने का स्वभाव) सब नष्ट हो जाए। जिससे हम लोग निष्पाप (पाप करने के स्वभाव से रहित) होके आप की भक्ति और आज्ञा पालन में नित्य तत्पर रहें ॥६॥

इसी प्रकार से ही वेद के जितने भी मंत्रों में यह आता है कि "हे ईश्वर ! आप हमारे पापों का नाश कर दें" उसका यही अभिप्राय है कि ईश्वर हमारे पाप करने के स्वभाव को नाश करदे ताकि हम भविष्य में पाप करने की आदत से मुक्त होकर पुण्य कर्म करें। वेदों में किये हुए कर्मों के फल का वा किये हुवे कर्मों का नाश या क्षमा या पाप मोचन का कहीं भी वर्णन नहीं है। अपितु परमात्मा को न्यायकारी रुद्र अर्थात् दुष्टों को दण्ड देकर रुलाने वाला, यम अर्थात् दुष्टों को नियम में रखने वाला मन्यु अर्थात् दुष्टों पर क्रोध करने वाला वर्णन किया गया है। अतः किये हुवे पाप कर्मों का क्षमा करना ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध होने से पाप मोचन की कल्पना सर्वथैव मिथ्या है वैदिक सिद्धान्त यही है कि पाप की वृत्तियों को दूर करने की प्रार्थना तथा तदनुकुल प्रयत्न किया जावे जैसे कि:—

विश्वानि देव सवित दुंरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ यजु० ३०।३ ॥

हे सुख देने वाले देव ! हे जगतोत्पादक प्रभो ! हमारे सम्पूर्ण दुर्गुणों को दूर कीजिये और जो शुभ गुण हैं वे हम को प्राप्त कराइये। इस मन्त्र के द्वारा गोया जीव प्रार्थना करता हुआ प्रतिज्ञा करता है कि मैं आज से अपने जीवन से दुर्गुणों को निकाल कर शुभ गुणों को धारण करने का यत्न करूंगा आप मेरी सहायता करें। ऐसा ही सर्वत्र समझना चाहिये।

नाम स्मरण महत्त्व

२६५ (प्रश्न)—'कस्य नूनमित्यादि ऋ० १।२४।१' इस मन्त्र में परमात्मा के नाम स्मरण का वर्णन है। पृ० २६७ पं०२२।

उत्तर—इस मन्त्र में नाम स्मरण का वर्णन नहीं है। अपितु इस में तथा इससे अगले मन्त्र में मोक्ष से पुनरावृत्ति का वर्णन है। इस मन्त्र में प्रश्न तथा इससे अगले मन्त्र में उत्तर हैं। हम दोनों मन्त्रों का ठीक २ अर्थ लिख देते हैं।

कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम।
को नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरंच ॥१॥
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारुदेवस्यनाम ।
स नो मह्या अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरंच ॥२॥
(ऋग्० १।२४।१-२)

भाषार्थ—हम लोग किसका नाम पवित्र जानें। कौन नाश रहित पदार्थों के मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाश स्वरूप है। हम को मुक्ति का सुख दे कर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता हैं।। १ ॥ हम इस स्वप्रकाश स्वरूप अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हम को मुक्ति में आनन्द दे कर पृथिवी में पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म दे कर माता पिता का दर्शन कराता है। वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है॥ २ ॥ इन दोनों मन्त्रों में परमात्मा के नाम को पवित्र तो वर्णन किया है। किंतु नाम के स्मरण का वर्णन नहीं है। नाम स्मरण का मन्त्र हम नीचे पेश करते हैं।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मन्त ँ शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृत ँ स्मर।

॥ यजु० ४०।१५॥

भावार्थ—हे कर्म करने वाले जीव! तू ओ३म् नाम परमात्मा का स्मरण कर, सामर्थ्य के लिये स्मरण किये हुए कर्म को स्मरण कर, प्राण वायु, अपान वायु तथा परमात्मा को प्राप्त हो। यह शरीर अन्त में भस्म होने वाला है ॥१५॥ इस मंत्र में निम्न आज्ञायें हैं।

(१) ओ३म् नाम परमात्मा का स्मरण कर,
(२) अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये याद कर,
(३) किये हुये कर्म को याद कर,
(४) प्राण अपान को वश करके परमात्मा को प्राप्त कर,
(५) अन्त में शरीर भस्म होने वाला है,

चूंकि शरीर नाश होने वाला है इस लिये परमात्मा को याद रखकर शुभ कर्म कर, प्राणायाम द्वारा परमात्मा को सामर्थ्य बढ़ाने के लिये प्राप्त कर।

इस मंत्र में केवल नाम स्मरण की आज्ञा नहीं अपितु शुभ कर्म करते हुए ओम् नाम के स्मरण द्वारा परमात्मा की प्राप्ति की आज्ञा इस वेद मंत्र में हैं। इसी बात को ऋषि दयानन्द जी ने भी प्रतिपादन किया है कि—"और नाम स्मरण मात्र से कुछ फल नहीं होता। जैसा कि मिश्री २ कहने से मुंह मीठा और नींम २ कहने से कड़वा नहीं होता किन्तु जीभ से चखने हो से मीठा वा कड़वापन जाना जाता है। (प्रश्न) क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या हैं जो सर्वत्र

पुराणों में नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है ? (उत्तर) नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नाम स्मरण करते हो वह रीति झूठी है। (प्रश्न) हमारी कैसी रीति है ? (उत्तर) वेदविरुद्ध। (प्रश्न) भला अब आप हमको वेदोक्त नामस्मरण की रीति बतलाइये ? (उत्तर) नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये। जैसे "न्यायकारी" ईश्वर का एक नाम है इस नाम से इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपातरहित होकर परमात्मा सब का यथावत् न्याय करता है जैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है" (सत्यार्थ ११ मूर्तिपू०)

इस से सिद्ध हुआ कि परमात्मा की आज्ञानुसार शुभ कर्म करना ही परमात्मा का नाम स्मरण है। केवल नाम का रटना शुभ कर्म के बिना व्यर्थ है।

२६६ (प्रश्न)—"ओमित्येतदक्षरमित्यादि छान्दो० १। १" इसमें ओ३म् के जप करने की आज्ञा पाई जाती है। पृ० २६८ पं० ४।

उत्तर—वेद प्रमाण देने की प्रतिज्ञा कर के छान्दोग्य उपनिषत् का प्रमाण देना यह आप की ईमानदारी का नमूना है। क्या छांदोग्य वेद है फिर न मालूम आपने यह प्रमाण किस मतलब से दिया है। क्योंकि इसमें नाम स्मरण की शिक्षा ही नहीं है। भला इस पाठ में से जप करना कौन से पद का अर्थ है। लीजिये हम इसका अर्थ कर देते हैं।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥ छान्दो० १। १॥

भावार्थ—ओम् जिसका नाम है। और जो कभी नष्ट नहीं होता उसकी उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं॥ १॥

इसमें एक परमात्मा की पूजा विधान है। परमात्मा से भिन्न अन्य की पूजा का निषेध है। इस मन्त्र में यह शिक्षा नहीं है कि केवल ओम् नाम स्मरण से ही मोक्ष हो जाती है। आप कोई ऐसा वेद का प्रमाण पेश करें। जिससे यह पौराणिक सिद्धान्त सिद्ध हो सके कि केवल नामोच्चारण से ही मोक्ष हो जाता है। हम ईश्वर स्तुति को मानते हैं किन्तु केवल स्तुति से कोई फल नहीं। जब तक तदनुकूल चरित्र सुधार न हो जैसे—

"(प्रश्न) परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये वा नहीं? (उत्तर) करनी चाहिये (प्रश्न) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा। (उत्तर) नहीं (प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना? (उत्तर) उनके करने का फल अन्य ही है। (प्रश्न) क्या है? (उत्तर) स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुणकर्म स्वभाव से अपने गुणकर्म स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना। (प्रश्न) इन को स्पष्ट करके समझाओ, (उत्तर) जैसे—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरंशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः। यजु०॥ अ० ४०। मं० ८॥

(ईश्वर की स्तुति) वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध सर्वज्ञ, सबका अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयं सिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेद द्वारा कराता है वह सगुण स्तुति अर्थात् जिस २ गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना यह सगुण, (अकाय) अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता जिसमें छिद्र नहीं होता नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता जिसमें क्लेश दुःख अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस २ राग द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है। इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्त्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसकी स्तुति करना व्यर्थ है।

(सत्यार्थ सप्तम समुल्लास)

इसी बात को ही वेद भगवान् वर्णन करते हैं कि केवल कर्म और न केवल उपासना ब्रह्म ज्ञान ही मोक्ष का हेतु हैं अपितु दोनों इकट्ठे होकर मोक्ष का हेतु हैं जैसे—

अंधंतमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यया ᳪ रताः॥ १२॥
विद्यां चा विद्यां च यस्तद्वेदोभय ᳪ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वाविद्ययामृत मश्नुते॥ १४॥

(यजु० ४० । १२-१४)

भावार्थ—वे लोग अंधकार में प्रविष्ट होते हैं जो केवल कर्म की उपासना करते हैं। और वे उस से भी अधिक अंधकार में प्रविष्ट होते हैं। जो केवल उपासना ज्ञान को ही मोक्ष साधन मानते हैं॥ १२ ॥ जो मनुष्य ज्ञान तथा कर्म को साथ ही साथ इकट्ठा करना जानता है वह कर्म से मृत्यु के भय को तर कर ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है॥ १४॥ अतः केवल नाम स्मरण से मोक्ष मानना वेद विरुद्ध होने से मिथ्या है।

२६७ (प्रश्न)—"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म इत्यादि गीता ८।१३" इस में भी ब्रह्म के नाम ओम् स्मरण से मोक्ष मिलने का वर्णन है। पृ० २६८ पं० ७।

उत्तर— कहिये महाराज! अब तो गीता को भी वेद के नाम से पेश किया जाने लगा। क्या यही वैदिक सिद्धान्त का प्रतिपादन है, क्या सचमुच आप गीता को वेद मानते हैं। कुछ होश से काम लो, कहां महाभारत के भीष्म पर्व का एक भाग गीता और कहां वेद। "कहाँ गांगला तेली और कहां राजा भोज" फिर इस श्लोक में यह कहां लिखा है कि केवल नामोच्चारण से ही मुक्ति हो जाती है। इस श्लोक को गीता के दूसरे श्लोक से मिला कर अर्थ करें।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मव्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥
एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्॥ गी० ४।१५॥

ओ३म् इस एकाक्षर ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ मुझे याद करके जो देह को त्याग कर जाता है वह परम गति

को प्राप्त होता है ॥१३॥ इस प्रकार से जान कर पहिले मोक्ष की इच्छा करने वालों ने भी कर्म किया। इसलिये तू कर्म ही कर, जो कि पहिलों ने बहुत पहिले किया है ॥१५॥

इन दोनों श्लोकों को मिला कर यदि आप यह सारांश निकाल सकें कि ईश्वर का नामोच्चारण तभी फलदायक होता है यदि तदनुकूल शुभाचरण भी किया जावे तो ठीक और यदि आप केवल नामोच्चारण से ही मोक्ष इस श्लोक का भाव मानते हैं तो हमें वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण मानना पड़ेगा। हमारे विचार में तो पहिला श्लोक ओम् नाम के स्मरण की आज्ञा देता है। कर्म का निषेध नहीं करता। तथा दूसरा श्लोक कर्म करने की आज्ञा देता है नाम स्मरण का निषेध नहीं करता। दोनों को मिला कर यह अभिप्राय हुआ कि नाम स्मरण तथा कर्म दोनों ही साथ २ मोक्ष का हेतु हैं। दोनों में से एक कोई भी अकेला मोक्ष का हेतु नहीं है। यही वेद का सिद्धान्त है। क्योंकि वेद तो कहता है कि संपूर्ण वेद भी यदि पढ़ा जावे किन्तु ब्रह्म का ज्ञान न हो तो उच्चारण मात्र से वेद का भी कोई फल नहीं। फिर एक अक्षर का तो हो ही क्या सकता है जैसे—

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि—
विश्वे निषेदुः। यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति
यइत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ऋ० १।१६४।३९॥

भावार्थ—ऋग्वेदादि से प्रतिपादित जिस सर्वोत्कृष्ट सर्वव्यापक, विकार रहित, परमेश्वर में सब सूर्य्य चन्द्र भूमि आदि आधेयरूप से स्थित हैं। परब्रह्म उस परमेश्वर को जो

नहींजानता है। वह वेद से क्या करेगा। अर्थात् उसका वेदाध्ययन निष्फल है जो मनुष्य उस प्रभु को जान लेता है। वे ही ब्रह्म में भली प्रकार स्थित होते हैं ॥३६॥

भावार्थ—वेद पढ़ने का लाभ तभी है। कि वेद से ईश्वर जीव प्रकृति तथा जगत् का जो शाब्दिक ज्ञान हुआ है उस ज्ञान को चरितार्थ करने के लिये योग साधन द्वारा उन का साक्षात् करने का प्रयत्न करें ॥३६॥

कहिये महाराज ! ओम् नाम का तो कहना ही क्या है चारों वेद भी आचरण के बिना निष्फल हैं। जैसे—

सावित्री मात्र सारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥११८॥

(मनु० २।११८)

आचार हीनान्न पुनन्ति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः॥ भविष्य० ब्राह्म० अ० ४१ श् ८॥

भावार्थ—जो ब्राह्मण सदाचारी हो वह केवल गायत्री जानता हुआ भी श्रेष्ठ है। और जो दुराचारी सर्व भक्षी सर्व विक्रयी है वह तीन वेदों का जानने वाला भी अच्छा नहीं है ॥११८॥ आचार हीन पुरुषों को वेद भी पवित्र नहीं करते चाहे वे छः अंगों के समेत भी पढ़े हों ॥८॥

इन सारे प्रमाणों से साबित है कि परमात्मा का नाम उच्चारण तथा वेदाध्ययन तभी फल दायक है यदि हमारा तदनुकूल आचरण हो। वरना केवल नाम स्मरण से मनुष्य को कोई लाभ नहीं है। इसी बात को दर्शाते हुए स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि—

(प्रश्न) जो २ तीर्थ वा नाम का माहात्म्य अर्थात् जैसे "अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशिक्षेत्रे विनश्यति" इत्यादि बातें हैं वे सच्ची हैं वा नहीं ? (उत्तर) नहीं क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन, राजपाट, अंधों को आंख मिल जाती, कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता, ऐसा नहीं होता। इस लिये पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता। (प्रश्न)—

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १ ॥
हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम् ॥ २ ॥

प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशिपापं विनश्यति।
आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्तजन्मनाम् ॥ ३ ॥

इत्यादि श्लोक पोप पुराण के जो सैकड़ों सहस्रों कोश दूर से भी गङ्गा २ कहे तो उसके पाप नष्ट होकर वह विष्णुलोक अर्थात् वैकुण्ठ को जाता है ॥ १ ॥ "हरि" इन दो अक्षरों का नामोच्चारण सब पापों को हर लेता है वैसे ही राम, कृष्ण शिव भगवती आदि नामों का माहात्म्य है ॥ २ ॥ और जो मनुष्य प्रातःकाल में शिव अर्थात् लिंग वा उसकी मूर्ति का दर्शन करे तो रात्रि में किया हुआ, मध्याह्न में दर्शन से जन्म भर का, सायंकाल में दर्शन करने से सात जन्मों का पाप जाता है। यह दर्शन का माहात्म्य है ॥ ३ ॥ क्या झूठा हो जाएगा ? (उत्तर) मिथ्या होने में क्या शंका ? क्योंकि गङ्गा २ वा हरे, राम कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नामस्मरण से पाप कभी नहीं छूटता। जो छूटे तो दुःखी कोई न रहे और पाप करने से कोई भी न डरे। जैसे आजकल

पोपलीला में पाप बढ़कर हो रहे हैं। मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर नामस्मरण वा तीर्थयात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जायगी। इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोक का नाश करते हैं। पर किया पाप भोगना ही पड़ता है। (प्रश्न) तो कोई तीर्थ नामस्मरण सत्य है वा नहीं? (उत्तर) है—वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य का मानना, सत्य करना ब्रह्मचर्य, आचार्य्य अतिथि, माता, पिता की सेवा परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता धर्मयुक्त पुरुषार्थ ज्ञान, विज्ञान आदि शुभगुण कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं। और जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि "जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि" मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है। जल स्थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे समुद्र आदि को तरते हैं।

समानतीर्थे वासी ॥ अ० ४। पा० ४। १०८॥

नमस्तीर्थ्याय च ॥ यजु० ॥ अ० १६। [मं० ४२]

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य्य और एक शास्त्र को साथ साथ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समानतीर्थ सेवी होते हैं। जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म लक्षणों में साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ देना और उनसे विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं। नामस्मरण इसको कहते हैं कि—

यस्य नाम महद्यशः ॥ यजु० ॥ [अ० ३२। मं० ३]

परमेश्वर का नाम बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामों का करना है जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव से हैं। जैसे ब्रह्म सब से बड़ा, परमेश्वर ईश्वरों का ईश्वर, ईश्वर सामर्थ्ययुक्त, न्यायकारी, कभी अन्याय नहीं करता, दयालु सब पर कृपादृष्टि रखता, सर्वशक्तिमान् अपने सामर्थ्य ही से सब जगत् का उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता, सहाय किसी का नहीं लेता, ब्रह्मा विविध जगत् के पदार्थों का बनाने हारा, विष्णु सब में व्यापक होकर रक्षा करता, महादेव सब देवों का देव, रुद्र प्रलय करने हारा आदि नामों के अर्थों को अपने में धारण करे, अर्थात् बड़े कामों से बड़ा हो, सामर्थों में समर्थ हो, सामर्थ्यों को बढ़ाता जाय, अधर्म कभी न करे, सब पर दया रक्खे, सब प्रकार के साधनों को समर्थ करे, शिल्पविद्या से नानाप्रकार के पदार्थों को बनावे, सब संसार में अपने आत्मा के तुल्य सुख दुःख समझे, सब की रक्षा करे, विद्वानों में विद्वान् होवे, दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड और सज्जनों की रक्षा करे, इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जान कर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल अपने गुण कर्म स्वभाव करते जाना ही परमेश्वर का नामस्मरण है। (प्रश्न)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है? गुरु के पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करे वैसा करना, गुरु लोभी हो तो वामन के समान; क्रोधी हो तो नरसिंह के सदृश, मोही हो तो राम के

तुल्य और कामी हो तो कृष्ण के समान गुरु को जानना। चाहे गुरु जी कैसा ही पाप करे तो भी अश्रद्धा न करनी, सन्त वा गुरु के दर्शन को जाने में पग २ में अश्वमेध का फल होता है यह बात ठीक है वा नहीं ? (उत्तर) ठीक नहीं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकता। यह गुरुमाहात्म्य गुरुगीता भी एक बड़ी पोपलीला है। गुरु तो माता, पिता, आचार्य और अतिथि होते हैं। उनकी सेवा करनी, उनसे विद्या शिक्षा लेनी देनी शिष्य और गुरु का काम है। परन्तु जो लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अर्घ्य पाद्य अर्थात् ताड़ना, दण्ड, प्राणहरण तक भी करने में कुछ दोष नहीं। जो विद्यादि सद्गुणों में गुरुत्व नहीं है, झूठ मूंठ कण्ठी तिलक वेदविरुद्ध मन्त्रोपदेश करने वाले हैं वे गुरु ही नहीं किन्तु गड़रिये हैं। जैसे गड़रिये अपनी भेड़ बकरियों से दूध आदि से प्रयोजन सिद्ध करते हैं वैसे ही शिष्यों के चेले चेलियों के धन हर के अपना प्रयोजन करते हैं वे—

दोहा—गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेले दांव।
भवसागर में डूबते बैठ पत्थर की नाव॥

गुरु समझें कि चेले चेली कुछ न कुछ देवें हीं गे और चेला समझे कि चलो गुरु झूठे सौगन्द खाने, पाप छुड़ाने आदि लालच से दोनों कपटमुनि भवसागर के दुःख में डूबते हैं जैसे पत्थर की नौका में बैठने वाले समुद्र में डूब मरते हैं। ऐसे गुरु और चेलों के मुख पर धूड़ राख पड़े। उसके पास कोई भी खड़ा न रहे वह दुःख सागर में पड़ेगा। जैसी

पोपलीला पुजारी पुराणियों ने चलाई है वैसी इन गड़रिये गुरुओं ने भी लीला मचाई है। यह सब काम स्वार्थी लोगों का है। जो परमार्थी लोग हैं वे आप दुःख पावें तो भी जगत् का उपकार करना नहीं छोड़ते। और गुरु माहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्हीं लोभी कुकर्मी गुरुओं ने बनाई है॥
(सत्यार्थ० समु० ११)

२६८ (प्रश्न) "यन्मनसान मनुते इत्यादि केन० १।५" इस में भी ब्रह्म की पूजा उपासना नाम स्मरण की आज्ञा है।
पृ० २६८ पं० १२।

उत्तर—आपने इस केनोपनिषत् के पाठ को वेद के नाम से पेश किया है। हालांकि केन वेद नहीं अपितु उपनिषत् है जो कि परतः प्रमाण है। तो भी आपने इस का अर्थ ठीक नहीं किया इस में न तो नाम स्मरण का वर्णन है। और न केवल नाम स्मरण से मोक्ष का ज़िकर है। अपितु इस में मन के ज्ञान से अतीत ब्रह्म की उपासना की शिक्षा हैं तथा प्राकृतिक पदार्थों की उपासना का निषेध है। देखिये इस का अर्थ यह है—

यन्मनसा न मनुते येनाहु र्मनोमतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥२॥
(केन० उ० खं० १ मं० २)

भाषार्थ—जो मन से "इतना है" ऐसा करके मनन में नहीं आता जो मन को जानता है उसी को ब्रह्म तू जान और उसी की उपासना कर जो उस से भिन्न जीव और प्रकृति है उस की उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर ॥२॥

बतलाइये, इस में केवल नाम स्मरण से मुक्ति का कहां विधान है। वेद एक नाम तो क्या संपूर्ण वेद के भी केवल उच्चारण मात्र से मुक्ति नहीं मानता। देखिये—

उतत्वः पश्यन्न ददर्शवाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणो—
त्येनाम्। उतोत्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती
सुवासा। ऋ०८।२।२३।४॥

भावार्थ—कोई वाणी को देखता हुआ भी नहीं देखता (अर्थ न जानने से) और कोई वेद वाणी को सुनता हुआ भी नहीं सुनता (अर्थ न जानने के कारण) और किसी के लिये वाणी ऐसे अपनी आत्मा को प्रकाशित कर देती है जैसे ऋतु स्नाता पत्नी अपने पति के लिये॥ ४।

इस से साफ साबित है कि नामोच्चारण वा वेद पठन अर्थ समझे विना तथा तदनुकूल आचरण किये बिना व्यर्थ ही हैं।

फलं कतक वृक्षस्य यद्यप्यम्बु प्रसादकम्।
न नाम ग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति॥
(मनु० ६। ६७।)

भावार्थ—यद्यपि निर्बसी का फल पानी को साफ करने वाला है परन्तु उस के नाम मात्र से पानी साफ नहीं हो जाता॥ ६७॥

इसी प्रकार से परमात्मा मोक्ष दाता है किंतु परमात्मा के नाम स्मरण मात्र से मोक्ष नहीं मिलता अपि तु तदनुकूल आचरण करने से मोक्ष मिलता है। इसी बात को स्वामी दयानन्द जी ने भी वर्णन किया है कि—

थोड़े दिन हुए कि एक 'राम स्नेही' मत शाहपुरा से चला है। उन्होंने सब वेदोक्त धर्मको छोड़के 'राम २' पुकारना अच्छा माना है। उसी में ज्ञान, ध्यान, मुक्ति मानते हैं। परन्तु जब भूख लगती है तब 'राम नाम' में से रोटी शाक नहीं निकलता क्योंकि खान पान आदि तो गृहस्थियों के घर में ही मिलते हैं। वे भी मूर्त्तिपूजा को धिक्कारते हैं परंतु आप स्वयं मूर्ति बन रहे हैं। स्त्रियों के सङ्ग में बहुत रहते हैं क्योंकि राम जी को 'राम की' के बिना आनंद ही नहीं मिल सकता। अब थोड़ा सा विशेष राम स्नेही के मत के विषय में लिखते हैं—

एक राम चरण नामक साधु हुआ है जिस का मत मुख्य कर 'शाह पुरा' स्थान मेवाड़ से चला है। वे 'राम २' पुकारने ही को परम मंत्र और इसी को सिद्धांत मानते हैं। उन का एक ग्रन्थ कि जिस में संतदास जी आदि की वाणी है ऐसा लिखते हैं—

उन का वचन

भरम रोग तब ही मिटया,
रटया निरञ्जन राई।
तब जम का कागज फटया,
कटया कर्म तब जाई॥
साखी॥ ६॥

अब बुद्धि मान् लोग विचार लें कि 'राम २' कहने से भ्रम जो कि अज्ञान है वा यमराज का पापानुकूल शासन अथवा किये हुए कर्म कभी छूट सकते हैं वा नहीं?

यह केवल मनुष्यों को पापों में फंसाना और मनुष्य जन्म को नष्ट कर देना है। अब इन का जो मुख्य गुरु हुआ है 'राम चरण' उस के वचन—

महमा नांव प्रताप की, सुणौ सरवण चित लाइ।
राम चरण रसना रटी, क्रम सकल झड़ जाइ॥
जिन जिन सुमर्यां नांव कूं, सो सब उतरया पार।
राम चरण जो वीसर्यां, सो ही जम के द्वार
राम बिना सब झूठ बतायो॥
राम भजत छूटया सब क्रम्मा।
चंद अरु सूर देइ परकम्मा॥
राम कहे तिन कूं भै नाहीं।
तीन लोक में कीरती गाहीं॥
राम रटत जग जोर न लागै।
राम नाम लिख पथर तराई।
भगति हेति औतार ही धरही॥
ऊंच नीच कुल भेद विचारे।
सो तो जनम आपणो हारै॥
संतां के कुल दीसै नाहीं।
राम राम कह राम सम्हाहीं॥
ऐसो कुण जो कीरति गावै।
हरि हरि जन को पार न पावै॥
राम सन्तां का अन्त न आवै।
आप आप की बुद्धि सम गावै॥

इन का खण्डन

प्रथम तो राम चरण आदि के ग्रन्थ देखने से विदित होता है कि यह ग्रामीण एक सादा सीधा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था, नहीं तो ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता ? यह केवल इन को भ्रम है कि राम २ कहने से कर्म छूट जायें केवल ये अपना और दूसरों का जन्म खोते हैं। जम का भय तो बड़ा भारी है परन्तु राज सिपाही, चोर, डाकू, व्याघ्र, सर्प, बिच्छू और मच्छर आदि का भय कभी नहीं छूटता। चाहे रात दिन राम २ किया करें कुछ भी नहीं होगा। जैसे 'शक्कर २' कहने से मुख मीठा नहीं होता वैसे सत्य भाषणादि कर्म किये बिना राम २ करने से कुछ भी नहीं होगा और यदि राम २ करना इन का राम नहीं सुनता तो जन्म भर कहने से भी नहीं सुनेगा और जो सुनता है तो दूसरी बार भी राम २ कहना व्यर्थ है। इन लोगों ने अपना पेट भरने और दूसरों का भी जन्म नष्ट करने के लिये एक पाखण्ड खड़ा किया है सो यह बड़ा आश्चर्य हम सुनते और देखते हैं कि नाम तो धरा राम स्नेही और करते हैं रांड स्नेही का। जहां देखो वहां रांड ही रांड सन्तों को घेर रही हैं यदि ऐसे २ पाखण्ड न चलते तो आर्यावर्त्त देश की दुर्दशा क्यों होती। ये लोग अपने चेलों को जूठ खिलाते हैं और स्त्रियां भी लम्बी पड़ कर दण्डवत् प्रणाम करती हैं। एकांत में भी स्त्रियों और साधुओं की लीला होती रहती है।'

(सत्यार्थ प्रकाश ११)

२६६ (प्रश्न)—ऊपर के मन्त्रों में जो नाममहत्व वेद, गीता ने बतलाया था वह स्वामी जी ने ज़रा सी हुज्जत में उड़ा दिया। पृ० २६८ पं० २० ।

उत्तर—गीता में भी मन्त्र हैं, यह आप से ही पता लगा। वेद का आप ने एक मन्त्र लिया है वह भी मोक्ष से पुनरावृत्ति का है, नाम स्मरण के महत्व का नहीं है। शेष जो वेद बाह्य प्रमाण आप ने लिये हैं, उन में भी केवल नाम स्मरण से मुक्ति कोई भी नहीं मानता। और यह ठीक भी है कि परमेश्वर को जानना तथा तदनुकूल आचरण करना ही मोक्ष का हेतु है। केवल नाम स्मरण आदि और कोई साधन मोक्ष के नहीं हैं।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्य वर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वा अति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय ॥

यजु० ३१।१८।

भाषार्थ—जो अन्धकार से परे प्रकाश स्वरूप और महान् पुरुष परमात्मा है, उस को मैं जानता हूं। उस को जानने से ही मृत्यु के पार हो सकता है। मृत्यु दूर करने का दूसरा कोई मार्ग नहीं है ॥१८॥

कैसा साफ मन्त्र है कि परमात्मा को जाने बिना कोई दूसरा मार्ग मोक्ष का नहीं है। अतः केवल नाम स्मरण से मोक्ष नहीं हो सकती। अपितु तदनुकूल कर्म कर के ब्रह्म को जानने से मोक्ष हो सकता है।

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेद फल मश्नुते।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्ण फलभाग भवेत् ॥ मनु० १।१०९॥

भाषार्थ—आचरण से गिरा हुआ ब्राह्मण वेद के फल को

नहीं भोग सकता, आचरण से ही सम्पूर्ण फल को भोग सकता है ॥१०६॥ अतः स्वामी जी ने जो कुछ लिखा है, वह वेद तथा धर्म्म शास्त्र के आधार पर लिखा है। वेद-विरुद्ध हुज्जत बाज़ी करना आप लोगों का काम है, स्वामी जी का नहीं है।

२७० (प्रश्न)—रक्षा करने से ओ३म् कहलाता है। तो यह जो ओ३म् ईश्वर का नाम है, यह स्मरण करने से रक्षा करता है। या इस निराकार ओ३म् की पीतल की शक्ल बना कर सिर में टांगने से रक्षा करता है। यद्वा अपने आप स्वभाविक धर्म्म से रक्षा करता है। यहां पर स्मरण से ही रक्षा क्यों न मानें। पृ० २६६ पं० ५।

उत्तर—परमात्मा का नाम रक्षा करने से ओ३म्, न्याय करने से न्यायकारी, दुष्टों को दण्ड दे कर रुलाने से रुद्र, सब को नियम में रखने से यम, तथा पापियों पर क्रोध करने से मन्यु है। परमात्मा नामोच्चारण मात्र से न तो रक्षा करता है और न दण्ड देता है। और न ही टोपी पर पीतल का ओम् लगाना रक्षा या मुक्ति का हेतु है। जो मनुष्य परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल धर्म्माचरण करते हैं परमात्मा उन की रक्षा करता है। और जो मनुष्य परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध अधर्म्माचरण करते हैं, परमात्मा उनको दण्ड देते हैं। परमात्मा बिना आचरण के केवल नाम स्मरण मात्र से न रक्षा करते हैं, न दण्ड देते हैं। अतः केवल नाम स्मरण मात्र से रक्षा मानना ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध होने से सर्वथा निर्मूल है।

२७१ (प्रश्न)—"प्रणवो धनु इत्यादि मुण्डक० २।४"

यहां पर ओम् का धनुष और आत्मा का वाण छील छाल कर बढ़ई नहीं बनाता किंतु अंत:करण में यह घटना होती है। जब ओ३म् का धनुष बनाया जावेगा तब अंत:करण में ओ३म् का स्मरण होगा। बिना स्मरण किये ओ३म् का न धनुष बन सकता है। और न जीव ब्रह्म बन सकता है। पृ० २६६ पं० ११।

उत्तर—यहां पर आत्मा के ब्रह्म बन जाने का वर्णन नहीं अपितु ब्रह्म में मस्त मग्न होने का वर्णन है। मंत्र का अर्थ इस प्रकार से है—

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवन्तन्मयो भवेत् ॥ ४ ॥
(मुंडक० २। २। ४)

भाषार्थ—ओंकार धनुष है। निश्चय करके जीवात्मा वाण है। और उसका लक्ष्य परमात्मा कथन किया गया है। प्रमाद रहित चित्त से उसका वेधन करे वाण के सदृश तन्मय होजाय ॥४॥ इसमें जीव के ब्रह्म होने का वर्णन नहीं अपितु ब्रह्म में मग्न होने का वर्णन है। इस मंत्र में यह कहां वर्णन है कि नाम स्मरण मात्र से ही मुक्ति हो जाती है। जब तक आत्मा को यम नियम विद्या तप आदि कर्म्मों के द्वारा ओंकार रूप धनुष पर चढ़ने के क़ाबिल न बना लिया जावे तब तक वह वाण रूप कैसे बन सकता है। जैसे बढ़ई काष्ठ के वाण को छील कर बनाता है वैसे ही आत्मा को भी शुभ कर्मों द्वारा वाण बनाने के योग्य बनाना पड़ता है। क्या बिना संस्कार किये प्रत्येक आत्मा वाण बनाने के योग्य हो सकता है। अंत:करण

में ओ३म् का स्मरण हो हमें क्या आपत्ति हम ओ३म् स्मरण के विरुद्ध थोड़ा ही हैं। हमारा तो यह पक्ष है कि केवल ओ३म् स्मरण से कल्याण नहीं होसकता जब तक कि तदनुकूल आचरण न किया जावे। अतः मुण्डक का उपरोक्त प्रमाण हमारी ताईद करता है। क्योंकि प्रणव रूपी धनुष में तब तक आत्मा नहीं रखा जा सकता जब तक उसे विद्या तप से शुद्ध करके शुभ कर्मों द्वारा वाण बनाने के योग्य न बना लिया जावे। अतः केवल नाम स्मरण पुरुषार्थ धर्माचरण के विना व्यर्थ ही है।

२७२—(प्रनश) 'स पूर्वया निविदा इत्यादि ऋ० १।७।३।२" आर्य्या भिविनय मं० ४२ ॥ उसी विज्ञानादि धन देने वाले को विद्वान् लोग अग्नि मानते हैं। हम लोग उसी को भजें॥ पृ० २६६ पं० २१।

उत्तर—इस मंत्र में यह कौनसे पदों से सिद्ध होता है कि नाम स्मरण मात्र से मोक्ष हो जाता है। मंत्र का अर्थ इस प्रकार से है—

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्य देवा अग्निं धारयन्द्रविनो दाम।
॥ ऋ० १।७।३।२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो आदि सनातन सत्यता आदि गुण युक्त अग्नि ही परमात्मा था अन्य कोई नहीं था। तब सृष्टि के आदि में स्व प्रकाश स्वरूप एक ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति की ईक्षणता (विचार) करता भया सर्वज्ञतादि सामर्थ्य से ही सत्य विद्या युक्त वेदों की तथा मननशील मनुष्यों की

तथा अन्य पशु वृक्षादि की प्रजा को उत्पन्न किया। परस्पर मनुष्य और पशु आदि के व्यवहार चलने के लिए, परन्तु मननशील वाले मनुष्यों को अवश्य स्तुति करने योग्य वही है। सूर्य्य आदि तेजस्वी सब पदार्थों का प्रकाशने वाला बल से स्वर्ग (सुख विशेष) सब लोक अन्तरिक्ष में पृथिवी आदि मध्यम लोक और निकृष्ट दुःख विशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोक उसी ने रचे हैं। जो ऐसा सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर देव है, उसी विज्ञान आदि धन देने वाले को ही विद्वान् लोग अग्नि जानते हैं। हम लोग उसी को ही भजें ॥२॥

यहां भजें के अर्थ हैं कि "हम लोग उस की ही उपासना करें" इस मन्त्र के अर्थ से यह सिद्ध नहीं होता कि केवल नाम स्मरण मात्र से ही मोक्ष प्राप्ति हो जाती है।

२७३ (प्रश्न)—इन्द्रियों से अग्राह्य निराकार के नाम का स्मरण ही भजन है। तो भी आप नाम स्मरण का खण्डन करते हैं। मिश्री कहने से मुंह मीठा नहीं होता, तो क्या नीम्बू कहने से भी मुंह में पानी नहीं आता ? यदि ऐसा ही है तो आप के दयालु, न्यायकारी आदि ईश्वर के नाम लेने क्यों लिखे ?

पृ० २७० पं० ५।

उत्तर—आप बड़ी ही गलत फहमी में हैं। हम परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना उपासना के विरुद्ध नहीं हैं। स्तुति और नाम स्मरण एक ही वस्तु है। किन्तु हम यह मानते हैं कि केवल स्तुति से या नाम स्मरण से कल्याण नहीं हो सकता। अपितु ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव के सुधारने से कल्याण हो सकता है। इसी का नाम स्मरण या

स्तुति हो सकता है। बेशक जैसे मिश्री २ कहने से मुंह मीठा नहीं होता, वैसे ही नीम्बू २ कहने से भी मुंह खट्टा नहीं हो सकता। वरना अचार डालने की ज़रूरत ही न रहे। रोटी खाते समय नीम्बू २ कह लिया करें। नीम्बू के स्मरण से भी उसी के मुंह में पानी आता है, जो यत्न कर के एक बार नीम्बू प्राप्त कर के उस का स्वाद ले चुका है। जिस ने कभी नीम्बू न खाया हो उस को नीम्बू स्मरण करने से तो क्या, देखने से भी मुंह में पानी न आवेगा। ऐसे ही जब तक यम-नियमादि शुभ कर्मों द्वारा योगाभ्यास कर के जब तक परमात्मा का अनुभव न कर लें तब तक केवल नाम स्मरण मात्र से कभी भी ब्रह्मानन्द या मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। स्वामी जी ने जो दयालु, न्यायकारी आदि नामों से ईश्वर की स्तुति करना लिखा है। उस का प्रयोजन यही है कि हम भी अपने जीवन में न्याय को धारण कर के तथा निर्बलों, निरपराधों पर दया कर के अपने जीवन में सुधार करें। बस यह सिद्ध हो गया कि केवल नाम स्मरण मात्र से मोक्ष नहीं होता, अपितु तदनुकूल आचरण करने से मोक्ष होता है। अतः केवल नाम स्मरण से पाप क्षय का सिद्धान्त वेद विरुद्ध, निर्मूल, पापजनक तथा सर्वथा असत्य है।

२७४ (प्रश्न)---वेद ने स्वर्ग आदि लोगों को इस मृत्यु लोक से भिन्न माना है। पृ० २८५ पं० १६।

उत्तर—सब से पहिले हमने इस बात पर विचार करना है कि "स्वर्ग लोक" के अर्थ क्या हैं। यह शब्द तीन शब्दों से मिलकर बना हुआ है। 'स्व' 'ग' तथा 'लोक' सब से पहिले देखें कि 'स्वः' के क्या अर्थ हैं॥ स्वः॥ [स्वः। पृश्नि। नाकः। गौः। विष्टप्। नभः] ये छः नामद्यौ के हैं (निरुक्त अ०

२ खं० १३) अब देखना है कि द्यौ: के क्या अर्थ हैं [अथ द्यौः कमिति सुख नाम] द्यौ नाम सुख का है (निरुक्त अं० २ ख० १४) इससे साबित हुआ कि उपरोक्त छः नाम सुख के हैं। इन छः में स्वः भी है। अतः स्वः के अर्थ सुख के हुए।

॥ ग ॥ "स्वर्ग" में जो 'ग' है वह (गम्लृ गतौ) गम अर्थात् गति अर्थ वाली धातु का है। गति के (ज्ञान, गमन, प्राप्ति) तीन अर्थ हैं। अतः (स्वर्गम्यते प्राप्यतेऽस्मिन्निति स्वर्गः) जिस में सुख की प्राप्ति हो उसका नाम स्वर्ग है।

॥ लोक ॥ विवाह के समय कन्या कहती है कि—

ओं प्रमे पतियानः पन्थाः कल्पतां शिवा अरिष्टा पति लोकं गमेयम् ॥ मं० ब्रा० १। १। ८॥

(गोभि० २। १।१६—२२)

भाषार्थ—मेरे जाने के रास्ते कल्याणकारी हों। मैं पतिलोक को प्राप्त होती हैं। यहां लोक के अर्थ पृथिवी से भिन्न लोक नहीं अपितु गृहस्थी अवस्था ही पति लोक है। अतः लोक के अर्थ अवस्था हुवे। विवाह में वर कहता है कि—

कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं यतीयम् ॥ मं० ब्रा० १। २। ९॥

(गोभि० २। २। ६)

भाषार्थ—कन्या पितृलोक से पति से पतिलोक को प्राप्त होती है। इस से साफ साबित हैं कि लोक नाम अवस्था का है।

त्रयो लोका एत एव। वागेवायं लोको मनोऽन्तरिक्ष लोकः प्राणोऽसौलोकः ॥ शत० १४। ४। ३। ११ ॥

अथ त्रयो वाव लोकाः। मनुष्यलोकः पितृ लोकाः देवलोक इति, सोऽयं मनुष्य लोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा, कर्मणा

पितृलोका विद्यया देवलोकः ॥ शत० ४ । ३ । २४॥

स्वरिति दिवम् ॥ ११ ॥
स्वरिति विशम् ॥ १२ ॥ } (शत० २।१।४।११ से १३)
स्वरिति पशून् ॥ १३ ॥

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात् पतिं यतीः ॥ अथर्व० १४ । २ । ५२ ॥

भाषार्थ—तीन लोक यही हैं। वाणी ही यह लोक है। मन ही अंतरिक्ष लोक है। प्राण ही वह लोक है ॥ ११ ॥ ये तीन लोक हैं। पितृलोक, देव लोक, मनुष्य लोक, वह यह मनुष्य लोक पुत्र से ही जीता जाता है। और कर्म से नहीं। कर्म से पितृ लोक, विद्या से देव लोक जीता जाता है॥ २४॥ स्वः नाम द्यौ का है॥ ११ ॥ स्वः नाम वैश्य का है॥ १२॥ स्वः नाम पशुओं का है॥ १३ ॥ ये पितृलोक से पति लोक को प्राप्त होने वाली कन्या प्राप्त है ॥ ५२ ॥

सारांश

स्वः— सुख, द्यौ, वैश्य, पशु
ग—जिस में स्वः प्राप्त हो

लोक—अवस्था, मन, वाणी, प्राणपिता का स्थान, पति का स्थान, मनुष्य अवस्था, पितृ अवस्था, देव अवस्था इत्यादि जिस अवस्था तथा जिस स्थान में मनुष्य को सुख तथा सुख के विशेष सामान पशु वैश्य संबंधि पदार्थ आदि मिलें उसका नाम स्वर्ग है। चाहे वह इसी पृथिवी पर मिलें चाहे अन्य सूर्य्य चांद सितारों में मिलें। सारांश यह कि स्वर्ग नाम का कोई पृथक् स्थान नहीं है। जहां सुख और सुख की विशेष

सामग्री मिले उसी का नाम स्वर्ग है। यही बात स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि—

स्वर्ग—नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

(सत्यार्थ० मन्तव्य० ४२)

वाक् शौचं कर्म शौचं च यंच शौचं जलात्मकम् ।
त्रिभिः शौचैरुपेतो यः स स्वर्गो नात्र संशयः ॥८०॥

(महा० वन० १६९ । ८०)

भाषार्थ—वाणी की पवित्रता, कर्मों की पवित्रता, जलात्मक पवित्रता, जो स्थान वा अवस्था इन तीन पवित्रताओं से युक्त हो। वही स्वर्ग है। इसमें संशय नहीं है ॥८०॥

संसार में ऐसी अवस्था वा ऐसा स्थान विशेष कर कौन सा है।

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वं जन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्वाश्रमाः ॥७७॥
यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेनचान्वहम्
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥७८॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षय मिच्छता ।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥७९॥

(यजु० ३ । ७७ सं ७९)

भाषार्थ—जैसे वायु का आश्रय ले कर सारे प्राणी वर्तमान होते हैं, वैसे ही सारे आश्रम गृहस्थ का आश्रय ले कर वर्तमान होते हैं ॥७७॥ जिस कारण से तीनों भी आश्रम ज्ञान तथा अन्न से प्रति दिन गृहस्थ से ही धारण किये जाते हैं।

इसलिये बड़ा आश्रम गृहस्थ ही है ॥७८॥ इसलिये अक्षय मोक्ष और इस संसार में स्वर्ग की इच्छा करने वाले को वह गृहस्थ धारण करना चाहिये, परन्तु वह निर्बल इन्द्रिय वालों से धारण करने के योग्य नहीं है ॥७६॥

इस से सिद्ध हुआ कि संसार में स्वर्ग प्राप्ति चाहे और अवस्थाओं तथा स्थानों में भी हो, किंतु संसार में गृहस्थ स्वर्ग सुख का भण्डार है। अतः विशेष कर स्वर्ग गृहस्थ का नाम है। इस में वेद प्रमाण—

यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
अश्रोणा अंगैरहुताः स्वर्गे तत्र पश्येम पितरौ च पुत्रान् ॥

अथर्व० ६।१२०।३।

भाषार्थ—जहां उत्तम हृदय तथा परस्पर मित्रता रखने वाले, श्रेष्ठ कर्मों वाले अपने शरीर के रोगों से आरोग्य लाभ कर के आनन्द पाते हैं, उस स्वर्ग लोक में हम माता-पिता दोनों का तथा पुत्रों का दर्शन करें ॥३॥

इस मन्त्र में माता, पिता, पुत्रों, मित्रों के दर्शन से गृहस्थ को ही स्वर्ग कहा गया है।

अतः सिद्ध हुआ कि इस पृथिवी से भिन्न किसी विशेष स्थान का नाम स्वर्ग नहीं है। अपितु जिस अवस्था में और जिस स्थान में सुख और सुख की सामग्री लाभ हो उस का नाम और विशेष कर गृहस्थ आश्रम का नाम स्वर्ग है।

२७५ (प्रश्न)—"अनस्था पूता इत्यादि अथर्व० ४।३४।२" तथा "घृत ह्रदा मधुकूलाः इत्यादि अथर्व० ४।३४।६" इन दो मन्त्रों में बहुत स्त्रियां, घी के तालाब आदि तथा दही

दूध की नहरें मिलनी लिखी हैं। अतः पता लगा कि स्वर्ग पृथिवी से भिन्न लोक का नाम है ॥ पृ० २८५ पं० २१।

उत्तर—श्रीमान् जी! स्वर्ग कोई इस पृथिवी से भिन्न स्थान विशेष का नाम नहीं है। अपितु गृहस्थ आश्रम का नाम ही स्वर्ग है। क्योंकि पशुओं तथा व्यापार सम्बन्धी तमाम वस्तुओं की मौजूदगी के कारण दूध, दही, शहद आदि की नहरें और तालाब गृहस्थ में ही मनुष्य को प्राप्त हो सकते हैं। अतः इन मन्त्रों में भी गृहस्थाश्रम का वर्णन है। जैसे—

अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः
शुचयः शुचिमपयन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः
स्वर्गे लोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥२॥

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमानाः ॥६॥

अथर्व० ४।३४।२-६।

भावार्थ—जिन की हड्डियां नज़र नहीं आतीं, अर्थात् मोटे ताज़े हैं। बाहर से पवित्र तथा व्यायाम, प्राणायाम आदि द्वारा, अन्दर से भी पवन द्वारा शुद्ध हुए २ उज्ज्वल ब्रह्मचारी लोग इस पवित्र गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होते हैं। अर्थात् उक्त प्रकार के जितेन्द्रिय पवित्र ब्रह्मचारी ही गृहस्थ में प्रवेश करने के योग्य होते हैं।

यद्यपि इस स्वर्ग लोक गृहस्थ में इन का बहुत सी अपनी माता, बहिन, चाची, ताई गृहस्थों की पड़ौसियों की पत्नियों, युवा लड़कियों आदि स्त्रियों के साथ रहने-सहने आदि का सम्बन्ध होता है। तथापि इन के उपस्थेन्द्रिय को कामाग्नि प्रदीप्त नहीं कर सकती ॥२॥ इस गृहस्थाश्रम में गौ आदि पशु तथा वैश्य के व्यापार सम्बन्धी सब वस्तुयें होने के कारण घी के तालाब, शहद की नहरें, अर्क, दूध, दही और पानी की भरी धारें तुझे आनन्द पूर्वक प्राप्त हों। तेरे चारों तरफ मिठास बरसाती हों, कमलों से भरी झीलें हों ॥६॥ गुरुकुल से गृहस्थ की विशेषता स्त्रियों की नज़दीकी ही तो है। ब्रह्मचारी पहले इस संपर्क से अलहिदा था, अब वह पढ़ कर, सीख कर और योग की क्रियाओं से पवित्र हो कर गृहस्थों के संसार में आया है। यह दुनिया है स्वर्ग, किंतु उसी सूरत में यदि मनुष्य काम-वासनाओं से ऊपर रहे, अपनी पत्नी के बिना सम्पूर्ण स्त्रियों को माता और बहिन की दृष्टि से देखे। फिर उसे खाने-पीने के लिये इतने दूध, घी, दही, मधु मीठे जल मिलेंगे कि उन की अधिकता को नहरों, तालाबों, झीलों से उपमा दी जा सकेगी। और तुझ को इस स्वर्ग लोक गृहस्थ में अनन्त सुख मिलेगा। यह अभिप्राय है।

२७६ (प्रश्न)—"स्वर्गे लोके न भयम् इत्यादि कठ० १।१२" यहां पर वर्णन है कि स्वर्ग में मनुष्य को भय, बुढ़ापा, भूक, प्यास नहीं सताती। पृ० २८६ पं० ६।

उत्तर—बिलकुल ठीक है इस में सन्देह ही क्या है। जोगृहस्थ धन, धान्य, गौ आदि पशु ज्ञान, शस्त्राशस्त्र आदि पदार्थों से परिपूर्ण और निश्चिन्त होगा उस में भूख, प्यास, बुढ़ापा, भय के सताने का क्या काम ? जैसे कि—

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति। उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ कठ० १ । १२ ॥

भावार्थ—धन धान्य गौ आदि पशु तथा शस्त्रास्त्र की मौजूदगी के कारण स्वर्ग लोक अर्थात् गृहाश्रम में कुछ भी भय नहीं है। न वहां पर मौत का डर है। क्योंकि ज्ञानी तथा शूरवीर लोग मौत से डरते ही नहीं। और न वहां बुढ़ापे का भय है। क्योंकि चिन्ता से ही बुढ़ापा आता है। वहां पर भूक और प्यास दोनों पर विजय पाकर शोक से पार हुआ पुरुष स्वर्ग लोक गृहस्थ में हर्ष को लाभ करता है ॥१२॥

२७७ (प्रश्न) "सहस्राश्वी इत्यादि ऐतरेय ब्रा० २ । १७ में लिखा है कि बड़े मज़बूत पवन के समान वेग रखने वाले एक हज़ार घोड़े एक दिन में जितने मार्ग को चल सकते हैं उतनी दूर यहां से स्वर्ग है। पृ० २८६ पं० १७।

उत्तर—आपने इस पाठ के अर्थ गलत किये हैं। और यद्यपि यह वेद का प्रमाण नहीं है। तथापि इस के अर्थ इस प्रकार से हैं कि यहाँ पर चक्रवर्ती राज्य का प्रकरण है। ब्राह्मण ग्रन्थों ने चक्रवर्ती राज्य को भी स्वर्ग माना हैं। यहां पर उसकी

अवधि बतलाई गई है कि—

सहस्राश्वीनेवा इतः स्वर्गोलोकः ॥ ऐतरेय ब्रा० २ । १७

भावार्थ—एक हज़ार घोड़े एक दिन में यहां से जितना दौड़ सकता है उतने वर्ग मील के साम्राज्य का नाम स्वर्ग लोक हैं ॥१७॥ इसमें प्रमाण निम्न प्रकार से है कि—

साम्राज्यं वै स्वर्गो लोकः ॥ तांड्य ब्रा० ४ । ६ । २४ ॥

चक्रवर्ती साम्राज्य का नामस्वर्ग लोक है । इस लिये हमारा अर्थ प्रकरणानुसार ठीक है । क्योंकि आप के दिये हुये पाठ में ऐसा कोई शब्द नहीं है । जिससे यह अर्थ निकले कि यहां से ऊपर को इतनी दूर स्वर्गलोक है । जिस साम्राज्य में न्यायकारी राजा राज करता हो वह स्वर्गलोक है और वह तमाम संसार से ऊपर की भांति है । अर्थात् श्रेष्ठ है । और साधारण स्थिति से पृथक् की भाँति है अर्थात् विशेषता रखता है । इसी लिये ब्राह्मण ग्रन्थों में आता है कि—

उपरीव स्वर्गो लोकः ॥ तैतरीय० ३ । २ । १ । ५ ॥

स्वर्गलोक ऊपर की भांति है । अर्थात् ऊपर को नहीं है अपितु ऊपर की भांति श्रेष्ठ है ।

पराङिववैस्वर्गो लोकः ॥ शत० १३ । १ । ३ । ३ ॥

स्वर्गलोक जुदा की भांति है । अर्थात् जुदा नहीं है किंतु आम संसार से विशेष गुणवान् होने के कारण जुदा सा है अतः सिद्ध हुआ कि स्वर्ग ऊपर को नहीं है अपितु इसी पृथिवी पर साम्राज्य का नाम स्वर्ग है जिसका परिमाण इस उपरोक्त पाठ में बताया है ।

२७८ (प्रश्न)—स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि सुख का नाम स्वर्ग और दुःख का नाम नरक है। अब पाठक विचार लें कि आर्य्य समाज मत वैदिक है या वेद विरुद्ध है पृ० २८८ पं० २१।

उत्तर—हम पूर्ण रूप से प्रमाणों के साथ यह साबित कर चुके हैं कि सुख और सुख की विशेष सामग्री जहां हो उसका नाम स्वर्ग है। और वह पृथिवी से भिन्न कोई विशेष स्थान नहीं है। और प्रमाण देखिये—

स्वर्गो वै लोकोनाकः ॥ शत०६।३।३।१४॥
प्रतितिष्ठा शरीरः स्वर्गं याहि पथिभिर्देवयानैः ॥
(अथर्व० २।३४।५)

अर्थ—हे मनुष्य तू विद्वानों के मार्ग पर चलता हुआ सुख को प्राप्त हो और अपने शरीरों से प्रतिष्ठित हो। इन दोनों प्रमाणों से साबित है कि इसी पृथिवी पर सुख विशेष का नाम स्वर्ग है।

भला आप भी किस मुंह से कहते हैं स्वर्ग ऊपर कोई विशेष स्थान है। जब आपके हां पृथिवी पर ही स्वर्ग लिखा है। तभी तो अर्जुन ने पांच वर्ष स्वर्ग में शस्त्र विद्या की शिक्षा पाई। जैसे—

गृहीतास्त्रस्तुकौन्तेयो भ्रातॄन् सस्मार पाण्डवः।
पुरन्दर नियोगाच्च पंचाब्दानवसत् सुखी ॥५॥
(महा० वन अ० ४४)

भाषार्थ—अर्जुन ने शस्त्रों को ग्रहण करके अपने भाइयों को याद किया। इन्द्र की आज्ञा से पांच वर्ष सुख पूर्वक स्वर्ग में निवास किया ॥५॥

तथा युधिष्ठिर इसी शरीर से स्वर्ग में गया। जैसे—

अनेन त्वं शरीरेण स्वर्गं गन्ता न संशयः।

(महा० महाप्रस्थानिक० अ० ३ श्लो० ६)

अर्थ—तू इसी शरीर से स्वर्ग में चला जायेगा इस में संशय नहीं है ।।६।।

फिर गंगा का स्वर्ग से शिव के सिर पर गिरना जैसे-

पतमानां सरिच्छ्रेष्ठां धारयिष्ये त्रिविष्टपात्।

एतच्छ्रुत्वा वचो राजा शर्वेण समुदाहृतम् ।।५।।

(महा० वन० अ० १०६)

भाषार्थ—स्वर्ग से गिरती हुई गंगा को मैं सिर पर धारण करूंगा, राजा ने शिव के मुख से यह बात सुन कर ।५। गंगा से कहा और वह शिव के सिर पर गिरी।

इस के अतिरिक्त अप्सरायें भी ऋषियों से सन्तान पैदा करती रही हैं।

परिणाम—अर्जुन का स्वर्ग में शस्त्र विद्या सीख कर आना। युधिष्ठिरादि का स्वर्गार्थ पर्वत पर चढ़ना तथा सशरीर स्वर्ग में जाना गंगा का स्वर्ग से शिव के सिर पर गिरना। स्वर्ग के निवासी स्त्री पुरुषों का ऋषि तथा ऋषि पत्नियों से समागम करके सन्तान पैदा करना इत्यादि घटनाओं से साबित है कि पौराणिक स्वर्ग भी पृथिवी पर ही है। और उस का नाम त्रिविष्टप है। और वह तिब्बत ही है। जैसेकि तीर्थों का वर्णन करते हुए प्रत्येक मनुष्य के लिये त्रिविष्टप तीर्थ की भी यात्रा करना लिखा है। वह तीर्थ आस्मान पर नहीं हो सकता अपितु पृथिवी पर ही हो सकता है। जैसे—

ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
तत्र वैतरणी पुण्या नदी पाप प्रणाशिनी ॥८३॥
तत्र स्नात्वार्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम् ।
सर्व पाप विशुद्धात्मा गच्छेत परमां गतिम् ॥८४॥

(महा० वन० अ० ८३)

भावार्थ—इसके पीछे तीनों लोकों में प्रसिद्ध त्रिविष्टप (स्वर्ग) तीर्थ में जावे। वहां पर पापों के नाश करने वाली वैतरणी नाम की नदी है ॥८३॥ वहां पर स्नान करके और शिव की पूजा करके सब पापों से शुद्ध आत्मा होकर परम-गति को प्राप्त करे ॥८४॥

इससे सिद्ध हुआ कि पौराणिक स्वर्ग इसी पृथिवी पर है जिस का नाम त्रिविष्टप तिब्बत है। वहां के राजा का नाम इन्द्र पुरुषों का नाम देवता स्त्रियों का नाम अप्सरा है। और उनका भारत वर्ष के ऋषियों के साथ आना, जाना, खाना, पीना, लड़ना, व्यभिचार करना कराना, सन्तान, पैदा करना कराना आदि प्रत्येक प्रकार का व्यवहार रहा है।

शूद्र को वेद का अधिकार

२७६ (प्रश्न)—वेद ने जिन वर्णों को यज्ञ करने का अधिकार दिया है। उन्हीं को वेद पढ़ने का भी अधिकार दिया है। पृ० २६७ पं० २०।

उत्तर—आपने कोई ऐसा वेद मंत्र पेश नहीं किया। जिस से यह साबित हो कि वेद ने शूद्रों को यज्ञ का अधिकार नहीं दिया। ताकि सिद्ध हो सके कि शूद्रों को वेद का

अधिकार भी नहीं है। लीजिये हम आप को वेद से बतलाते हैं कि जैसे परमात्मा ने वेद का अधिकार मनुष्यमात्र को दिया है वैसे ही यज्ञ का अधिकार भी मनुष्य मात्र को दिया है। जैसे—

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभिदेवा असाम।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पंचजना मम होत्रं जुषध्वम्॥
(ऋ० १०। ५३। ४)

'पंच जना मम होत्रं जुषध्वं' गंधर्वाः पितरो देवा आसुरा रक्षांसी त्येके॥ चत्वारो वर्णा निषादः पंचम इत्यौपमन्यवः॥ निषादः कस्मान्निषदनो भवति निषण्णमस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः॥ "यत् पांच जन्यया विशा" पंच जनीनया विशा॥ पंच पृक्ता संख्या स्त्रीपुंनपुंसकेष्व विशिष्टा॥ १॥ निरु० अ० ३ खं० ८॥

भावार्थ—वह वीर्य वाणी का अत्युत्तम मैं समझता हूं। जिस से हम असुरों का अपमान करें। हे देवो! आप अन्न भक्षण करते हुए यज्ञ संपादन करते हुए और हे मनुष्यो निषाद को मिला कर पांचों वर्ण तुम मेरे अग्नि होत्र को सेवन करो॥४॥ "पांच जन मेरे अग्नि होत्र को सेवन करो" गन्धर्व, पितर, देव, असुर, राक्षस, ये पांच कई मानते हैं। चारों वर्ण पांचवां निषाद ऐसा उपमन्यु के मत वाले मानते हैं। जो प्राणियों का वध करे वह निषाद। अथवा जिस में पाप स्थित हो वह निषाद है। पांच जन समुदाय ऋत्विजों के साथ हो। पांच संख्या विशिष्ट अर्थात् पांच स्त्रियां, पांच पुरुष, पांच नपुंसक, सारांश यह कि पांच कोई हों कोई खसूसियत नहीं है (निरुक्त)।

कहिये श्रीमान् जी अब तो आप को शूद्रादि के वेद पढ़ाने में शंका न होगी। जहां वेद मनुष्य मात्र को वेद तथा यज्ञ का अधिकार मानते हैं। वहां पुराण भी वेदों की ताईद करते हैं जैसे—

मिश्रदेशोद्भवा म्लेच्छा काश्यपेनैव शासिताः।
संस्कृताः शूद्र वर्णेन ब्रह्मवर्णमुपागताः॥ ७२॥
शिखा सूत्र समाधाय पठित्वा वेदमुत्तमम्।
यज्ञैश्च पूजयामासुः देव देवं शचीपतिम्॥ ७३॥

(भविष्य० प्रतिसर्ग० ख० अ० २०)

भापार्थ—मिश्र देश के पैदा हुए मलेच्छों पर कण्व ने शासन किया, उनका शूद्र वर्ण से संस्कार आरम्भ किया, वे ब्राह्मण वर्ण तक को प्राप्त हो गये॥७२॥ सिर पर चोटी रक्खी, गले में जनेऊ पहिना और उत्तम वेद को पढ़ कर यज्ञों से इन्द्राणी के पति इन्द्र की उन्हों ने पूजा की॥ ७३॥ अब तो आप के घर से ही म्लेच्छों तक का यज्ञाधिकार वेद पठन तथा यज्ञोपवीत साबित हो गया। अब आप को वेद तथा ऋषि दयानन्द जी के लेख पर क्या शंका हो सकती है।

२८० (प्रश्न)—"स्तुतामयावरदा इत्यादि अथर्व०१९। ७१।१" इस मन्त्र में गायत्री द्वारा द्विजों का ही पवित्र होना लिखा है। मन्त्र में यह स्पष्ट है कि गायत्री द्विजों को ही पवित्र करती है। द्विजेतर शूद्र यदि रात दिन गायत्री जपें वह तब भी शूद्रों को पवित्र नहीं करती॥ पृ० २६७ पं० २२।

उत्तर—द्विज उसको कहते हैं जो चार, तीन, दो या कम से कम एक वेद को अर्थ सहित जानता हो और तदनुकूल

आचरण भी करे। जो मनुष्य प्रयत्न करने पर एक वेद भी नहीं पढ़ सका। या पाठ मात्र ही पढ़ा हो अर्थ न जानता हो या अर्थ जानता हुआ भी तदनुकूल आचरण न करे। वह द्विज कहलाने का अधिकारी नहीं है। अपितु वही शूद्र है। जैसा कि निरुक्त में लिखा है कि—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न
विजानातियोऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते
नाकमेति ज्ञान विधूतपाप्मा॥ निरुक्त १।१८॥

भाषार्थ—जो वेद को स्वर और पाठ मात्र पढ़ के अर्थ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थात् भार का उठाने वाला है। और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है। वही संपूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़ पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है।

सारांश यह है कि न पढ़ने वाले तथा पढ़कर भी अर्थ न जानने वाले तथा अर्थ जानकर भी तदनुकूल आचरण न करने वाले को वेद या वेद का कोई मन्त्र कुछ भी लाभ नहीं पहुंचा सकता। अपितु ऐसा मनुष्य शूद्र ही रह जाता है। जो वेदार्थ को जान कर तदनुकूल आचरण करता है वही द्विज है। और वही वेद या उसके मन्त्र से लाभ उठा सकता है। इसी बात को उपरोक्त मन्त्र कहता है जैसे—

स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्ता पापमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं

ब्रह्मवर्चसं मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्म लोकम् ॥

(अथर्व० १६ । ७१ । १)

भाषार्थ—मन को उत्साह से प्रेरणा करने वाली, द्विजों को पवित्र करने वाली, श्रेष्ठ ज्ञान देने वाली, वेद माता की मैंने स्तुति की है। मैंने अध्ययनाचरण किया है। वह वेद, माता, आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, ज्ञान, तेज; मुझे देकर मुक्ति प्राप्त करावे ॥ १ ॥

यदि इस से आपका यह अभिप्राय हो कि जो द्विजों के घर पैदा हुवे हैं वही वेद पढ़ सकते हैं अन्य नहीं तो आप का यह सिद्धान्त स्वयं वेद के विरुद्ध है। क्योंकि ईश्वर कहता है कि—

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः ।

ब्रह्मराजन्याभ्याꣳशूद्रायचार्याय च

स्वायचारणाय ॥ यजु० २६ । २ ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो मैं ईश्वर जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने स्त्री सेवकादि और उत्तम लक्षण युक्त प्राप्त हुवे अन्त्यज के लिये भी इन उक्त सब मनुष्यों के लिये इस संसार में इस प्रकट की हुई सुख देने वाली चारों वेद रूप वाणी का उपदेश करता हूं। वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें ॥ २ ॥

इस से साबित है कि वेद पढ़ने का मनुष्य मात्र को हक़ है कोई अपने हक़ को इस्तेमाल करे या न करे इस बारे में प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र है। जो वेद को अर्थ सहित पढ़ कर तदनुकूल आचरण करेगा वह द्विज बन जावेगा । जो नहीं

करेगा वह शूद्र रह जावेगा। यही वेद का सिद्धान्त है। आप के पुराण भी यही कहते हैं कि—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या; शूद्रा ये शुचयोऽमलाः।
तेषां मंत्रा प्रदेया वै न तु संकीर्णधर्मिणाम् ॥ ६२॥
(भविष्य० उत्तर० अ० १३)

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियो याति विप्रत्वं विद्या द्वैश्यं तथैव च ॥ ४७॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४०)

भावार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा पवित्र शूद्र उन को वेद मन्त्र पढ़ाने चाहिये। धर्म से भ्रष्ट लोगों को नहीं॥ ६२॥ वेद पढ़ने आदि से शूद्र ब्राह्मण बन जाता है और वेद आदि त्याग से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। ऐसे ही क्षत्रिय और वैश्य भी शूद्र और ब्राह्मणादि बन सकते हैं।

आप ने जो वेद माता का अर्थ गायत्री किया है यद्यपि वह ठीक नहीं है। क्योंकि वेद माता का अर्थ है वेद रूप माता तथापि आप का यह कहना कि गायत्री शूद्रों को पवित्र नहीं करती यह बात आप के पुराणों के ही विरुद्ध है। यथा—

ते सर्वे तपसा देवीं तुष्टुवुश्च सरस्वतीम्।
पंच वर्षान्तरे देवी प्रादुर्भूता सरस्वती॥
सपत्नीकांश्च तान् म्लेच्छाञ्छूद्र वर्णाय चाकरोत्॥ १६॥
द्वि सहस्रास्तदा तेषां मध्ये वैश्या बभूविरे ॥ १७॥
तेषां चकार राजानं राजपुत्र पुरं ददौ ॥ १८॥
(भविष्य० प्रति सर्ग० खं० ४ अ० २१)

भावार्थ—उन सब ने सरस्वती देवी की स्तुति की। तप किया पांच वर्ष के पीछे सरस्वती देवी प्रकट हुई। उन की पत्नियों समेत म्लेच्छों को शूद्र बना दिया ॥ १६ ॥ उन के अन्दर से दो हज़ार वैश्य बन गये ॥ १७ ॥ बाकियों को राजा बना दिया और राजपुत्र नगर उन को दे दिया ॥ १६ ॥

इन प्रमाणों से साबित है कि आप का लेख वेद तथा पुराणों के भी सर्वथा विरुद्ध होने से निर्मूल है।

२८१ (प्रश्न)—'अधीयीरन् इत्यादि मनु० १०।१।' इस में आता है कि पढ़ने वाले तीन वर्ण हों और पढ़ाने वाला ब्राह्मण ही हो। पृ० २६८ पं० १०।

उत्तर—हम पहिले यह साबित कर चुके हैं कि अर्थ सहित वेद को पढ़ जान कर तदनुकूल कर्म करता है वह द्विज है। जो ऐसा करता है वह शूद्र है। यहां पर प्रारम्भिक शिक्षा का वर्णन नहीं है। अपि तु गृहस्थाश्रम में रहते हुए वर्णों की वृत्ति अर्थात् पेशे का वर्णन है। तभी तो 'स्व कर्मस्था' यह पद आया है। तथा इस से अगला श्लोक मिला कर यह साफ हो जाता है कि ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य अपना स्वाध्याय तो जारी रक्खें उस का कभी भी परित्याग न करें किंतु पढ़ाने का काम ब्राह्मण ही करे। वैश्य और क्षत्रिय अपने २ वर्णानुकूल काम में स्थिर रहते हुए स्वाध्याय अवश्य करते रहें। जैसे लिखा है कि—

अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः स्वकर्मस्था द्विजातयः।
प्रब्रूयाद्ब्राह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः ॥ १ ॥

सर्वेषां ब्राह्मणो विद्याद्वृत्त्युपायान्यथा विधि।
प्रब्रूयादितरेभ्यश्च स्वयं चैव तथा भवेत्॥ २॥
(मनु० १०।१—२)

भाषार्थ—तीनों वर्ण अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने २ वर्णानुसार कर्मों में क़ायम रहते हुए स्वाध्याय तो करें किंतु पढ़ाने का काम ब्राह्मण ही करे। वैश्य, क्षत्रिय पढ़ाने का काम न करें। यह निश्चित व्यवस्था है॥ १॥ सब की वृत्ति के उपाय ब्राह्मण को विधिपूर्वक जानने चाहिये। और दूसरों को बताते हुए स्वयं भी वैसा होना चाहिये॥ २॥ जो मनुष्य द्विज बनने के नाक़ाबिल साबित होकर शूद्र वर्ण में व्यवस्थित हो चुका है। बेशक उस को पढ़ने और पढ़ाने का अधिकार नहीं है। क्योंकि वह पढ़ने पढ़ाने की योग्यता ही नहीं रखता। यदि उसमें पढ़ने पढ़ाने की योग्यता होती तो वह शूद्र ही क्यों बनाया जाता। यह इन श्लोकों का अभिप्राय है।

यदि इस श्लोक से आप का यह अभिप्राय हो कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के घरमें पैदा हुए बालक हैं। उनमें से शूद्र के बालकों को पढ़ने का हक़ ही नहीं है। और वैश्य तथा क्षत्रिय के बालक भी पढ़ने का ही हक़ रखते हैं। पढ़ाने का नहीं। अर्थात् चारों वर्णों में जो बालक जिस वर्ण में पैदा हों वे उसी २ वर्ण में रहेंगे। तरक़्क़ी या तनज़्ज़ुल नहीं हो सकता तो यह बात प्रथम तो वेद के ही विरुद्ध है। क्योंकि वेद मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने तथा तरक़्क़ी करने का हक़ देता है। दूसरे आप का यह विचार मनु के स्वयं भी विरुद्ध है। क्योंकि मनु जी जन्म के पश्चात् तरक़्क़ी और तनज़्ज़ुल के सिद्धान्त को तसलीम करते हैं। जैसे कि—

तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥
शनकैस्तु क्रिया लोपादिमाः क्षत्रिय जातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जात मेवंतु विद्याद्वैश्यात्तथैवच ॥ ६५ ॥

(मनु० अ० १०)

भावार्थ—कोई तप के प्रभाव से विश्वामित्र की भांति कोई बीज के प्रभाव से ऋष्यशृंग की भांति सब मनुष्य प्रत्येक युग में इस संसार में जन्म की अपेक्षा तरक़्क़ी और तनज़्ज़ुल को प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ शनैः शनैः कर्मों के भ्रष्ट हो जाने से और ब्राह्मणों उपदेशकों के दर्शन न होने से ये क्षत्रियों की जातियां शूद्र वर्ण को प्राप्त हो गई ॥ ४३ ॥ शूद्र वेद के पढ़ने तथातदनुकूल कर्म करने से ब्राह्मण बन जाता है। तथा ब्राह्मण वेद के विरुद्ध कर्म करने से शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार से ही क्षत्रिय तथा वैश्य भी ब्राह्मण और शूद्र बन जाते हैं ॥ ६५ ॥

इस से साबित है कि प्रत्येक मनुष्य को वेद पढ़ने का हक़ है और तदनुकूल कर्म करने से प्रत्येक को उन्नति करने का अधिकार वेद तथा मनुस्मृति के अनुकूल है।

२८२ (प्रश्न)—"नशूद्रे पातकमित्यादि मनु १०।१२६" तथा "धर्मेप्सव इत्यादि मनु १०।१२७" मनु ने इस प्रकरण में स्पष्ट लिख दिया कि शूद्र वेद मंत्र का उच्चारण न करे। केवल प्रमाण करता हुआ मंत्र वर्जित पंचयज्ञों को पूर्ण करे। २९८ पं० १६।

उत्तर—हम बता चुके हैं कि जो वेद अर्थ सहित पढ़ कर तदनुकूल कर्म करता है, वह द्विज है। और जो ऐसा नहीं करता वह शूद्र है। जब शूद्र वेद के न जानने के कारण ही उसे बनाया गया है। तो फिर वह वेद मंत्र उच्चारण करेगा ही कैसे। और यदि वह क़ाबलियत न रखते हुए वेद का उच्चारण करेगा तो वह उच्चारण अशुद्ध वा अर्थ रहित होगा। जिस से कोई लाभ न होगा। हां यदि वह शूद्र रहते हुए धर्म में श्रद्धा रखता है तो वह पांचों महायज्ञ मंत्रों का, उच्चारण न करते हुए भी कर सकता है। उस के लिये धर्मानुष्ठान की मनाही नहीं है। इस बात को मनु जी ने इस प्रकार से वर्णन किया है।

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्नच संस्कारमर्हति।
नास्याधिकारोऽस्ति धर्म्मे न धर्म्मात्प्रतिषेधनम् ॥१२६॥
धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः।
मंत्रवर्ज्यं नदुष्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवंतिच ॥१२७॥

(मनु० अ० १०)

भाषार्थ—शूद्र में कोई पाप कर्म, मांस भक्षण, सुरापान असत्य भाषण, चोरी, व्यभिचारादि नहीं होना चाहिये। वेद के पढ़ने तथा तदनुकूल आचरण करने की योग्यता न रखने के कारण वह यज्ञोपवीत आदि वैदिक संस्कारों का हक़दार नहीं। इसका ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य के धर्म्मों में प्रवृत्त होने का अधिकार नहीं तथा साधारण धर्म्म में प्रवृत्ति रखने का इस को निषेध भी नहीं है॥ १२६॥ धर्म्म की इच्छा रखने वाले साधारण धर्म को जानने

वाले और सत्पुरुषों के आचरण का अनुकरण करने वाले शूद्र यदि मंत्रों का उच्चारण न करते हुए नित्य कर्मों को करें तो कोई दोष नहीं है । और प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥ १२७ ॥

इन श्लोकों से यह साफ साबित है कि जो लोग वेद के पढ़ने तथा तदनुकूल आचरण करने की योग्यता न रखने के कारण शूद्र रह गये हैं। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के कर्मों में हस्ताक्षेप न करें क्योंकि वे इन कामों की योग्यता नहीं रखते, हां उन को साधारण धर्म्म का पालन करना चाहिये और कोई पापाचरण न करना चाहिये । क्योंकि पापाचरण करने से वे शूद्र भी न रह सकेंगे अपितु आचार हीनता के कारण राक्षसों में उन का शुमार हो जावेगा । इन श्लोकों का यही अभिप्राय है ।

यदि आप के विचार में इन श्लोकों का यह अभिप्राय है कि जिनका शूद्र के घर जन्म हो गया । वह वेदाध्ययन करके तरक्की कर ही नहीं सकते। और जिनका जन्म ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के घर हो गया वे किसी हालत में भी शूद्र नहीं बन सकते। अर्थात् वेद का पढ़ना आदि जन्मानुसार वर्ण व्यवस्था पर ही हैं। कर्मानुसार वर्ण तबदील नहीं हो सकता तो यह बात स्वयं वेद के विरुद्ध तथा मनुस्मृति के भी बर-खिलाफ हैं। देखिये मनु जी क्या कहते हैं—

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रयात् ॥९२॥

इतरेषां तु पण्यानां विक्रियादिह कामतः।
ब्राह्मणः सप्त रात्रेण वैश्य भावं नियच्छति ॥९३॥
(मनु० १०)

यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपोहि दुरति क्रमम् ॥ २३८॥
(मनु० ११)

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥१६८॥
आचार्य्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या सा जरामरा ॥ १४८ ॥
(मनु० २)

भावार्थ—मांस बेचने से ब्राह्मण तत्काल पतित हो जाता है। लाख और नमक के बेचने से भी तत्काल पतित हो जाता है। ब्राह्मण दूध के बेचने से तीन दिन में शूद्र हो जाता है ॥९२॥ अपनी इच्छा से दूसरी वस्तुओं का व्यापार करते हुए ब्राह्मण सात रात्रि में वैश्य वर्ण को प्राप्त हो जाता है ॥९३॥ जो कठिनता से तरने के योग्य अर्थात् संसार रूप समुद्र जो कठिनता से प्राप्त होने योग्य इसी शरीर से शूद्र का ब्राह्मणादि बनना। जो दुख से जाने योग्य देश देशान्तर तथा जो दुःख से करने योग्य योगाभ्यासादि कर्म हैं। वे सब तप से सिद्ध हो जाते हैं। तप का अतिक्रमण कोई भी नहीं कर सकता ॥२३८॥ जो द्विज वेद न पढ़ के अन्यत्र प्रयत्न करता है। वह जीता हुआ इसी जन्म में शीघ्र ही परिवार सहित शूद्र वर्ण को प्राप्त हो जाता है ॥१६८॥ वेदों का पारग आचार्य्य वेद के अनुसार गायत्री से इस की जिस जाति को

कर्मानुसार नियत कर देता है। वही सत्य है वही अजर है वही अमर है ॥१४८॥

इस से साफ साबित हो गया कि मनु जी महाराज मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार मानते हैं। जो वेद को अर्थ सहित पढ़ कर तदनुकूल कर्म करता है वह द्विज बन सकता है। और जो ऐसा नहीं करता वह शूद्र रह जाता है। उसका जन्म चाहे किसी के घर का भी क्यों न हो वेद पढ़ने तथा तरक्की करने का हर एक को हक़ हासिल है। कोई अपने हक़ को इस्तेमाल करके तरक्की करे या न करे इसमें प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र है। ऐसा ही मनु जी का अभिप्राय है। अतः आपकी यह प्रतिज्ञा कि जन्म के शूद्र को वेद पढ़ने का हक़ नहीं है। वह वेद तथा स्मृति के भी विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या और निर्मूल है।

२८३ (प्रश्न)—'संस्कार परामर्शादित्यादि शारी० अ० १ पा० ३ सू० ३६" बताता है कि संस्कार का अभाव होने और अभिलाप से शूद्र वेद विद्या पढ़ने का अधिकारी नहीं है। पृ० २९६ पं० ७।

उत्तर—श्रीमान् जी वेदान्त का यह सूत्र तो हमारी ही ताईद करता है आप की नहीं। भला बतलाइये तो सही इस सूत्र में यह कहां लिखा है कि "जिसका जन्म शूद्र के घर का हो उस को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं।" और इस सूत्र में यह भी नहीं है कि 'शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है' अपितु सूत्र यह कहता है कि 'निकृष्ट संस्कारों के कारण जिस में सामर्थ्य वेद पढ़ने की न हो' उस को वेद

पढ़ने का अधिकार नहीं है। चाहे उसका जन्म किसी के घर का भी क्यों न हो। जिस में वेद पढ़ने की क़ाबलियत नहीं है वही शूद्र है और उस को ही वेद पढ़ने के अधिकार का निषेध वर्ण किया गया है। जैसे कि—

संस्कारपरामर्शात्तदभावाभिलापाच्च ॥ ३५ ॥

भाषार्थ—(च) और (संस्कारपरामर्शात्) संस्कारों के नतीजे के तौर से (तदभावाभिलापात्) सामर्थ्य का अभाव पाये जाने से अधिकार का निषेध है ॥ ३५ ॥ कहियेगा इस में शूद्र को वेद पढ़ने का कहां निषेध है। और अभिलाप के अर्थों को क्यों हड़प कर गये। जिस का अर्थ सामर्थ्य है।

इस से सिद्ध हुआ कि निकृष्ट संस्कारों के कारण जिस में वेद पढ़ने की सामर्थ्य नहीं है उसी का नाम शूद्र है और उसे ही नाक़ाबिल होने के कारण वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। चाहे उस का जन्म ब्राह्मणादि किसी के घर का हो यही इस सूत्र का अभिप्राय है।

यदि आप इस सूत्र का यह अभिप्राय निकालते हैं। कि जिस का जन्म शूद्र के घर का हो। और जातकर्मादि वैदिक संस्कार न होने के कारण उस को वेद वा यज्ञ का अधिकार नहीं तो—

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया।
तां ऊन्वस्य सवनस्य पीतय आवो वाजा ऋभवो वेदयामसि॥
ऋ० ४।३६।२॥

(निरुक्त अ० ३ खं० ८ पर दुर्गाचार्य्य)

भाषार्थ—हे निपुण कारीगरो! जो आप लोग शुद्ध

चित्त हो कर मन के पूर्ण ध्यान से सुन्दर गोल सीधा रथ बनाते हैं उन आप लोगों को इस यज्ञ का भाग लेने के लिये हम आमन्त्रित करते हैं ॥ २ ॥

दुर्गाचार्य रथकार को निषाद मानता है। और उस को यज्ञाधिकार में यह प्रमाण देता है। तथा पुराणों में कितने ही शूद्र और अन्त्यज बिना संस्कारों के ब्राह्मण बन गये। जैसे कि—

विद्वत्सदसि योऽप्याह संस्काराद् ब्राह्मणो भवेत्।
न्यायज्ञैः स निराकार्यो वाक्यै र्न्यायानुसारिभिः ॥७॥
संस्कृतोऽपि दुराचारो नरकं याति मानवः।
निःसंस्कारः सदाचारो भवेद्विप्रोत्तमः सदा ॥१६॥
आचारमनुतिष्ठन्तो व्यासादिमुनिसत्तमाः।
गर्भाधानादि संस्कारकलापरहिताः स्फुटम् ॥२०॥
विप्रोत्तमाः श्रियं प्राप्ताः सर्वलोकनमस्कृताः।
बहवः कथ्यमाना ये कतिचित्तन्निबोधत ॥२१॥
जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः।
शुक्याः शुकः कणादाख्यास्तथोलूक्याः सुतोऽभवत् ॥२२॥
मृगीजोऽथर्ष्यशृंगोऽपि वसिष्ठो गणिकात्मजः।
मन्दपालो मुनिश्रेष्ठो नाविकापत्यमुच्यते ॥ २३ ॥
मांडव्यो मुनिराजस्तु मंडूकी गर्भ संभवः।
बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्वमद्विजाः ॥ २४ ॥
(भविष्य० ब्र० अ० ४२)

भाषार्थ—विद्वानों की सभा में जो भी कहे संस्कार ब्राह्मण होता है। न्याय के जानने वालों को न्यायानुसार वचनों से उनका खंडन करना चाहिये ॥ ७ ॥ संस्कार हुवा

दुराचारी मनुष्य नरक में जाता है। बिना संस्कारों के भी सदाचारी सदा उत्तम ब्राह्मण होता है ॥ १६ ॥ व्यासादि श्रेष्ठ मुनि गर्भाधान आदि संस्कार कलाप से रहित भी आचार का अनुष्ठान करते हुवे स्पष्टब्राह्मण बने ॥ २० ॥ और शोभा को प्राप्त हुवे और सारे संस्कार में पूज्य बने। बहुत से कहे जा सकते हैं। कुछ के नाम सुनो ॥ २१ ॥ व्यास मल्लाहनी के पैदा हुवे पराशर चांडाली के पैदा हुवे। शुक देव शुकी के पैदा हुवे। कणादमुनि उलूकी के पैदा हुवे ॥ २२ ॥ ऋषि ऋश्रृंग मृगी के पैदा हुवे। वसिष्ठ कंजरी के पैदा हुवे। मन्द॰ पाल श्रेष्ठ मुनि नाविका के पैदा हुवे ॥ २३ ॥ मुनिराज मांडव्य मेंडकी के पैदा हुवे। और भी बहुत सारे हैं जो पहिले की भांति ब्राह्मण बन गये ॥ २४ ॥

कहिये महाराज ये सारे शूद्र चांडाल अन्त्यज कंजरादि के घर पैदा होकर क्या बिना वेद पढ़े ही ब्राह्मण बन गये। क्या इन को वेद का अधिकार न था। यदि था तो स्पष्ट स्वीकार करो कि मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने तथा तदनुकूल आचरण करने से ब्राह्मण तक भी बनने का अधिकार है।

२८४ (प्रश्न)—"श्रवणाध्ययनार्थ॰ इत्यादि शा॰ अ॰ १ पा॰ ३ सू॰ ३८' स्मृति से शूद्र का वेद श्रवण और अध्ययन का निषेध है। पृ॰ २६६ पं॰ १०।

उत्तर—हम सिद्धकर चुके हैं कि जो मनुष्य प्रयत्न करते हुवे भी वेद नहीं पढ़ सकता। उसी का नाम शूद्र है। उसी को वेद सुनाने तथा पढ़ाने का स्मृतियों ने निषेध किया है। क्योंकि उस को वेद सुनाना तथा पढ़ाना व्यर्थ है। इसी बात को उक्त सूत्र वर्णन कर रहा है।

श्रवणाध्ययनार्थं प्रतिषेधात्स्मृतेश्च ॥ ३७ ॥

भावार्थ—(च) और (स्मृतेः) स्मृति से भी (श्रवणाध्ययनार्थं प्रतिषेधात) श्रवण तथा अध्ययन का प्रतिषेध पाया जाता है ॥ ३७ ॥

इस सूत्र का वही अभिप्राय है जो हमने ऊपर वर्णन किया है। कोई आदमी किसी के घर भी पैदा हुवा हो यदि वह अर्थ सहित वेद को पढ़के तदनुकूल आचरण नहीं करता तो वह शूद्र है। उसी को योग्यता का अभाव होने से वेद का सुनाना और पढ़ाना मना है। इसके यह माने नहीं हैं कि जो मनुष्य शूद्र के घर पैदा हो कर भी पढ़ने की योग्यता रखता हो उस को भी पढ़ने का अधिकार नहीं है।

यदि आप ऐसा मानेंगे तो—

यत्पाञ्च जन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद्बर्हणा विप्रोऽर्यो मानस्य सक्षयः ॥

(ऋ० ६ । ४ । ४३ । १)
(निरुक्त अ० ३ खं० ८ में दुर्गाचार्य)

भावार्थ—जब पञ्चनद समुदाय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद के साथ ऋत्विग लोग वर्षा न होने पर वर्षा के लिये इन्द्र की स्तुति करते हैं। तब उन स्तुतियों को सुन कर प्रसन्न चित्त हुआ इन्द्र वर्षा के लिये मेघों को अपने बढ़े हुए वज्र से ताड़न करता हुआ सारे जगत का ईश्वर बल का निवास वर्षा का विस्तार करता है। यहां पर दुर्गाचार्य निषाद तथा शूद्रों को यज्ञ तथा वेद का अधिकार स्वीकार करते हैं।

इस के अतिरिक्त पुराण तो शूद्र को यज्ञोपवीत का अधिकार भी स्वीकार करते हैं जैसे—

कुशसूत्रं द्विजानांस्याद्राज्ञां कौशेय पट्टकम् ।
वैश्यानां चीरणं क्षौमं शूद्राणां शण वल्कजम् ॥ ९ ॥
कार्पासं पद्मजंचैव सर्वेषां शस्तमीश्वर ।
ब्राह्मण्याकर्तितंसूत्रं त्रिगुणं त्रिगुणीकृतम् ॥ ११ ॥
(गरु० आ० का० अ० ४३)

भाषार्थ—कुश का यज्ञोपवीत ब्राह्मणों का, क्षत्रियों का रेशम का, वैश्यों का सूत का और शूद्रों का सन का होना चाहिये ॥ ९ ॥ हे राजन् ! अथवा सब के लिये ही सूत का है। जो ब्राह्मणी के हाथ का कता हुआ तीन वार तिहरा किया हो ॥ ११ ॥ यज्ञोपवीत के अधिकार देने यज्ञ तथा वेद का अधिकार देना स्वयं स्पष्ट है ।

महाभारत में तो एक ब्राह्मण ने व्याध से ब्रह्म विद्या का उपदेश लिया ऐसा आता है। देखिये—

ब्राह्मण उवाच—ब्रवीषि सुनृतं धर्म्मं यस्यवक्ता नविद्यते ।
दिव्य प्रभावः सुमहानृषिरेवमतोऽखिमे ।१३॥
व्याध उवाच—यत्तेषांच प्रियं तत्ते वक्ष्यामि द्विजसत्तम ।
नमस्कृत्वाब्राह्मणेभ्यो ब्राह्मीं विद्यांनिबोधमे ॥१५॥
(महा० बन० अ० २०९)

भाषार्थ—ब्राह्मण बोला कि तू अत्यन्त सत्य धर्मानुकूल बोलता है। जिस का बोलने वाला कोई नहीं। तुम्हारा बड़ा दिव्य प्रभाव है। मैं तुम को ऋषि मानता हूं ॥ १३ ॥

व्याध बोला—जो उन ब्राह्मणों को तथा तुम को प्रिय है वह मैं हे ब्राह्मण ! कहता हूं। ब्राह्मणों को नमस्कार करके

मेरे से ब्रह्म विद्या का उपदेश सुनो ॥ १५ ॥

कहिये महाराज ! यदि व्याध को वेद पढ़ने का अधिकार न था तो उस ने ब्राह्मण को ब्रह्म विद्या का उपदेश कसे किया। तथा आप के पुराण भविष्य वाणी बोलते हैं कि—

शूद्रा धर्म्मं प्रवक्ष्यन्ति ब्राह्मणाः पर्य्युपासकाः ॥ ६४ ॥
(महा० वन० अ० १९०)

भाषार्थ—कलियुग में शूद्र धर्म का उपदेश करेंगे और ब्राह्मण उन के उपासक होंगे ॥ ६४ ॥ कहियेगा शूद्र वेद पढ़े बिना ब्राह्मणों को कैसे उपदेश करेंगे। और जब पुराण कहते हैं। कि कलियुग में शूद्र धर्म्म का उपदेश करेंगे तथा ब्राह्मण उन के उपासक होंगे। फिर अब आप का शूद्रों को वेद का अधिकार न देना पुराणों से बग़ावत नहीं है तो और क्या है।

२८५ (प्रश्न)—कोई भी न्याय शील धार्मिक विवेकी यह नहीं कह सकता कि शूद्र को वेद पढ़ाना वेदाज्ञा है। और इसे पढ़ने से शूद्र का कल्याण होगा। पृ० २६६ पं० १४

उत्तर—प्रत्येक न्याय शील मनुष्य इस बात को तसलीम करेगा कि परमात्मा के ज्ञान वेद का मनुष्य मात्र को अधिकार है। जो मनुष्य अपने अधिकार को काम में लाकर अर्थ सहित वेद को पढ़कर तदनुकूल आचरण करता है वह द्विज बन जाता है। जो वेद के पढ़ने में यत्न नहीं करता या यत्न करने के बावजूद नहीं पढ़ सकता वह शूद्र रह जाता है। चाहे उस का जन्म किसी के घर का भी क्यों न हो। आपके अभिप्राय के अनुसार भी जिस का जन्म शूद्र के घर का हो उस को वेद पढ़ने का वाक़ई अधिकार है यदि

उस को अधिकार न होता तो पूर्व वर्णित व्यास आदि शूद्र से ब्राह्मण कैसे बन जाते। यदि शूद्र उन्नति कर के ब्राह्मण बन जावे तो क्या उस का कल्याण नहीं है, अवश्य है। अतः वेद पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को है यही ईश्वर तथा वेद की आज्ञा है।

२८६ (प्रश्न)—स्वामी जी शूद्रों को भी वेद पढ़ाना चाहते हैं। स्वामी जी इतने भोले हैं कि अपने लिखे को आप ही भूल जाते हैं। सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३८ में लिख आये हैं कि "शूद्रमपि कुल गुण संपन्नं मंत्र वर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके" सुश्रुत। और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र हो तो उस को मंत्र संहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे यह मत किन्हीं आचार्यों का है॥ फिर अपने सत्यार्थ प्रकाश के पृ० २८ में लिखा है कि "शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें" स्वामी जी ने संस्कार विधि में केवल द्विजों का ही उपनयन किया है। शूद्रों का नहीं। बिना उपनयन के वेदारंभ होता नहीं। इस कारण उपनयन निषेध से शूद्रों के वेदाधिकार का भी निषेध कर दिया। पृ० ३०० पं० २२।

उत्तर—स्वामी जी वेद के अनन्य भक्त थे उन्हों ने जो कुछ वेद की आज्ञा थी उस को संसार के सामने रक्खा कि "यथेमां वाचम्" इस मंत्र में ईश्वर की आज्ञा है कि वेद के पढ़ने का मनुष्य मात्र को अधिकार है" स्वामी जी भोले नहीं हैं आप ही वाक् छल से काम ले रहे हैं। और वक्ता के अभिप्राय के विरुद्ध कल्पना कर रहे हैं। आप प्रकरण विद्या

से भी अनभिज्ञ हैं। स्वामी जी ने जो सुश्रुत का प्रमाण दिया है। वे केवल इस लिये दिया है कि क्षत्रिय तथा वैश्य को भी यज्ञोपवीत देने का अधिकार है। ऐसा कई एक आचार्य्यों का मत है। नहीं अधिकार अनधिकार का प्रकरण है और न ही स्वामी जी ने अधिकार अनधिकार निर्णय के लिये यह प्रमाण दिया है। यज्ञोपवीत प्रकरण में यह प्रमाण दिया है। और यज्ञोपवीत के बारे में जो कुछ इस प्रमाण में है वह स्वामी जी मानते हैं। शेष वेद में अधिकार अनधिकार का आगे प्रतिपादन करते हुए अपना सिद्धान्त "यथेमाम्" इस मंत्र के द्वारा स्पष्ट कर दिया है कि वेद के पढ़ने का मनुष्य मात्र को अधिकार है। रही बात सत्यार्थ प्रकाश और संस्कार विधि की सो स्वामीजी वेद प्रतिपादित कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था मानते हैं। जब तक बालक स्वयं कर्म करने में समर्थ तथा स्वतंत्र नहीं होते तब तक उनके संस्कार माता पिता के वर्ण के अनुकूल ही होते हैं। अतः बालकों को उनके माता पिता के वर्ण के अनुकूल ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य के बालकों को यज्ञोपवीत देकर तथा शूद्रों के बालकों को यज्ञोपवीत के बिना गुरुकुल में प्रविष्ट किया जाता है। गुरुकुल में प्रविष्ट होने के कुछ समय पश्चात् आचार्य देखेगा कि जो बालक विद्या पढ़ने के क़ाबिल होंगे उनको यज्ञोपवीत देकर विद्या आरम्भ करादी जावेगी। इसी लिये सत्यार्थ प्रकाश में तृतीय समुल्लास पृ० ३९ में लिखा है कि "प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्य्य कुल में हो" इस से स्पष्ट है कि जिनका यज्ञोपवीत घर न हुआ हो उनका आचार्य्य कुल में योग्यता देख कर करवाया जावे। आप के मतानुसार

भी यदि बिना यज्ञोपवीत के वेदारम्भ नहीं हो सकता तो विद्यारंभ तो हो सकता है। विद्यारंभ के पीछे योग्यता देख कर यज्ञोपवीत करके वेदारंभ हो सकता है। अतः स्वामी जी के लेख में परस्पर विरोध नहीं है। आपकी ही बुद्धि में विकार है इसे ठीक कीजिये।

२८७ (प्रश्न)—स्वामी जी लिखते हैं कि "तुम कुवां में पड़ो और श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पित है" स्वामी जी ने केवल शतपथ ब्राह्मण को देखा उस में यह श्रुति नहीं है। इस कारण कपोलकल्पित लिख दिया। किन्तु केवल शतपथ ही ब्राह्मण नहीं है शतपथ से भिन्न भी वेदों के अनेक ब्राह्मण हैं। जो इस समय मिलते नहीं। जो यह श्रुति उन ब्राह्मणों में निकल आये तब तो कपोल कल्पित नहीं। पृ० ३०१ पं० १०।

उत्तर—श्रीमान् जी श्रुति तो नाम ही वेद का है। ब्राह्मण ग्रन्थों का श्रुति नहीं है। और चारों वेदों में यह पाठ है नहीं। अतः यह पाठ "स्त्री शूद्रौ नाधीयाताता मिति श्रुतिः" कपोल कल्पित ही है। यह पाठ यदि किसी आप के कपोल कल्पित ब्राह्मण ग्रन्थों में निकल भी आवे। तब भी न इस का नाम श्रुति हो सकता है। और न ही यह वेद विरुद्ध होने से प्रमाण हो सकता है।

२८८ (प्रश्न)—"स्तुता मया वरदा वेद माता" यह मन्त्र तो कपोल कल्पित नहीं है। यह तो तीन ही वर्णों को गायत्री और वेद का अधिकार देना है। फिर तुम वेदाज्ञा के विरुद्ध शूद्रों को वेद पढ़ाओगे कैसे। पृ० ३०१ पं० १६।

उत्तर—हम पूर्व साबित कर चुके हैं कि जो मनुष्य अर्थ सहित वेद पढ़ कर तदनुकूल आचरण करते हैं वे द्विज

कहाते हैं। और जो ऐसा नहीं करते वे ही शूद्र हैं। चाहे उन का जन्म किसी के घर का भी क्यों न हो। बस यह वेद मन्त्र भी यही कहता है कि जो लोग अर्थ सहित वेद पढ़ कर तदनुकूल आचरण करने से द्विज बन गये हैं वेद माता उन्हीं को पवित्र करती है। और जो लोग ऐसा न कर के शूद्र रह जाते हैं उनको वेद माता पवित्र नहीं करती। इस मन्त्र में शूद्र के घर जन्म लेने वालों को वेद पढ़ने का निषेध नहीं है। अपितु प्रयत्न करने पर भी जो वेद न पढ़ सकें उन शूद्रों का वेद माता पवित्र नहीं करती यह वर्णन है। इस से यह मन्त्र मनुष्य मात्र को वेद अधिकार का निषेध नहीं करता अपितु शूद्र रह जाने वालों की निंदा करता है ताकि प्रत्येक मनुष्य द्विज बनने का यत्न करे इस का विशेष व्याख्यान देखो।

(नं० २८०)

२८६ (प्रश्न)—रही बात "यथेमां वाचं कल्याणी" की। आज तक जितने भी वेद ज्ञाता हुए उन सब ने इस मन्त्र का यह अर्थ माना कि पूर्व मंत्र में भूत साधनी वाणी का वर्णन है। उस भूत साधनी वाणी का इस मंत्र में भी अध्याहार होता है। पृ० २०१ पं० २३।

उत्तर—आपके भाष्यों के अनुसार भी पिछले मंत्र में जिस भूत साधनी वाणी का वर्णन है। वह सब भूतों को सिद्ध करने वाली वेद वाणी का ही वर्णन है। क्योंकि सब भूतों अग्नि आदि पांच तत्वों तथा सब प्राणियों के साथ योग्य स्वरूप को वेद वाणी ही सिद्ध अर्थात् वर्णन करती है। हम पिछले मंत्र के उतने भाग तथा उस पर भाष्य को भी उद्धृत करते हैं।

मन्त्र पाठ—सप्त स ँ सदो अष्टमी भूत साधनी सकामाँ २ ।। अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मे अमुना ॥ २६।१ ॥

उव्वट—विज्ञानात्मा वोच्यते । यस्य तव सप्त संपदः । मनश्च बुद्धिश्च पंच बुद्धीन्द्रियानि च । अष्टमी च वाक् भूत साधनी भूत प्रज्ञप्तिकरी । तं त्वां ब्रवीमि । सकामान् अध्वनः कुरु अस्माकम् । संज्ञानं च अस्तु मे मम अमुना ॥१॥

महीधर—विज्ञानात्मा वोच्यते ; यस्य तव सप्त संसदः मनश्च बुद्धिश्च पंच बुद्धीन्द्रियाणि अष्टमी च वाक् भूत साधनी भूत प्रज्ञप्ति करी । त्वं त्वा ब्रवीमि स कामान् अध्वनः कुरु अस्माकम् । संज्ञानं च आयु मे मम अमुना ॥१॥

भाषार्थ—और विज्ञान स्वरूप परमात्मा का वर्णन किया जाता है । जिस आपके सात, पांच ज्ञान इन्द्रिय मन और बुद्धि ज्ञान स्थान हैं । आठवीं भूत साधनी अर्थात् भूतों का ज्ञान कराने वाली वाणी है । वे आप हमारे रास्तों को कामनाओं से पूर्ण करें । इस के साथ मेरा ज्ञान संगत हो या इस प्रकार से मुझे सम्यक् ज्ञान हो । यह मैं आप से प्रार्थना करता हूं ॥१॥

अब आपके भाष्यों के अनुसार भी विज्ञान स्वरूप परमात्मा की वह वाणी जिससे मनुष्य को सम्यक् ज्ञान हो सके । वेद के बिना और कौन सी हो सकती है । अतः निश्चय रूप से पिछले मंत्र में समस्त भूतों का ज्ञान कराने वाली वेद वाणी का ही वर्णन है । और आपके मतानुसार उसी वेद वाणी का ही इस "यथेमाम्" मंत्र में अध्याहार है ।

२६० (प्रश्न)—मनुष्य को दान देने के लिये जैसे भूत साधनी "भोजन दो" इस वाणी को सब मनुष्यों के लिये मैं

नम्रता से कहता हूं। ऐसे ही तुम भी कहो। यह बात यज्ञ करता अपने भृत्यों से कहता है। यह कल्याण कारणी वाणी ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्र तथा वैश्य स्वीय भृत्य अति शूद्र से बोलो। इन सब को मधुर वचनों के साथ सुंदर भोजन खाने को दो। मनुष्य मात्र को भोजनादि देने से मैं देवता तथा परमेश्वर का प्रिय बनूंगा। धन पुत्र लाभ जो मेरा कार्य्य है। यह समृद्धि को प्राप्त हो और मुझे परलोक सुख मिले। पृ० ३०१ पं० २६।

उत्तर—यहां पर आकर आपके भाष्यकार और आप बोखला गये। और ऊपर के मंत्र में जो विज्ञान स्वरूप परमात्मा को सर्व भूतों का ज्ञान कराने वाली और सम्यक् ज्ञान देने वाली वेद वाणी का वर्णन चला आता था उसे बदल कर यज्ञकर्ता की वाणी "भोजन दो" बना डाला। क्यों न हो यदि ऊपर वाला ही अर्थ यहां कर देते तो सनातन धर्म्म की लुटिया डूब जाती। और परमात्मा की वह सम्पत्ति जो कि सब के लिये सब का कल्याण करने वाली है। और जिस पर कि सनातन धर्म्म के ठेकेदारों ने अकेले ही क़बज़ा करके अपनी ही जायदाद समझ कर सब को महरूम कर रक्खा था। वह लुट जाती और यह ठेकेदार दूसरों के बराबर ही माने जाते। और यह मुफ़्त की नंबरदारी ज़प्त हो जाती। इस नम्बरदारी की रक्षा के लिये प्रकरण को ही बदल डाला। भला हो स्वामी दयानन्द जी का कि जिस ने इस कल्याणी वाणी वेदामृत को इन नाजाइज़ क़बज़ा करने वाले ठेकेदारों के क़बज़े से निकाल कर मनुष्य मात्र को इस कल्याणी वाणी से फ़ैज़याब कर दिया।

(१) कहिये महाराज! ऊपर के मन्त्र में भूत साधनी

वाणी तो ज्ञान स्वरूप परमात्मा की वर्णन की गई है। यह यज्ञ कर्ता की कैसे बन गई।

(२) "भोजन दो" यह वाणी सर्वभूतों का ज्ञान करवा कर हम को सम्यक् ज्ञान कराने वाली कैसे होगी।

(३) दोनों मन्त्रों में वह कौन से पद हैं जिनका अर्थ "भोजन दो" ऐसा बनता है। या घर से ही कल्पना कर ली।

(४) वास्तविक कल्याण जो मोक्ष है। "भोजन दो" यह वाणी मोक्ष कैसे दिलायेगी जब कि ज्ञान बिना मोक्ष हो हो ही नहीं सकता।

इन हेतुओं से स्वामी जी का अर्थ वेद वाणी ठीक है और आपकी तथा आपके भाष्यकारों की कल्पना "भोजन दो" अपने ही लेखानुसार प्रकरण विरुद्ध होने से सर्वथा निर्मूल तथा मिथ्या है।

२६१ (प्रश्न)—मन्त्र में "दक्षिणायै" इस से दक्षिणा और "दातुः" इस से दान स्पष्ट है। अर्थात् सब को भोजन दक्षिणा दो। पृ० ३०२ पं० २।

उत्तर—धन्य हो महाराज! 'दक्षिणायै' का अर्थ 'भोजन' तथा 'दातुः' का अर्थ 'दो' कोई आप जैसा ही विद्वान् कर सकता है। तो क्या हम यह मान लें कि आप को विभक्ति का भी ज्ञान नहीं है। और सुबन्त तिङन्त का भी ज्ञान नहीं है। क्या दक्षिणायै कर्म में द्वितीया है। या चतुर्थी और दातुः क्रिया है या षष्ठी का एक वचन। और 'भोजन की दक्षिणा' यह भी एक ही कहीं। क्या श्राद्ध का निमन्त्रण तो याद नहीं आगया। वरना आपके हां ही स्मृतियों में भोजन

की दक्षिणा को पैशाची दक्षिणा लिखा है। तथा वैदिक ग्रन्थों में संस्कारों तथा यज्ञों में तो दक्षिणा का विधान है किन्त भोजन पर दक्षिणा का विधान नहीं है। जैसे—

संभोजनी साभिहिता पैशाची दक्षिणा द्विजैः।
इहैवास्ते तु सा लोके गौरन्धेवैक वेश्मनि ॥ १४१ ॥

(मनु० अ० ३)

भाषार्थ—भोजन के साथ दक्षिणा को द्विजों ने पैशाची दक्षिणा कहा है। वह परलोक फल नहीं देती। अपितु जसे अन्धी गौ एक ही मकान में वन्द रहती है वैसे ही यह दक्षिणा भी इसी लोक में ही रहती है ॥ १४१ ॥

और फिर क्या? क्षत्रिय वैश्य शूद्र अति शूद्र को भी आप भोजन के साथ दक्षिणा मानते हैं। अतः इन पदों से 'भोजन दक्षिणा दो' अर्थ की कल्पना करनी अति निर्मूल तथा मिथ्या है।

वास्तविक अर्थ इस मन्त्र का इस प्रकार से है।

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्या ँ शूद्राय चार्याय च
स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै
दातुरिहभूयास मयं मेकामः समृध्यता-
मुपमादो नमतु ॥ यजु० २६। २॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो मैं ईश्वर जैसे (ब्रह्मराजन्यभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) अपने स्त्री सेवक आदि (च) और (अरणाय) उत्तम लक्षण युक्त प्राप्त हुवे अत्यन्ज के लिये (च) भी (जनेभ्यः) इन उक्त सब मनुष्यों के लिये (इह) इस संसार में (इमां)

इस प्रकट की हुई (कल्याणीम्) सुख देने वाली (वाचम्) चारों वेद रूप वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूं। वैसे आप लोग भी अच्छे प्रकार उपदेश करें। जैसे मैं (दातुः) दान वाले के संसर्गी (देवानाम्) विद्वानों की (दक्षिणायै) दक्षिणा अर्थात् दान आदि के लिये (प्रियः) मनोहर प्यारा (भूयासम्) होऊं और (मे) मेरी (अयं) यह (कामः) कामना (समृध्यताम्) उत्तमता से बढ़े तथा (मां) मुझे (अदः) वह परोक्ष सुख (उपनमतु) प्राप्त हो वैसे आप लोग भी होवें और वह कामना तथा सुख आप को भी प्राप्त होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—परमात्मा सब मनुष्यों के प्रति इस उपदेश को करता है कि यह चारों वेद रूप कल्याणकारिणी वाणी सब मनुष्यों के हित के लिये मैं ने उपदेश की है। इस में किसी को अनधिकार नहीं है। जैसे मैं पक्षपात को छोड़ के सब मनुष्यों में वर्तमान हुआ प्यारा हूं वैसे आप भी होओ। ऐसे करने से तुम्हारे सब काम सिद्ध होंगे॥ २ ॥

इस को कहते हैं अर्थ करना। कैसा साफ और सीधा है। इस मंत्र का देवता ईश्वर है। और (वाचम्) शब्द मंत्र के अंदर ही पड़ा हुआ है। इस मंत्र के अर्थ में न तो अध्याहार की ज़रूरत है। न ही पदों को तोड़ मरोड़ करने की। स्पष्ट शब्दों में ईश्वर मनुष्य मात्र को वेदों के पढ़ने के अधिकार का प्रतिपादन कर रहे हैं इतना स्पष्ट होने पर भी यदि किसी को शूद्रों के लिये वेद अधिकार वेदों में नज़र न आवे तो हम भर्तृ हरि के इस श्लोक के पाठ के विना और क्या कह सकते हैं कि—

पत्रं नैव यदा करीर विटपे दोषो
वसन्तस्य किमित्यादि ॥

२६२ (प्रश्न)—जब ईश्वर निराकार है तब वह ब्राह्मणादि मनुष्यों को वेद कैसे पढ़ा देगा। पृ० ३०२ पं० ८।

उत्तर—परमात्मा सर्वत्र व्यापक है मनुष्यों के हृदयों में भी व्यापक है। परमात्मा ने सृष्टि के आरंभ में चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के हृदय में चारों वेदों का प्रकाश कर दिया। उन्हों ने ब्रह्मा आदि सब मनुष्यों को वेद पढ़ाये (देखो वेदोत्पत्ति प्रकरण)।

२६३ (प्रश्न)—'स्वाय' पद का अर्थ इस मंत्र के वेद भाष्य में स्वामी दयानन्द जी ने लिखा है कि 'अपनी स्त्री और सेवक को भी मैं वेद पढ़ाता हूं' जब ईश्वर आर्य्यसमाज के मत में सर्वथा निराकार है। तो फिर निराकार ईश्वर के स्त्री और नौकर कैसा। पृ० ३०२ पं० १

उत्तर—'आप ने पढ़ाता हूं' अपनी तरफ से घड़ लिया। स्वामी जी ने 'उपदेश करता हूं' अर्थ किया है। क्या झूठ बोलने का आपने ही ठेका ले रक्खा है। यहां पर स्त्री के अर्थ बीवी और सेवक के अर्थ नौकर नहीं हैं। अपितु स्त्री के अर्थ स्त्री जाति तथा सेवक के अर्थ भक्त लोग हैं। यदि कोई आप से पूछे कि आप के घर में कितनी स्त्री और कितने पुरुष हैं। और आप उस का उत्तर दें कि मेरे घर में आठ स्त्री और आठ पुरुष हैं। तो क्या इस के यह अर्थ होंगे कि आप के घर में आठ बीवी और आठ खाविंद हैं। क्या उन औरतों में आप की मां, बहिन, बेटियां तथा पुरुषों में भाई, पुत्र, पिता आदि

शामिल न होंगे। अतः साबित हुआ कि यहां पर स्त्री के अर्थ स्त्री जाति तथा सेवक के अर्थ पुरुष जाति है। और परमेश्वर ने निराकार होते हुए मनुष्य मात्र (चारों ऋषियों के हृदय में व्यापक होते हुए चारों वेदों का प्रकाश करके उन के द्वारा) उपदेश किया इस की विशेष व्याख्या देखो।

(अवतार वाद तथा स्वामी दयानन्द)

(प्रश्न)—इस मन्त्र का देवता वाणी है। किंतु आर्य-समाजियों ने ईश्वर बना दिया। पृ० ३०३ पं० १

उत्तर—आप के उव्वट और महीधर ने इस मन्त्र का कोई देवता नहीं लिखा अपितु उव्वट तथा महीधर ने यूं तो लिखा है कि—

येऽत्र सम्बद्धा मन्त्रास्तेषां तदेवार्षम्। असम्बद्धानां तु आदित्य एव। अविनियुक्तानां मन्त्राणां लैङ्गिको विनियोगः। यो हि यमर्थं वदितुं समर्थः स तत्र श्रुत्या विनियुज्यते। वायुश्चांतरिक्ष च आदित्यश्च द्यौश्च आपश्च वरुणश्च सप्त संसदः परमात्मोच्यते। एवमुत्तरेष्वपि योज्यम्। (यजु० २६।१ पर उव्वट भाष्य)

भाषार्थ—जो मन्त्र लगाये हुए हैं उनका वही देवता है। जी नहीं लगाये हुए उनका आदित्य ही देवता है। जो मन्त्र नहीं लगाये हुए उनका लैङ्गिक विनियोग है। जो जिस अर्थ को कहने में समर्थ है। वह वहां श्रुति से लगाया जावे। वायु, अंतरिक्ष, आदित्य, द्यौ, आप, वरुण, ये सात परमात्मा के नाम हैं। इसी प्रकार से अगले मन्त्रों में भी देवता जोड़ लेने चाहिये ॥२६।१।

अब इन क़ाइदों के बमूजिब 'यथेमाम्' का कोई देवता न होने से आदित्य ही देवता माना जावेगा और आदित्य नाम है ईश्वर का। इसलिये इस मन्त्र का देवता ईश्वर हुआ।

दूसरे यदि लैङ्गिक देवता देवता है। तो इस मन्त्र में वाचं कर्म है आवदानि क्रिया है। ईश्वर कर्ता है। इस लिये कर्ता की प्रधानता से ईश्वर को ही देवता माना जावेगा। वाणी को नहीं अत एव हर हालत में इस मन्त्र का देवता ईश्वर ही हो सकता है वाणी नहीं हो सकता।

२९५ (प्रश्न)—स्वामी जी लिखते हैं कि 'यदि ईश्वर को शूद्रों को वेद पढ़ाना न होता तो वह उन के शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रियां क्यों रचता'। श्रोत्र इन्द्रियां तो पशु पक्षियों के भी हैं। फिर आप उनको वेद क्यों नहीं पढ़ाते। वाक् इन्द्रिय से स्पष्ट वर्णात्मक शब्द निकालने वाले तोता मैना को भी वेद पढ़ने का अधिकार ईश्वर ने 'यथेमां' मंत्र में क्यों नहीं दिया। पूर्व कर्मानुसार वेद पढ़ने का अधिकार जिन आर्य्य समाजियों को ईश्वर ने नहीं दिया। जो आज भी निरक्षर हों उन को श्रोत्र वाक् इन्द्रियां क्यों दीं। पृ० ३०३ पं० ३

उत्तर—क़ुर्बान जायें आप की मनतक़दानी के। आपने तो लाल बुजक्कड़ को भी मात कर दिया। क्या आपको इतना भी ज्ञान नहीं है कि मनुष्य से भिन्न सब पशु पक्षी आदि भोग योनियां हैं। वे सब पिछले कर्मों का फल भोगते हैं। आगे के लिये कोई पुण्य पाप का कर्म नहीं करते। इस लिये उन के लिये कोई वेद शास्त्र नहीं हैं। वेद शास्त्र केवल मनुष्यों के लिये है। जो कर्म करने में स्वतन्त्र हैं। और अपनी इच्छा से

पाप पुण्य कर्म कर सकते हैं। इसी लिये मंत्र में 'जनेभ्यः' अर्थात् मनुष्यों के लिये स्पष्ट लिखा हुआ है। यदि परमात्मा ने शूद्रों के लिये वेद न बनाये होते तो वे गाय भैंस आदि की भांति यत्न करने पर भी वेद न पढ़ सकते। और वे उन को कानों से सुन तथा मुख से उच्चारण न कर सकते। किंतु ऐसा देखने में नहीं आता अपितु शूद्र भी ब्राह्मण आदि की भांति वेदों को पढ़ तथा सुन सकते हैं। अतः शूद्रों को वेद का अधिकार स्वभाव से सिद्ध है। तोता मैना भी भोग योनि है। तथा वे सिवाय आवाज़ की नक़ल करने के किसी पदार्थ ज्ञान को नहीं जान सकते। अतः उन के लिये वेद ज्ञान नहीं है। रहा मूर्ख आर्य्य समाजियों का सवाल। सो उनका मनुष्य योनि में जन्म लेना ही इस बात की दलील है कि उन को वेद पढ़ने का अधिकार है। और उनके श्रोत्र तथा वाक् इन्द्रिय का होना ही सिद्ध करता है कि परमात्मा की तरफ से इन को वेद पढ़ने का अधिकार है। यह उनका अपना क़सूर है कि उन्हों ने अपने हक़ का इस्तेमाल करके वेद नहीं पढ़े। अतः स्वामी जी की यह दलील सर्वथा सत्य है। कि मनुष्यों में से यदि किसी को परमेश्वर की तरफ से वेद पढ़ने का अधिकार न होता तो परमात्मा उसके वाक श्रोत्र इन्द्रिय ही न बनाता। इस से साबित है कि परमात्मा की तरफ से वेद पढ़ने का मनुष्य मात्र को अधिकार है।

२६६ (प्रश्न)—फिर आप लिखते है कि 'जैसे परमात्मा ने पृथिवी जल अग्नि वायु चन्द्र सूर्य्य अन्नादि पदार्थ सब के लिये बनाये हैं। वैसे ही वेद भी सब के लिये प्रकाशित किये हैं'। आपकी यह बात भी ग़लत है। गौ आदि कई एक पशुओं

के लिये सूर्य्य हित का है किंतु भैंसों के लिये घाम में चलना आफत हो जाती है। पक्षियों में चिड़ियां आदि अनेक पक्षियों को सूर्य्य ज्योति वाला कर देता है। किन्तु बाज़ और उल्लू के दोनों फाटक बंद हो जाते हैं। अग्नि में समस्त पक्षी भस्म हो जाते हैं किंतु एक पक्षी विशेष का अग्नि भक्ष्य पदार्थ है। इसी प्रकार भैंस आदि को जल हितकारी और बकरी प्रभृति कई एक पशुओं को हानि कारक हैं। फिर एक सा कहां हुआ। पृ० ३०३ पं० १०

उत्तर—आपने यहां भी वाक् छल से ही काम लिया है। यहां पर वेदों का प्रकरण होने से मनुष्यों का ही वर्णन है, पशुपक्षियों का नहीं है। क्योंकि पशु भोग योनि है और उन के लिये वेद का ज्ञान नहीं है। अतः ऋषि ने बतलाया कि जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य्य और अन्नादि-पदार्थ सब मनुष्यों के लिये समान लाभ दायक बनाए हैं। वैसे ही वेद भी मनुष्य मात्र के लिये प्रकाशित किये हैं। यद्यपि यहां मनुष्यों का प्रकरण होने से पशु पक्षियों का दृष्टान्त युक्त ही नहीं है तथापि फिर भी आपने समान जातियों में सूर्य्य जल, अग्नि आदि का भिन्न प्रभाव नहीं दिखाया, अपितु असमान जातियों में दिखलाया है। आप के विचार में आकृति भिन्न होने के कारण जैसे गौ और भैंस में चिड़ी और उल्लु में तथा भैंस और बकरी में सूरत शकल आदि का कुदरती फ़र्क है। वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज आदि में भी परस्पर सूरत शकल बनावट आदि में कोई फ़र्क है। यदि नहीं तो मनुष्यों के प्रकरण में पशुओं की परस्पर भिन्न जातियों का दृष्टान्त कैसे संगत हो सकता है। क्योंकि मनुष्य मात्र की

बनावट में कोई फ़र्क न होने से सब की एक ही जाति है। ब्राह्मण शूद्रादि भेद कर्मों के कारण नैमित्तिक हैं जोकि तबदील होकर ब्राह्मण से शूद्र और शूद्र से ब्राह्मण इसी जन्म में बन सकता है किंतु गाय की भैंस और भैंस की गाय तथा चिड़ी का उल्लू और उल्लू की चिड़ी इत्यादि इस जन्म में नहीं बन सकते। अतः स्वामी जी का लेख युक्ति युक्त होने से सत्य तथा आप का लेख युक्ति विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

२६७ (प्रश्न)—आप लिखते हैं कि "जहां कहीं निषेध किया है। उस का यह अभिप्राय है कि जिस को पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। इस लेख में आप ने यह तो मान लिया कि शूद्र को वेद पढ़ाने का निषेध वेदादि सच्छास्त्रों में आता है।

पृ० ३०२ पं० १८

उत्तर—आपने न वैदिक सिद्धान्तों को पढ़ा है और न ही मनन किया है। अतएव आप की अकृत सिद्धान्तों के बारे में चक्कर खा जाती है। लीजिये हम आपको यह बात भी समझा देते हैं।

वास्तव में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दो प्रकार के होते हैं। एक संभावित, ब्राह्मणादि, दूसरे व्यवस्थित ब्राह्मण-आदि। संभावित ब्राह्मणादि वे बालक हैं। जो ब्राह्मणादि के घरों में पैदा हुवे हैं। वे स्वयं कर्म करने में असमर्थ हैं। ब्राह्मण-आदि माता पिता उनकी अपनी २ योग्यता तथा अपनी २ सहूलियत के अनुसार खान, पान, पोषण, संस्कार, शिक्षा आदि का प्रबन्ध करते हैं। और जब वे गुरुकुल में जाने के योग्य हो

जाते हैं। तब उन को अपने २ वर्णों की मर्यादा के अनुसार ही गुरुकुल में प्रविष्ट कर देते हैं। चूंकि वे बालक नाबालिग़ होने के कारण स्वयं स्वसंमता से कोई काम नहीं करते। सब कुछ उनके माता पिता ही करते हैं। और वे बालक भी यदि कुछ करते हैं तो अपने माता पिता की आज्ञा से उन के अनुसार ही करते हैं। अतः ऐसी अवस्था में वे अपने माता पिता के अनुसार ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और शूद्र नामों से प्रसिद्ध रहते हैं। जिस का वास्तविक अभिप्राय यह होना है कि ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के बालक हैं। चूंकि वे वास्तव में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं होते। अपने माता पिता के कारण उनको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहा जाता है। इस लिये उन का नाम संभावित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र है।

दूसरे व्यवस्थित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वे लोग हैं जो गुरुकुल में शिक्षा पाने के पश्चात् विद्या सभा तथा राज सभा की ओर से उन को गुण कर्म स्वभाव के अनुसार परीक्षा पूर्वक व्यवस्था करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र निश्चित रूप से बना दिये जाते हैं।

सारांश यह है कि जो शूद्रों के बालक हैं उन का नाम संभावित शूद्र तथा जिन को पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वे निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाते हैं। वे व्यवस्थित शूद्र हैं। जहां वेदों में "यथेमाम्" इस मंत्र में शूद्रों को वेद का अधिकार दिया गया है वहां पर संभावित शूद्र अर्थात् शूद्रों के बालकों से मुराद है और जहां पर "स्तुतामयावरदा वेदमाता',

इस मंत्र में आता है कि वेद माता द्विजों को पवित्र करती है, शूद्रों को नहीं, वहां शूद्र से मुराद व्यवस्थित शूद्र अर्थात बावजूद कोशिश के जो वेद न पढ़ सकें उनसे है। स्मृतियों में जहां "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" शूद्र ब्राह्मण बन जाता है यह आता है। वहां शूद्र से मुराद संभावित शूद्र अर्थात् शूद्र के बालक से है और जहां पर यह आता है कि "नचास्याधिकारोऽस्ति धर्मे" शूद्र का धर्म्म में अधिकार नहीं है वहां शूद्र से मुराद व्यवस्थित शूद्र है। इसी प्रकार से सर्वत्र समझ लेना चाहिये। यदि आप इस व्यवस्था को नहीं मानते तो बतलाइये कि "यथेमाम्" इत्यादि वेदों में तथा "शूद्रो ब्राह्मणता मेति" इत्यादि स्मृतियों में तथा व्यास पराशर वसिष्ठ आदि शूद्र अंत्यजों को पुराणों में जो वेद का अधिकार देकर ब्राह्मण तक बनने का अधिकार प्रति पादन किया गया हैं। उस का क्या मतलब है। अतः स्वामी जी का यह सिद्धान्त कि मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है। वेदानुकूल होने से सर्वथा सत्य है। और स्मृति, पुराण, इतिहास, दर्शन भी उस की ताईद करते हैं!

वेदों में स्त्रियों का अधिकार

२६८ (प्रश्न)—वेद प्रथम उपनयन बतलाता है। और उपनयन के पश्चात् वेदाध्ययन। पृ० ३०४ पं० ४।

उत्तर—आप ठीक कहते हैं कि प्रथम यज्ञोपवीत और फिर वेद का अध्ययन होना चाहिये। चूंकि स्त्री को वेद अध्ययन का अधिकार है। अतः वेद ने स्त्री के लिये यज्ञोपवीत का

भी आज्ञादी है जैसे—

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वं सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धांदधाति परमेव्योमन्।

(ऋ० १०।१०६।४)

भावार्थ—दिव्य शक्तिसम्पन्न पूर्व नियमानुसार रचित सप्त ऋषि अर्थात् नाक, कान आदि इन्द्रियां जो ज्ञान के लिये निरंतर गति करते रहते हैं। वे इस उपनीत ब्राह्मणी के विषय में मानों कह रही हैं। कि वेदाध्येता की जाया अर्थात् पत्नी यज्ञोपवीत धारण करके भयंकर सबला बन जाती है। अन्य दुष्ट प्रकृति वाले को भी उत्कृष्ट सुखमय अवस्था में धारण कर देती है॥ ४॥

इस मंत्र से स्त्री का यज्ञोपवीत स्पष्ट होने से वेदाधिकार भी स्पष्ट है।

२६६ (प्रश्न)—"उपनीयतु यः इत्यादि मनु० २।१४०" से सिद्ध हो गया कि उपनयन होने के अनन्तर ही वेदाध्ययन होता है। और स्त्री के लिये उपनयन की विधि नहीं। अतः स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं। पृ० ३०४ पं० ६।

उत्तर—आपने वेद का नाम ऊपर लिख कर नीचे मनुस्मृति का श्लोक दे दिया। क्या मनु स्मृति वेद है। कुछ शरम तो नहीं आती। और फिर आपने कोई ऐसा प्रमाण नहीं दिया जिस से यह साबित हो सके कि स्त्री को यज्ञोपवीत तथा वेद का अधिकार नहीं है। रहा आपका 'उपनीयतु' यह श्लोक सो यह भी सामान्य है। जैसे पुरुषों के लिये है वैसे ही स्त्रियों के लिये भी है। अर्थात्—

उपनीयतु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥१४०॥
(मनु० २)

भावार्थ—जो ब्राह्मण शिष्य का उपनयन करके कल्प और रहस्य के साथ वेद पढ़ावे उस को आचार्य्य कहते हैं ॥ १४० ॥

यह श्लोक जैसे पुरुष को यह आज्ञा देता है कि वह बालकों को यज्ञोपवीत देकर चारों वेद पढ़ा कर आचार्य्य बने वैसे ही स्त्री को भी आज्ञा देता है कि वह कन्याओं को यज्ञोपवीत देकर चारों वेद पढ़ा कर आचार्या बने।

यदि आप यह शंका करें कि 'इस श्लोक में (यः, द्विजः, तम्, आचार्यं) पुरुष वाची शब्द हैं, स्त्री वाची शब्द नहीं हैं। अतः पुरुष को ही आचार्य्य बनने का अधिकार है स्त्री को नहीं। तो यह शंका आपकी निर्मूल है। क्योंकि क़ानून स्त्री पुरुष के लिये समान होता है चाहे वह पुरुष वाची शब्दों से ही बयान किया गया हो जैसे मनु में आता है कि—

पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्।
पश्चिमांतु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥ १०१ ॥
(मनु० २)

आचारः परमोधर्म्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एवच।
तस्मादस्मिन् सदायुक्तोनित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥ १०८ ॥
(मनु० १)

भावार्थ—प्रातः सन्ध्या में गायत्री का जप करता हुआ सूर्य के दर्शन तक ठे। तथा सायं की सन्ध्या में बैठा हुआ

तारों के नज़र आने तक गायत्री का जप करता रहे ॥ १०१ ॥ श्रुति तथा स्मृति में कहा हुआ आचार परम धर्म है। इस लिये ब्राह्मणादि द्विज को चाहिये कि वह इस में सदा संयुक्त अर्थात् नित्य लगा हुआ आत्मवान् बने ॥ १०८ ॥ ये दोनों श्लोक भी (जपन्, समासीनः, युक्तः, आत्मवान्, द्विजः) पूर्व श्लोक की भांति ही पुरुष वाची शब्दों से बयान किये गये हैं। तो क्या इस का यह मतलब है कि ये दोनों श्लोक भी पुरुष के लिये ही संध्या करने तथा सदाचारी बनने की आज्ञा देते हैं स्त्री के लिये नहीं। और क्या पुरुष को ही संध्या करने तथा सदाचारी बनने का हक़ है स्त्री को नहीं। यह हर्गिज़ भी मानने योग्य बात नहीं है। अतः यह तीनों ही श्लोक स्त्री तथा पुरुष के लिये सामान्य होने से समानाधिकार का प्रतिपादन करते हैं। अर्थात् जैसे पुरुष को संध्या करने सदाचारी बनने तथा आचार्य्य बनने का हक़ है वैसे ही स्त्री को भी संध्या करने सदाचारिणी बनने तथा आचार्या बनने का हक़ हासिल है। हम इसमें एक आप के ही घर का अत्यन्त पुष्ट प्रमाण देते हैं। देखिये। —

इन्द्र वरुण भव शर्व रुद्र मृड हिमारण्य यव यवन मातुलाचार्याणामानुक् (४।१।४९)

'मातुलोपाध्याययोरानुग्वा' मातुलानी, मातुली, उपाध्यायानी, उपाध्यायी, 'यातु स्वयमेवाध्यापिका तत्र वाङीष वाच्यः' उपाध्यायी, उपाध्याया, 'आचार्यादणत्वं च' आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी' पुंयोग इत्येव। आचार्या स्वयं व्याख्यात्री ॥

(सिद्धान्त कौमुदी स्त्री प्रत्यय प्रकरण):

इस में यह स्पष्ट है कि जो उपाध्याय की स्त्री है उस का नाम उपाध्यायानी है। और जो स्वयं अध्यापिका है उस का

नाम उपाध्याया है। तथा जो आचार्य की स्त्री है उसका नाम आचार्याणी है किंतु जो स्वयं वेदों का व्याख्यान करने वाली हैं अर्थात् स्वयं वेद पढ़ाती है उस का नाम आचार्य्या है। फिर उपाध्याय किस को कहते हैं—

एक देशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ।। १४१ ॥
(मनु० २)

भावार्थ—जो वेद के एक हिस्से को या वेद के अंगों को अपनी वृत्ति के लिये पढ़ाता है उस को उपाध्याय कहते हैं ॥ १४१ ॥ इस से साबित है कि वेद के एक हिस्से को या वेद के अंगों के पढ़ाने वाली स्त्री का नाम उपाध्याया तथा चारों वेदों को पढ़ाने वाली स्त्री का नाम आचार्या है—

शिव पुराण भी इस की ताईद करता है कि:—

घृत स्नानं ततः कृत्वा पुत्रस्य गिरिजा स्वयम्।
त्रिरावृत्तोपवीतं च ग्रन्थिनैकेन संयुतम् ॥ ४२ ॥
सुदर्शनाय पुत्राय ददौ प्रीत्या तदाम्बिका।
उद्दिश्य शिव गायत्रीं षोडशाक्षर संयुताम् ॥ ४३ ॥
(शिव० कोटि० रुद्र० अ० १३)

भावार्थ—स्वयं पार्वती ने गणेश का घृत स्नान करवा कर तीन लड़ी से युक्त एक ग्रन्थी वाला यज्ञोपवीत ॥ ४२ ॥ अपने सुन्दर पुत्र को पहिना दिया और सोलह अक्षर वाली शिव गायत्री का उपदेश कर दिया ॥ ४३ ॥

अतः सिद्ध हुवा कि स्त्री को यज्ञोपवीत देने आचार्या उपाध्याया बन कर वेद के पढ़ाने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है।

३०० (प्रश्न)—"वैवाहिको विधिः इत्यादि मनु० २।६७" इस में स्त्रियों के लिये केवल वैवाहिक विधि ही वदिक संस्कार कहा है। जब उपनयन आदि संस्कारों में से केवल विवाह संस्कार ही स्त्री को कहा गया है शेष संस्कारों का मनु निषेध करते हैं। तो मनु के विरुद्ध स्त्री का उपनयन संस्कार कैसे होगा। और बिना उपनयन के हुवे स्त्री वेद कैसे पढ़ेगी।

पृ० ३०४ पं० १२

उत्तर—आपने स्त्री को यज्ञोपवीत तथा वेदाध्ययन निषेध में कोई वेद मंत्र पेश नहीं किया और मनु के इस श्लोक के आशय को भी आप नहीं समझे देखिये:—

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पति सेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ६७ ॥
(मनु० २)

भाषार्थ—विवाह की विधि ही स्त्रियों के लिये उपनयन संस्कार है। पति की सेवा ही गुरुकुल निवास है। घर का काम ही प्रातः सायं का अग्नि होत्र है ॥ ६७ ॥

इस मंत्र में विवाह विधि, पति सेवा, गृहकृत्य, की उत्कृष्टता दिखाई गई है। इससे उपनयन, गुरुकुल निवास, प्रातः सायं अग्नि होत्र करने का निषेध नहीं है।

यदि आप इस प्रकार से निषेध मानेंगे तो मनु ने माता पिता तथा आचार्य की स्तुति करते हुए लिखा है कि:—

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव हि त्रयो वेदा स्त एवोक्तास्त्रयोऽग्नयः ॥ २३० ॥
(मनु० २)

भावार्थ—माता, पिता, तथा आचार्य, वे ही तीनों लोक हैं। वे ही तीनों आश्रम हैं वे ही तीनों वेद हैं तथा वे ही तीनों अग्नियें हैं॥ २३०॥

तो क्या आप यहां पर यह मानने को तय्यार हैं कि मनु ने तीनों लोकों, तीनों आश्रमों, तीनों वेदों तथा तीनों अग्नियों के सेवन का निषेध कर दिया है। हर्गिज़ भी नहीं है अपितु यहां पर माता पिता गुरु की उत्कृष्टता दिखाई है। तीनों लोक आदि का निषेध नहीं हैं। बस इसी प्रकार से ही उपरोक्त मंत्र में भी विवाह आदि की उत्कृष्टता दिखाई हैं। उपनयनादि का निषेध नहीं है। जैसे कि—

अमन्त्रिकातु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्॥ ६६॥
(मनु० २)

भावार्थ—स्त्रियों के ये संपूर्ण संस्कार जो ऊपर पुरुषों के वर्णन किये हैं बिना विचारे ही कर देने चाहियें अर्थात् अवश्य ही कर देने चाहिये। यथा काल यथा क्रम शरीर के संस्कार के लिये अवश्य कर देने चाहिये॥ ६६॥

यहां 'अमंत्रिका' का अर्थ 'बिना वेद मंत्रों के' ऐसा नहीं है। अपितु 'अमंत्रिका का अर्थ बिना विचार 'अर्थात्' अवश्य है जैसे कि—

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्॥ ३५०॥
(मनु० ८)

भावार्थ—चाहे गुरु हो, बालक बूढ़ा हो, ब्राह्मण वा ज्ञानी हो जो आततायी हो उसे बिना विचारे ही मार देना चाहिये ॥ ३५० ॥ यहां बिना विचारे का यह मतलब नहीं कि विचार करे ही नहीं अपितु यह मतलब है कि अवश्य ही मारदे। यही मतलब उपरोक्त श्लोक में अमंत्रिका का है।

यदि आप 'अमंत्रिका' का अर्थ 'वेद मंत्र वर्जित' करके स्त्रियों के संस्कारोंमें वेद मंत्रोंका निषेध मानेंगे तो ऐसी अवस्था में गर्भाधान, पुँसवन, सीमन्तोनयन, इन तीन संस्कारों को क्या करेंगे। क्योंकि इनमें बालक या बालिका का निश्चय नहीं किया जा सकता। और द्विजों के गर्भाधान से सारे ही संस्कार समंत्रक करने का विधान है जैसे—

निषेकादिश्मशानान्तो मंत्रैर्यस्योदितोविधिः।
तस्य शास्त्रे ऽधिकारोऽस्मिञ्ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित् ॥१६॥
(मनु० २)

भावार्थ—गर्भाधान से लेकर श्मशान तक जिसकी विधि मंत्रों से हो उसको इस शास्त्र के पढ़ने का अधिकार है दूसरे किसी को नहीं ॥ १६ ॥

दूसरे यह अर्थ मनु के सिद्धान्त के भी विरुद्ध होंगे क्योंकि मनु जी स्त्री को यज्ञोपवीत तथा वेद पढ़ना ही नहीं मानते। अपितु यज्ञ का होता होना भी मानते हैं जैसे—

न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा ॥ ३६ ॥
(मनु० ११)

भावार्थ—अग्नि होत्र का होता कन्या, युवती, अल्पविद्य, मूर्ख तथा संस्कार शून्य को नहीं होना चाहिये ॥ ३६ ॥

यहां पर "कन्या तथा युवती के निषेध से साबित है कि वृद्ध, स्त्री, अग्निहोत्र की होता बन सकती है। वरना कन्या और युवती के निषेध की क्या ज़रूरत थी। स्त्री मात्र का ही निषेध कर देते। और यदि स्त्रियों को संस्कारों का निषेध होता तो फिर 'असंस्कृत:' शब्द से स्वयं ही स्त्रियों का भी निषेध हो जाता। किंतु 'असंस्कृत:' पद के होते हुए भी कन्या तथा युवती का निषेध सिद्ध करता है कि स्त्रियों को संपूर्ण संस्कारों का समंत्रक अधिकार है। और यज्ञ में भी होता बनने का अधिकार है। अत: सिद्ध हुआ कि अमंत्रिका का अर्थ मंत्र वर्जित नहीं अपितु बिना विचारे अर्थात् अवश्य अर्थ है, और स्त्रियों को उपनयनादि संस्कारों तथा वेदों के पढ़ने का निषेध नहीं हैं। जैसे कि—

(क) अत एव हारीतेनोक्तम्—द्विविधा स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षाचर्य्या। वधूनां तूपस्थिते विवाहे कथंचिदुपनयन-मात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः ॥

(ख) तथा च यमः

पुराकल्पेतु नारीणां मौंजीबंधनमिष्यते।
अध्यापनं चवेदानं सावित्री वाचनं तथा॥
पिता पितृव्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत् परः।
स्वगृहेचैव कन्याया भैक्षचर्या विधीयते ॥
वर्जयेदजिनं चीरं जटाधारणमेवच ॥
(पराशर माधव २ अ० आ० का० पृ० ४८५)

ऋगथर्व सूक्त संग्रहः। संस्कृत भूषण शुचिव्रत लक्ष्मण पालेन शास्त्रिणा संगृह्य संपादितः। रईस आज़म श्री भाई

मनोहर लाल महोदयेन प्रकाशित: । विक्रम संवत १९८५ सप्तमं संस्करणम् २०००) पृ० ५० ॥

(ग) ततः शंखवरः सोपि प्रीत्या दुर्गोपवीतकम् ।
कारयामास सोत्साहं वेद मंत्रैः शिवस्यच ॥ १ ॥
(शिव० रुद्र० पार्व० अ० ४७)

(घ) प्रावृतां यज्ञोपवीतनीमभ्युदानयञ्जपेत् ।
सोमोऽददद् गंधर्वायेति ॥ गोभिल० २।१।१९ ॥

(ङ) यज्ञोपवीत मार्गेण छिन्ना तेन तपस्विनो ।
सा पृथिव्यां पृथु श्रोणी पपात प्रियदर्शना ॥ ३० ॥
(वाल्मी० युद्ध० स० ८१)

(च) श्वेत चम्पकवर्णाभांरत्न भूषण भूषिताम् ।
वह्नि शुद्धांशुकाधानां नाग यज्ञोपवीतिनीम् ॥ २ ॥
(ब्रह्मवै० प्रकृति० अ० ४६)

भाषार्थ—(क) इस लिये हारीत ने कहा है। स्त्रियें दो प्रकार की होती है। ब्रह्मवादिनी और सद्योवधु। उन में से ब्रह्मवादिनियों के लिये यज्ञोपवीत अग्नि होत्र वेदाध्ययन और अपने घरों में भिक्षा मांगना तथा सद्यः बधु के लिये विवाह के उपस्थित होने पर किसी प्रकार से यज्ञोपवीत करके विवाह कर देना चाहिये। (ख) तथा यम ने भी कहा है। पहिले कल्प में स्त्रियों के लिये यज्ञोपवीत विधान था। वेदों का पढ़ना तथा गायत्री का बोलना भी। पिता वा भाई वा चाचे का लड़का उस को पढ़ावे और कोई न पढ़ावे। अपने ही घरों में कन्या का भिक्षा मांगना ठीक है। और चर्म धारण जटा धारण और वल्कल धारण नहीं करने चाहिये। [यह दोनों प्रमाण ऋगथव

सूक्त संग्रह जोकि लाहौर के भाई मनोहर लाल जी रईसे आज़म ने संवत १९८५ में सातवीं बार २०००) छपवाकर मुफ्त बांटा है। उसके पृ० ५० से लिये गये हैं]

(ग) उस के पश्चात् हिमाचल ने प्रेम पूर्वक उत्साह से मंत्रों के साथ पार्वती तथा शिव का यज्ञोपवीत करवाया।

(घ) तब कन्या को कपड़े से ढक कर जनेऊ पहिन कर पति अपने सामने निकट ला कर 'सोमोऽददत्' मंत्र पढ़े।

(ङ) रावण ने छल से बनाई बिचारी सीता को यज्ञोपवीत मार्ग से काट डाला। वह सुन्दरी पृथिवी पर गिर पड़ी।

(च) सुफेद चमेली के रंग के समान शोभा वाली रत्नों के भूषणों से भूषित साफ कपड़े पहिने हुए नाग के समान यज्ञोपवीत पहिने हुई को देखा।

इन संपूर्ण प्रमाणों से सिद्ध है कि मनु के श्लोकों का हमारा किया हुआ अर्थ शास्त्रानुकूल है और स्त्री को यज्ञोपवीत तथा वेद पढ़ने का संपूर्णतया अधिकार प्राप्त है।

३०१ (प्रश्न)—जब स्त्रियों को उपनयन संस्कार ही नहीं कहा तो फिर वेद अध्ययन का अपने आप निषेध हो गया। पृ० ३०४ पं० २०।

उत्तर—हम सिद्ध कर चुके हैं कि स्त्री को यज्ञोपवीत लेने का ही नहीं देने का भी अधिकार है। जब उपनयन का अधिकार सिद्ध होगया तो वेदाधिकार तो स्वयं ही सिद्ध है। स्त्रियों को पढ़ने का तो कहना ही क्या है। ऋषि बनने का हक़ है। चुनांचे कितनी स्त्रियें ऋषिका हो गुज़री हैं। जिनके नाम वेद के मन्त्रों पर बतौर ऋषि के दर्ज हैं।

संख्या नाम ऋषिका	कौन से वेद मंत्र की	प्रतीक
१ सांर्प राज्ञी कद्रू	यजु० ३ । ६	आयङ्गौः
२ लोपा मुद्रा	यजु० १७ । ११	नमस्ते हरसे
३ सरस्वती	यजु० २८ । २४	होता यक्षत्
४ गायत्री	साम० पू० १ । ६ । १	अग्ने ओजिष्ठ
५ वाजिनां स्तुति	साम० पू० ५।५।६	आविर्मर्य्या
६ शश्वत्याङ्गिरस्यासङ्गस्य-पत्नी	ऋ० ८।१।३४	पन्वस्य
७ आपालात्रेयी	ऋ० ८।६१।१	कन्यावा
८ सिकता निवावरी	ऋ० ६।८६।११	अभिक्रन्दन्
६ यमी वैवस्वती	ऋ० १०।१०।१	ओचित्
१० अदितिर्वा दाक्षायणी	ऋ० १०।७२।१	देवानांनु
११ वागाम्भरणी	ऋ० १०।१२५।१	अहं रुद्रेभिः
१२ रात्रिर्वा भारद्वाजी	ऋ० १०।१२७।१	रात्रीव्यख्यद
१३ इन्द्राणी	ऋ० १०।१४५।१	इमां खनामि
१४ श्रद्धा कामायनी	ऋ० १०।१५१।१	श्रद्धयाग्नि

इत्यादि अनेकों स्त्रियां मन्त्रों की ऋषिका वेदों में लिखी पड़ी हैं। मन्त्रों के अर्थों को साक्षात् कर के प्रचार करने वाले को ऋषि कहते हैं। जब स्त्रियों को वेद मन्त्र के अर्थ को साक्षात् कर के उस के प्रचार का हक़ है तो कौन कह सकता है कि स्त्रियों को उपनयन तथा वेदाध्ययन का हक़ नहीं है।

३०२ (प्रश्न)—क्या मज़ा है धोकेबाज़ हों तो ऐसे हों।

उत्तर—जिस को पित्त का रोग होता है उस को दूध भी पीला ही दिखाई देता है। वरना बताया तो होता, धोका

क्या किया है ? मन्त्र के अर्थ साफ तौर से किये गये हैं। जैसे आपने ही अपनी पुस्तक के पृ० ३०५ पं० ४ में दे रखे हैं कि—

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । अथर्व० ११।५।१८

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त हो के युवती विदुषी अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं। वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्य्येण) ब्रह्मचर्य्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती हो के पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) पूर्ण युवावस्था युक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे। इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये।(सत्यार्थ० समु० ३) कहियेगा महाराज इन अर्थों में आप को क्या धोका नज़र आता है।

३०३ (प्रश्न)—'ब्रह्मचर्येण युवानम्' यह 'पतिं' का विशेषण है। किंतु स्वामी 'ब्रह्मचर्येण' इस पद को कन्या में लगाते हैं। यह धोका है। पृ० ३०२ पं० १४।

उत्तर—हमारा अनुमान सत्य ही निकला। अपनी नीयत में ख़लल है। धोकेबाज़ औरों को बता रहे हैं। यहां 'युवानं' 'पतिं' का विशेषण है 'ब्रह्मचर्येण' किसी का विशेषण नहीं है। अपितु हेतु है। जो 'कन्या' और 'युवानं' दोनों के साथ लग सक़ता है। और स्वामी जी ने लगाया भी दोनों के साथ है 'जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से' ऐसा अर्थों में लिखा हुआ है। किंतु आप ने 'ब्रह्मचर्येण' को 'युवानम्'

के साथ जोड़ कर फिर 'पतिं' का विशेषण बता कर धोखा देने की कोशिश की है। अतः स्वामी जी का 'ब्रह्मचर्येण' हेतु को लड़कों तथा कन्या दोनों में लगाना ठीक तथा आप का उस को विशेषण बताना सर्वथा मिथ्या है।

३०४ (प्रश्न)—यहां पर 'युवानम्' में 'ब्रह्मचर्येण' हेतु है। अर्थात् ब्रह्मचर्य से युवान हुए पति को कन्या प्राप्त करती है। पृ० ३०५ पं० १८।

उत्तर—'ब्रह्मचर्येण' केवल 'युवानम्' में हेतु नहीं है अपितु 'कन्या' में भी हेतु है। अर्थात् ब्रह्मचर्य से युक्त कन्या ब्रह्मचर्य से युक्त जवान पति को प्राप्त करती है।

३०५ (प्रश्न)—'पतिं' पुल्लिङ्ग है। उस का विशेषण 'ब्रह्मचर्येण युवानम्' यह भी पुल्लिङ्ग है। फिर कोई लिखा पढ़ा मनुष्य यह कैसे मान लेगा कि 'ब्रह्मचर्येण इस हेतु को कन्या में लगाओ। क्या हम को यह मानना पड़ेगा कि स्वामी जी को हेतु का ज्ञान नहीं। या हम मान लें कि स्वामी जी को अभी तक लिंग का ज्ञान न हुआ।

पृ० ३०५ पं० १६।

उत्तर—हमें इस बात के मानने में कोई संकोच नहीं कि स्वामी जी का ज्ञान लिंग विषयक व्याकरण तक ही महदूद था और आप ने इस लिंग के विषय को बचपन से ही बड़े परिश्रम से अध्ययन कर के अनुभव किया है तथापि जब आप ब्रह्मचर्य्येण को हेतु मान रहे हैं। और हेतु में तृतीया विभक्ति मौजूद है। तो भला फिर कोई पढ़ा लिखा आदमी यह से मान सकता है 'द्वितीयान्त पतिं' का विशेषण "तृतीयान्त

ब्रह्मचर्य्येण" भी बन जावेगा। अतः होश हवास से बात कीजिये युवानं तो पतिं का विशेषण है और ब्रह्मचर्य्येण युवानं तथा कन्या दोनों में हेतु है क्योंकि कन्या संज्ञा होती ही उसकी है जो ब्रह्मचारिणी अर्थात् अक्षत योनि हो इस में प्रमाण निम्न लिखित है—

अकन्येति तुयः कन्यां प्रब्रूयाद्द्वेषणा मानवः ॥ मनु० ८। २२५।
नेयं कन्या क्षतयोनिरियमिति योमनुष्यो द्वेषण ब्रूयात्।
(कुल्लूक भट्ट)

भाषार्थ—यह कन्या नहीं है अपितु क्षत योनि है ऐसा जो मनुष्य कहे। यहां अकन्या का नाम क्षत योनि तथा कन्या का नाम अक्षतयोनि है। और अक्षत योनि को वर्णन करने के लिये ब्रह्मचर्य्य शब्द से बढ़ कर दूसरा कोई सुन्दर शब्द नहीं मिल सकता। यहां कन्या को ब्रह्मचारिणी कहना इस लिये भी जरूरी था कि विवाह के मन्त्र कन्या अर्थात् अक्षत योनि ब्रह्मचारिणी में ही प्रतिष्ठित हैं जैसा कि—

पाणिग्रहणिका मन्त्राः कन्यास्वेव पतिष्ठिताः।
नाकन्यासु क्वचिन्नृणां लुप्तधर्म्म क्रियाः हिता।
॥ २२६ ॥ (मनु० ८).

अर्थ—विवाह के मन्त्र कन्याओं में ही प्रतिष्ठित हैं अकन्याओं में नहीं क्योंकि मनुष्यों में अकन्या धर्म को लुप्त करने वाली हैं ॥ २२६ ॥ कन्या के विषय में पूछने की जरूरत ही न रहे इस लिये बल पूर्वक कह दिया कि जो ब्रह्मचर्य्य से युक्त कन्या हो वह ब्रह्मचर्य्य से जवान पुरुष से ही शादी करे। ब्रह्मचारी अर्थात् अक्षत वीर्य्य कुमार सारांश यह कि—

अब्रह्मचारिणी अर्थात् क्षतयोनि कन्या से तथा ब्रह्मचारिणी अर्थात् अक्षतयोनि कन्या अब्रह्मचारी अर्थात् क्षतवीर्य जवान पुरुष से शादी न करे। ब्रह्मचारिणी ब्रह्मचारी से तथा अब्रह्मचारिणी अब्रह्मचारी से बिवाह करे यह वेद का दृढ़ नियम है। अतः ब्रह्मचर्य्येण हेतु 'पति' तथा कन्या दोनों के साथ लगाना आवश्यक था। अब अर्थ इस प्रकार होंगे कि ब्रह्मचर्य्य से युक्त कन्या ब्रह्मचर्य से युक्त जवान पति को प्राप्त हों। आशा है अब आप को इस के समझने में कठिनता न रहेगी।

३०६ (प्रश्न)—वीर्य्य रक्षा का नाम 'ब्रह्मचर्य्य' है। वीर्य पुरुषों में ही होता है। इस लिये ब्रह्मचर्य्य का साधन पुरुष ही कर सकता है। स्त्री के शरीर में वीर्य्य नहीं होता 'रज' होता है। रज को शास्त्र ने कहीं पर भी ब्रह्मचर्य्य के नाम से स्मरण नहीं किया। फिर कन्या में ब्रह्मचर्य्य का लगाना शास्त्रानभिज्ञता और पागलपन नहीं तो क्या है। पृ० ३०५ पं० २३।

उत्तर—आप इस प्रकार के विचित्र जन्तु हैं कि आपको जो सूझती है अनोखी ही सूझती है। आप दुनियां भर में पहिले आदमी हैं जिनको नियोटन को पृथिवी में आकर्षण की भान्ति यह बात सब से पहिले सूझी है कि स्त्री में वीर्य्य नहीं होता। तो वैद्यक ग्रन्थों में जो लिखा है कि मनुष्य के शरीर में रस, रुधिर, मांस, चरबी, हड्डी, मज्जा तथा वीर्य्य ये सात धातु होती हैं। तो स्त्री के शरीर में आप के ख्याल से एक धातु वीर्य्य होती ही नहीं। गोया स्त्री के शरीर में छः ही धातु होती हैं सातवीं होती ही नहीं।

हमें अफसोस से कहना पड़ता है कि आप की यह सूझ क़तई मिथ्या है। स्त्री में भी वैसे ही सातों धातु हैं जैसे पुरुष में। जैसे पुरुष में वीर्य होता है वैसे ही स्त्री में होता है। बोलने चालने में भेद प्रतिपादन के लिये स्त्री के वीर्य को ही रज के नाम से पुकारते हैं। वरना यह वह रज नहीं होता जो स्त्री को प्रत्येक मास में प्रथक चार रात्री में आता है। जिस के शुद्ध होने पर गर्भाधान की आज्ञा है। ऋतुमती होने में चार दिन जो विकृत खून आता है वह और चीज़ है। और जिस का पुरुष के वीर्य के साथ मिलाप होकर स्त्री को गर्भ ठहरता है वह और चीज़ है। और शास्त्रों में स्त्री और पुरुष दोनों के वीर्य्य को शुक्र या बीज के नाम से भी वर्णन किया है जैसे—

पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समेऽपुमान् पुंस्त्रियौवा क्षीणेऽल्पे विपर्ययः ॥४९॥
(मनु० ३)

पुंसोबीजेऽ धिकेऽयुग्मास्वपि यत्रो जायते। स्त्री बीजेऽधिके यग्मा स्वपि दुहितैव। स्त्री पुंसयोस्तु बीज साम्येऽ पुमान्नपुंसक जायते। पुंस्त्राविति यमौच। निःसारेऽल्पे चोभयोरेव बीजे गर्भ स्यासंभवः ॥४६॥ (कुल्लूक भट्ट)

भाषार्थ—पुरुष के बीज अधिक होने पर अयुग्म रात्रियों में भी पुत्र ही होगा। स्त्री के बीज अधिक होने पर युग्य रात्रियों में भी कन्या ही होगी। स्त्री और पुरुष के बीज बराबर होने पर नपुंसक पैदा होता है। वा लड़के लड़की का जोड़ा। यदि स्त्री तथा पुरुष दोनों का बीज साररहित हो अथवा थोड़ा हो तो गर्भ ठैहरना असंभव है ॥४६॥

अब यहां पर स्त्री तथा पुरुष दोनों के वीर्य को शुक्र तथा बीज के नाम से वर्णन किया गया है। अतः आपकी यह प्रतिज्ञा सर्वथा मिथ्या है कि स्त्री के वीर्य नहीं होता। ब्रह्मचर्य्य केवल वीर्य रक्षा का नाम नहीं है अपितु वीर्य की रक्षा करते हुवे वेद के पढ़ने तथा ईश्वर की उपासना का नाम ब्रह्मचर्य है। और इस ब्रह्मचर्य के धारण करने का भी मनुष्य को अधिकार है। जैसे कि स्त्रियों के लिये ब्रह्मचर्य शब्द आता है कि—

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म्म एक पत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम् ॥१५८॥
मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथाते ब्रह्मचारिणः ॥१६०॥

(मनु० ५)

शृणुयाच्चैव यानारी तद्भक्ता ब्रह्मचारिणी।
पितृपक्षे मातृपक्षे पूज्या भवति देववत् ॥१३२॥

(महा० शान्ति० अ० २८४)

भाषार्थ—मरने तक नियम पूर्वक ब्रह्मचारिणी रहे। एक पुरुष की पत्नियों का जो उत्तम धर्म है उस की इच्छा करती रहे ॥१५८॥ पति के मरने पर साधु स्वभाव वाली स्त्री ब्रह्मचर्य में क़ाइम रहते हुए बिना पुत्र के भी स्वर्ग में जाती हैं। जैसे वे धार्मिक ब्रह्मचारी स्वर्ग में जाते हैं ॥१६०॥ जो स्त्री स्तुति को सुने और भक्ति में मस्त ब्रह्मचारिणी रहे। वह पिता तथा माता के पक्ष में देवता के समान पूजा के योग्य होती है ॥१३२॥

कहिये महाराज अब तो पूरे तौर से साबित हो गया कि स्त्री के साथ ब्रह्मचर्य का शब्द शास्त्रों में प्रयुक्त हुवा है। फिर ब्रह्मचर्य शब्द को कन्या के साथ लगाने पर शंका करना शास्त्रानभिज्ञता और पागल पन है या नहीं ?

३०७ (प्रश्न)—रही बात यह कि "इमं मंत्र पत्नी पठेत्" यह लेख किसी भी गृह्य सूत्र और श्रौत सूत्र में कहीं पर भी नहीं है। पृ० ३०६ पं० ७।

उत्तर—पक्षपात् ने आपकी अकल पर ऐसा ताला लगा दिया है कि अपाको सीधी बात भी उलटी नज़र आती है। आप ने यह समझ लिया कि "इमं मंत्र पत्नी पठेत्" यह किसी वेद शास्त्र गृह्य सूत्र वा श्रौत सूत्र का मंत्र सूत्र वा पाठ है। श्रीमान् जी ऐसा नहीं है। यदि यह अक्षरशः किसी पुस्तक का पाठ होता तो स्वामी जी इस का ठिकाना नोट कर देते। स्वामी जी ने कर्म कांड के पुस्तकों का यह अभिप्राय लिखा है कि यज्ञ में स्त्री को मन्त्र उच्चारण करने पड़ते हैं यदि स्त्री को वेद का अधिकार न होता तो यज्ञ में उस को मंत्र उच्चारण का अधिकार क्यों दिया जाता। स्वामी जी के लेख को ज़रा ग़ौर से पढ़ने की कृपा करें।

"(प्रश्न)—क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें।

उत्तर—अवश्य, देखो श्रोत सूत्रादि में—इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्। अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेद आदि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वर सहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृत भाषण कैसे कर सके (सत्यार्थ०समु०३)"

—इससे साफ साबित है कि 'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्' इस पाठ के देने से स्वामी जी का यह मतलब नहीं है कि उपरोक्त पाठअक्षरशः श्रौत सूत्रादि में मौजूद है। अपितु स्वामी जी का यह अभिप्राय है कि श्रौत सूत्रादि में स्त्री को यज्ञ में मन्त्र उच्चारण की आज्ञा मौजूद है। और स्वामी जी की यह बात सोलह आने ठीक है कि यज्ञ में स्त्री को वेद मन्त्रों के बोलने की आज्ञा और अधिकार श्रौत सूत्रादि पुस्तकों में मौजूद है। ध्यान पूर्वक पढ़ने की कृपा करें।

(१) कात्यायन श्रौत सूत्र—प्रक्षालितेषु महिष्यश्वमुप संविशत्याहमजानीति (का० २०।६।१४)

भाषार्थ—पशु के प्राणों के शुद्ध होने पर यजमान की पत्नी घोड़े के पास सोती है और 'अहमजनि इत्यादि यजु० २३।१९' मन्त्र को बोलती है (देखो इसी मन्त्र का महीधर भाष्य)

(२) कात्यायन श्रौत सूत्र—

अश्वशिश्नमुपस्थे कुरुते वृषा वाजीती।

(का० २०।६।१६)

भाषार्थ—यजमान की स्त्री घोड़े के लिंग को योनि में डाल कर "वृषा वाजी इत्यादि यजु० २३।२०" इस मंत्र को बोले (देखो इसी मंत्र का महीधर भाष्य)।

(३) गोभिल गृह्यसूत्र—

पश्चादग्नेः संवेष्टितङ्कटमेवञ्जातीयं वाऽन्यत् पदा प्रवर्तयन्तीं वाचयेत् प्रमे पतियानः पन्थाः कल्पतामिति।

(गोभिल० २।१।१९—२२)

भाषार्थ—एवं अग्नि के पीछे स्थापित कर या इसी प्रकार का अन्य आसन कन्या के पैर से चल कर अग्नि के समीप बिछाया हुआ बर्हि तक ले आवे उस समय वधू को "प्रमे" मन्त्र पाठ करावे ।

(४) आश्वलायन श्रौत सूत्र—

वेदं पत्न्यै प्रदाय वाचयेद्धोताऽध्वर्युर्वा वेदोऽसिवित्तिरसि।

(आश्व० श्रौ० १ । ११ । १)

भाषार्थ—वेद पत्नी को देकर होता व अध्वर्यु यह मन्त्र बुलवावे "वेदोऽसिवित्तिरसि इत्यादि"

(५) ऋग् विधान—

इमामिति जपेत् कन्या नाभिमालभ्य नित्यशः ॥११७॥
एवमेव जयेद्भर्ता ततो दीर्घायुषौनु तौ ॥११८॥

(शौनकाचार्य कृतऋग् विधान अ० ३ खं० २२)

भाषार्थ—"इमांत्वमिन्द्रमीढ्वः इत्यादि ऋ० १० । ८५ । ४५" इस मन्त्र का कन्या नाभि का स्पर्श करके जप करे ऐसे ही पति भी जप करे तो निश्चय से दोनों की दीर्घ आयु हो जावेगी।

(६) ऋग्विधान—

इमामिति त्र सूक्तेन दशकृत्वोदशावरम् ।
सपत्नीं बाधते तेन पतिश्चातीव मन्यते ॥ ६३ ॥

(शोनकाचार्य कृत ऋगवि० अ० ४ खं० १२)

भाषार्थ—'इमाम्' इत्यादि. ऋग्वेद के इस सूक्त को यदि दश दश वार जपें तो सौत को नुक़सान पहुंचावे तथा उस का पति भी उसका आदर करे ॥

(७) चारों वर्णों की स्त्रियों को वेदाधिकार—

ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणां स्त्री जनेश्वर।
यथा क्रमेण पूजयैनां गन्ध पुष्पजलाक्षतैः ॥ ८२ ॥
कुंकुमालक्तकैर्दीपै र्माषान्नवटकैः शुभैः।
कुसुमैर्वत्सकंचापि मंत्रेणानेन पाण्डव ॥ ८३ ॥
"ओं माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानो
ममृतस्यनाभिः। प्रनुवोचंचिकितुषे जनाय।
मा गामनागामदितिं वधिष्ट" नमोनमोनमः स्वाहा ॥ ८४ ॥
इत्थं संपूज्य गौंपृष्ट्वाश्वात्तां चक्षमापयेत् ॥ ८५ ॥

(भविष्य० उत्तर० अ० ६९)

भाषार्थ—हे राजन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रों की स्त्रियां क्रमशः इस गौ को गन्ध, पुष्प, जल, अक्षत, से पूजा करके और कुंकुम पुष्प युक्त दीपक तथा उर्द अन्न की बड़ियों से तथा फूलों से गौ को बछड़े समेत "ओंमातारुद्राणाम्' इस प्रकार पूजा करके पीछे गौ को विसर्जन करे॥ ८२ से ८५ तक यह मन्त्र "ऋ० मं० ८ सूक्त० १०१ मं० १५" है। जब चारों ही वर्णों की स्त्रियों को इस के उच्चारण का अधिकार है। तो कौन कह सकता है कि स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।

(८) वेश्या को वेदाधिकार—

कोऽदाति पठेन्मन्त्रंध्यायंश्चेतसिमाधवम्।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसृजेद् द्विज पुङ्गवम्।
शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ॥ ५४ ॥

(भविष्य० उत्तर० अ० १११)

भाषार्थ—वैश्या को चाहिये कि वह 'कोऽदादिति' इस वेद मन्त्र को पढ़े और माधव का चित में ध्यान करके फिर ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करके उस को उसके घर भेज दे और शय्या आसन आदि सब ब्राह्मण के घर पहुंचा देवे ॥ ५४॥ यह मन्त्र 'यजु० ७।४८' का है जब वैश्या को भी इस के उच्चारण का अधिकार है तो कौन कह सकता है कि स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।

(६) शिव ने पार्वती को मन्त्रोपदेश—

उपदिष्टास्त्वया देव मंत्राः सप्रणवा मताः ।
तत्रादौश्रोतुमिच्छामि प्रणवार्थं विनिश्चितम् ॥ २१ ॥

(शि० कैलाश० अ० २)

भाषार्थ—पार्वती ने शिव से कहा कि हे देव आपने जो प्रणव सहित मन्त्रों का मुझे उपदेश किया है इन में से मैं पहिले प्रणव का अर्थ निश्चित रूप से सुनना चाहती हूं ॥ २१।

शिवका पार्वती को मन्त्रोपदेश करना स्त्रियों के वेदाधिकार को स्पष्ट सिद्ध करता है।

(१०) राधा कृष्ण के विवाह में—

श्रीकृष्ण हस्तंराधायाः पृष्ठदेशे प्रजापतिः ।
स्थापयामास मन्त्रास्त्रीन् पाठयामास राधिकाम् ॥ १२६ ॥
पुटांजलिं कारयित्वा माधवं राधिकां विधिः ॥ १२६ ॥
पाठयामासवेदोक्तान् पंच मंत्रांश्च नारद ॥ १३० ॥

(ब्रह्मवैवर्त्त० खण्ड ४ अ० १५)

भाषार्थ—ब्रह्मा ने श्री कृष्ण के हाथ को राधा की पीठ पर रखवा कर तीन मन्त्र राधा को पढ़ाये ॥ १२६ ॥ फिर

ब्रह्मा ने कृष्ण तथा राधा की पुटाञ्जलि करवा कर ॥ १६ ॥
वेद के पांच मन्त्र दोनों को पढ़ाये ॥ १३० ॥

जब ब्रह्मा ने स्वयं राधा को वेद मन्त्र पढ़ाये तो कौन कह सकता है कि स्त्री को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है।

३०८ (प्रश्न)—स्त्रियों को केवल मन्त्र भाग के पढ़ने का निषेध है। अन्य शास्त्रों का नहीं। गार्गी प्रभृति जितनी भी विदुषियां भारतवर्ष में हुई हैं। ये सब शास्त्रों की विदुषियां थीं। किंतु मन्त्र भाग से सब की सब अनभिज्ञ थीं। फिर स्त्रियों का वेद पढ़ना तो इतिहास से भी सिद्ध नहीं। पृ० ३०६ पं० १५।

उत्तर—आपका यह लिखना कि 'स्त्रियों को केवल मन्त्र भाग के पढ़ने का निषेध है" यह साबित करता है कि ब्राह्मण भाग के पढ़ने का स्त्रियों को अधिकार है। तो क्या आप ब्राह्मण भाग को वेद नहीं मानते। यदि मानते हैं तो आपके कथन से ही स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार साबित होगया। फिर आपने स्वयं अपने पुस्तक के पृष्ठ २६७ पं० २२ में लिखा है कि "वेद ने जिन वर्णों को यज्ञ करने का अधिकार दिया है उन्हीं को वेद पढ़ने का भी अधिकार दिया है" और फिर आप पृ० ३३७ पं० १६ में लिखते हैं कि "अग्निहोत्र बिना स्त्री के होता नहीं" तो इस से आपके कथन से ही स्त्री को वेद का अधिकार सिद्ध होगया।

और आप अपने पुस्तक के पृ० २७२ नं० २ पर स्वयं लिखते हैं कि इस (आयं गौः) मंत्र का सर्पराज्ञी कद्रू

ऋषि है। और ऋषि कहते ही उसको हैं जो वेद के तत्व को जानता हो। अतः आपके लेख से ही स्त्री को वेद का अधिकार सिद्ध होगया।

(२) शुद्धाः पूतायोषितो यज्ञिया इमाः इत्यादि ऋ० ६। १२२। ५॥ ये शुद्ध और पवित्र स्त्रियां यज्ञ के क़ाबिल हैं॥ ५॥

याद्म्पति समनसा सुनुतआ च धावतः। देवानित्यया शिरा॥ ऋ० ८। ३१। ५॥ स्त्री पुरुष को इकट्ठे प्रसन्नता पूर्वक नित्य यज्ञ करना चाहिये॥ ५॥

ये दोनों मन्त्र बतलाते हैं कि स्त्री पुरुष को इकट्ठे मिल कर यज्ञ में शामिल होना चाहिये।

यजमानः सपत्नीकः पुत्र पौत्र समन्वितः।
पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद् याग मण्डपम्॥ १६॥
(भविष्य० मध्यम० भाग २ अ० २०)

यजमान अपनी पत्नी तथा पुत्र पौत्र सहित पश्चिम द्वार को प्राप्त होकर यज्ञमण्डप में प्रवेश करे॥ १६॥

(३) इसी विधि को पूरा करने के लिये राम ने सोने की सीता बनाई।

कांचनींमम पत्नीं च दीक्षायां यज्ञांश कर्मणि॥ २५॥
(वाल्मी० उत्तर० स० ९१)

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।
यज्ञे यज्ञे चपत्न्यर्थं जानकी कांचनी भवत्॥ ७॥
(वाल्मी० उत्तर० स० ९८)

यज्ञ कर्म की दीक्षा में सीता के स्थान में मेरी सोने की पत्नी बनाओ॥ २५॥ सीता के पश्चात् राम ने दूसरी पत्नी

स्वीकार नहीं की। प्रत्येक यज्ञ में पत्नी के स्थान में सोने की सीता रक्खी जाती थी ॥ ७ ॥

(४) कौशल्या तथा द्रौपदी यज्ञ में—

होता ऽ ध्वर्यु स्तथोद्गाता हयेन समयोजयन्।
महिष्या परिवृत्याथ वावातापरां तथा ॥ ३५ ॥

(वाल्मी० बाल० स० १४)

ततः संज्ञाप्य तुरगं विधिवद्याजकास्तदा।
उपसंवेशयन्राजंस्ततस्तां द्रुपदात्मजाम्।
कलाभिस्तिसृभीराजन् यथा विधि मनस्विनीम् ॥ २ ॥

(महा० अश्वमे० अ० ८६)

कौशल्या को दशरथ के साथ तथा द्रौपदी को युधिष्ठिर के साथ यज्ञ के कर्मों में प्रयुक्त किया गया स्पष्ट है।

(५) कौशल्या का हवन करना—

सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रत परायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मंत्र वत्कृतमंगला ॥ १५ ॥

(वाल्मी० अयोध्या० स० २०)

धर्मनित्या यथा कालमग्न्यागारपराभव।
देवि देवस्य पादौ च देववत्परिपालय ॥ १८ ॥

वाल्मी० अयोध्या० स० ५८)

अथवा स्वयमेवाहं सुमित्रानुचरा सुखम्।
अग्नि होत्रं पुरस्कृत्य प्रस्थास्ये येन राघवः ॥ १४ ॥

(वाल्मी० अयो० स० ७५)

भावार्थ—जब राम कैकेयी के महलों से कौशल्या के महलों में पहुंचा। तब वह कौशल्या सूक्ष्म वस्त्र पहिने प्रसन्न चित्त व्रत परायण होकर मंगलार्थ वेद मंत्रों से अग्नि होत्र कर

रही थी ॥ १५ ॥ राम ने वन से सारथी के हाथ कौशल्या को संदेश दिया। हे देवि ! नित्य धर्म का पालन करते हुवे समयानुसार अग्नि होत्र का पालन करना। और देव दशरथ के पाओं को ईश्वर की भांति पूजना ॥ १८ ॥ जब भरत मामा के घर से आया तब कौशल्या ने कहा। अथवा मैं स्वयं ही सुमित्रा को साथ लेकर सुख पूर्वक अग्नि होत्र को आगे कर के वहीं चली जाऊंगी जहां राम है ॥ १४ ।

श्रुत्वा पुष्ये च पुत्रस्य यौवराज्येऽभि षेचनम्। प्राणायामेन पुरुषंध्या यमाना जनार्दनम्॥ ३२ ॥

(वाल्मी० अयो० स० ४)

पुत्र के अभिषेक को सुन कर कौशल्या ने प्रणायाम द्वारा ईश्वर का ध्यान किया ॥ ३३ ॥

(६) सीता का संध्या तथा अग्नि होत्र करना—

सन्ध्या कालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलाँ संध्यार्थे वर वर्णिनी ॥ १४ ॥

(वाल्मी० सुन्दर० स० ४९)

वैदेही शोक संतप्ता हुताशनमुपागमत् ॥ २५ ॥

(वाल्मी० सुन्दर० स० ५३)

गते पुरोहिते रामः स्नातो नियत मानसः।
सहपत्न्या विशालाक्ष्या नारायणमुपागमत् ॥१॥
प्रगृह्यशिरसापात्रीं हविषो विधिवत्ततः।
महते दैवतायाज्यं जुहाव ज्वलितानिले ॥२॥

(वाल्मी० अयो० स० ६)

भावार्थ—हनुमान् सीता को ढूंढते २ जब अशोक-वाटिका में पहुंचे तब प्रातः अनुमान किया—सायं का काल हो जाने से सन्ध्या करने के लिये वह श्यामा संध्या सुन्दरी सीता इस शुद्ध जल वाली नदी पर अवश्य आवेगी ॥४६॥ जब हनुमान् जी के पकड़े जाने का समाचार सीता को मिला तो—सीता शोक से दुःखित होकर अग्नि होत्र करने चली गई ॥२५॥ पुरोहित ने अभिषेक का समाचार सुनाया तो—पुरोहित के चले जाने पर राम ने स्नान किया और मन को एकाग्र करके अपनी सुन्दर नेत्रों वाली पत्नी सीता के साथ प्रथम संध्या की ॥१॥ फिर प्रतिष्ठा पूर्वक सामग्री के पात्र को लेकर विधि अनुसार परमात्मा की आज्ञा पालन के लिये अग्नि में घृत का हवन किया ॥२॥

(७) कैकेयी वेद ज्ञाता थी—

तदासुमन्त्र मन्त्रज्ञा ककेयी प्रत्युवाचह ॥५९॥

(वाल्मी० अयो० स० १४)

तब मंत्रों को जानने वाली कैकेयी ने सुमंत्र को कहा—

(८) द्रोपदी पण्डिता थी—

प्रिया च दर्शनीया च पंडिता च पतिव्रता।
अथ कृष्णा धर्मराजमिदं वचनं मब्रवीत् ॥ २ ॥

(महा० वन० अ० २७)

भावार्थ—प्रेम के योग्य दर्शन के क़ाबिल पण्डिता और पतिव्रता द्रोपदी ने धर्मराज से ये वचन कहे।

(९) स्त्री को योगाधिकार तथा सन्यासाधिकार—

सा प्राप्य मिथिलांरम्यां प्रभूत जन संकुलाम् ।
भैक्ष्यचर्यापदेशेन ददर्श मिथिलेश्वरम् ॥ १२ ॥
ततोऽस्याः स्वागतं कृत्वा व्यादिश्य च वरासनम् ।
पूजितां पादशौचेन वरान्नेनाप्यतर्पयत् ॥ १४ ॥
अथ भुक्तवती प्रीत्या राजानं मन्त्रिभिर्वृतम् ।
सर्वभाष्यविदां मध्येचादेयामास भिक्षुकी ॥ १५ ॥
सुलभात्वस्य धर्म्मेषु मुक्तो नेति ससंशया ।
सत्त्वं सत्त्वेन योगज्ञा प्रविवेश महीपतेः ॥ १६ ॥
नेत्राभ्यां नेत्रयोरस्य रश्मीन् संयम्यरश्मिभिः ।
सास्म संचोदयिष्यंति योगबन्धैर्बबन्धह ॥ १७ ॥
जनकोऽप्युत्स्मयन्राजा भावमस्या विशेषयन् ।
प्रति जग्राह भावेन भावमस्या नृपोत्तम ॥ १८ ॥

(महा० शान्ति० अ० ३२०)

भावार्थ—वह योगिनी सन्यासिनी सुलभा जन समूह से पूर्ण मिथिला में भिक्षा के उद्देश्य से राजा जनक के पास गई ॥ १२ ॥ तब राजा ने उसका स्वागत करके श्रेष्ठ आसन दिया। पाओं धोकर उसकी पूजा की तथा श्रेष्ठ अन्न से उसको तृप्त किया ॥ १४ ॥ प्रेम से भोजन करके मन्त्रियों से युक्त राजा को सब भाष्य जानने वालों के मध्य में उस सन्यासिनी ने प्रेरणा की ॥१५॥ सुलभा को संशय हुआ कि यह राजा धर्मों में मुक्त हैं वा नहीं। योग के जानने वाली अपने सत्त्व से राजा के सत्त्व में प्रवेश कर गई ॥१६॥ तब उस सुलभाने अपने नेत्रों की ज्योतिसे राजा के नेत्रों की ज्योति को क़ाबू करके योग के बंधनों से राजा को बांधकर

प्रेरणा की ॥२७। राजा जनक भी मुस्कराता हुवा उस के भाव को अधिक जान कर अपने भाव से उस के भाव को ग्रहण कर गया ॥१८॥

(१०) स्त्री को राज्याधिकार—

कुमारो नास्ति येषां च कन्यास्तत्राभिषेचय।
कामाशयो हि स्त्रीवर्गः शोकमेवं प्रहास्यसि ॥४५॥
(महा० शान्ति० अ० ३३)

भाषार्थ—जिन के लड़का न हो वहां पर कन्या को राज्याभिषेक कर दो। कामनाओं की आशा करने वाला स्त्रीवर्ग होता है। उन के शोक को तू इस प्रकार कम कर सकेगा ॥४५॥

(११) स्त्री को युद्धाधिकार—

प्रिये गच्छ रणं शीघ्रं हरिनागरमास्थिता।
मम वेषं शुभं कृत्वातारकं जहि माचिरम् ॥ १९९॥
तदा वेला महाशत्रुं तारकं बलवत्तरम्।
छित्वाशस्त्राणि खड्गेन शिरः कायादपाहरत् ॥२०६॥
(भविष्य० प्रति सर्ग० अ० ३२)

भाषार्थ—ब्रह्माने अपनी स्त्री वेला से कहा कि हे प्यारी! घोड़े पर चढ़ कर शीघ्र युद्ध स्थल में जा। मेरा वेष धारण करके तारक को मार, देरमत कर ॥१९९॥ तब वेला ने महाशत्रु बलवान् तारक के शस्त्रों को अपने खड्ग से तोड़ फोड़ कर उस के शिर को धड़ से अलग कर दिया ॥२०६॥

(१२) चारों वेदों की पण्डिता स्त्री—

कुशध्वजस्य पत्नी चदेवी मालावती सती।
सा सुषाव च कालेन कमलांशाँ सुतां सतीम् ॥ ३ ॥

सा च भूतल संबन्धाज्ज्ञान युक्ता बभूव ह।
कृत्वा वेद ध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिका गृहे ॥ ४ ॥
वेदध्वनिं साचकार जात मात्रेण कन्यका।
तस्मात्तां ते वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ ५ ॥
सततं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्च चत्वार एव च।
सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे साच वेदवती स्मृता ॥ ६४ ॥
(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० १४)

भाषार्थ—कुशध्वज की धर्म्मपत्नी मालावती नाम की सती स्त्री थी। कुछ समय के पश्चात् उसने कमला के अंश सती पुत्री को पैदा किया॥ ३ ॥ वह जन्म लेते ही पृथिवी के संबन्ध से ज्ञान वाली हो गई। प्रसूति गृह में वेद की स्पष्ट ध्वनि करके खड़ी होगई ॥ ४ ॥ वह कन्या पैदा होते ही वेद की ध्वनि करने लगी। इस कारण से वे लोग बुद्धिमान् उस को वेदवती कहने लगे ॥ ५ ॥ निश्चय से चारों वेद मूर्तिमान होकर सदा उसकी ज़बान के अग्रभाग में रहते थे। इसलिये उसका नाम वेदवती था ॥ ६४ ॥

(१३) अत्रसिद्धा शिवा नाम ब्राह्मणी वेदपारगा
अधीत्य सकलान् वेदान् लेभेऽसंदेहमक्षयन्।
(महा० उद्योग० अ० १०८ श्लो० १८—१६)

भाषार्थ—यहां पर शिवा नाम वाली सिद्धा ब्राह्मणी वेदों का पार पाने वाली सब वेदों को पढ़ कर अक्षय विश्वास को प्राप्त हुई (१८—१६)।

कहिये महाराज! अब तो स्त्रियों का वेदाध्ययन अधिकार वेद स्मृति शास्त्र इतिहासादि सब से साबित हो गया। अब और कहिये क्या शंका है।*

*प्रश्न तथा पाठ्य सामग्री का क्रम ठीक है। पृष्ठ सं. अशुद्ध हैं।

विवाह काल

(३०६) प्रश्न—सोलह संस्कारों का वर्णन वेद में नहीं है। वरन धर्मशास्त्रों में विधान है। जब समस्त सोलह संस्कारों का विधान स्मार्त है। तो विवाह भी स्मृति प्रतिपाद्य ही हुआ। पृ० ३३५ पं० ६।

उत्तर—आप की यह प्रतिज्ञा कि सोलह संस्कारों का वर्णन वेदों में नहीं है। क़तई ग़लत है। अपितु वेदों में सोलह संस्कारों के करने की आज्ञा तथा सोलह संस्कारों का मूल मौजूद है। उसी मूल के आधार पर धर्मशास्त्रों तथा गृह्य सूत्रों ने विस्तार पूर्वक संस्कारों की व्याख्या की है।

सोलह संस्कारों के करने की आज्ञा

षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥

यजु० ८। ३३ ॥

भावार्थ—सोलह संस्कारों से युक्त परमैश्वर्य देने वाले गृह आश्रम करने के लिये तुझ को आज्ञा देता हूं ॥ ३३ ॥

इस मंत्र में परमेश्वर ने गृहस्थों के लिये सोलह संस्कारों के करने की स्पष्ट आज्ञा दी है।

अब हम आप को सोलह संस्कारों का मूल वेदों में से दिखाते हैं।

(१) गर्भाधान संस्कार

पर्वताद्दिवो योनेरङ्गादङ्गात्समाभृतम्।
शेपोगर्भस्य रेतोधाः सरौ पर्णमिवादधत् ॥

अथर्व० का० ५ सूक्त २५ मं० १ ॥

भाषार्थ—जननेन्द्रिय गर्भ में वीर्य का धारण करने वाला है। जननेन्द्रिय वीर्य के कारणरूप मेरुदण्ड मस्तिष्क और प्रत्येक अंग से इकट्ठे हुए वीर्य को बाण में पंख की तरह योनि में धारण कराता है॥ १॥

(२) पुंसवन संस्कार

शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वैपुत्रस्य वेदनं तत् स्त्रीष्वाभरामसि॥

अथ० ६। ११। १॥

भाषार्थ—घोड़े के सदृश बलवान् मनुष्य शान्त स्वभाव वाली स्त्री पर आरोहण कर चुका है। इस लिये यह पुंसवन संस्कार किया गया है। यह संस्कार ही सन्तान प्राप्ति कराने वाला है। वही संस्कार हम स्त्रियों का करते हैं॥ १॥

(३) सीमन्तोन्नयन संस्कार

राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु न सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्॥४॥

ऋ० २। ३२

भाषार्थ—मैं दान देने वाली अच्छी प्रकार से बुलाये जाने योग्य स्त्री को अच्छी स्तुति द्वारा बुलाता हूं। और वह उत्तम ऐश्वर्य वाली मेरे आह्वान को सुने और अपने आत्मा से मुझे अच्छी प्रकार समझे और वह हमारे प्रजनन कर्म को बारीक सूई से जैसे वस्त्र के छिद्रों को सी कर पूरा कर लेते हैं, ऐसे ही वह भी इसे अच्छे प्रकार सी दे और बलवान् सैंकड़ों प्रकार से दानादि देने वाले प्रशंसनीय पुत्र मुझे दे॥ ४॥

(४) जातकर्म संस्कार

दश मासाञ्छशयानः कुमारोऽधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥

ऋ० ५ । ७८ । ६ ॥

भाषार्थ—हे परमात्मन् ! दश महीने तक माता के उदर में सोने वाला सुकुमार जीव प्राण धारण करता हुआ जीती हुई अपनी माता से बिना किसी दुख के, अर्थात् सुख पूर्वक बाहर निकले ॥ ६ ॥

(५) नामकरण संस्कार

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि कानामासि ।
यस्यते नामामन्महि यंत्वा सोमेनातीतृपाम भूर्भुवः स्वः
सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥

यजु० ७ । २९ ॥

भाषार्थ—हे बालक ! तू प्रकाश रूप हो । अतिशय प्रकाश रूप हो । तू परमात्मा का है । तू आत्म नाम वाला है । जिस तेरे नाम को हम जानते हैं । जिस तुझ को शांतिदायक पदार्थों से हम तृप्त करते हैं । अनेक गुण युक्त परमात्मा की कृपा से सन्तानों से मैं सुन्दर सन्तान वाला होऊं । वीर सन्तानों से अच्छे वीरों से युक्त होऊं । अन्य पोषणीय भृत्यादि से सुन्दर पोषण रक्षा करने वाला होऊं ॥ २९ ॥

(६) निष्क्रमण संस्कार

शिवास्ते सन्त्वोषधय उत त्वाहार्षमधरस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।
तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्य्याचन्द्रमसावुभा ॥

अथ० । ८ । २ । १५ ॥

भाषार्थ—हे बालक ! तेरे लिये औषधियें कल्याणकारी हों, और तुझ को अन्दर से बाहर लाया हूं, प्रकाशमान् सूर्य्य और चन्द्रमा दोनों तेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥

(७) अन्न प्राशन संस्कार

अन्नपते ऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥
यजु० ११ । ८३

भाषार्थ—हे अन्न के स्वामी परमात्मा ! रोग रहित बल कारक अन्न को हमारे लिये दीजिये, बढ़ाइये । हमारे भृत्यों और गौ आदि पशुओं के लिये भी बल कारक अन्न को दीजिये ॥ ८३ ॥

(८) मुण्डन संस्कार

अदितिः श्मश्रु वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा ।
चिकित्सतु प्रजापति दीर्घायुत्वाय चक्षसे ॥
(अथ० कां० ६ सू० ६८ मं० २)

भाषार्थ—अखंडित अर्थात् तेज़ छुरा केशों को काटे। जल वेग युक्त स्वभाव से केशों को गीला करे। सन्तान का पालक पिता इस बालक को दीर्घ जीवन तक देखने के लिए रोग को निवृत्त करे ॥ २ ॥

(९) कर्ण वेध संस्कार

लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्त्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥
अथ० ६ । १४१ । २

भाषार्थ—धातु के शस्त्र से दोनों कानों को छेद। वैद्य उस शोभावर्धक कार्य्य को करें। वह प्रजा के कल्याण का निर्वाह करने वाला हो ॥ २ ॥

(१०) उपनयन संस्कार

आचार्य्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुतेगर्भमन्तः।
तं रात्रिस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभि संयंति देवाः ॥
(अथ० ११ । ७ । ३)

भाषार्थ— ब्रह्मचारी को यज्ञोपवीत देने वाला आचार्य्य अपने अन्दर करता है। उस ब्रह्मचारी को अपने उदर में तीन रात्रि तक रखता है। जब वह ब्रह्मचारी द्वितीय जन्म लेकर बाहर आता है तब उस को देखने के लिये सब विद्वान् सब ओर से इकट्ठे होते हैं ॥३ ॥

(११) वेदारंभ संस्कार

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्कर स्रजम्।
यथेह पुरुषोऽसत् ॥ यजु० २ । ३३ ॥

भाषार्थ-- हे विद्या दान से रक्षा करने वाले पुरुषो ! तुम जिस प्रकार यह ब्रह्मचारी इस संसार में शारीरिक और आत्मिक बल प्राप्त कर विद्या और पुरुषार्थयुक्त मनुष्य होवे उस प्रकार गर्भ के समान कोमल विद्या ग्रहण के लिये पुष्पों की माला धारण किये हुए इस ब्रह्मचारी को स्वीकार करो ॥ ३३ ॥

(१२) समावर्त्तन संस्कार

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।

स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥
अथ० ११ । ७ । ६ ॥

भाषार्थ—तेज से प्रकाशित कृष्ण चर्म धारण करता हुआ व्रत के अनुकूल आचरण करने वाला और बड़ी बड़ी मूछों वाला ब्रह्मचारी प्रगति करता है। वह लोगों को इकट्ठा करता हुआ बारम्बार उन को उत्साह देता है। और पूर्व से उत्तर समुद्र तक शीघ्र ही पहुंचता है ॥ ६ ॥

(१३) विवाह संस्कार

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥
अथ० ११ । ५ । १८ ॥

भगस्ते हस्तमग्रभीत् सविता हस्तम ग्रभीत् ।
पत्नी त्वमसि धर्म्मणाहं गृहपतिस्तव ॥
अथ० १४ । १ । ५१ ॥

भाषार्थ—ब्रह्मचारिणी कुमारी ब्रह्मचर्य्य सम्पन्न युवा पति को प्राप्त करती है। ब्रह्मचर्य्य बल से सम्पन्न होने पर ही वृषभ और अश्व संज्ञक पुरुष भोग्य पदार्थों का भोग कर सकते हैं ॥ १८ ॥ हे वरानने ! ऐश्वर्य युक्त मैं तेरे हाथ को ग्रहण कर चुका हूं। धर्म युक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे हाथ को ग्रहण कर चुका हूं। तू धर्म से मेरी पत्नी है। मैं तेरा स्वामी हूं ॥५१॥

(१४) वानप्रस्थ संस्कार

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि ।
कथा ग्रामं न पृच्छसि नत्वा भीरिव विन्दतीं ३ ॥ १ ॥
(ऋ० १० । १४६)

भावार्थ—यह जंगलों जंगलों घूमने वाला वानप्रस्थी गावों से दूर प्राप्त होता है। अर्थात् गावों में नहीं रहता। परन्तु उन से दूर रहता है। वह तू नगरों तथा गावों में जाने की बात या दशा को क्यूँ नहीं पूछता। तुझ को इस निर्जन वन में घूमते हुए क्या भय नहीं लगता है॥ १॥

(१५) सन्यास संस्कार

यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।
अग्निर्मा तत्र नयत्वग्निर्मेधा दधातु मे ॥
अथ० १९।४३।१॥

भावार्थ—जिस लोक को वेद वेत्ता ब्रह्मज्ञानी सन्यासी लोग अहिंसा सत्य भाषण आदि व्रतों से और तप के द्वारा प्राप्त करते हैं। सर्वाग्रणी प्रभु मुझे उसी अवस्था में पहुंचाये। और मुझ में सदसद्विवेकिनी उत्तम बुद्धि को धारण कराये॥१॥

(१६) अन्त्येष्टि संस्कार

आरभस्व जातवेद स्तेजस्वद्धरो अस्तुते ।
शरीरमस्य संदहाथैनं धेहि सुकृतामु लोके ॥
अथ० १८।३।७१॥

भावार्थ—हे अग्ने ! इस मृत देह को प्राप्त हो और तेरा हरण सामर्थ्य तेजस्वी हो। इस प्राणी के मृत शरीर को जला दे। और इस को पुण्यात्माओं के लोक स्वर्ग लोक में धारण कर॥ ७१॥

अब आप ने देख लिया कि जैसे और संस्कारों का वेद में वर्णन है। वैसे ही विवाह संस्कार का भी वेद में वर्णन है अतः और संस्कारों की भांति विवाह भी वैदिक ही है,

केवल स्मार्त नहीं है ।

(३१०) प्रश्न—स्मृतियों में विवाह काल निम्न प्रकार से वर्णित है। पढ़ कर देखिये—

अष्ट वर्षा भवेद् गौरी नव वर्षा च रोहिणी ।
दश वर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥
(अंगिरा स्मृति)

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ।
मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयं ॥ ७ ॥
यस्तां समुद्वहेत्कन्या ब्राह्मणो मदमोहितः ।
असंभाष्यो ह्यपांक्तेयः स विप्रो वृषली पतिः ॥ ९ ॥
(पाराशर स्मृति अ० ७)

तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत् ।
विवाहो ह्यष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥ ६८ ॥
(संवर्त स्मृति)

यावन्तः ऋतवस्तस्याः समतीयुः पतिं विना ।
तावन्त्यो भ्रूण हत्याः स्युस्तस्य यो न ददाति ताम् ॥
(नारद स्मृति)

कन्या द्वादश वर्षाणि या ऽप्रदत्ता वसेद् गृहे ।
ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम् ॥
(यम स्मृति) पृ० ३३५ से ३३७

भाषार्थ—आठ वर्ष की कन्या को गौरी और नौ वर्ष की कन्या को रोहिणी तथा दश वर्ष की कन्या की कन्या संज्ञा होती है। दश वर्ष के पश्चात् कन्या रजो धर्म्म वाली होती

है। माता, पिता तथा ज्येष्ठ भाई यदि रजस्वला होने तक कन्या का विवाह न करें तो ये तीनों नरक को जाते हैं।

(अंगिरा)

जो बारहवें वर्ष में कन्या का विवाह नहीं करता उस कन्या के जो मास मास में ऋतु धर्म द्वारा शोणित प्रस्रवित होता है उस शोणित को उस के पितर स्वयं पीते हैं। बारह वर्ष की कन्या होने के पश्चात् जो वर ब्राह्मण कन्या से विवाह करता है, वह मदमोहित है। उस के साथ में कभी बोलना न चाहिये। उस को पंक्ति में भोजन न खिलाना चाहिये। उस को वृषली पति समझो। (पाराशर)

कन्या को ऋतुमती होने से पहिले विवाह दे और कन्या के अष्टम वर्ष में विवाह करना बहुत ही श्रेष्ठ है (संवर्त)

पति के बिना कन्या की जितनी ऋतुयें बीतती हैं उतनी ही भ्रूण हत्या का पाप उस को लगता है, जो ऋतु काल से पहिले कन्या का विवाह नहीं करता (नारद)

बारह वर्ष तक बिना व्याही हुई कन्या के घर में रहने से उस कन्या के माता पिता को ब्रह्म हत्या लगती है। इस के पश्चात् कन्या को स्वयंवर द्वारा विवाह करने का हक़ है (यम)

उत्तर—आप की ये संपूर्ण स्मृतियां तथा उन के श्लोक वेद विरुद्ध होने से कपोलकल्पित और मिथ्या हैं। क्यूँकि वेद स्त्री तथा पुरुषों को जवान आयु में विवाह करने की आज्ञा देते हैं—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ॥

(अथर्व० ११।५।१८)

भाषार्थ—ब्रह्मचर्य्य से युक्त कन्या ब्रह्मचर्य्य से युक्त जवान पति को प्राप्त होती है। फिर वेद कहता है कि—

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन्त्यापः।
स शुक्रेभिःशिक्वभिरेवदस्मे दीदायानिध्मोघृतनिर्णिगप्सु॥
ऋ० २।३५।४॥

भाषार्थ—जो उत्तम ब्रह्मचर्य्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यन्त शुद्ध जवान कन्यायें जैसे जल वा नदी समुद्र को प्राप्त होती हैं। वैसे हम को प्राप्त होने वाली उस ब्रह्मचर्य्य और विद्या से परिपूर्ण शुभ लक्षण युक्त जवान पति को अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं। वह ब्रह्मचारी शुद्ध गुण और वीर्य आदि से युक्त होके हमारे मध्य में अत्यन्त श्रीयुक्त कर्म को और अपने तुल्य युवती स्त्री को प्राप्त होवे। जैसे अन्तरिक्ष वा समुद्र में जल को शोधन करने हारा आप प्रकाशित विद्युत् अग्नि है। इसी प्रकार स्त्री और पुरुष के हृदय में प्रेम बाहर अप्रकाशमान भीतर सुप्रकाशित रह कर उत्तम सन्तान और अत्यन्त आनन्द को गृहाश्रम में दोनों स्त्री पुरुष प्राप्त होवें॥४॥

मनुस्मृति भी इसकी ताईद करती है—

त्रीणिवर्षाण्युदीक्षेतकुमार्य्युतुमती सती।
ऊर्ध्वंतु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥९०॥
(मनु० ९)

भाषार्थ—कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे। जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ वार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इस से पूर्व नहीं।

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि ।
नचैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥८९॥

(मनु० ९)

चाहे लड़का लड़की मरण पर्यन्त कुमारे रहें और कन्या ऋतुमती भी घर रहे परन्तु गुणहीन के साथ कभी भी विवाह न करना चाहिये अर्थात् सदृश गुण कर्म स्वभाव वालों का ही विवाह होना योग्य है। और फिर सुश्रुत इस को विस्तृत रूप से वर्णन करता है कि—

ऊन षोडश वर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः सविपद्यते ॥४७॥
जातोवा न चिरंजीवेद्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥४७॥

(सुश्रुत शारीरक स्थान अ० १०)

भावार्थ—सोलह वर्ष से न्यून वय वाली स्त्री में; पच्चीस वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष जो गर्भ को स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता अर्थात् पूर्ण काल तक गर्भाशय में रह कर उत्पन्न नहीं होता ॥४७॥ अथवा उत्पन्न हो तो फिर चिर काल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो। इस कारण से अति बाल्यावस्था वाली स्त्री में गर्भस्थापन न करे ॥४८॥ आप की स्मृतियों के प्रमाण वेद विरुद्ध होने से निष्फल ही हैं। क्योंकि—

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठाहिताः स्मृताः ॥९५॥

उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतो ऽन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥९६॥
(मनु० १२)

भाषार्थ—जो स्मृतियें वेद के विरुद्ध हैं और भी जो कोई कुशिक्षा देने वाले ग्रन्थ हैं वे सब के सब संसार विषयक तथा परलोक विषयक निष्फल हैं क्योंकि वे अज्ञान में स्थित हैं।९५।

जो वेद से बाहर स्मार्त ग्रन्थ हैं वे चाहे जो कोई हों पैदा होते हैं और नष्ट हो जाते हैं। वे सब नवीन कालिक होने के कारण निष्फल और झूठे हैं ॥ ९६ ॥

इस असूल के अनुकूल आपके दिये प्रमाणों तथा स्मृतियों की गति वेद विरुद्ध होने से निष्फल तथा असत्य है। इसके अतिरिक्त इन प्रमाणों के अन्दर स्वयं असम्भव तथा परस्पर विरोध दोष है।

(१) आपने अर्थ करते हुए आठ तथा नौ वर्ष की लड़की का नाम भी कन्या ही माना है। फिर गौरी और रोहिणी संज्ञा कहां गई और कन्या संज्ञा में क्या विशेषता हुई।

(२) मनु० ९।८९ में "कन्यर्तुमत्यपि" कह कर मरने तक ऋतु मती की भी कन्या ही संज्ञा मानी है। जब प्रत्येक अवस्था में लड़की का नाम कन्या है तो आपकी संज्ञायें व्यर्थ हुईं।

(३) "रजो दर्शन के खून को प्रत्येक मास में पितर पीते हैं।" क्या यह भी कोई स्वधा पदार्थ है। और इस में पितरों का क्या कसूर। आपने पितरों की भी अच्छी दुर्गति बनाई।

(४) उधर तो आप बारह वर्ष की कन्या के साथ शादी

करने वाले ब्राह्मण को पंक्ति से ख़ारिज करने की धमकी देते हैं उधर बारह वर्ष से पीछे कन्या को स्वयंवर रीति से विवाह की आज्ञा देते हैं ।

(५) उधर तो मनु जी ६ । ८९ में माता पिता को आज्ञा देते हैं कि कन्या को अयोग्य वर से न विवाहा जावे, चाहे कन्या मरने तक कुमारी रहे उधर विवाह न करने वाले को नारकी ब्रह्महत्यारा और गर्भघातक बतलाया जा रहा है ।

इत्यादि हेतुओं से ये समस्त श्लोक अत्यन्त दूषित हैं। अतः इन स्मृतियों का कथन कि "ऋतुमती होने से पहिले कन्या की शादी करे" वेद तथा युक्ति विरुद्ध होने से अधर्म्म है। तथा वेद की आज्ञा कि "ब्रह्मचर्य से युक्त जवान लड़की का ब्रह्मचर्य से युक्त जवान लड़के से विवाह हो" धर्म्म है ।

(३११) प्रश्न—और भी प्रमाण पढ़िये ।

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यां द्वादश वार्षिकीम् ।
त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षांवा धर्म्मेसीदति सत्वरः ॥ ९४ ॥
(मनु० ६)

भाषार्थ—तीस वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की मनोहर कन्या के साथ ब्याह करे अथवा चौबीस वर्ष का पुरुष आठ वर्ष की कन्या को विवाहे । वह शीघ्र ही धर्म में दुःख पाता है। पृ० ३३७ मं ११

उत्तर—श्रीमान् जी यह श्लोक तो हमारी ही ताईद करता है कि जो आदमी ३० वर्ष की आयु में बारह वर्ष की कन्या से तथा २४ वर्ष वाला ८ वर्ष की कन्या से विवाह करेगा वह गृहस्थ धर्म में शीघ्र ही दुख पावेगा ॥ क्योंकि वेद से विरुद्ध

काम का नाम पाप होता है और पाप का फल दुःख है। जब वेद जवान आयु में लड़का लड़की के विवाह की आज्ञा देता है तो कम आयु में शादी करने वाला अवश्य ही दुःख पावेगा इस में संदेह ही क्या है। क्यूंकि वेद की आज्ञा है कि—

आधेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्या नव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवा नामसुरत्वमेकम् ॥
ऋ० ३।५५।१६॥

भाषार्थ—जो दुही नहीं हैं ऐसी गौवों की तरह अविवाहित बालकावस्था से रहित सब उत्तम व्यवहारों को पूर्ण करने वाली कुमारावस्था को उल्लंघन कर यौवनावस्था को प्राप्त होती हुई नवीन नवीन शिक्षा से युक्त विद्वानों द्वारा दिये गये विज्ञान को प्राप्त पूर्ण शिक्षित युवतियां गर्भ धारण करें॥ १६॥ इस से साबित है कि वेद स्त्रियों का युवावस्था में विवाह होना मानता है, बालावस्था में नहीं।

(३१२) प्रश्न—जो द्विज चौबीस वर्ष की अवस्था में वेदाध्ययन छोड़े उस को आठ वर्ष की कन्या के साथ विवाह करना योग्य है। क्योंकि वेदाध्ययन छोड़ने से दूसरे दिवस ही अग्निहोत्र लेना पड़ेगा और अग्निहोत्र बिना स्त्री के होता नहीं इस कारण आठ वर्ष की कन्या से विवाह होना शास्त्र ने लिखा है। इस बात को मनु ने भी स्पष्ट कर दिया है। तीस वर्ष की अवस्था में जो वेदाध्ययन छोड़े वह बारह वर्ष की कन्या के साथ विवाह करे। पृ० ३३७ पं० १७

उत्तर—कहिये महाराज! क्या ब्रह्मचारी अध्ययन अवस्था में अग्निहोत्र नहीं करता जो उसे वेदाध्ययन छोड़ने पर दूसरे ही दिन अग्निहोत्र लेना पड़ता है। यह आपकी बात कतई

बनावटी है। जब ब्रह्मचर्य अवस्था में बिना स्त्री के अग्निहोत्र कर सकता है तो अध्ययन छोड़ने पर अकेले को अग्निहोत्र करने में क्या मनाही है। और जो भीष्म की भांति आयु भर ब्रह्मचारी रहना चाहे, क्या उसे स्त्री के बिना अग्निहोत्र करना मना होगा। देखिये —

अग्नीन्धनं भैक्षचर्यामधः शय्यां गुरोर्हितम् ।
आसमावर्तनात्कुर्यात् कृतोपनयनो द्विजः ॥ १०८ ॥
(मनु० २)

भाषार्थ—उपनयन करने से लेकर समावर्तन संस्कार तक द्विज को चाहिये कि वह अग्निहोत्र भिक्षाचरण नीचे सोना और गुरु का हित करता रहे ॥ १०८ ॥ अतः आप की यह प्रतिज्ञा तो निराधार है। क्यूंकि ब्रह्मचारी को हर हालत में बिना स्त्री के अग्निहोत्र करने का हक़ है।

आपका यह लिखना कि "अग्निहोत्र बिना स्त्री के होता नहीं" स्त्री को अग्निहोत्र यज्ञ तथा वेदाध्ययन का अधिकार सिद्ध करता है।

फ़िर यदि आप की बात मान भी ली जावे कि "वेदाध्ययन छोड़ने पर अग्निहोत्र लेने के लिये स्त्री से विवाह करना ज़रूरी है" तो तीस वर्ष वाला बीस वर्ष की कन्या से तथा चौबीस वर्ष वाला सोलह वर्ष की स्त्री से विवाह कर सकता है। यह क्या ज़रूरी है कि बारह और आठ वर्ष की स्त्री से ही विवाह करे। और इस में क्या प्रमाण है। जब वेद युवा तथा युवती का ही विवाह होना बताता है। तो बालकावस्था का विवाह वेद विरुद्ध होने से पाप तथा दुःख का कारण है।

जैसा कि मनु ने स्पष्ट लिख दिया है कि "तीस वर्ष का बारह वर्ष की से तथा चौबीस वर्ष वाला आठ वर्ष की कन्या से विवाह करके गृहस्थ धर्म में दुःख पाता है"। आप का इस श्लोक से यह भाव निकालना कतई गलत है कि "जो तीस वर्ष वाला बारह वर्ष से कम आयु वाली कन्या से या चौबीस वर्ष वाला आठ वर्ष से कम आयु वाली कन्या से विवाह करेगा वह गृहस्थ धर्म में दुःख पावेगा, अपितु वही अर्थ ठीक है जो हम ने किया है। क्यों कि बारह तथा आठ वर्ष की आयु में भी कन्या का विवाह करना वेद विरुद्ध होने से पाप है। जैसे—

अपश्यंत्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्येनाधमानाम्।
उपमामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्रजायस्व प्रजया पुत्र कामे॥
ऋ० १०। १८३। २॥

भाषा—हे वधू। सौंदर्ययुक्त अपने शरीर का ऋतु कालीन संयोग चाहती हुई तुझ को मैं मन से चाहता हूं। हे सन्तान चाहने वाली वधू! अत्यन्त तरुणावस्थासम्पन्न तू मुझे विवाह द्वारा प्राप्त कर और और सन्तानोत्पत्ति कर॥ २॥

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि जवान स्त्री उस समय शादी करे जब वह ऋतु स्नाता हो कर पुत्र की कामना से गर्भ धारण करने को तय्यार हो। बारह तथा आठ वर्ष की कन्या उक्त प्रकार की होती ही नहीं। अतः आठ तथा बारह वर्ष की लड़की की शादी वेद विरुद्ध होने से पाप है।

११३ (प्रश्न) शास्त्र कन्याओं का विवाह थोड़ी उम्र में

और पुरुषों का विवाह अधिक उम्र में लिखता है। पृ० ३३७ पं० २०

उत्तर—"ब्रह्मचर्य्येण कन्या" इत्यादि वेद के मंत्रों में स्पष्ट वर्णन है कि जवान कन्या जवान पति से ही शादी कर सकती है। वह वृद्ध से या अबुवा से नहीं कर सकती। जैसा कि आपके शास्त्रों में भी वृद्ध विवाह की निन्दा लिखी है।

न श्रेयसे नीयते मन्द बुद्धिः
स्त्री श्रोत्रियस्येव गृहे प्रदुष्टा।
ध्रुवं न रोचेद्भरतर्षभस्य
पतिः कुमार्या इव षष्टि वर्षः ॥ १५ ॥
(महा० सभा० अ० ६३)

भाषार्थ—वह मन्द बुद्धि दुर्योधन कल्याण की तरफ नहीं ले जाया जा सकता जैसे वेदपाठी की दुराचारणी स्त्री। और दुर्योधन धृतराष्ट्र की बात को वैसे ही नहीं मानता जैसे कुमारी साठ वर्ष के बुड्ढे को पति बनाना नहीं चाहती ॥१५॥

जब वृद्ध पिप्पिलाद ने अनरण्य राजा से युवती पद्मा को भार्यार्थ मांगा तो—

रुरोद राजा स गणो दृष्ट्वा विप्रं जरातुरम् ॥ २० ॥
राजा सर्वान् परित्यज्य दत्वा वृद्धाय चात्मजाम्।
ग्लानिं चित्ते समाधाय जगाम तप सेवनम् ॥ ३३ ॥
तद्भार्योपि वनं याते प्राणनाथे तदा गिरे।
भर्तुश्च दुहितु श्शोकात्प्राणांस्तत्याज सुन्दरी ॥ ३४ ॥
(शिव० रुद्र० पार्वती अ० ३४)

भाषार्थ—राजा ब्राह्मण को बूढ़ा देख कर रो पड़ा ।२०।

राजा वृद्ध को कन्या देकर तथा सब कुछ त्याग करके चित्त में ग्लानि को धारण करके वन को चला गया ॥ ३३ ॥

उसकी स्त्री भी पति के वन जाने पर पति तथा पुत्री के शोक से प्राणों को छोड़ गई ॥ ३४ ॥

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि वृद्ध विवाह को शास्त्र अत्यंत घृणा की दृष्टि से देखते हैं। इसलिये आपकी यह प्रतिज्ञा कि पुरुषों का विवाह अधिक आयु में ठीक है। कतई वेद तथा शास्त्र के विरुद्ध है। और जवान लड़की का जवान पति से ही विवाह वेद शास्त्र सम्मत है।

३१४ (प्रश्न) शास्त्र ने यह भी लिखा है कि स्त्रियों का विवाह यदि अधिक उम्र में किया जाये तो रजस्वला होने के पहिले हो, इसके बाद शास्त्र सम्मत नहीं। भारत वर्ष में गर्मी सरदी की अधिकता और न्यूनता से देश भेदानुसार कन्या रजस्वला शीघ्र और देर में होती है। अतः समस्त देशों में रजस्वला होने से पहिले ही विवाह की विधि है। पृ० ३३७ पं० २१

उत्तर—आप के समस्त लेख का सार यह है कि अधिक से अधिक कन्या का विवाह रजस्वला होने से पूर्व हो जाना चाहिये। किन्तु यह आपको प्रतिज्ञा वेद तथा शास्त्रों के अत्यन्त विरुद्ध है। क्योंकि विवाह का एक बड़ा भारी प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है। और वह रजस्वला होने से पहिले हो नहीं सकता। अतः ऋतुकाल से पूर्व विवाह का करना व्यर्थ है। देखिये—

इहैव स्तंमाव्यौष्टंविश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वेगृहे ॥ २ ॥
ऋ० ८।३।२८

भावार्थ—विवाहित स्त्री पुरुषों के लिये ईश्वर की आज्ञा है कि तुम दोनों गृहस्थ आश्रम के शुभ व्यवहारों में रहो। विरोध करके अलग कभी मत हो। संपूर्ण आयु को सुख से भोगो। अपने घर में आनन्दित होके पुत्र और पौत्रों के साथ नित्य धर्म पूर्वक क्रीडा करो ॥ २ ॥

इस से साफ साबित है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है। जो रजस्वला होने से पहिले सिद्ध नहीं हो सकता। अतः रजस्वला होने से पूर्व विवाह करना वेद विरुद्ध तथा निष्प्रयोजन है।

(३१५) प्रश्न—विवाह अन्य जातियों की भांति स्त्री-सुख का साधन नहीं। क्यूंकि धर्म्मशास्त्रों ने इस को संस्कार और भुक्ति मुक्ति का दाता माना है। पृ० ३३७ पं० २६।

उत्तर—श्रीमान् जी! भुक्ति के क्या अर्थ हैं। कहीं इसके अर्थ स्त्री सुख तो नहीं। खैर, आप ने विवाह के एक बड़े प्रयोजन का ज़िकर ही नहीं किया। लीजिये हम आपको विवाह के प्रयोजन बतलाते हैं—

प्रजनार्थं महाभागाः ॥ मनु० ९ । २६ ॥
उत्पादनमपत्यस्य ॥ मनु० ९ । २७ ॥
अपत्यं धर्म कार्य्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितॄणामात्मनश्चह ॥ २८ ॥
(मनु० ९)

भावार्थ—सन्तान पैदा करना स्त्रियों की महाभाग्यता है ॥ २६ ॥ सन्तान का पैदा करना विवाह में प्रयोजन है ॥ २७ ॥ सन्तान पैदा करना, धर्म के काम सेवा तथा उत्तम रति अपना

और पितरों का सुख स्त्री अर्थात् विवाह के आधीन है॥ २८॥

३१६ (प्रश्न)—पुरुष के उपनयन संस्कार का अष्टम वर्ष से आरम्भ होकर द्वादश वर्ष तक समय रहता है। स्त्रियों के उपनयन संस्कार है नहीं। किन्तु उपनयन संस्कार के स्थान में विवाह संस्कार है। इस कारण स्त्रियों के विवाह का समय पुरुषों के उपनयन के होने से मिलता जुलता रक्खा है और यही शास्त्रों का अभिप्राय भी है। पृ० ३३८ पं० २।

उत्तर—आप की यह प्रतिज्ञा ग़लत है कि स्त्री के यज्ञोपवीत नहीं है। क्यूंकि वेद कहता है कि "भीमाजाया ब्राह्मणस्योपनीता" इस मंत्र में स्त्री को यज्ञोपवीत की आज्ञा है (देखो नं० २९८) जब स्त्री को उपाध्याया आचार्या तथा ऋषि बनने और यज्ञ का अधिकार है तो कौन कह सकता है कि स्त्री को यज्ञोपवीत का अधिकार नहीं है। अतः आपकी इस प्रतिज्ञा के खण्डन से आप के सारे ताने बाने का खण्डन हो गया। यद्यपि आपका संपूर्ण लेख वेद विरुद्ध है तथापि आप के लेखानुसार भी कन्या के विवाह का समय ५ से २४ वर्ष तक सिद्ध हो जाता है। जिससे आप की दोनों मर्यादायें कि "ऋतु के पीछे शादी करने वाला नारकी ब्रह्म हत्यारा और गर्भ घातक होता है" तथा "आठ तथा बारह वर्ष से पूर्व विवाह करने वाला गृहस्थ में दुख पाता है" खंडित हो जाती हैं। क्यूंकि यज्ञोपवीत का समय ५ से २४ वर्ष तक है जैसे—

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पंचमे।
राज्ञोबलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥ ३७॥
आषोडषाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।

आद्वाविंशात् क्षत्रबंधोराचतुर्विंशतेविशः ॥ ३८ ॥
(मनु० २)

भावार्थ—ब्रह्म तेज की कामना वाले ब्राह्मण का पांचवें वर्ष में यज्ञोपवीत हो। बल की कामना वाले क्षत्रिय का छठे और धन की कामना वाले वैश्य का आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत हो॥ ३७॥ सोलह वर्ष तक ब्राह्मण की सावित्री अर्थात् यज्ञोपवीत का समय अतिक्रमण नहीं होता। क्षत्रिय का बाईस वर्ष तथा वैश्य का चौबीस वर्ष तक यज्ञोपवीत का समय अतिक्रमण नहीं होता अर्थात् ज़ाइदुलमियाद नहीं होता ॥ ३८॥ इस से स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत ५ वर्ष से २४ वर्ष तक किया जा सकता है। अतः आप के मत में कन्या का विवाह भी पांच वर्ष से चौबीस वर्ष की आयु तक किया जा सकता है। चूँकि वेद कन्या का विवाह युवावस्था में करने की आज्ञा देता है। और युवावस्था सोलह से पूर्व कन्या की होती नहीं। अतः सोलह से कम आयु में कन्या का विवाह वेद विरुद्ध होने से निषिद्ध तथा १६ वर्ष से २४ वर्ष तक वेदानुकूल होने से ठीक है। वाहवाह, कैसी बढ़िया बात हुई।

"आप अपने जाल में सय्याद आ गया"

३१७ (प्रश्न)—शास्त्रों ने यह काल विवाह काल नियत किया है। यह सहवास काल नहीं। सहवासकाल स्त्री की सोलह वर्ष की अवस्था से पाया जाता है। पृ० ३३८ पं० ७

उत्तर—अजी महाराज! जिन का नाम आप ने शास्त्र मान रखा है। उन की तो चुप ही भली है। आप के शास्त्रों में तो इसी अवस्था में सन्तानोत्पत्ति होने की भविष्य वाणी मौजूद है। ज़रा देखिये—

सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च स्त्रियो गर्भधरा नृप ॥ ६० ॥
दश द्वादश वर्षाणां पुंसां पुत्रः प्रजायते ॥ ६१ ॥
(महा० वन० अ० १८८)

पंचमे वाथ षष्ठे वा वर्षे कन्या प्रसूयते ॥ ४९ ॥
सप्तवर्षाष्टवर्षाश्च प्रजास्यन्ति नरास्तदा ॥ ५० ॥
(महा० वन० अ० १९०)

भाषार्थ—सात तथा आठ वर्ष की स्त्रियें गर्भधारण करने वाली होंगी ॥ ६० ॥ दश तथा बारह वर्ष के पुरुषों के पुत्र पैदा होंगे ॥ ६१ ॥ पाँचवें या छठे वर्ष में कन्या प्रसूता बनेगी ॥ ४९ ॥ सात वा आठ वर्ष के पुरुष औलाद पैदा करेंगे ॥ ५० ॥

यह तो है आपके शास्त्रों की अवस्था जिन की कोई एक सम्मति ही नहीं है। अतः इनकी बात तो रहने दीजिये। आपने विवाह काल में तथा सहवास काल में जो अन्तर रक्खा है। इस में कोई प्रमाण नहीं दिया। क्या कोई शास्त्र विवाहकाल और सहवासकाल में आठ वर्ष वा चार वर्ष का अन्तर मानता है। यदि कोई प्रमाण हो तो पेश करो। वरना आप के हां तो विवाह पद्धतियों के साथ स्थान स्थानमें चतुर्थी कर्म की विधि दी है। जिसके अर्थ हैं चौथी रात्री में गर्भाधान संस्कार करना-

अथातश्चतुर्थी कर्म ॥ १ ॥

'अथ' अनन्तरम्, 'अतः' इत आरभ्य 'चतुर्थीकर्म विवाह रात्रितः चतुर्थ्यांतिथौ करणीयम् वक्ष्मीतिशेषः ॥ १ ॥ (सामाश्रमी)

भाषा—अब चतुर्थी कर्म जो विवाह की रात से चतुर्थी तिथि को होता है कहता हूं ॥ १ ॥

उद्ध्वं त्रिरात्रात् संभव इत्येके यदर्त्तुमतीभवत्युपरतशोणिता तदा संभव कालः ॥ ७, ८ ॥

भावार्थ—विवाह रात्री से तीन रात्री ब्रह्मचर्य्य में व्यतीत कर चौथी रात्री में स्त्री प्रसंग करे। यह कई एक आचार्य्यों का मत है। गोभिल के मत से नवोढा पत्नी पति के घर पर आने से पुनः ऋतुमती होने पर जिस समय उसका शोणित वेग कम होगा वही पति के घर पर प्रकाशित आद्य ऋतु प्रथम संगम काल होगा ॥ ७-८ ॥

(गोभिलगृह्यसूत्र प्र० २ खं० ५ सू० १-८)

तामुदुह्य यथर्तु प्रवेशनम् ॥ ७ ॥

एवं पूर्वोक्तेन प्रकारेण तां वधूं उदुह्य विवाहयित्वा विवाह कर्मणा भार्यात्वं संपाद्य यथर्तु प्रवेशनम् ऋतु कालमृतु कालम् प्रवेशनमभिगमनं कुर्यादिति शेषः ॥

(भास्कर गृह्य सूत्र एकादश कंडिका हरिहर भाष्य)

भावार्थ—इस प्रकार से विवाह करके प्रत्येक ऋतु काल में उसके साथ समागम करे ॥ ७ ॥

अतः ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं ॥ ७ ॥

(आश्वलायन० १।८।११)

भाषा—विवाह के तीन रात या बारह रात्री के पीछे समागम करें ॥ ११ ॥

गृह्यसूत्रेषु तावुभौ तत्प्रभृति त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ भूमौ सह शयीयाताम् ॥ ऊर्ध्वं त्रिरात्रात् संभवः। तथा च स्मृतयः—

विवाहे चैव निर्वृत्ते चतुर्थेऽहनि रात्रिषु ।
एकत्वमागता भर्तुः पिण्डे गोत्रे च सूतके ॥

(निरुक्त पं० शिवदत्त शर्म्मा महामहोपाध्याय कृत टिप्पणी "कुहस्विद् दोषा" इत्यादि पर पृ० २२२-२२३)

भाषार्थ—गृह्य सूत्रों में आता है कि स्त्री और पुरुष दोनों विवाह से लेकर तीन रात खारा तथा नमकीन न खाते हुए ब्रह्मचारी रह कर इकट्ठे पृथिवी पर सोवें। तीन रात पीछे समागम करें। और स्मृतियें कहती हैं कि विवाह से निवृत्त होने के पीछे चौथे दिन रात्री को पति के साथ पिंड गोत्र तथा सूतक में एक हो जाती हैं।

यह हम ने चतुर्थी कर्म का नियम दिखलाया कि विवाह से चौथी रात्रि में गर्भाधान का विधान गृह्य सूत्रों में मौजूद है। इसी विधि के अनुसार शिवजी ने हिमाचल के घर में ही पार्वती का गर्भाधान संस्कार किया। जैसा कि—

चतुर्थे दिवसे प्राप्ते चतुर्थी कर्म शुद्धितः।
बभूव विधिविघ्नेन विना खंडित एव सः ॥ २१ ॥
(शिव० रुद्र० पार्वती० अ० ५३)

भाषार्थ—चतुर्थी कर्म की शुद्धि से चौथा दिन आने पर बिना किसी नियम के भोग किये विधि पूर्वक शिव ने पार्वती से समागम किया ॥ २१ ॥

पांच पांडवों के द्रौपदी के साथ पांच दिन में फेरे हुए। प्रत्येक रात्रि में उसके साथ प्रत्येक का समागम हुआ। जैसे—

क्रमेण चानेन नराधिपात्मजा
वरस्त्रियस्ते जगृहुस्तदा करम्।
अहन्यहन्युत्तमरूपधारिणी
महारथाः कौरव वंशवर्द्धनाः ॥ १३ ॥

इदं च तत्राद्भुत रूपमुत्तमं
जगाद देवर्षिरतीव मानुषम् ।
महानुभावा किल सा सुमध्यमा
बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि ॥ १४ ॥

(महा० आदि० अ० १९४)

भावार्थ—इसी सिलसिले से पांडव पुत्रों ने उस उत्तम स्त्री द्रौपदी के हाथ को एक एक दिन में ग्रहण किया। वे पांडव उत्तम रूप के धारण करने वाले महारथी तथा कौरवों के वंश की वृद्धि करने वाले थे ॥१३॥

उस में एक अद्भुत बात अति उत्तम रूप से देव ऋषि ने कही जो मनुष्यों के ज्ञान से अतीत थी कि वह महानुभाव युवता सुन्दरी द्रौपदी प्रत्येक दिन के गुजरने पर कन्या ही हो जाती थी ॥१४॥

हम पहिले लिख आये हैं कि कन्या का अर्थ अक्षत योनि है। ऊपर के श्लोकों से साफ साबित है कि जब द्रौपदी के पांच दिन में पांचों से फेरे हुए। तो प्रत्येक दिन मे जिस के साथ फेरे होते थे वही रात्री में द्रौपदी के साथ समागम कर के उस के कन्यात्व को नष्ट कर देता था। तभी तो महाभारतकार को लिखना पड़ा कि वह प्रत्येक दिन में कन्या ही हो जाती थी। यदि उस का कन्यात्व समागम से खण्डित न किया जाता तो यह लिखने की क्या आवश्यकता थी कि वह प्रति दिन कन्या ही हो जाती थी।

इन सम्पूर्ण प्रमाणों से यह साबित है कि चतुर्थी कर्म अर्थात् गर्भाधान विवाह का आवश्यक अङ्ग है। अतः ऐसे

समय में विवाह होना चाहिये जब कन्या गर्भाधान के योग्य हो। और वह समय १६ वर्ष है। अतः सिद्ध हुआ कि कन्या का विवाह कम से कम १६ वर्ष की आयु में होना चाहिये। अतः आप का विवाह काल तथा सहवास काल में ४ वा ८ वर्ष का अन्तर वेद तथा गृह्य सूत्र आदि ग्रन्थों के बिल्कुल विरुद्ध है।

(चतुर्थी कर्म के अतिरिक्त विवाह के साथ ही गर्भाधान) ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा जी जब राधा और कृष्ण की शादी करवाकर गये तभी कृष्ण ने राधा का गर्भाधान संस्कार किया जैसे—

गते ब्रह्मणि सा देवी सस्मिता वक्र चक्षुषा ,। १३७ ॥
साददर्श हरेर्वक्त्रंचच्छादव्रीडया मुखम् ॥ १३८ ॥
करे धृत्वा च तां कृष्णः स्थापयामासवक्षसि।
चकार शिथिलंवस्त्रंचुम्बनंचचतुर्विधम् ॥ १४८ ॥
श्रृङ्गाराष्टविधं कृष्णश्चकार काम शास्त्रवित् ॥ १५२ ॥
(ब्रह्मवैवर्त० खंड ४ अ० १५)

भाषार्थ—ब्रह्मा के चले जाने पर उस राधा देवी ने टेढ़ी आंख से ॥ १३७ ॥ कृष्ण के मुख को देखा तथा लज्जा से मुख छिपा लिया ॥ १३८ ॥ कृष्ण ने उस को हाथ से पकड़कर बगल में बिठा लिया। और उसकी धोती ढीली कर दी तथा उसे चार प्रकार से चूमा ॥ १४८ ॥ काम शास्त्र के जानने वाले कृष्ण ने आठ प्रकार से राधा के साथ शृङ्गार किया ॥ १५२ ॥

राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला से गांधर्व विवाह करते ही गर्भाधान किया जिस से भरत पैदा हुवा। जैसे कि—

जग्राहविधिवत् पाणावुवास च तयासह।
विश्वास्यचैनां स प्रायादब्रवीच्चपुनः पुनः॥ २० ॥
(महा० आदि० अ० ७३)

भाषार्थ—दुष्यन्त ने शकुन्तला का विधि पूर्वक हाथ ग्रहण किया और वहां पर कणव के आश्रम में ही उस के साथ सोया और उसको विश्वास दिला कर वह चला और वार वार बोला ॥ २० ॥

जब पराशर ने सत्यवती से गांधर्व विवाह किया तो किश्ती में उसी समय ही गर्भाधान किया जिस से व्यास जी पैदा हुए। जैसा कि—

ततो लब्धवरा प्रीता स्त्रीभाव गुण भूषिता।
जगाम सह संसर्गमृषिणाद्भुत कर्मणा ॥७७॥
(महा० आदि० अ० ६३)

भाषार्थ—तब वर प्राप्त करके प्रीति से स्त्री के भावों से भूषित सत्यवती उस अद्भुत कर्म वाले पराशर से संसर्ग को प्राप्त हुई ॥७७॥

जब सूर्य ने कुन्ती से गांधर्व विवाह किया तो तत्काल ही कुन्ती से उस के बाप के घर में ही गर्भाधान किया जिस से कर्ण पैदा हुआ।

जैसा कि—

एवमुक्त्वा स भगवान् कुन्ति राज सुतां तदा ॥७॥
प्रकाशकर्ता तपनः संबभूव तया सह ॥१८॥
(महा० आदि० अ० १११)

भावार्थ—यह कह कर भगवान् प्रकाश करने वाले

सूर्य ने कुन्ती के साथ समागम किया॥ १७-१८॥

इस से साबित है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तानोत्पत्ति है। अतः कन्या का विवाह ऐसी अवस्था में होना चाहिये जब वह सन्तान उत्पन्न करने के योग्य हो। आठ वा बारह वर्ष की कन्या सन्तान उत्पन्न करने के योग्य नहीं होती, अतः उस का विवाह व्यर्थ है।

३१८ (प्रश्न)—इतिहास में १६ वर्ष से पहिले भी गर्भ स्थिति हुई है ऐसा भी लेख मिलता है। इस विषय में अभिमन्यु, उत्तरा प्रभृति के अनेक उदाहरण हैं। फिर हम किस तरह से मान लें कि सन्तान कमज़ोर होती है। परीक्षितादि थोड़ी अवस्था के रहने पर भी जो गर्भ में आये वह कमज़ोर नहीं थे। पृ० ३३८ पं० ६।

उत्तर—आप को यह मालूम होना चाहिये कि इतिहास वहीं तक प्रमाण है जहां तक वह वेद तथा वेदानुकूल स्मृतियों के मुताबिक है, जहां इतिहास वेद तथा वेदानुकूल स्मृति के विरुद्ध होगा वहां वह धर्म के विषय में प्रमाण नहीं हो सकता। यदि युधिष्ठिर ने जुआ खेला तो युधिष्ठिर ने उस का फल पाया, किन्तु वेद विरुद्ध होने के कारण वह धर्म में प्रमाण नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार से ही चूंकि वेद की आज्ञा है कि युवा कन्या नवयुवक से विवाह करके सन्तान उत्पन्न करे। अतः यदि इतिहास में कोई ऐसे प्रमाण भी हों कि जिन से यह साबित हो सके कि किन्हीं लोगों ने छोटी अवस्था में विवाह करके गर्भाधान संस्कार किया तो भी वे वेद के विरुद्ध होने से धर्म में प्रमाण नहीं माने जा सकते।

अब रही बात अभिमन्यु की तथा उत्तरा कुमारी की। आपने इस बारे में कोई प्रमाण नहीं दिया कि अभिमन्यु तथा उत्तरा कुमारी ने छोटी अवस्था में सोलह वर्ष से पहिले ही विवाह या गर्भ स्थिति की। यद्यपि हमें अभिमन्यु की आयु पर कुछ लिखने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि आप स्वयं पुरुष के विवाह की आयु कम से कम २४ वर्ष मानते हैं। (पृ० ३११ से ३१३)

तथापि हम आपको बतलाना चाहते हैं कि जब पांडवों को वनवास हुआ तो जंगल में भीम सेन ने युधिष्ठिर के सामने प्रस्ताव पेश किया कि दुर्योधन ने हमारे साथ मक्कारी से काम लिया है। अतः हमें इस प्रतिज्ञा का पालन नहीं करना चाहिये और अभी दुर्योधन से युद्ध करके उससे अपना राज्य ले लेना चाहिये। आप जो कहते हैं कि प्रतिज्ञा का पालन करना धर्म्म है। तो जहां पर प्रतिज्ञा धर्म्मानुकूल हो उसका पालन करना धर्म्म है। आपकी यह ज़िद्द कि आवश्यक रूप से प्रतिज्ञा का पालन करना चाहिये मैं आपकी इस सम्मति का अनुमोदन नहीं करता और न ही नकुल सहदेव अर्जुन तथा अभिमन्यु अनुमोदन करते हैं। जैसा कि—

नैव धर्म्मेण तद्राज्यं नार्ज्जवेन न चौजसा।
अक्षकूटमधिष्ठाय हृतं दुर्योधनेन वै ॥ ३ ॥
भवतः प्रियमित्येवं महद्व्यसन मीदृशम्।
धर्मं कामे प्रतीतस्य प्रतिपन्नाः स्म भारत ॥ ८ ॥
यां न कृष्णो न बीभत्सुर्नाभिमन्युर्न सृंजयाः।
नचाहमभिनन्दामि नच माद्री सुता विमौ ॥ १२ ॥

भवान् धर्मो धर्म इति सततं व्रत कर्षितः ।
कच्चिद्राजन्न निर्वेदादापन्नः क्लीब जीविकाम् ॥ १३ ॥
कर्षणार्थो हि यो धर्मो मित्राणामात्मनस्तथा ।
व्यसनं नाम तद्राजन् न सधर्मः कुधर्म तत् ॥ २० ॥
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व जहि शत्रून् समागतान् ।
धार्त्तराष्ट्र बलं पार्थ मया पार्थेन नाशय ॥५१॥
(महा० वन० अ० ३३)

भावार्थ—दुर्योधन ने न धर्म से राज्य लिया है और न नम्रता और बहादुरी से लिया है। अपितु द्यूत की धोके बाज़ी से छीन लिया है ॥ ३ ॥

यह इस प्रकार का बड़ा भारी व्यसन आपको प्यारा है। हे युधिष्ठिर ! धर्म काम में हम आपके पीछे लगे हुए हैं।८।

आपकी इस अवस्था का न कृष्ण न अर्जुन न अभिमन्यु न सृंजय न नकुल और सहदेव तथा न मैं अनुमोदन करता हूं ॥ १२ ॥

आप धर्म धर्म इस व्रत से खिंचे हुए हे राजन् किसी प्रकार से दुख पूर्वक नपुंसकों की जीविका को प्राप्त हो रहे हैं ॥ १३ ॥

जो धर्म मित्रों तथा अपने दुख देने के लिये हो। हे राजन् उस का नाम व्यसन है, वह धर्म नहीं कुधर्म है ॥ २० ॥

आप धर्म को प्राप्त हों। प्राप्त हुए शत्रुओं को मारें। हे पार्थ दुर्योधन की सेना को आप मेरे तथा अर्जुन द्वारा नाश करें ॥ ५१ ॥

यह वनवास का प्रथम वर्ष है। इस समय कृष्ण अर्जुन

भीम नकुल और सहदेव के साथ साथ अभिमन्यु की राय को भी वज़न दार माना जाता था। इससे पता लगा कि उस समय अभिमन्यु सम्मति देने के योग्य बालिग़ अर्थात् कम से कम १८ वर्ष के लग भग था। वरना उसकी सम्मति को क्यों वज़नदार समझा जाता। इसके १२ वर्ष पीछे अभिमन्यु की शादी होती है। इससे साबित है कि शादी के समय अभिमन्यु कम से कम ३० वर्ष के लग भग आयु में था।

अब रही उत्तरा कुमारी की बात सो इस प्रकार से पता लगेगा कि उत्तरा कुमारी के विवाह प्रस्ताव के समय जब अभिमन्यु की आयु ३० के लग भग थी तो अर्जुन की आयु ५० वर्ष व ५५ से कम क्या होगी। तो जिस उत्तरा कुमारी की शादी के लिये अर्जुन ५० वर्ष आयु वाले से प्रार्थना की जाती है वह अठारह बीस वर्ष से कम नहीं हो सकती। यह हमारा क़यास ही नहीं है। अपितु जब अर्जुन से उत्तरा कुमारी के विवाह का प्रस्ताव किया गया। अर्जुन ने जहां यह कहा कि मैं इस का आचार्य्य तथा पिता के समान हूं, 'वहाँ यह भी कहा कि जवान अवस्था में उत्तरा मेरे पास एक वर्ष एकान्त में रही है' यदि मैं शादी करलूं तो लोग हमारे पूर्व एकान्त वास में भी संदेह करेंगे और आप की बदनामी होगी। इस लिये उसे मैं पुत्रवधू स्वीकार करता हूं।

वयःस्थया तया राजन् सह संवत्सरोषितः।
अति शंकाभवेत् स्थाने तव लोकस्य वा विभो॥ ४।

(महा० विराट० अ० ७२)

भाषार्थ—हे राजन् उस आयु आरूढ (उम्र रसीदा)

उत्तरा के साथ मैं एक वर्ष रहा हूं। ऐसे मौके में आप को तथा संसार को प्रति शंका होगी ॥४॥ अर्थात् यदि मैंने इस से शादी कर ली तो लोग कहेंगे कि इन का तो पहले से ही शादी हो रही थी। जब जवान लड़की एकान्त में एक वर्ष तक नाचना गाना सीख रही थी तो क्या ये दोनों आचरण में पवित्र थोड़े ही रहे होंगे। इससे अति स्पष्ट है कि उस समय उत्तरा वयःस्थ अर्थात् यौवन आरूढ़ थी।

इस सारे लेख से सिद्ध हुआ कि अभिमन्यु तथा उत्तरा दोनों ही विवाह के समय युवावस्था में थे। और उन्होंने युवावस्था में ही गर्भाधान संस्कार किया फिर उनकी संतान परीक्षित निर्बल कैसे हो सकता था। हां अत्यंत शोकातुरा होने के कारण उत्तरा के परीक्षित मीयाद से पहिले पैदा हुआ। अतः वह जन्म समय मृतवत् पैदा हुआ जो कृष्ण के उपाय से होश में आया। अतः आपका ऐतिहासिक प्रमाण भी आप की पुष्टि नहीं, करता अपितु हमारी ताईद करता है।

३१६ (प्रश्न)— इस से भिन्न शास्त्र दृष्टि से सहवास में कन्या की उम्र सोलह वर्षकी ली है। और पुरुषकी पच्चीस वर्षके ऊपर फिर कमज़ोर सन्तान का प्रश्न ही नहीं रहता। पृ०३३८ पं० १३

(उत्तर)—'कुफ़्र टूटा खुदा खुदा कर के' आखिर आप को यह बात माननी ही पड़ी कि 'शास्त्र की दृष्टि में कन्या की आयु १६ वर्ष तथा वर की आयु पच्चीस वर्ष से ऊपर गर्भाधान के लिये ली गई हैं' अब कृपया आप यह बतलावें कि गर्भाधान की योग्यता से पूर्व विवाह करने का क्या प्रयोजन तथा लाभ है। आप के लेखानुसार यदि २४ वर्ष

का पुरुष ८ वर्ष की कन्या से विवाह कर ले तथा ३० वर्ष का पुरुष १२ वर्ष की कन्या से विवाह कर ले तो पहिले को सहवास के लिये ८ वर्ष तथा दूसरे को ४ वर्ष का इन्तज़ार करना होगा। क्या इतने वर्ष पूर्व विवाह विधवाओं की संख्या बढ़ाने में कारण तो न बन जायेगा। भला इतने वर्ष पहिले कन्या की आयु को खतरे में डालने से क्या लाभ। हम पहिले सिद्ध कर चुके हैं कि विवाह की चौथी रात्री में गर्भाधान की शास्त्र की आज्ञा है। और आप शादी के पीछे ८ वर्ष तथा ४ वर्ष तक गर्भाधान को रोकते हैं। अतः आपकी कल्पना शास्त्र के विरुद्ध है।

फिर आप के लेखानुसार रजस्वला होने से पहिले कन्या का विवाह करके माता पितादि तो पाप से बच जाते हैं, किन्तु १२ वर्ष से १६ वर्ष तक गर्भाधान की मनाही के कारण वर और कन्या दोनों ही घोर पाप के भागी बनते हैं। जैसे—

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारंनोपसर्पति।
सासतानरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ १४॥
ऋतु स्नातां तु योभार्यां सन्निधौनोपगच्छति।
घोरायां भ्रूण हत्यायां युज्यतेनात्र संशयः ॥ १५॥

(पाराशर स्मृति अ० ४)

भाषार्थ—ऋतु से स्नान की हुई जो स्त्री पति के पास नहीं जाती वह मर कर नरक में जाती है और बार बार विधवा होती है॥ १४॥ ऋतु से स्नान की हुई स्त्री के पास जो पुरुष नहीं जाता। वह घोर भ्रूण हत्या के पाप में संयुक्त होता है इस में संशय नहीं है॥ १५॥

इन संपूर्ण दोषों के कारण गर्भाधान की योग्यता से पूर्व अर्थात् कन्या का १६ वर्ष तथा वर का २५ वर्ष से पूर्व विवाह वेद के विरुद्ध तथा महा पाप कारक है। अतः लड़का लड़की का विवाह तथा सहवास दोनों ही युवावस्था में होने वेदानुकूल होने से धर्म्म हैं।

३२० (प्रश्न)—विवाह के पश्चात् शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्य तथा [ ]रागमन की पद्धति को लोक में प्रचलित रखा जावे तो फिर यह प्रश्न ही उड़ जाता है। पृ० ३३८ पं० १८

उत्तर—विवाह होने के पश्चात् शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्य्य यह है कि वह ऋतु गामी बने जैसे कि—

ऋतुकालाभिगामीस्यात्स्वदारनिरतः सदा ॥४५॥
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥५०॥ (मनु० ३)

भाषार्थ—ऋतु काल के अनुसार स्त्री गमन करने वाला बने। और सदा अपनी स्त्री में ही प्रसन्न रहे परस्त्री गमन न करे ॥४५॥

वह जिस किसी आश्रम में रहता हुआ भी ब्रह्मचारी ही होता है ॥५०॥

और यदि विवाह कराने के पीछे ब्रह्मचारी रहने का आपका यह अभिप्राय हो कि वह ८ वर्ष तक या ४ वर्ष तक स्त्री गमन ही न करे तो यह क़तई ग़लत है। प्रथम तो ऋतु के के अनुसार गमन न करने में स्त्री तथा पुरुष दोनों को पाप होता है। देखो (प्रश्न नं० ३१९) और बिना गर्भाधानके विवाह का और प्रयोजन भी क्या है। देखिये मनु जी क्या कहते हैं कि—

प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टाः सन्तानार्थं च मानवाः।
तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदितः ॥९६॥ (मनु०९)

यस्माद् गर्भ ग्रहणार्थं स्त्रियः सृष्टा गर्भाधानार्थं च मनुष्यास्तस्माद् गर्भोत्पादनमेवानयोः अग्न्याधानादिरपि धर्मः पत्न्या सह साधारणः, क्षौमे वसानावग्नीनादधीयातां, इत्यादि वेदेऽभिहितः। तस्माद् भार्यां बिभृयादिति पूर्वोक्तस्य शेषः (कुल्लूक)

भाषार्थ--जिस लिये गर्भ ग्रहण के लिये ईश्वरने स्त्रियें बनाईं हैं तथा गर्भ धारण कराने को पुरुष बनाये हैं। इस लिये सन्तान पैदा करना ही इन का अग्नि आधानादि भी धर्म पत्नी के साथ साधारण "क्षौम इत्यादि" से वेद में कहा है। इस प्रयोजन से पत्नी को धारण करे, यह पूर्वोक्त श्लोक का अभिप्राय है ॥९६॥

जब विवाह का मुख्य प्रयोजन ही गर्भाधान संस्कार है तो फिर गर्भाधान की योग्यता से पूर्व विवाह व्यर्थ है। अतः स्त्री पुरुष को विवाह तभी करना चाहिये जब वे गर्भाधान करने के योग्य हो जावें, अर्थात् कन्या कम से कम १६ वर्ष की तथा पुरुष कम से कम २५ वर्ष का होने पर शादी करे और विवाह करते ही गर्भाधानसे सन्तानोत्पत्ति का काम करें। यही वेद शास्त्रों की आज्ञा है।

हां, यह तो सप्रमाण बतलाया होता कि यह द्विरागमन की पद्धति कौन से वेद धर्मशास्त्र वा गृह्य सूत्रों में वर्णन की गई है। हमें तो यह विधि कहीं वेद स्मृति तथा इतिहास में मिली नहीं और न ही इस पर कभी अमल हुआ वर्णन है।

और न ही यह युक्ति युक्त है। हमें तो यह बचपन की शादी का बच्चा प्रतीत होता है जो वेद विरोधी लोगों की कल्पना मात्र है।

(१) विवाह समय राम तथा सीता की आयु—

अश्विनाविव रूपेण समुपस्थित यौवनौ ॥३॥
अतिथि परमं प्राप्तौ पुत्रौ दशरथस्य तौ ॥८॥
(बाल्मी० बाल० स० ४८)

पुत्रादशरथस्येमेरूपयौवनशालिनः ॥७॥
(बाल्मी० बाल० स० ७२)

पति संयोग सुलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता।
चिन्ता मभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः ।३।४)
(बाल्मी० अयो० स० १८)

मम भर्ता महातेजा वयसः पञ्चविंशकः ॥११॥
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनिगण्यते ॥१०॥
(बाल्मी० अरण्य० स० ४७)

सर्वं विद्या व्रत स्नातो यथावत्साङ्गवेदवित ॥२०॥
बाल्मी० अयो० स० १)

सम्यग्विद्याव्रत स्नातो यथा वत्सांग वेद वित् ॥३४॥
(बाल्मी० अयो० स० २)

भाषार्थ—यह राम तथा लक्ष्मण अश्विनी कुमारों के सदृश सुन्दर तथा नौजवान हैं ॥ ३ ॥

दशरथ के पुत्र हमारे परम अतिथि प्राप्त हुए हैं ॥ ८ ॥

ये दशरथ के पुत्र हैं जो रूप और जवानी से भरपूर हैं ॥ ७ ॥

सीता ने अनुसूया से कहा कि मेरा पिता मेरी आयु को पति के संयोग के काबिल देख कर ऐसे चिन्ता में पड़ गया जैसे निर्धन धन के नाश से चिन्ता में पड़ जाता है ॥ ३४ ॥

मेरा तेजस्वी पति विवाह समय २५ वर्ष की आयु का था और मेरे जन्म को अठारह वर्ष बीते थे यह सीता ने रावण से कहा ॥ १०--११ ॥

राम सर्व विद्याव्रत स्नातक थे तथा अंगों सहित वेद के जानने वाले थे ॥ २० ॥

राम अच्छे प्रकार से विद्याव्रत स्नातक थे तथा अंगों सहित वेद जानते थे ॥ ३४ ॥

इन प्रमाणों से साबित है कि सीता तथा राम का विवाह युवावस्था में हुआ और यहां पर द्विरागमन विधि का ज़िकर तक भी नहीं है ॥

(२) अश्वपति ने अपनी पुत्री सावित्री को स्वयं आज्ञा दी—

तां दृष्ट्वा यौवनं प्राप्तां स्वच्छां तां देव रूपिणीम् ।
उवाच राजा संमन्त्र्य स्मृत्यर्थं सह मंत्रिभिः ॥ १५ ॥

(भविष्य० उत्तर० अ० १०२)

पुत्री प्रदान कालस्ते न च कश्चिद् वृणोति माम् ।
स्वयमन्विच्छ भर्तारं गुणैः सदृशमात्मनः ॥ ३१ ॥
इदं मे वचनं श्रुत्वा भर्तुरन्वेषणे त्वर ॥ ३५ ॥

महा० वन० अ० २९२

तस्य पुत्रः पुरे जातः संवृद्धश्च तपोवने ।
सत्यवाननुरूपो मे भर्तेति मनसा वृतः ॥ १० ॥

महा० वन० अ० २९३

भावार्थ—अश्वपति उस अपनी पुत्री सावित्री को नौजवान स्वच्छ सुन्दरी देख कर अपने मंत्रियों से मशविरा करके बोला ॥ १५ ॥

हे पुत्री तेरा विवाह का समय है और कोई वर मुझे मिला नहीं, इस लिये तू अपने गुणों के सदृश स्वयं पति स्वीकार कर ले ॥ ३१ ॥

मेरा यह वचन सुनकर पति की खोज में शीघ्रता कर ॥ ३५ ॥

पति को खोज कर सावित्री ने कहा कि द्युमत् सेन का पुत्र शहर में पैदा हुआ और वन में जवान हुआ सत्यवान नाम है, यह पति मेरे अनुकूल है, मैंने मन से स्वीकार कर लिया ॥ १० ॥

इस से साबित है कि सावित्री सत्यवान् का विवाह युवावस्था में हुआ। यहां द्विरागमन का नाम तक नहीं।

(३) द्रौपदी तथा अर्जुन का स्वयंवर—

विद्धन्तु लक्ष्यं प्रसमीक्ष्य कृष्णा
पार्थं च शक्रप्रतिमं निरीक्ष्य ।
आदाय शुक्लाम्बर माल्यदाम
जगाम कुन्ती सुतमुत्स्मयन्ती ॥ २८ ॥
सतामुपादाय विजित्य रंगे
द्विजाति भिस्तैरभिपूज्यमानः ।
रङ्गान्निरक्रामदचिन्त्यकर्मा
पत्न्या तया चाप्यनुगम्यमानः ॥ २९ ॥

(महा० आदि० अ० १९०)

भावार्थ—द्रौपदी ने लक्ष्य बींधा हुआ देख कर और अर्जुन को इन्द्र के समान देख कर श्वेत वस्त्र माला ले कर मुस्कराती हुई अर्जुन के पास चली गई॥ २८॥

मैदान में जीत उसे साथ ले ब्राह्मणों से पूजित उस पत्नी से अनुगम्यमान शूरवीर अर्जुन मैदान से बाहर निकल गया॥ ८६॥

यहां पर अर्जुन तथा द्रौपदी का युवावस्था में विवाह हुआ है और विवाह के पश्चात् द्विरागमन का महाभारत में ज़िक्र तक नहीं।

(४) नल दमयन्ती का स्वयंवर—

दमयंति ततोरङ्गं प्रविवेश शुभानना।
मुष्णन्ती प्रभया राज्ञां चक्षूंषिच्मनांसि च॥ ८॥
नैषधं वरयामास भैमी धर्म्मेण पांडव॥ २७॥
स्कन्ध देशेऽसृजत्तस्य स्रजं परम शोभनाम्।
वरयामास चैवेनं पतित्वे वर वर्णिनी॥ २८॥

(महा० वन० अ० ५७)

भावार्थ—तब सुन्दरी दमयन्ती मैदान में दाखिल हुई। अपनी कान्ति से वह राजाओं के नेत्रों तथा मनों को हर रही थी॥ ८॥ हे पांडव! भीम की पुत्री दमयन्ती ने धर्म से निषिध के राजा नल को वर लिया॥ २७॥ और अति सुन्दर माला उसके कंधे पर डाल दी और उस वर की कामना करने वाली ने उसको पतिभाव से वर लिया॥ २८॥

यहां नल और दमयन्ती का युवावस्था में विवाह हुआ और यहां पर द्विरागमन का क़तई वर्णन नहीं है।

(५) संज्ञा का स्वयंवर—

षोडशाब्दे वयः प्राप्ते संज्ञायास्तत्पितासुखी।
विवाहार्थी सुरान् सर्वानाह्वयन्मेरुमूर्द्धनि ॥ ४ ॥
(भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० ४ १८)

भाषार्थ— संज्ञा के बाप ने संज्ञा को १६ वर्ष की आयु होने पर सुख पूर्वक उस के विवाह के लिये मेरु पर्वत की चोटी पर बुलाया ॥ ४ ॥

यहां संज्ञा का विवाह युवावस्था में हुआ, यहां पर द्विरागमन का ज़िकर भी नहीं।

इतिहास में इस प्रकार की सैंकड़ों घटनायें मौजूद हैं जिन में कन्या तथा वर ने युवावस्था में विवाह करके सन्तानोत्पन्न की। वहां पर बाल विवाह तथा द्विरागमन का गंध तक भी नहीं है।

३२१ (प्रश्न)—"ऊनषोडशवर्षायामित्यादि" सुश्रुत के इन श्लोकों के लिये वेदानुकूलता का झगड़ा क्यूं उड़ा दिया गया। वेद में किसी मंत्र में भी यह नहीं लिखा कि गर्भाधान के समय पुरुष की आयु २५ वर्ष और स्त्री की आयु १६ वर्ष की हो। पृ० ३४१ पं० ५।

उत्तर—"ब्रह्मचर्य्येण कन्या॰" "तमस्मेरा" इत्यादि अनेक वेद मंत्र हैं जो कि स्त्री पुरुष को युवावस्था में विवाह की आज्ञा देते हैं। और विवाह तथा गर्भाधान काल एक ही बात है। चूंकि उपरोक्त श्लोक इन मंत्रों को शिक्षा के अनुकूल ही युवावस्था में गर्भाधान की आज्ञा देते हैं। अतः ये सुश्रुत के श्लोक वेदानुकूल होने से ग्राह्य हैं। धर्म्म के कामों में

वेदानुकूलता की शर्त किसी सूरत में भी नज़रअंदाज़ नहीं की जासकती।

३२२ (प्रश्न)—"ऊनषोडशवर्षायाम्" इस श्लोक की जगह अनेक पुस्तकों में "ऊन द्वादशवर्षायाम्" पाठ है उस पाठ को स्वामी जी ने क्यूं नहीं लिया। पृ० ३४१ पं० १६।

उत्तर—यद्यपि आपने सुश्रुत के किसी ऐसे पुस्तक का पूरा पता नहीं लिखा कि फलां प्रेस में फलाँ मनुष्य ने जो सुश्रुत का पुस्तक छापा है उस में "ऊनद्वादशवर्षायाम्" पाठ मौजूद है। तथापि यदि कहीं ऐसा पाठ मौजूद भी हो तो भी वह वेद विरुद्ध होने से प्रमाण के क़ाबिल नहीं है। क्योंकि वेद कन्या को युवावस्था में विवाह की आज्ञा देता है और कन्या को १२ वर्ष की आयु में कोई भी शास्त्र युवती नहीं मानता।

३२३ (प्रश्न)—इन श्लोकों में विवाह काल कब कहा है। इन में तो गर्भाधान काल है। पृ० ३४१ पं० २३।

उत्तर—हम साबित कर चुके हैं कि विवाह का प्रयोजन ही गर्भाधान है। इसीलिये विवाह के साथ ही शास्त्रों ने चतुर्थी कर्म अर्थात् गर्भाधान की आज्ञा दी है। और गर्भाधान के बिना विवाह निष्प्रयोजन है। अतः इन श्लोकों में गर्भाधान समय का वर्णन ही विवाह समय का वर्णन मानना पड़ेगा।

अथास्मै पंचविंशति वर्षाय द्वादश वर्षीं पत्नीमावहेत्।

सुश्रुत॥

३२४ (प्रश्न) "विद्या संपन्न पुरुष को जिस की

अवस्था २५ वर्ष की हो उस को बारह वर्ष वाली कन्या विवाहे" यहां पर स्वामी जी ने सुश्रुत के विवाह काल को छिपाया और गर्भाधान काल को विवाह काल बनाया ॥ पृ० ३४२ पं० ३।

उत्तर—आपने उपरोक्त प्रमाण का सुश्रुत का ठिकाना नहीं लिखा। यद्यपि इससे प्रतीत होता है कि उपरोक्त पाठ आपका कपोल कल्पित है। तथापि यह यदि हो भी तो भी वेद विरुद्ध होने से प्रमाण नहीं माना जा सकता क्योंकि वेद कन्या को युवावस्था में शादी की आज्ञा देता है। और १२ वर्ष की कन्या का नाम युवती है नहीं। दूसरे आपकी प्रतिज्ञा "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्" (नं० ३११) कि "३० वर्ष का पुरुष १२ वर्ष की कन्या से तथा २४ वर्ष का पुरुष ८ वर्ष की कन्या से विवाह करे" के विरुद्ध तथा धर्म्म शास्त्र के विरुद्ध होने से आपके मत में भी प्रमाण के क़ाबिल नहीं है।

३२५ (प्रश्न)—"एक क्षणा भवेद् गौरी" ठीक ही है। वेद की मिट्टी कूटना स्वामी जी और आर्य्य समाजियों का परम धर्म है। पृ० ३४२ पं० १७।

(उत्तर) आर्य्यसमाज और स्वामी जी वेदों को धर्म्म पुस्तक मानते हैं। और उनका पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना तथा तदनुकूल आचरण करना परम धर्म्म मानते हैं। हां वेद विरुद्ध शीघ्रबोधादि ग्रन्थों की मिट्टी कूटना हमारा परम कर्तव्य है। चूंकि "अष्टवर्षा भवेद्गौरी" यह वेद विरुद्ध ग्रन्थों की कल्पना संसार के लिये हानिकारक थी अतः स्वामी जी ने इसका युक्तियुक्त खंडन करके वेद मत का प्रतिपादन करदिया।

३२६ (प्रश्न)—"सोमो गौरी अधिश्रितः "ऋग्वेद" सोम गौरी का उपभोग करता है। जिस समय कन्या की गौरी संज्ञा होती है। उस समय कन्या के ऊपर चन्द्रमा का आधिपत्य रहता है। पृ० ३४२ पं० १८।

उत्तर—कहिये महाराज! ऋग्वेद के मंत्र का ठिकाना क्यों दर्ज नहीं किया। क्या यह भय था कि कहीं पोल न निकल जावे। अच्छा देखिये यह पाठ ऋग्वेद मंडल ९सूक्त १२ मंत्र ३ का एक भाग है। यहां पर न तो विवाह प्रकरण है और न ही कन्या की यहां पर गौरी संज्ञा की गई है। इस मंत्र का देवता अर्थात् प्रतिपाद्य विषय "पवमानः सोमोदेवता" पवित्र करने वाला सौम्य स्वभाव विद्वान् है। और यहां पर गौरी नाम वेद वाणी का है। और इस का स्पष्ट अर्थ यह है कि सौम्य स्वभाव विद्वान् वेद वाणी का आश्रय लेता है। इस का यही अर्थ आप के भाष्यकार सायणाचार्य करते हैं, जैसे—

'सोमो गौरी अधिश्रितः, ऋ० ९। १२। ३।

विपश्चित् विद्वान् सोमो गौरी अधि। अधीति सप्तम्यर्थानुवादः। माध्यमिकायांवाच। गौरी गांधर्वीति वाङ्नामसु पाठात्। श्रितो मिश्रयति "सायण"

भाषार्थ—सौम्य स्वभाव विद्वान् वाणी में आश्रय करता है। ३।

कहियेगा महाराज! जब सोम गौरी नाम की कन्या से आप के विचार में भोग कर लेता है।तो फिर उसका कन्यापन तो नाश हो जाता होगा। फिर विवाह की क्या ज़रूरत बाकी रहती है। शोक शत शोक है आप लोगों की बुद्धि पर जो

पक्षपात में डूबे हुवे वेद मंत्रों का अनर्थ कर के जनता को धोका दे रहे हैं। और गौरी रोहिणी आदि कल्पित संज्ञायें कन्याओं की रख कर वेद के सिर मढ़ रहे हैं। परमात्मा आप को सुमति प्रदान करें।

३२७ (प्रश्न)—"उत्कृष्टायाभिरूपाय" इस श्लोक में कन्या का विवाह कन्या के आधीन नहीं किंतु अन्य के आधीन लिखा गया है। इसी प्रकार "काममामरणात्तिष्ठेत्" इस श्लोक में भी अयोग्य पुरुष के साथ कन्या का विवाह न करना सिद्ध करता है कि कन्या का विवाह करना किसी अन्य के आधीन है। "यस्मैदद्यात्" मनु के इस श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि कन्या का विवाह कन्या का पिता या भ्राता करे यदि ये दोनों कन्या का विवाह न करें "त्रीणिवर्षाणि" यह श्लोक है। मनु का अभिप्राय यह है कि आठ वर्ष से लेकर बारह वर्ष तक कन्या का विवाह उसके पिता या भाई आदि अवश्य करदें। यदि वह न करें तो ऋतु काल होने के पश्चात् तीन वर्ष तक कन्या प्रतीक्षा करे, पश्चात् किसी के साथ विवाह करले। पृ० ३४३ पं० १।

उत्तर—समस्त शास्त्रों का अभिप्राय यह है कि विवाह में मुख्य प्रयोजन वर तथा कन्या का है। अतः विवाह के बारे में मुख्य सम्मति वर और कन्या की ही होगी। हां, मां बाप भाई आदि की सम्मति भी गौण रूप से मानी जावेगी। जहां पर वर कन्या माता पिता भाई आदि की सर्व सम्मति हो वहां तो कोई झगड़ा ही नहीं है। जहां पर कन्या का माता पिता वा भाई से मतभेद हो वहां पर कन्या की सम्मति को मुख्य माना जाना चाहिये। माता पिता भाई आदि को उसमें रुकावट

डालने का हक़ नहीं है। अतः शास्त्रों में जहां जहां यह वर्णन आता है कि वर वा कन्या का विवाह माता पिता भ्राता आदि के आधीन हो वहाँ पर शास्त्र का अभिप्राय सर्व सम्मति से होने का है। यहां यह अभिप्राय नहीं है कि कन्या के विरोध करने पर भी माता पिता भाई आदि उसका विवाह कर सकते हैं। और जहां जहां कन्या को स्वयंवर से विवाह की आज्ञा है वहां वहां शास्त्र का यह अभिप्राय है कि विवाह में मुख्य सम्मति कन्या की है और माता पिता आदि भी सहमत हैं अथवा मत-भेद होने पर कन्या की सम्मति ही मानी जावे माता पिता आदि की नहीं। इसी बात को वेद ने "ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्" इस मंत्र से वर्णन किया। और इसी मंत्र की तशरीह करते हुए मनु धर्म शास्त्र ने ब्रह्मचर्य्यकाल नियत करने के लिये और कन्या की युवावस्था बतलाने के लिये "त्रीणिवर्षाणि इत्यादि" श्लोक से बतला दिया कि रजस्वला होने से तीन वर्ष पीछे युवावस्था होती है। इसको अति स्पष्ट करने के लिये सुश्रुत ने "ऊनषोडशवर्षायाम्" इस के द्वारा नियम कर दिया कि १६ वर्ष से पूर्व कन्या तथा २५ वर्ष से पूर्व पुरुष विवाह तथा गर्भाधान न करें। इस की विशेष पुष्टि हेतुदेकर महाभारत ने कर दी कि—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कन्या ऋतुमती सती।
चतुर्थेत्वथ सम्प्राप्ते स्वयं भर्तारमर्जयेत्॥ १५॥
प्रजा न हीयते तस्या रतिश्च भरतर्षभ।
अतोऽन्यथा वर्तमाना भवेद्वाच्या प्रजापतेः॥ १६॥

(महा० अनुशासन० अ० ४४)

भावार्थ—कन्या ऋतुमती होने पर तीन वर्ष एक प्रतीक्षा करे, चौथा वर्ष प्राप्त होने पर स्वयंवर से पति प्राप्त करे ॥ १५ ॥ उसकी सन्तान न मरेगी तथा उसकी रति भी क्षीण न होगी। इस से विपरीत करने पर परमात्मा से निन्दित होगी ॥ १६ ॥

इस असूल के अनुसार सीता द्रौपदी दमयन्ति तथा सावित्री आदिके स्वयंवर सर्वसम्मतिसे हुए उनमें मुख्य सम्मति सीता द्रौपदी दमयन्ती तथा सावित्री की पति चुनाव में मानी गई। माता पिता भाई आदि की इस में सहमति थी। किंतु रुक्मणी हरण सुभद्रा हरण संयोगिता हरण आदिमें कन्याओंकी सम्मति थी, माता पिता भाई आदि की सम्मति न थी। परन्तु कन्या की सम्मति को मुख्य मानते हुए इन विवाहों को पाप नहीं माना गया। चूंकि मनुधर्म शास्त्रकी यह आज्ञा है कि—

असपिंडा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ५ ॥ मनु० ३)

भावार्थ—जो लड़की पिता के गोत्र की न हो और माता तथा पिता की छः पुश्त तक जिसका सिलसिला खानदान न मिलता हो, उस लड़की से शादी की जावे ॥ ५ ॥ अतः मनु ने यह बतलाया कि यदि कोई कन्या स्वयंवर में ऐसे वर को स्वीकार करले जो उपरोक्त नियम के कुछ थोड़ा विरुद्ध भी हो। तो ऐसी सूरत में माता पिता आदि को उस शादी में रुकावट न डालनी चाहिये अपितु विवाह कर देना चाहिये। जैसा कि

उत्कृष्टायाभि रूपाय वराय सदृशाय च।
अप्राप्तामपि तां तस्मै कन्यां दद्याद्यथाविधि ॥८८॥ मनु० ९।

भावार्थ—उत्तम रूप सम्पन्न सदृश वर के लिये (पांचवां

चौथी पुश्त में होने के कारण) प्राप्त न होने वाली कन्या को भी विधि पूर्वक दे देना चाहिये ॥ ८८ ॥ फिर यदि कन्या को कोई वर पसंद न आया हो तो माता पिता को अयोग्य नापसंद वर के साथ कन्या की मरज़ी के बिना ज़बरदस्ती कभी न करना चाहिये। जैसे—

कामममरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥८६॥ (मनु० ६)

भाषार्थ—कन्या ऋतुमती होने पर भी चाहे मरण पर्य्यन्त घर में बैठी रहे किंतु गुणहीन वर के लिये उसे हर्गिज़ नहीं देना चाहिये ॥ ८६ ॥ फिर कन्या के लिये यह शिक्षा दी गई है कि स्वयंवर रीति से माता पिता भाई आदि की सर्वसम्मति से विवाह होजाने पर यदि पीछे से पति के साथ कोई मत भेद हो जावे तो भी उस को निभाने का प्रयत्न करना चाहिये। जैसे कि—

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः।
तं शुश्रूषेत जीवन्तं संस्थितं च न लंघयेत् ॥१५१॥ (मनु० ५)

भाषार्थ—पिता व पिता की सम्मति से भाई उस को जिस के लिये दे दे। उस की जिंदगी में सेवा करे और उस का उल्लंघन न करे अर्थात् व्यभिचार न करे ॥ १५१ ॥

इस से सिद्ध हुआ कि "उत्कृष्टाय" "कामममरणात्" "यस्मैदद्यात्" ये तीनों श्लोक "पिता आदि को विवाह में रुकावट डालने" "ज़बरदस्ती कन्या की मरज़ी के विना कन्या का विवाह करने" को मना करते तथा "विवाह हो जाने पर पति से मतभेद पर भी निर्वाह करने" की शिक्षा देते हैं।

से कन्या को पशुवत् आधीन नहीं करते। क्यूंकि कन्या विवाह विषयक प्रस्ताव में मुख्य सम्मति की अधिकारी है। वरना—

इच्छयाऽन्योऽन्य संयोगः कन्यायाश्चवरस्यच।
गांधर्वः सतुविज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः ॥३२॥ (मनु० ३)

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत् कोऽनुमन्यते।
विक्रियं चाप्यपत्यस्य कः कुर्यात् पुरुषोभुवि ॥४॥
(महा० आदि० अ० २२३)

स्वयंवरः क्षत्रियाणां विवाहः पुरुषर्षभ ॥ २१ ॥
(महा० आदि० अ० २२१)

विवाहानां हि रम्भोरु गांधर्वः श्रेष्ठ उच्यते ॥४॥
(महा० आदि० अ० ७३)

आत्मनो बंधुरात्मैव गतिरात्मैव चात्मनः।
आत्मनैव आत्मनो दानं कर्तुमर्हसि धर्मतः ॥ ७ ॥
(महा० आदि० अ० ७३)

भाषार्थ—कन्या और वर का इच्छा से एक दूसरे से संयोग हो जाना यह काम तथा मैथुनसे हुआ गांधर्व विवाह कहाता है ॥३२॥ कन्या का दान पशुओं की भांति कौन मान सकता है। और कौन पुरुष पृथिवी में अपनी सन्तान को बेच सकता है ॥४॥

क्षत्रियों के लिये स्वयंवर विवाह श्रेष्ठ है ॥ २१ ॥

विवाहों में गांधर्व विवाह श्रेष्ठ माना जाता है ॥ ४ ॥

आत्मा ही आत्मा का बंधु है। और आत्मा ही आत्मा की गति है। अतः आत्मा से ही आत्मा का दान कर सकते हो ॥ ७ ॥

इन सब प्रमाणों का क्या अर्थ होगा। अतः पूर्वोक्त श्लोक कन्या को पराधीन नहीं करते। और "त्रीणि वर्षाणि" यह श्लोक भी मतलब नहीं है कि पिता आदि शादी न करें, तब तीन वर्ष इन्तज़ार कर के कन्या शादी करे अपितु यह श्लोक स्वतंत्रता से विवाह की आयु प्रतिपादन करता है। और इस का सबूत यह है कि महाभारत में यह अकेला ही श्लोक आया है और हेतु सहित बड़ी आयु में विवाह का प्रतिपादन करता है। अतः १६ से कम आयु में कन्या का विवाह वेद शास्त्र स्मृति तथा इतिहास के क़तई विरुद्ध है।

३२८ (प्रश्न)—'त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत' मनु का यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है। इस के प्रमाण मानने का दयानंद और आर्य्यसमाज को क्या हक़ है। पृ० ३४४ पं० ७।

उत्तर—आप अपनी प्रतिज्ञा में कोई वेद मंत्र दे कर इस श्लोक को वेद विरुद्ध साबित करने की कृपा करें, वरना "ब्रह्मचर्येण कन्या" इस मंत्र के अनुकूल होने से हमें इस के प्रामाणिक मानने का हक़ हासिल है। क्यों कि वेद मंत्र भी कन्या की युवावस्था में विवाह की आज्ञा देता है और यह श्लोक भी ऋतुमती होने से तीसरे वर्ष पीछे युवावस्था में ही कन्या के विवाह का प्रतिपादन करता है।

३२९ (प्रश्न)—मनु जी ने "त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्" इस श्लोक में जो २४ वर्ष का पुरुष, आठ वर्ष की कन्या से और ३० वर्ष का पुरुष, १२ वर्ष की कन्या से विवाह करना लिखा है। इस को स्वामी दयानन्द जी ने क्यों छिपाया। पृ० ३४४ पं० ८।

उत्तर—इस श्लोक में स्वयं लिखा है कि ऐसा विवाह

करने वाला गृहस्थ धर्म में दुःख पाता है 'धर्मे सीदति-सत्वरः' यदि आप इस का यह अर्थ मानें कि 'इस से पहले विवाह करने वाला धर्म में दुःख पाता है तो—

त्रिंशद्वर्षो दश वर्षां भार्यां विन्दते नग्निकाम् ।
एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षामवाप्नुयात् ॥१३॥
(महा० अनु० अ० ४४)

भाषार्थ—तीस वर्ष का पुरुष दश वर्ष की नग्निका भार्या को प्राप्त हो तथा २१ वर्ष का पुरुष सात वर्ष की पत्नी को प्राप्त हो ॥१३॥

कहिये महाराज ! अब यह कम की आज्ञा क्या सनातन-धर्म को नरक में धकेलने के लिये है। आप के ग्रन्थों की किसी विषय में एक सम्मति नहीं है। अतः वेद का प्रमाण ही धर्म के विषय में कसौटी है। चूंकि वेद कन्या को युवावस्था में विवाह और गर्भाधान करने की आज्ञा देते हैं अतः छोटी उम्र की शादी को वर्णन करने वाले सब प्रमाण वेद विरुद्ध होने से मानने के काबिल नहीं हैं। और बिना गर्भाधान तथा सन्तानोत्पत्ति के लिये छोटी उम्र की शादी वैसे भी व्यर्थ और युक्ति शून्य है। और सनातनधर्म को तो इस विषय में अब बोलना भी नहीं चाहिये, क्योंकि इन के हां तो लिखा है कि—

न कन्यां याचते कश्चिन्नापि कन्या प्रदीयते ॥३६॥
स्वयं ग्राहा भविष्यन्ति युगांते समुपस्थिते ॥३७॥
(महा० वन० अ० १९०)

युग के अंत आने पर न कोई कन्या मांगेगा और न कोई कन्या देगा। अपितु स्वयंबर विवाह होंगे।

———

वर्ण व्यवस्था

३३० (प्रश्न)—संसार में ईश्वर ने जितनी जातियां रची हैं। उन सब में भेद रक्खा है। पृ० ३०६ पं० २२

उत्तर—आप ठीक कह रहे हैं। क्योंकि जाति कहते ही उस को हैं जो दूसरी जाती की निस्बत सूरत और शकल में भिन्नहो। इसी बात को व्याकरणकार ने इन शब्दों में लिखा है कि—

आकृतिग्रहणा जातिः ॥ सिद्धान्त कौमुदी ॥

आकृतिः अवयवसन्निवेश विशेषः ॥ बाल मनोरमा ॥

(सिद्धान्त० ङी प्रत्यय "जातेरस्त्री विषयात्" सूत्र पर)

अर्थ—जाति उस को कहते हैं जो सूरत और शकल में विशेषता के कारण दूसरी जातियों से भिन्न पहचानी जावे। अतः एक जाति का दूसरी से सूरत शकल आकृति में भेद आवश्यक है।

३३१ (प्रश्न)—सबसे पहिले संसार में तृण जाति की उत्पत्ति हुई। किन्तु उस तृण जाति में भी ईश्वर ने अनेक भेद दिखाये। तृण एक जाति है। किंतु उस में दूब, मुसेल, धुरियां मोथा आदि अनेक जाति भेद दीखते हैं। पृ० ३०६ पं० २३

उत्तर—बेशक, तृण जाति वृक्ष जाति से आकृति में भिन्न है। और वृक्षों से तृण सूरत और फिर तृणों में भी दूब, मुसेल, मोथा, धुरियां आदि में से भी प्रत्येक की आकृति दूसरे से भिन्न है। और यदि सब को एक स्थान में रक्खा जाये। तो पृथक् पृथक् पहिचाने जा सकते हैं। अतः वृक्षों के मुक़ाबले में तृण जाति है। और तृणों में भी दूब आदि पृथक् २ जातियां हैं।

३३२ (प्रश्न)—तृण के पश्चात् ईश्वर ने अन्न जाति की उत्पत्ति की। अन्न अन्न एक जाति। किंतु अन्न एक जाति में भेद प्रतिपादक सैंकड़ों अवान्तर जातियां दृष्टि गोचर होती हैं। धान, ज्वार, बाजरा, मकई, कोदों, सांवा, उर्द, मूंग, रवांस, चना, जौ, गेहूं, मटर, मसूर, अर्हर, इत्यादि। पृ० ३०६ पं० २५

उत्तर—बेशक तृण तथा वृक्षों की निस्बत सूरत शकल और आकृति भिन्न होने से अन्न जाति भिन्न है। और अन्नों में भी परस्पर एक दूसरे की आकृति भिन्न होने से पृथक २ जातियां हैं। यदि धान, ज्वार, बाजरा, मकई, उर्द, मूंग, चना, जौ, गेहूं आदि सब अन्नों को मिला दिया जावे तो सब की शकल सूरत भिन्न २ होने के कारण उन को चुन कर भिन्न २ किया जा सकता है। अतः अन्नों में अनेक जातियां हैं।

३३३ (प्रश्न) इसके पश्चात् वृक्ष जाति की उत्पत्ति की। वृक्ष वृक्ष एक जाति किंतु उसमें बट, पीपल, नीम, आम, जामुन खजूर, ताल, तमाल, शाल, सागौन, साखू, शीशम, बबूर, गूलर, पिलखन, अर्जुन प्रभृति अनेक भेद सिद्ध करने वाली अवांतर जातियां ईश्वर ने ही रची हैं। पृ० ३०७ पं० ३।

उत्तर—ठीक है वृक्षों की आकृति तृण तथा अन्न की निस्बत भिन्न होने से वृक्ष जाति भिन्न है। और वृक्षों में भी परस्पर एक दूसरे की पत्तों पुष्प फलों आदि में आकृति भिन्न २ होने के कारण अनेक जातियां हैं। यदि किसी बाग़ीचे में बट, पीपल, नीम, आम, जामुन, अनार, अमरूद आदि वृक्ष इकट्ठे हों तो प्रत्येक की उसके पत्तां फलों पुष्पों आदि की आकृति भिन्न होने से पहिचान की जा सकती है। अतः वृक्षों में भी अनेक जातियां हैं।

३३४ (प्रश्न) वृक्ष के अनन्तर पक्षी जाति की उत्पत्ति हुई। पक्षी पक्षी एक जाति' किंतु इस पक्षी एक जाति में चील' काक, कोयल, गीध, बाज, शिकरा, सारस; तीतर, बटेर, बगुला, हंस, चिड़िया, उल्लू, प्रभृति भेद सिद्ध करने वाली अनेक अवान्तर जातियां सृष्टि के आरम्भ में ही रची गईं। पृ० ३०७ पं० ६।

उत्तर—सत्य है, बेशक पक्षियों की जाति पशु मनुष्य आदि से आकृति भिन्न होने के कारण पृथक् है। और पक्षियों में भी परस्पर एक दूसरे की आकृति भिन्न होने के कारण अनेक जातियां हैं। यदि चील, काक, कोयल, गिद्ध, बाज, शिकरा, तोता, मैना, कबूतर, बटेर, आदि सब को मिला कर बिठा दिया जावे। तो सब की आकृति भिन्न २ होने के कारण सब को पृथक् पृथक् पहिचाना जा सकता है। अतः सिद्ध हुआ कि पक्षियों में भी अनेक जातियां हैं।

३३५ (प्रश्न)—पक्षी जाति के बाद पशु जाति उत्पन्न हुई। उस में भी भैंस, गौ, बकरी, हिरण भेड, ऊंट, घोड़ा, गधा, जबरा, रोज, शावर, प्रभृति अनेक अवान्तर जातियां भेद सिद्ध करने वाली मौजूद हैं। पृ० ३०७ पं० १०।

उत्तर—आप ठिकाने की बात कह रहे हैं। बेशक पशुओं की जाति आकृति के भिन्न होने के कारण वृक्ष तृण पक्षी तथा मनुष्यों की जाति से भिन्न है। और पशुओं में भी परस्पर एक दूसरे की आकृति भिन्न होने से अनेक जातियां हैं। यदि गाय भैंस ऊंठ गधा घोड़ा भेड़ बकरी आदि को मिला कर खड़ा कर दिया जावे तो सब को भिन्न २ आकृति के कारण

पहिचाना जा सकता है। अतः पशुओं में भी अनेक जातियां मौजूद हैं। तथा न्याय दर्शन में जाति का लक्षण किया गया है कि—समानप्रसवात्मिका जातिः ॥ न्याय० २ । २ । ७१ ॥

अर्थ—जो नर और मादा मिलकर अपने जैसी सन्तान पैदाकर सकें और उनका सिलसिला नसल भी आगे चले, वे नर तथा मादा एक जाति में शुमार किये जावगे। जैसे "घोड़ा और घोड़ी" तथा गधा और गधी" आपस में मिलकर अपने जैसी औलाद पैदा करते हैं तथा उनका वंश भी आगे चलता है। अतः पता लगा कि "घोड़ा घोड़ी" तथा 'गधा गधी' दोनों एक ही जाति में हैं। परन्तु "गधा और घोड़ी" ये दोनों मिल कर जिस सन्तान को पैदा करते हैं वह उन जैसी नहीं होती अपितु उन दोनों से भिन्न शकल वाली "खच्चर" की शकल में होती है। और उनका वंश भी आगे नहीं चलता। खच्चर पर ही ख़तम। इस से पता लगा कि "घोड़ी और गधे" की एक जाति नहीं है, अपितु इनकी जाति भिन्न २ है। इस असूल के अनुसार पता चलता है कि पशुओं में अनेक जातियां हैं।

३३६ (प्रश्न)—शास्त्र कहता है कि पशु जाति के पश्चात देव जाति की उत्पत्ति हुई। देव देव एक जाति, किंतु उसमें भी विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, भूत, ये दश अवान्तर जातियां हैं। पृ० २०७ पं० १३।

उत्तर—भूत तो कोई विशेष जाति ही नहीं है। अपितु सर्व प्राणियों का नाम भूत है। और राक्षस तथा पिशाचों को भी देव जाति मानना आप का ही काम है। वरना शास्त्र तो मानते नहीं। हां वास्तव बात यह है कि देव गंधर्व राक्षस

पिशाचादि ये सब मनुष्य जाति के ही कर्मानुसार तथा देशानुसार भेद हैं। इन को आकृति में परस्पर भेद नहीं हैं। विद्वानों का नाम देव, अविद्वानों को असुर, पापियों को राक्षस, और अनाचारियों को पिशाच कहते हैं। इसी प्रकार से दूसरों के भी कर्मभेद तथा देश भेद से भिन्न २ नाम हैं। वरना ये सब मनुष्य ही हैं। सूर्य्य देवता ने कुन्ती मनुष्य स्त्री में कर्ण समान सन्तान पैदा की और उस का वंश भी चला अतः सूर्य और कुन्ती की एक ही जाति हुई। इन्द्र, वायु, धर्म्म तथा अश्विनी कुमार देवताओं ने कुन्ती तथा माद्री मनुष्य स्त्रियों में युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल तथा सहदेव को समान सन्तान पैदा किया तथा उन का आगे वंश भी चला इस से सिद्ध हुवा कि इन्द्र धर्म्म वायु अश्विनिकुमार कुन्ती तथा माद्री सब की एक ही जाति थी। विश्वामित्र मनुष्य ने मेनका अप्सरा में शकुन्तला समान सन्तान पैदा की और उस का वंश भी आगे चला। इस से साबित हुवा कि विश्वामित्र तथा मेनका की एक ही जाति थी। इसी प्रकार से और भी दृष्टान्त देकर यह साबित किया जा सकता है कि ये सब मनुष्य जाति के ही कर्मभेद तथा देश भेद से नाम हैं। ये कोई भिन्न जातियां नहीं हैं। यदि हैं तो हमारे सनातन धर्म्मी भाई इनको हस्ती का कोई सबूत पेश करें।

३३७ (प्रश्न)—भाव यह है कि कीट पतंग वनचर नभचर जलचर आदि समस्त जातियों में अवान्तर जाति भेद अवश्य होते हैं। पृ० ३०७ पं० १५।

उत्तर—आप का फ़रमाना दुरुस्त है। क्योंकि कीट

पतंग वनचर नभचर जलचर आदि जातियों में से प्रत्येक के अन्दर भी अनेक प्रकार के जन्तुओं का परस्पर आकृति भेद होने से अनेक प्रकार की जातियां होती हैं। और वे आकृति भेद के कारण भिन्न २ पहचानी जाती हैं।

३३८ (प्रश्न)—ये जाति भेद जड़ पदार्थों में भी पाये जाते हैं। पत्थर एक जाति रहने पर भी उस पत्थर में संगे अस्वद संग मूसा संग मरमर एवं लाल पत्थर तथा सुफेद पत्थर आदि अनेक जाति भेद हैं। पृ० ३०७ पं० १७।

उत्तर—इस में क्या संदेह है जड़ पदार्थों में भी आकृति भेद रंग भेद से अनेक जातियां मौजूद हैं। और वे एक स्थान में रखने पर अपने आकृति भेद तथा रंग भेद से भिन्न २ पहचानी जाती हैं। जैसे यदि संग अस्वद संग मूसा संगमरमर लाल पत्थर सुफेद पत्थर आदि सब को एक ही स्थान में रख दिया जावे तो वे भी परस्पर आकृति भेद तथा रंग भेद होने के कारण भिन्न २ पहचाने जा सकेंगे।

३३९ (प्रश्न)—इसी प्रकार सृष्टि के आरम्भ में रची हुई मनुष्य जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि अनेक भेद पाये जाते हैं। ये अनादि हैं, ईश्वर कृत हैं इन में अन्य जातियों की भांति परिवर्तन रहित भेद है। पृ० ३०७ पं० १९।

उत्तर—आप को यहां पर धोका लगा है। जैसे पशु जाति में गौ, भैंस, ऊंट, घोड़ा, गधा आदि जातियों में परस्पर आकृति भेद है। जैसे पक्षी जाति में मोर, तीतर, बटेर, मैना आदि में परस्पर आकृति भेद होने से अवांतर जातियां हैं। वैसे मनुष्य जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि में

परस्पर आकृति भेद नहीं है। और यदि इन सब को इकट्ठा कर दिया जावे तो पहिचाना भी नहीं जा सकता। जैसे युधिष्ठिर एक वर्ष राजा विराट के पास ब्राह्मण बन कर रहा, कोई भी नहीं पहिचान सका। कर्ण ने ब्राह्मण बन कर परशुराम से विद्या पढ़ी तथा पांचों पांडु मुद्दत तक ब्राह्मण बन कर गुप्त रहे। अर्जुन, भीम तथा कृष्ण ब्राह्मण बन कर जरासंध को मारने गये किंतु इन को कोई न पहिचान सका। और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों में यदि एक दूसरे की स्त्री से एक दूसरे का विवाह हो जावे तो परस्पर संयोग से समान संतान उत्पन्न होती है और उन का वंश भी आगे चलता है। इस से पता चलता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन सब की एक ही जाति है और वह मनुष्य जाति है। यदि इन की जाति भिन्न होती तो इन में भी एक दूसरे की स्त्री के संयोग से खच्चर की भांति भिन्न प्रकार की संतान पैदा होती और उन का वंश भी आगे न चलता।

अतः पता लगा कि एक ही मनुष्य जाति में गुण कर्म स्वभाव से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र चार भेद हैं। ये भेद अनादि काल से नहीं हैं। क्योंकि इन में परिवर्तन हो जाता है। ब्राह्मण से शूद्र तथा शूद्र से ब्राह्मण बन जाते हैं। और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ईसाई और मुसलमान बन जाते हैं। इत्यादि परिवर्तन होते ही रहते हैं। अतः ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन सब की एक ही मनुष्य जाति है। जो पैदा होने से मरने तक तबदील नहीं हो सकती। और मनुष्य जाति के ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि ये भेद कर्मानुसार हैं। जो परिवर्तन भी होते रहते हैं।

३५० (प्रश्न)—मनुष्योंकी उत्पत्ति स्थानमें ही भेद प्रतिपादन करता हुआ वेद "ब्राह्मणोऽस्य" इस मन्त्र में कहता है कि "इस यज्ञ पुरुषके मुख से ब्राह्मण हुए और बाहु से क्षत्रिय ऊरु से वैश्य तथा पैरों से शूद्र"। पृ० ३०७ पं० २१।

उत्तर—आप का यह अर्थ सर्वथा अशुद्ध और स्वयं वेद के ही विरुद्ध है। क्यूंकि वेद ईश्वर को निराकार अकाय वर्णन करते हैं। जैसे "सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरमित्यादि यजु० ४०।८" वर्णन करता है कि "वह परमात्मा सर्वव्यापक शीघ्रकारी, अकाय व्रणरहित नस तथा नाडी के बंधन से रहित है" जब परमात्मा के शरीर ही नहीं है। तो उस के मुख से ब्राह्मण बाहु से क्षत्रिय ऊरु से वैश्य तथा शूद्रों को परमात्मा के पावों से पैदा हुआ मानना वंध्या के पुत्र के विवाह में मिठाई खाने की भांति असंभव तथा उन्मत्त प्रलाप के सिवाय और क्या हो सकता है। इस मंत्र के वास्तव अर्थों को जानने के लिये इस से पूर्व मंत्र के अर्थों का जानना आवश्यक है। जिसमें प्रश्न किया गया है। और जिसके उत्तर में यह मंत्र है। दोनों मंत्र इस प्रकार से हैं।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन्।
मुखंकिमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा उच्येते॥ १०॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥ ११॥
(यजु० ३१। १०-११)

भावार्थ—जिस परमात्मा को कई प्रकार से कल्पना करते हुए पुरुष वर्णन करते हैं। उस पुरुष का मुख क्या है।

उसकी भुजा कौन हैं। उसके ऊरू कौन तथा पाओं कौन कहे जाते हैं॥ १०॥

इस मंत्र में जो परमात्मा को कई प्रकार की कल्पना करके वर्णन करने का ज़िकर है। वह कल्पना क्या वस्तु है। इस को दूसरे शब्दों में अलंकार भी कहते हैं।

सौन्दर्य्यमलङ्कारः॥ २॥

(काव्यालंकार सूत्र वृत्ति । १ । १ । २)

भावार्थ—किसी बात को सौन्दर्य से वर्णन करने का नाम अलंकार है। अलंकार बहुत प्रकार के होते हैं उनमें से एक अलंकार का नाम है उपमालंकार। उसका लक्षण यह है।

उपमानेनोपमेयस्य गुणलेशतः साम्यमुपमा॥ १॥

उपमान से उपमेय के गुणों की कुछ समानता का नाम उपमा है। वह उपमा दो प्रकार की है।

सा पूर्णा लुप्ता च ॥४॥

वह पूर्णा तथा लुप्ता दो प्रकार की है। पूर्णा का लक्षण—

गुण द्योतकोपमान उपमेय शब्दानां समग्र्ये पूर्णा ॥५॥

जिस में उपमान् उपमेय उपमा वाचक शब्द तथा गुण द्योतक शब्द सारे मौजूद हों वह पूर्ण उपमा है। जैसे—

'कमल मिव मुखं मनोज्ञमिति' मुख कमल की भांति सुन्दर है। इस वाक्य में—

कमल–उपमान–जिस से उपमा दी जावे।

मुख–उपमेय–जिस को उपमा दी जावे।

मनोज्ञ–साधारण धर्म समान गुण जो दोनोंमें मिलताहो।

इव–उपमा वाचक शब्द, जिन से समानता बताई जावे।

यहां उपमाके चारों अङ्ग मौजूद हैं, अतः यहां पूर्ण उपमा है।

लोपे लुप्ता ॥६॥ (काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति) ४।२।१–६

जिस में किसी अङ्ग का लोप हो जावे वह लुप्त उपमा है

जैसे—'शशीव राजा' 'चांद जैसा राजा' इस में साधारण धर्म जो गुण दोनों में मिलता है। जिस के कारण राजा को चांद जैसा कहा गया है वह लुप्त है। अतः इस का नाम 'धर्म लुप्तोपमा' है।

'दूर्वा श्यामेयम्' 'यह स्त्री काली दूब है' यहां पर उपमा वाचक शब्द का लोप है। जो समानता को बयान करता है। अतः इस का नाम 'वाचक लुप्तोपमा' है।

'शशि मुखी' 'चन्द्र मुखी' यहां पर साधारण धर्म और उपमा वाचक शब्द दोनों का लोप है। इस को 'वाचक धर्म लुप्तोपमा' कहते हैं।

हम इस के चन्द उदाहरण देते हैं—

सर्वोपनिषदोगावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीता मृतं महत्॥

भाषार्थ—सब उपनिषद गौवें हैं। दोहने वाले कृष्ण हैं। पीने वाला बुद्धिमान् अर्जुन बछडा तथा महान् अमृत गीता दूध है।

यहां पर उपनिषदों को गौवों की, कृष्ण को दोहने वाले की, अर्जुन को बछडे की तथा गीता को दूध की उपमा दी गई है। यहां उपमा वाची शब्दों तथा साधारण धर्म्म का लोप है। अतः यहां पर "वाचक धर्म्मलुप्तोपमा" है।

यहां पर गीता को दूध की उपमा ही दी गई है वास्तव में गीता दूध नहीं है। यदि कोई आदमी इस श्लोक को ठीक रूप से न समझ कर गीता को कटोरे में डाल कर किसी को कहे कि लीजिये दुग्ध पान कीजिये तो सब लोग उसे मूर्ख ही कहेंगे बुद्धिमान् नहीं।

आत्मानदी संयमपुण्य तीर्था
सत्योदका शीलतटादयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र
न वारिणा शुद्ध्यति चांतरात्मा॥

भावार्थ—आत्मा नदी है संयम पवित्र तीर्थ वाली सत्य जल वाली शीतल तट तथा दया लहरों वाली है। हे युधिष्ठिर उस में स्नान कर जल से आत्मा शुद्ध नहीं होता।

इस श्लोक में आत्मा को नदी की उपमा देकर तरंगों को भी उपमा दी गई है। किंतु आत्मा वास्तव में नदी नहीं है—

प्रणवोधनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

भावार्थ—प्रणव धनुष हो, ये आत्मा तीर हो, उस का ब्रह्म लक्ष्य हो, होशयारी से लक्ष्य को वेधना चाहिये, तीर की भांति तन्मय हो जावे।

यहां आत्मा को तीर की उपमा दी गई है, परन्तु वास्तव में आत्मा तीर नहीं है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रगृहमेवच॥
इन्द्रियाणि हयानाहु विषयान् तेषु गोचरान्।
आत्मबुद्धि मनोयुक्तः कर्तेति उच्यते बुधैः॥

भावार्थ—आत्मा को सवार जान, शरीर को रथ समझ बुद्धि को सारथी जान, मन को लगाम समझ। इन्द्रियों को घोड़े और विषयों को उन की खुराक कहते हैं। बुद्धि और मन से युक्त आत्मा को बुद्धिमान् लोग कर्ता कहते हैं। यहां आत्मा को रथी की उपमा देकर तत् संबंधी वस्तुओं को भी उपमा दी है। किंतु वास्तव में आत्मा रथी नहीं है।

इन सब स्थलों में "वाचक धर्म्मलुप्तोपमा" अलंकार हैं। जिन में उपमा वाची शब्द तथा साधारण धर्म्म का लोप है। इसी प्रकार के अलंकार वेदों में भी हैं जैसे—

अजोवा इदमग्रेव्यक्रमत तस्योर इयमभवद् द्यौः पृष्ठम्।
अंतरिक्षं मध्यम् दिशः पार्श्वे समुद्रौ कुक्षी ॥ २० ॥
सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं श्रद्धा प्राणो विराट् शिरः।
एषवा ऽपरिमितो यज्ञो यदजः पंचौदनः ॥ २१ ॥

अथर्व० ९।५।

भावार्थ—यह बकरा आगे आया, इस की छाती यह पृथिवी, द्यौः पीठ, आकाश पेट तरफें पसवाडे समुद्र बगले ज्ञान तथा सत्य दोनों आंखें और संपूर्ण सत्य और श्रद्धा प्राण और ब्रह्मांड सिर है वह यह अपरिमित यज्ञ है जिस को पंचौदन अज कहते हैं।

इस मंत्र में परमात्मा को अज अर्थात् बकरे की उपमा देकर उस के अंगों की भी कल्पना करके परमात्मा का वर्णन किया गया है। परमात्मा वास्तव में बकरा नहीं है।

बस इसी प्रकार से ही "यत्पुरुषंव्यदधुः" इस मंत्र में परमात्मा को पुरुष की उपमा देकर पूछा है कि उस के मुख

बाहु ऊरू तथा पाओं कौन हैं। इस का उत्तर ही अगले मंत्र में "ब्राह्मणोऽस्य" दिया गया है कि "ब्राह्मण उस का मुख हैं। भुजा क्षत्रिय किये। उस के ऊरू जो ये वैश्य हैं। पाओं के लिये शूद्र हुए" इस मंत्र में परमात्मा को पुरुष की उपमा देकर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को उस पुरुष के मुख बाहु ऊरू तथा पांव कल्पना किया गया है। यह पूर्ववत् उपमा अलंकार है, वास्तव में परमात्मा निराकार है उस के मुखादि अंग नहीं हैं। यहां पर परमात्मा को पुरुष की उपमा देकर तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र को उस के मुख बाहु ऊरू तथा पैर कल्पना करने का यही प्रयोजन है कि मनुष्य सृष्टि में जो लोग मुख के समान सर्व साधारण से पांच गुणा ज्ञान रखते हों, लोगों को उलटे रास्ते से हटा कर सीधे रास्ते पर चलावें तथा अपनी पढ़ी विद्या लोगों को पढ़ावें, वे ब्राह्मण कहलाने के योग्य हैं। तथा मनुष्य सृष्टि में जो लोग भुजा के समान अपने आप को खतरे में डाल कर भी दूसरों की रक्षा करें वे क्षत्रिय कहलाने के क़ाबिल तथा जो लोग पेट के समान मुल्क के कच्चे माल को पक्का माल बना कर उस की तिजारत से जो नफ़ा हो उस से अपने देश की परवरिश करें वे वैश्य कहलाने के क़ाबिल हैं। और मनुष्य सृष्टि में जो लोग न दिमाग़ी काम कर सकें, न रक्षा और व्यापार का काम कर सकें केवल पाओं के समान बोझ उठाने अर्थात् कुलीपने का काम जानते हों वे शूद्र कहाने के क़ाबिल हैं। यह मंत्र वर्ण व्यवस्था को गुण कर्म स्वभाव से प्रतिपादन करते हैं जन्म से नहीं।। अतः हमारा किया हुआ अर्थ वेदानुकूल तथा आप का अर्थ स्वयं वेद के ही विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है।

३४१ (प्रश्न) हमारे इसी अर्थ की पुष्टि "लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं" (मनु० १ । ३१) तथा "उत्तमाङ्गोद्भवाद्" (मनु० १ । ९३) और "यज्ञसिद्ध्यर्थम्" (हारीत० १ । १२) तथा शूद्रांश्च पादयोः" (हारीत० १ । १३) आदि स्मृतियां करती हैं। पृ० ३०८ पं० ५ ।

उत्तर—ये स्मृतियां आपके अर्थ की पुष्टि नहीं करतीं अपितु हमारे अर्थ की पुष्टि करती हैं । और इन श्लोकों के अर्थ इस प्रकार से हैं—

लोकानांतु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥ मनु० १ । ३१ ॥
उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्रह्मणश्चैवधारणात् ।
सर्वस्यैव सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ मनु०१ । ९३ ॥
यज्ञसिद्ध्यर्थमनघान् ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत् ।
असृजत् क्षत्रियान् बाह्वोर्वैश्यानप्युरुदेशतः ॥ १२ ॥
शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेषां चैवानुपूर्वशः ।
यथा प्रोवाच भगवान् ब्रह्मयोनिः पितामहः ॥ १३ ॥
(हारीत० १ । १२-१३)

भावार्थ—संसार की तरक्की के लिये मुख भुजा पेट तथा पैर के समान ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र बनाये ॥ ३१ ॥ मुख के समान होने तथा श्रेष्ठ होने और वेद के धारण करने के कारण इस सारे संसार का धर्म से ब्राह्मण स्वामी है ॥ ९३ ॥ यज्ञसिद्धि के लिये पाप रहित ब्राह्मणों को मुख के समान पैदा किया, भुजा के समान क्षत्रियों को बनाया और वैश्यों को भी पेट के समान बनाया ॥ १२ ॥ और शूद्रों को पाओं के समान

बनाकर क्रमशः उनका विस्तार किया। इसी प्रकार से ही ब्रह्मा ने भी कहा है ॥ १३ ॥ इन स्मृति वाक्यों के यही अर्थ संगत हो सकते हैं, वरना यदि आप इनका यह अर्थ करेंगे कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र परमात्मा के मुख बाहु ऊरू तथा पैरों से पैदा हुए, तो—

ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तोव्ययञ्जन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः सएव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥ (मनु० १)
एकाकारमनानंतंबुद्धौरूपमनामयम्।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्यायेज्जगदाधारमच्युतम् ॥ ५ ॥
आत्मना बहिरंतः स्थं शुद्धंचामीकरप्रभम्।
रहस्येकान्त मासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम् ॥ (हारीत०अ०७)

भावार्थ—उसके पश्चात् नित्य स्वरूप, इन्द्रियों से अगोचर, अखण्डित तेज वाला, प्रकृति का प्रेरक इन पांच महाभूतों से जगत् को प्रकट करके प्रसिद्ध हुआ ॥ ६ ॥ जो वह इन्द्रियों से अगोचर, अत्यन्त सूक्ष्म, अवयव रहित, सनातन चिन्तन के अयोग्य, सर्व भूतों में व्यापक परमात्मा स्वयं प्रसिद्ध हुआ ॥७॥ एकाग्र मन होकर अपनी बुद्धि में अनन्त सुख स्वरूप सूक्ष्म से सूक्ष्म जगत् के आधार अविनाशी परमात्मा का ध्यान करे ॥ ५ ॥ एकान्त में बैठ कर मरने तक अपनी आत्मा के द्वारा अन्दर बाहर सर्वत्र व्यापक प्रकाश स्वरूप परमात्मा का ध्यान करे ॥६॥

जब यही स्मृतियें परमात्मा को अवयव से रहित इन्द्रियों से अगोचर, सूक्ष्म से सूक्ष्म, आत्मा से जानने योग्य

शरीर रहित, निराकार वर्णन कर रही हैं। तो फिर पूर्व श्लोकों में ईश्वर को शरीर धारी और साकार मान कर उस के अङ्गों से ब्राह्मणादि की उत्पत्ति कैसे मानी जा सकती है।

और वेद भी परमात्मा को अकाय मानता है अतः आप का अर्थ ठीक मानने से स्मृतियां वेद के विरुद्ध होने से अप्रमाण हो जावेंगी तथा हमारा अर्थ मानने से वेदानुकूलता के कारण प्रमाण मानी जा सकेगी। इस कारण हमारा अर्थ वेदानुकूल होने से ठीक तथा आप का वेद विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है।

हमारे अर्थ की पुष्टि में आप का पांचवां वेद इस प्रकार लिखता है कि—

ब्रह्म वक्त्रं भुजौ क्षत्रमूरू मे संस्थितौ विशः ॥१३॥
पादौशूद्रा भवन्तीमे विक्रमेण क्रमेण च ॥१४॥
(महा० वन० अ० १८९)

ब्रह्मवक्त्रं भुजौ क्षत्रं कृत्स्नमूरूदरं विशः।
पादौयस्याश्रिताः शूद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः ॥६७॥
(महा० शान्ति० अ० ४७)

भाषार्थ—ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा तथा दोनों जांघ वैश्य और शूद्र परिश्रम के कारण तथा नम्बरवार पाओं हैं ॥१३।१४

ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, सारे जांघ और पेट वैश्य तथा जिस के पाओं के शूद्र आश्रित हैं। उस वर्णात्मक ईश्वर को नमस्कार है ॥६७॥

ईश्वर निराकार शरीर से रहित है। यदि उस का

शरीर कल्पना करना हो तो ब्राह्मण ही उस का मुख क्षत्रिय ही उस की भुजा, वैश्य ही उस के जांघ तथा पेट और शूद्र ही उस के पांओं हैं। और कोई परमेश्वर के मुख भुजा जांघ पेट पाओं आदि अङ्ग नहीं हैं। इसी अर्थ की ताईद आप के भाष्यकार उव्वट करते हैं।

यत्पुरुषमिति—यत्पुरुषं देवा इन्द्रादयः तस्मिन् यज्ञे यदधुः कृतवन्तो यथा। तद्वत् योगिनः आत्म यज्ञे पुरुषं ज्ञानम् ज्ञानान्तं तत्कृतवन्तः कति प्रकारं विकल्पितवन्तः। तस्यैवं विधस्य किं मुखम्, कौ बाहू, कौ ऊरू पादौ उच्येते उच्यन्ता-मित्यर्थः ॥३१। १०॥

ब्राह्मणोऽस्येति—अस्य यज्ञोत्पन्नस्य पुरुषस्य ये केचिद् ब्राह्मणाः ते मुख आसीत्। ये क्षत्रियाः ते बाहू कृताः। ये वैश्याः ते अस्य ऊरू कृताः। ये शूद्राः ते पद्भ्याम् अजायन्त इति कल्प्यन्ते तदस्योत्पन्नत्वादिति। एवमेतेऽवयवाः शिरः प्रभृतयः पुरुषस्य विद्यन्ते नान्ये इति ॥ ३१। ११॥

भाषार्थ—जिस परमात्मा को इन्द्रियों के स्वामी विद्वान् योगियों ने आत्म यज्ञ में कई प्रकार से कल्पना किया है। इस प्रकार से कल्पना किये हुए परमात्मा का मुख कौन भुजा कौन हैं, जांघ कौन और पाओं कौन कहे जाते हैं। बता दो। यह अर्थ है॥ १०॥

उस यज्ञ में कल्पना किये हुए पुरुष परमात्मा के जो ब्राह्मण हैं वे मुख हैं। जो क्षत्रिय हैं वे भुजा किये गये। जो वैश्य हैं वे इस के जांघ माने गये। जो शूद्र हैं वे पाओं स्थानीय हुए, ऐसी कल्पना की जाती है उस से पैदा होने के

कारण । ऐसे ये ही अवयव शिर आदि परमात्मा के हैं और नहीं हैं॥ ११ ॥

कैसा स्पष्ट हो गया कि ये ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ही परमात्मा के मुख भुजा जांघ पेट पैरादि अवयव कल्पना किये जा सकते हैं। वरना परमात्मा के और कोई अवयव नहीं हैं।

अतः परमात्मा के मुखादि अवयवों से ब्राह्मणादि की पैदाइश मानना सर्वथा वेद विरुद्ध होने से मिथ्या ही है।

३४२ (प्रश्न)—"यस्मादेते इत्यादि" शतपथ भी हमारे अर्थ की ताईद करता है कि ब्राह्मणादि परमात्मा के मुखादि अंगों से पृथक २ स्थानों से पैदा हुए। पृ० ३०८ पं० १४

(उत्तर) शतपथ के इस पाठ का यह अर्थ नहीं है जो आप करते हैं। अपितु यह शतपथ भी हमारी ताईद करता है, आप की नहीं। देखिये इस शतपथ का अर्थ यूं है, कि—

यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त इत्यादि जिसकारण ब्राह्मण सब वर्णों में मुख्य हैं। इस लिये यह कथन संगत होता है कि मुख के समान पैदा हुए।

बतलाइये, इस से यह कहां से सिद्ध होता है कि ब्राह्मणादि परमात्मा के मुखादि अंगों से पैदा हुए।

३४३ (प्रश्न)—पुरुष सूक्त तीन विषयों का वर्णन करता है। इस का प्रथम विषय इतिहास है, द्वितीय विषय पुरुष मेध यज्ञ का क्रम, तीसरा विषय सृष्टि रचना है। पृ० ३[illegible] पं० १७

उत्तर—पुरुष सूक्त का मुख्य विषय सृष्टि की उत्पत्ति वर्णन करना है। गौण रूप से वेदोक्त धर्म का उपदेश तथा

...ों के कर्म मनुष्य जाति के कर्तव्यों का भी वर्णन है। यदि ...रुष मेध यज्ञ के क्रम से आप का यही अभिप्राय है कि सूक्त ...में मनुष्य के कर्तव्यों को क्रमशः वर्णन किया गया है तो ...ठीक है। और यदि आप का अभिप्राय पुरुष मेध से पुरुष ...को मार कर होम करना है तो इस पौराणिक लानत का यजुर्वेद ...में नाम तक भी नहीं है। इतिहास से भी यदि आप का अभि-...प्राय सृष्टि उत्पत्ति के सिलसिले के वर्णन से हो तो ठीक है। ...और यदि आपका अभिप्राय इतिहास से मनुष्यों की तवारीख़ ...से हो तो आप का लेख ग़लत है। क्यूंकि वेद अनादि ईश्वर का ...ज्ञान है। इन में इतिहास का होना असंभव है। क्यूंकि इतिहास ...किसी मनुष्य के जन्म के पीछे लिखा जाता है, अनादि वेद में, ...उस का वर्णन कैसे हो सकता है।

३४४ (प्रश्न)—"तं यज्ञंबर्हिषि इत्यादि यजु० ३१। ६।" ...इस मन्त्र में तो इतिहास है। पृ० ३०६ पं० २१।

उत्तर—इस मन्त्र में किसी विशेष पुरुष का इतिहास ...नहीं है। अपितु असूली तौर से बतलाया है कि जिस परमात्मा ...को ऋषि महात्मा लोग सृष्टि की आदि में पूजन करते थे उसी ...का तुमको पूजन करना चाहिये। जैसा कि—

तं यज्ञं बर्हिषिप्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये॥ यजु० ३१। ६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो विद्वान् और योगाभ्यासादि ...साधन करते हुए मन्त्रार्थ जानने वाले ज्ञानी लोग जिस सृष्टि ...से पूर्व प्रसिद्ध हुए, सम्यक पूजने योग्य पूर्ण परमात्मा को ...हृदयस्थ ज्ञान यज्ञ में सींचते अर्थात् धारण करते हैं। वे ही

उस के उपदेश किये हुए वेद से उस का पूजन करते हैं। उस को तुम लोग भी जानो ॥ ६ ॥

भावार्थ—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि सृष्टिकर्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदय अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें ॥६॥

कहिये महाराज ! इस मन्त्र में कौन सा किस का इतिहास है। यदि नहीं तो वेद में इतिहास बतला कर उस को अनित्य होने के कलंक से कलंकित न कीजिये।

३४५ (प्रश्न)—फिर इस के आगे 'मुखं किमस्यासीत्' इस मन्त्र में पुरुष मेध के लिये निराकार पुरुष के अङ्गों का प्रश्न है कि पुरुषका मुख, बाहु, ऊरू, पाद क्या हैं। इसके आगे 'ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीत्' यह मन्त्र है। इस मन्त्र में मुख, बाहु, ऊरू यह तीन पद प्रथमान्त हैं, जैसे यह प्रथमांत हैं ऐसे ही पाद शब्द भी प्रथमान्त होना चाहिये था। किंतु वह पंचम्यन्त है। इस का मतलब यह है कि इस मन्त्र के दो अर्थ होंगे। पृ० ३०९ पं० ...

उत्तर—शुक्र है, आपने परमात्मा को निराकार तो माना। परन्तु यह क्या लिख दिया कि 'निराकार पुरुष के अङ्गों का प्रश्न' क्या निराकार के भी अङ्ग होते हैं। आप इस मन्त्र में पढ़े 'व्यकल्पयन्' पद को चुराना चाहते हैं। जिस का अर्थ है कि 'कल्पना करते हैं, जिस से स्पष्ट है कि निराकार के अङ्ग नहीं होते किन्तु वर्णन में सुन्दरता लाने के लिये कल्पना किये गये हैं। वेदों में विभक्तियों का व्यत्यय हो जाया करता है। अतः वेद में विभक्तियों की इतनी प्रबलता नहीं होती जितनी अविरोधी अर्थ की प्रबलता होती है। चूंकि वेद की भाषा

अनादि है और व्याकरण भाषा के पीछे बना करता है। अतः व्याकरण वेद की वाणी को पूरे तौर से अपने में नहीं बान्ध सका। तभी तो व्याकरण के कर्ता ने कहा कि 'व्यत्ययो बहुलम्' 'बहुलम् छन्दसि' क्वचित् प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्य देव। विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥

अप्रवृत्ति के स्थान में प्रवृत्ति, प्रवृत्ति के स्थान में अप्रवृत्ति, विकल्प, कहीं कुछ और ही, वेदों के विधान को बहुत प्रकार से विचार कर बहुल को चार प्रकार का कहते हैं। अतः विभक्तियों का जोड़ मेल आप के लिये विशेष लाभदायक न होगा। तथापि दोनों मंत्रों में प्रथमान्त सात पद हैं। और पंचम्यन्त केवल एक पद। अतः सात की प्रबलता से एक भी प्रथमान्त ही माना जावेगा। और यदि "पद्भ्याम्" को चतुर्थी का द्विवचन मान लें तो भी अर्थ प्रथमान्त के अनुकूल ही निकल पड़ता है। आप चाहे वेद मंत्र के दो छोड़ पचास अर्थ करें, हमें कोई आपत्ति नहीं है। यदि वह परस्पर विरुद्ध अथवा वेद के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध न हों। अच्छा अब अर्थ कीजिये।

३४६ (प्रश्न)—प्रथम अर्थ में मुख बाहु ऊरू पाद ये चारों शब्द प्रथमान्त लिये जावेंगे। ब्राह्मण इस पुरुष का मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य ऊरू, शूद्र पाद यह अर्थ हुवा। इस अर्थ से प्रथम मंत्र के प्रश्नों का उत्तर भी होगया पृ० ३१० पं० २

उत्तर—परमात्मा आप का भला करे। आख़िर ठिकाने पर आ ही गये। यदि सुबह का भूला शाम को घर आजावे तो उसे भूला न जानना चाहिये। यदि इसी प्रकार

से अक़्ल से काम लेते तो आप को इस किताब में कुफ़्र तोलने की तथा हमें इस के जवाब में कुफ़्र तोड़ने की नौबत ही क्यों आती।

३४७ (प्रश्न)—जहां वेद ने ईश्वर के मुख का पूजन लिखा है वहां ब्राह्मण का पूजन होगा। क्यूँकि ब्राह्मण ईश्वर का मुख है। जहां ईश्वर की भुजाओं का पूजन होना है वहां क्षत्रियों का और ईश्वर के ऊरू पूजन में वैश्यों का पूजन तथा पाद के पूजन में शूद्रों का पूजन हो जावेगा। इस अर्थ से पुरुष मेध का पूजन क्रम निकला। पृ० ३१० पं० ६।

उत्तर—आपने उपरोक्त लेख से कई एक वैदिक सचाइयों को स्वीकार कर लिया। प्रथम तो शूद्रों को पूज्य क़रार देकर आप ने अछूतोद्धार पर मञ्जूरी की मुहर लगादी। दूसरे आप ने तसलीम कर लिया कि केवल ब्राह्मण ही पूज्य नहीं हैं, अपितु चारों वर्ण परस्पर एक दूसरे के लिये पूज्य हैं। तीसरे अब परमात्मा की मूर्ति बनाने की ज़रूरत ही बाक़ी न रही। जिसने सम्पूर्ण ब्रह्म की पूजा करनी हो वह चारों वर्णों की पूजा कर ले। चौथे परमात्मा को पुरुष कल्पित करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र को उसका मुख भुजा ऊरू पाद कल्पना करने का प्रयोजन चारों वर्णों की योग्यता का प्रतिपादन मानकर कर्म से वर्णव्यवस्था को मान लिया। पांचवें आपने पुरुष की बलि का खण्डन करके परस्पर पूजा को ही पुरुषमेध यज्ञ मान कर यज्ञ में हिंसा का निराकरण मान लिया।

३४८ (प्रश्न) दूसरे अर्थ में मुख बाहु ऊरू इन तीन पदों को वैसे ही पंचम्यन्त बनाना पड़ेगा, जैसे पद्भ्यां पंचम्यन्त

है। ऐसा करने पर अर्थ यह होगा कि "ईश्वर के मुख से ब्राह्मण भुजाओं से क्षत्रिय ऊरू से वैश्य पैरों से शूद्र मंत्र के अन्त में "अजायत" क्रिया पड़ी है। जिस का अर्थ है "उत्पन्न हुए" यह सृष्टि उत्पत्ति का अर्थ है। पृ० ३१० पं० ११

उत्तर—आप का यह अर्थ सर्वथा असंगत वेद विरुद्ध और असंभव है : चूंकि प्रथम मंत्र में यह प्रश्न है कि इस कल्पित पुरुष के मुखादि कौन है। अतः उत्तर यही संगत हो सकता है कि कल्पित पुरुष के मुखादि ब्राह्मणादि ही हैं। जब प्रथम मंत्र में ब्राह्मणादि की पैदाइश का प्रश्न ही नहीं है तो उत्तर में ब्राह्मणादि की पैदाइश का वर्णन करना प्रकरण विरुद्ध होने से असंगत हैं।

चूंकि वेद कहता है कि "अकायमव्रणमस्नाविरम्" परमात्मा शरीर रहित घावशून्य तथा नसनाडी के बंधन से रहित है। जब परमात्मा के शरीर ही नहीं है तो उस के मुखादि शरीर अवयवों से ब्राह्मणादि की पैदाइश मानना वेद विरुद्ध होने से असत्य हैं। चूंकि परमात्मा सर्वव्यापक सर्वदेशी निराकार निरवयव है अतः उस के शरीर से ब्राह्मणादि की पैदाइश असंभव है। जब आप का अर्थ ही असंगत वेद विरुद्ध तथा असंभव हो गया तो उस के लिये एक विभक्ति के मुकाबले में सात विभक्तियों को तबदील नहीं किया जा सकता। रही बात "अजायत" क्रिया की, सो "अजायत" का अर्थ प्रकट होना, प्रसिद्ध होना भी है। और यदि "पैदा हुए" ही अर्थ करना है तो शूद्र पाओं के सदृश पैदा हुए यह अर्थ संगत हो सकता है। यदि पद्भ्यां को चतुर्थ्यन्त

मान लें तो पाओं स्थानी शूद्र पैदा हुए यह अर्थ भी संगत हो जाता है। अतः आप की सारी ही कल्पना मिथ्या है। अब हम यह विचारना चाहते हैं कि आप ब्राह्मणादि को ब्रह्म के मुखादि अवयवों से पैदा होने के असंभव अर्थ पर इतना बल क्यूं देरहे हैं। हां याद आया। आप ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य तथा शूद्रों के पैदाइश स्थानों को भिन्न २ साबित करके वर्णपरिवर्तन का निषेध करना चाहते हैं। सो हो न सकेगा। देखिये मनुष्य के शरीर में उपादानकरण माता और पिता का संपूर्ण शरीर होता है। क्यूं कि माता पिता का वीर्य शरीर के अंग २ से पैदा होकर बच्चे के शरीर को बनाता है। अतः बच्चे की शकल माता पिता के शरीर जैसी होती है। माता की योनि तो महज़ बच्चे के बाहर आने का साधन ही होता है। इसी प्रकार से आप ब्राह्मणादि की पैदाइश ब्रह्म के सारे शरीर से और मुखादि को केवल बाहर आने का साधन योनिवत् मानते हैं या ब्रह्म के मुख भुजा ऊरू तथा पाद को पृथक् पृथक् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र की पैदाइश में माता पिता के शरीरवत्उपादान कारण मानते हैं। यदि पहिली बात हो कि ब्राह्मणादि के शरीर का उपादान कारण तो ब्रह्म का सारा शरीर है। मुखादि तो केवल योनिवत बाहर आने का साधन ही हैं। तो फिर सारे मनुष्य ही ब्राह्मण हैं। क्यूंकि सब के शरीर का उपादान कारण ब्रह्म का सारा शरीर है। बाहर आने के रास्ते भिन्न २ होने से कोई फर्क नहीं पड़ सकता। जैसाकि—

सर्वे वर्णा ब्राह्मणा ब्रह्मजाश्च सर्वे नित्यंव्याहरन्ते च ब्रह्म।

तवं शास्त्रं ब्रह्म बुद्ध्या ब्रवीमि सर्वं विश्वं ब्राह्मचैतत् समस्तम् ॥ ८९ ॥

ब्रह्मास्यतो ब्राह्मणाः संप्रसूताः, बाहुभ्यां वै क्षत्रियाः संप्रसूताः । नाभ्यां वैश्याः पादतश्चापिशूद्राः, सर्वेवर्णा नान्यथा वेदितव्याः ॥ ९० ॥ (महा० शान्ति० अ० ३१८)

न विशेषोऽस्ति वर्णानाम् सर्वं ब्रह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वं सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥ १० ॥
(महा० शान्ति० अ० १८८)

भावार्थ—सारे वर्ण ब्राह्मण हैं, क्यूंकि ब्रह्म से पैदा हुए हैं और सब ब्रह्म का उच्चारण करते हैं । ब्रह्म बुद्धि से तत्व का विचार करके कहता हूं । यह सारे का सारा जगत् ही ब्रह्म है ॥ ८९ ॥ ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण पैदा हुए । भुजा से क्षत्रिय पैदा हुए । नाभि से वैश्य तथा पाओं से शूद्र पैदा हुए । अतः सारे वर्णों को अन्यथा न जानना चाहिये ॥ ९० ॥ वर्णों में कोई विशेषता नहीं है । यह सारा ही जगत् ब्राह्मण है । ब्रह्म ने ही पूर्व रचा है । कर्मों के अनुसार वर्ण भाव को प्राप्त हो गया ॥१०॥

और यदि दूसरी बात मानें कि ब्रह्म के मुखादि पृथक् २ ब्राह्मण आदि के शरीरों में माता पिता वत् उपादान कारण हैं तो फिर ब्राह्मणों की आकृति मुख के समान गोल २ कद्दू की भांति होनी चाहिये । क्षत्रियों के शरीर भुजा की भांति लंबे २ डंडे से तथा वैश्यों के शरीर पेट की भांति घड़े के समान वा मांगों के समान तथा शूद्र के शरीर पग के समान होने चाहिए । किंतु ऐसा संसार में नज़र नहीं आता । चारों वर्णों की आकृति एक सी ही है । और बनावट से कोई ब्राह्मणादि का पता नहीं

लगता। इस से साबित है कि ब्रह्म के अंगों से पैदा होने की कल्पना मिथ्या ही है। चारों वर्णों की एक ही मनुष्य जाति है। वर्णों का भेद कर्मानुसार है। जैसा कि—

जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते ।
संकरात् सर्व वर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः ॥ ३१ ॥
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः ।
वाङ् मैथुनमथो जन्म मरणं च समं नृणाम् ॥ ३२ ॥
इदमार्षं प्रमाणंच ये यजामह इत्यपि ।
तस्माच्छील प्रधानेष्टं विदु र्ये तत्त्वदर्शिनः ॥ ३३ ॥
(महा० वन० अ० १८०)

भावार्थ—युधिष्ठिर ने कहा कि हे महामति सर्प। यहां मनुष्य जाति चारों वर्णों में मिली हुई होने से परीक्षा में नहीं आ सकती। ऐसा मेरा निश्चय है॥ ३१ ॥ सब वर्णों के पुरुष सब वर्णों की स्त्रियों में सदा सन्तान पैदा करते हैं। वाणी, मैथुन, जन्म, तथा मरण सब वर्णों का समान ही है ॥ ३२ ॥ यह ऋषियों का प्रमाण है कि जो यज्ञ करें वह द्विज हैं। अतः जो तत्व के जानने वाले हैं, वह गुण कर्म स्वभाव को ही वर्णों में प्रधान कारण समझते हैं ॥ ३३ ॥

यदि आप केवल मुख से पैदा होना ही ब्राह्मणपन में हेतु मानते हैं तो पुराणों के पढ़ने से पता लगता है कि कई मुख से पैदा होकर भी ब्राह्मण न बने, तथा कई मुख से न पैदा होकर भी ब्राह्मण बन गये। जैसे कि—

पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवानृक्षपुंगवः
जृम्भमानस्य मे सहसा मम वक्त्रादजायत ॥ ७ ॥
(वाल्मी० बाल० स० १७)

चरणाभ्यां तथा द्वौ तु पादाभ्यां द्वौ तथा खग ॥ २६ ॥
य एते मत्सुता राजन्नर्च्या ब्राह्मण सत्तमाः ॥ ३१ ॥

भविष्य० ब्रह्म० अ० ११७

भावार्थ—ब्रह्मा जी बोले कि पहले पहिल मैंने जाम्बवान् नाम का श्रेष्ठ रीछ पैदा किया। जंभाई लेते हुए मेरे मुख से अचानक पैदा हो गया ॥ ७ ॥ चूंकि रीछों का वंशधर जाम्बवान् ब्रह्मा के मुख से पैदा हुआ था तो क्या सब रीछों को ब्राह्मण मानने को तय्यार हैं। यदि नहीं तो साबित हुआ कि केवल मुख से पैदा होना ब्राह्मण पन में कारण नहीं हो सकता।

सूर्य्य ने कहा कि दो मेरे चरणों से तथा दो मेरे पाओं से पैदा हुए ॥ २६ ॥ हे राजन्! जो ये मेरे पुत्र हैं, ये सब पूजा करने के क़ाबिल श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं ॥ ३१ ॥

अब यहां सूर्य के चरणों से पैदा हुए चार पुत्र ब्राह्मण बन गये। और यहां पर कपिला से ब्राह्मणों की पैदाइश बताई है। जैसे—

अमृतं ब्राह्मणा गावो गंधर्वाप्सरसस्तथा।
अपत्यं कपिलायास्तु पुराणे परिकीर्तितम् ॥ ५२ ॥

महा० आदि० अ० ६५

भावार्थ—अमृत, ब्राह्मण, गौवें, गंधर्व, तथा अप्सरायें दक्ष की पुत्री कपिला से पैदा हुए। यह पुराणोंमें लिखा है। ॥ ५२ ॥ अतः साबित हुआ कि मुख से बिना पैदा हुए भी ब्राह्मण बन सकते हैं। जब मुख से पैदा होकर भी कई ब्राह्मण न बने और कई बिना मुख से पैदा हुए ब्राह्मण बन गये तो महज़ मुख से पैदा होना साबित करने के लिये निराकार शरीर

रहित ब्रह्म के मुखादि की कल्पना करना वेद विरुद्ध होने से महा पाप है।

३७९ (प्रश्न)—तृण अन्न वृक्ष पक्षी पशु पाषाण प्रभृति किसी भी जाति में गुणाधिक्य और गुणाभाव से परिवर्तन नहीं होता फिर मनुष्य जाति में कैसे होगा। पृ० ३१० पं० २१

उत्तर—श्रीमान् जी! होश से बात करें। जाति कहते ही उस को हैं जो पैदा होने से मरने तक कोशिश करने पर भी तबदील न हो सके। कोई आदमी को गधा तथा गधेको आदमी इन की ज़िंदगी में नहीं बना सकता। क्यूंकि गधे में गधा पन तथा आदमी में आदमी पन ये जातियां हैं, जो तबदील नहीं हो सकतीं। परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये जातियां नहीं हैं, ये वर्ण हैं जो कि गुण कर्म स्वभाव की तबदीली से तबदील भी हो जाते हैं। जैसे—

सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो घृणा
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतिः॥ २१॥
शूद्रेतु यद् भवेल्लक्ष्मद्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥ २५॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः॥
यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत्॥ २६॥

महा० वन० अ० १८०

भाषार्थ—युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि हे सर्पराज! सत्य दान क्षमा शील नम्रता तप पाप से घृणा, ये बातें जिस में नज़र आवें वह ब्राह्मण है॥ २१॥ यदि शूद्र में ये चिह्न वा लक्षण हों और ब्राह्मण में ये लक्षण न हों तो वह शूद्र शूद्र नहीं

और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं ॥ २५ ॥ जिसके जीवन में ये लक्षण न हों उसी को शूद्र कहते हैं ॥ २६ ॥ इस से सिद्ध है कि और जातियों को भांति मनुष्य जाति भी तबदील नहीं हो सकती। किंतु वर्ण तबदील हो जाते हैं। क्यूंकि वर्ण और चीज़ है। जाति और चीज़ है।

३५० (प्रश्न) तद्य इह रमणीयाचरणा अभ्याशो हयन्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिय योनिं वा वैश्ययोनिं वा ऽथयइह कपूयाचरणा अभ्याशो हयन्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डाल योनिं वा ॥ ७ ॥

(छांदोग्य० ५। १०।७)

भाषार्थ—सो जो यहां शुभाचरण करता हैं। वे शीघ्र ही रमणीय योनि को प्राप्त होते हैं। ब्राह्मण योनि वा क्षत्रिय योनि वा वैश्य योनि को प्राप्त होते हैं। और जो जीव यहां निन्दित कर्म वाले हैं। वे जीव निन्दित योनि को प्राप्त होते हैं। कूकर योनि को वा शूकरयोनि को वा चांडाल यानि को प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

कल्पना करो एक मनुष्य ने पहिले जन्म में ऐसे कर्म किये जिन कर्मों से वह शूद्र योनि में उत्पन्न हुवा और उस का नाम झगड़ू रक्खा गया। अब वह पढ़ गया, पढ़ने पर ब्राह्मण बनना चाहता है, कैसे बनेगा। क्या वह पंडित शेखरचन्द्र के पूर्वजन्मों के कर्मों से बन जावेगा,। वह पूर्व जन्म के कर्म किस के पूर्व कर्म से बदल डालेगा। पृ० ३१० पं० २४।

उत्तर—यह ठीक है कि किसी जीव का जन्म ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चांडाल के घर पूर्व शुभाशुभ कर्मों के अनुसार होता है। किन्तु जन्म होने के पश्चात् पिछले कर्म

उस को तरक्की और तन्ज़ुल करने में रुकावट नहीं डालते। क्यूंकि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। पिछले शुभाशुभ कर्मों का फल उस को सुख वा दुःख के रूप में मिलेगा। किंतु पिछले किये हुए कर्म अगले किये जाने वाले कर्मों में रुकावट नहीं डालते। यदि अगले किये जाने वाले कर्मों में पिछले किये हुए कर्मों को कारण मान लिया जावे तो जीवन एक वार पाप कर्म करके नीच योनि को प्राप्त हो जावेगा फिर वह कभी भी उन्नति कर ही न सकेगा। क्यूंकि पिछले पाप कर्मों के कारण वह आगे को भी पाप कर्म ही करता चला जावेगा और पतित होता चला जावेगा। अतः यही ठीक है कि पिछले किये हुए कर्म अगले किये जाने वाले कर्मों में कारण नहीं हैं, पिछले कर्मों का फल सुख दुःख रूप में मिलेगा। आगे को वह स्वतंत्रता से अच्छे काम करके उन्नति तथा बुरे काम करके अवनति को प्राप्त हो सकता है। यदि कोई जीव अपने पिछले कर्मों के कारण शूद्र के घर पैदा होगया तो उस झगड़ू शूद्र को हक़ हासिल है कि वह आगे को शुभ कर्म करके उन्नति करके ब्राह्मण तक बन सके। वह किसी शेखरचन्द्र के कर्मों से नहीं अपितु अपने इस जन्म के शुभ कर्मों से उन्नति करेगा। जैसे कि अनेकों ने की। देखिये—

असितो देवलश्चैव तथानारद पर्वतौ।
कक्षीवान् जामदग्न्यश्च रामस्ताण्ड्यस्तथात्मवान् ॥ १५॥
वशिष्ठो यमदग्निश्च विश्वामित्रोऽत्रिरेवच।
भरद्वाजो हरिश्मश्रुः कुण्डधारः श्रुतश्रवाः ॥ १६॥
एते महर्षयः स्तुत्वाविष्णुमृग्भिः समाहिताः।

लेभिरे तपसासिद्धिं प्रसादात्तस्य धीमतः ॥ १७ ॥
अनर्हाश्चार्हतां प्राप्ताः सन्तं स्तुत्वा तमेव ह ।
नतुवृद्धि मिहान्विच्छेत् कर्म कृत्वा जुगुप्सितम् ॥ १८ ॥
(महा० शांति० अ० २६२)

ब्राह्मणः पतनीयेषु वर्तमानो विकर्मसु ।
दाम्भिको दुष्कृतः प्रायः शूद्रेण सदृशो भवेत् ॥ १२ ॥
यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्म्मे च सततोत्थितः ।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद्द्विजः ॥ १३ ॥
महा० वन० अ० २१५

भाषार्थ---असित और देवल तथा नारद और पर्वत, काक्षीवान्, जामदग्न्य राम तथा आत्मवान् ताण्ड्य ॥ १५ ॥ वसिष्ठ यमदग्नि, और विश्वामित्र तथा अत्रि, भारद्वाज, हरिश्मश्रु, कुण्डधर, श्रुतश्रवा ॥ १६ ॥ ये महर्षि एकाग्र मन से ऋचाओं द्वारा विष्णु की स्तुति करके उस बुद्धिमान् की दया से तप द्वारा सिद्धि को प्राप्त हुए ॥ १७ ॥ अपूज्य थे किंतु उसी सन्त की स्तुति करके पूज्यपन को प्राप्त हो गये। इस संसार में किसी मनुष्य को पाप कर्म करके वृद्धि की इच्छा नहीं करनी चाहिये ॥ १८ ॥

ब्राह्मण पतित करने वाले पाप कर्मों में वर्तमान हुआ मक्कार कुकर्मी प्रायः शूद्र के सदृश होता है॥ १२ ॥ जो शूद्र दम, सत्य, और धर्म्म में सदा उन्नति करता है। उस को मैं ब्राह्मण मानता हूं। क्यूंकि आचार से ही द्विज होता है ॥ १३॥ इस से सिद्ध हुआ कि पूर्व कर्मानुसार हीन वर्ण में पैदा हो कर भी पुरुषार्थ से प्रत्येक मनुष्य उन्नति करके ब्राह्मण तक के पद को प्राप्त हो सकता है।

३५१ (प्रश्न) जाति नाम शरीर का है। वह बदलेगा कैसे। हर्गिज़ नहीं बदल सकता॥ पृ० ३११ पं० १३।

उत्तर—श्रीमान् जी! यदि जाति नाम शरीर का है तो भी कोई आपत्ति नहीं। क्यूंकि ब्राह्मण से शूद्र तथा शूद्र से ब्राह्मण बनने के लिये शरीर के बदलने की जरूरत नहीं। अपितु गुणकर्म स्वभाव के बदलने से ही वर्ण बदल जाता है। जैसे कि-

जात कर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः।
वेदाध्ययन सम्पन्नः षट्सु कर्म स्ववस्थितः॥ २॥
शौचाचारस्थितः सम्यग्विघसाशी गुरु प्रियः।
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते॥ ३॥
सत्यं दानमथाद्रोह आनृशंस्यं त्रपा घृणा।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ ४॥
क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययन संगतः।
दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते॥ ५॥
विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः।
वेदाध्ययन सम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः॥ ६॥
सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्व कर्मकरो शुचिः।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः॥ ७॥
शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च॥ ८॥

(महा० शान्ति० अ० १८९)

भावार्थ—जो जातकर्मादि संस्कारों से संस्कृत, शुद्ध, वेदों का स्वाध्याय करने वाला छे कर्मों में कायम हो॥ २॥ शुद्ध आचार में क़ायम, पाप रहित भोजन करने वाला गुरु का

ब्यारा सदा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला सत्यवादी हो, वही ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ३ ॥ सत्य, दान, अद्रोह, नम्रता कुकर्म से लज्जा घृणा तथा तप ये जहाँ पर नज़र पड़ें वह ब्राह्मण कहा जाता है ॥ ४ ॥ क्षत्रियों के कर्मों का सेवन करने वाला, वेदों के अध्ययन में लगा हुआ, कर लेने तथा दानदेने में प्रेमी जो हो, वह क्षत्रिय कहा जाता है ॥५॥ जो पशुओं की विद्या में शीघ्र प्रवेश करने वाला, खेती करने दान देने में प्रेमी, शुद्ध वेदाध्ययन करने वाला हो, उस की वैश्य संज्ञा है ॥ ६ ॥ जो सदा सर्व भक्ष में प्रेमी, सब सेवा के काम करने वाला, अशुद्ध रहने वाला, वेदों का पढ़ना जिसने छोड़ दिया, आचार हीन हो वही शूद्र कहाता है ॥ ७ ॥ ये लक्षण यदि शूद्र में हों तथा द्विजमें न हों तो वह शूद्र शूद्र नहीं तथा वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं। अर्थात् जिस में जो लक्षण हों वह वही है ॥ ८ ॥ यहां कैसे स्पष्ट शब्दों में चारों वर्णों के गुण कर्म स्वभाव तथा वर्ण परिवर्तन का वर्णन है।

यद्यपि जाति शब्द वर्ण के लिये प्रयुक्त करना मुनासिब नहीं, तथापि जहां पर किसी ग्रन्थकार ने वर्ण के लिये जाति शब्द प्रयुक्त किया है, वहां पर जाति को परिवर्तन शील तथा जाति को शरीर से भिन्न भी माना है। जैसे—

शरीरमेतौ कुरुतः पिता माताच भारत।
आचार्य शास्ताया जातिः सापुण्या साजरामरा ॥ ८ ॥

(महा० उद्योग० अ० ४३)

भाषार्थ—हे भारत! पिता और माता ये दोनों शरीर को बनाते हैं। आचार्य्य से नियत की हुई जो जाति है वही पवित्र

अजर और अमर है। यहां स्पष्टरूप से जाति को शरीर से भिन्न तथा परिवर्तन शील माना है। अतः यहां जाति नाम वर्ण का है और वस्तु का नहीं।

३५२ (प्रश्न) योग दर्शन लिखता है "जिस कर्म से जाति आयुभोग मिले हैं। जब तक उस कर्म को नहीं भोग लिया जावेगा जाति आयु भोग बदल नहीं सकती। पृ ३११ पं० १५

उत्तर—आपने वह सूत्र क्यूं नहीं दिया। केवल योग दर्शन का नाम लिख कर मनमाना अर्थ लिख दिया। लीजिये हम असल सूत्र और उस का वास्तव अर्थ देते हैं

सति मूले तद्विपाके जातिरायुर्भोगः ॥ योग० ॥

भावार्थ—कर्मों के मूल कारण होने पर उस के फल में मनुष्य को जाति आयु तथा भोग मिलता है।

इस सूत्र से स्पष्ट है कि मनुष्य को कर्मों के अनुसार जाति आयु तथा भोग मिलता है। यहां भी जाति शब्द वर्ण का ही वाचक है। जैसे कंगाल आदमी पुरुषार्थ से सम्पत्ति प्राप्त करके भोग बदल सकता है। जैसे मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि साधनों से आयु को अधिक कर सकता है। वैसे ही प्रत्येक मनुष्य गुण कर्म स्वभाव से जन्म जाति को भी बदल सकता है। जैसे कि—

उत्पाद्यपुत्रान्मुनयो नृपते यत्र तत्र च।
स्वेनैव तपसा तेषामृषित्वं विदधुः पुनः ॥ १३ ॥
पितामहश्चमेपूर्वं मृष्यश्रृङ्गश्च कश्यपः।
वेदस्ताण्ड्यः कृपश्चैव काक्षीवत् कमठादयः ॥ १४ ॥
यवक्रीतश्च नृपते द्रोणश्च वदतां वरः।
आयुर्मतङ्गो दत्तश्चद्रुपदो मात्स्य एव च ॥ १५ ॥

एते स्वां प्रकृतिं प्राप्ता वैदेह तपसो श्रयात् ।
प्रतिष्ठाता वेद विदो दमेन तपसैव हि ॥ १६ ॥
मूल गोत्राणि चत्वारि समुत्पन्नानि पार्थिव ।
अङ्गिराः कश्यपश्चैव वशिष्ठो भृगुरेव च ॥ १७ ॥
कर्मतो अन्यानि गोत्राणि समुत्पन्नानि पार्थिव ।
नामधेयानितपसा तानि च ग्रहणं सताम् ॥ १८ ॥

(महा० शान्ति० अ० २९६)

भावार्थ—मुनि लोगों ने जहां कहीं से पुत्रों को पैदा करके हे राजन् उन को अपने तप से फिर ऋषि बना दिया ॥१३॥ मेरा दादा वसिष्ठ, ऋष्यशृङ्ग, कश्यप, वेद, ताण्डय, कृपः, काक्षीवत् कमठ आदि ॥ १४ ॥ यवक्रीत, द्रोणाचार्य्य, आयु, मतङ्ग, दत्त, द्रुपद, मात्स्य ॥ १५ ॥ हे जनक ये सब तप के आश्रय से अपनी पदवी को प्राप्त हुए, वेद के जाननेसे प्रतिष्ठित हुए, दम तथा तप से उन्नति कर गये ॥ १६ ॥ हे राजन् ! मूल गोत्र चार ही पैदा हुए । अंगिरा कश्यप वशिष्ठ और भृगु ॥ १७॥ हे राजन् ! अन्य गोत्र कर्म से पैदा हुए । सत्पुरुषों के तप के कारण नाम ग्रहण कर लिये गये ॥ १८ ॥

इस से स्पष्ट है कि कर्मानुसार आयु तथा भोग की भांति ही जाति अर्थात् वर्ण भी कर्मानुसार बदल जाता है ।

३५३ (प्रश्न) वेद में अनेक जातियों का वर्णन है । यजु० १६ । २८ में निषाद जातिका, १६ । २६ में क्षत्ता जाति का, १६ । २८ में तक्ष, रथकार, कुम्हार जाति का, ३० । ५ में अयोगू, मागध जाति का, ३० । ६ में सूत, शैलूष, रथकार जाति का ३० । ७ में मणिकार जाति का, ३० । ८ में धानुक जाति का,

३० । ११ में पीलवान्, साईस, गोपाल, अजपाल, सुराकार, जाति का, ३० । १६ धीवर दाश, वैन्द कैवर्त किरात जाति का, ३० । १७ में हिरण्यकार ३० । २० में वीणा वाद तलव जातिका, ३१ । ३१ में चाण्डाल वंश नर्तन जाति का ३० । १२ में धोबी रंगरेज जाति का ३० । १५ में चमार जाति का ३० । १६ में भील जाति का, ३० । १४ में लुहार जाति का नाम मौजूद है। यदि गुणाधिक्य और गुण हीनता के आधार पर चार ही जातियां बन सकती हैं। तो फिर वेद ने इन विविध जातियों का उल्लेख क्यूं किया। पृ० ३११ पं० १६।

उत्तर—आप भी विचित्र प्रकृति के मनुष्य हैं। आप झूठ बोलने को तो चूर्ण की गोली समझते हैं । आपने यजुर्वेद के जितने प्रमाण पेश किये हैं एक में भी जाति शब्द मौजूद नहीं है। और न हीं वेद मनुष्यों में आप के कपोल कल्पित जाति भेद को मानता है। यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय के तो जो आपने मन्त्र दिये हैं इन में तो प्रत्येक प्रकार के मनुष्य के साथ यथा योग्य वर्ताव की वेद ने शिक्षा दी है। इनमें जातियों का गन्ध भी नहीं है। जैसे कि—

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो। रथिभ्यो रथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः। संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो। महद्भ्योऽर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः। कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो। निषादेभ्यः पुञ्जिष्टेभ्यश्च वो नमो नमः। श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥ २७ ॥

(यजु० अ० १६)

भावार्थ—हे राज और प्रजा के पुरुषो ! जैसे हम लोग शत्रुओं को बांधने हारे सेनास्थ पुरुषों का सत्कार करते और तुम सेना के नायक प्रधान पुरुषों को अन्न देते हैं। प्रशंसित रथों वाले पुरुषों का सत्कार और तुम रथों से पृथक् पैदल चलने वालों का सत्कार करते हैं क्षत्रिय की स्त्री में शूद्र से उत्पन्न हुए के लिये अन्नादि पदार्थ देते और तुम अच्छे प्रकार युद्ध की सामग्री को ग्रहण करने हारों का सत्कार करते हैं। विद्या और अवस्था में वृद्ध पूजनीय महाशयों को अच्छा पकाया हुआ अन्नादि देते और तुम क्षुद्राशय शिक्षा के योग्य विद्यार्थियों का निरंतर सत्कार करते हैं। वैसे तुम लोग भी दिया किया करो ॥ २६ ॥

भावार्थ—राज पुरुषों को चाहिये कि सब भृत्यों को सत्कार और शिक्षा पूर्वक अन्नादि पदार्थों से उन्नति देके धर्म्म से राज्य का पालन करें॥ २६। हे मनुष्यो जैसे राजा आदि हम लोग पदार्थों को सूक्ष्म क्रिया से बनाने हारे तुम को अन्न देते और बहुत से विमानादि यानों को या बनाने हारे तुम लोगों का परिश्रमादि का धन दे के सत्कार करते हैं। प्रशंसित मट्टीके पात्र बनाने वालों को अन्नादि पदार्थ देते और खड्ग बन्दूक और तोप आदि शस्त्र बनाने वाले तुम लोगों का सत्कार करते हैं। वन और पर्वतादि में रहकर दुष्ट जीवों को ताड़ना देने वाले तुम को अन्नादि देते और श्वेतादि वर्णों वा भाषाओं में प्रवीण तुम्हारा सत्कार करते हैं। कुत्तों को शिक्षा करने हारे तुम को अन्नादि देते और अपने आत्मा से वन के हरिण आदि पशुओं को चाहने वाले तुम लोगों का सत्कार करते हैं। वैसे तुम लोग भी करो ॥ २७ ॥

भावार्थ---विद्वान् लोग जो पदार्थ विद्या को जान के अपूर्व कारीगरी युक्त पदार्थों को बनावें उनको पारितोषक आदि देके प्रसन्न करें और जो कुत्ते आदि पशुओं को अन्नादि से रक्षा कर तथा अच्छी शिक्षा देके उपयोग में लावें उनको सुख प्राप्त करावें ॥ २७ ॥

कहियेगा श्रीमान् जी ! इसमें जातियों का वर्णन कहां है

(१) १६ ।२६ में किसी क्षत्ता नाम की जाति का वर्णन नहीं है अपितु वेद ने एक उदाहरण देकर हमें यह आज्ञा दी है कि प्रतिलोमज सन्तान का भी गुण कर्म स्वभाव के अनुसार यथा वर्ण अन्नादि पदार्थों तथा नमस्कारादि प्रिय शब्दों से सत्कार करो—

(२) १६ । २७ में किसी निषाद जाति का वर्णन नहीं है अपितु जो वन और पर्वतादि में रह कर दुष्ट जीवों को ताड़ना दे, उसी का नाम निषाद है ।

(३) १६ । २७ में तक्ष नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो पदार्थों को सूक्ष्म क्रिया से बनावे उसी का नाम तक्ष है ।

(४) १६ । २७ में रथकार किसी विशेष जाति का नाम नहीं हैं अपितु जो बहुत से विमानादि यानों को बनावे उसी का नाम रथकार है ।

(५) २६ । २७ में कुम्भकार व कुलाल किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो प्रशंसित मिट्टी के पात्र बनावे उसी का नाम कुलाल है ।

यजुर्वेद के इन दोनों मंत्रों में जैसे सेना, सेनानि, रथि, अरथि, संग्रहीता, महान्, अर्भक, कर्म, पुञ्जिष्ठ, श्वनि, मृगयु,

ये विशेष जातियों का नाम नहीं अपितु विशेष गुण वाले तथा विशेष अवस्था वाले मनुष्यों का वर्णन है। वैसे ही क्षत्ता, तक्ष, रथकार, कुलाल तथा निषाद भी विशेष गुण रखने वाले मनुष्यों का नाम है। विशेष जातियों का नाम नहीं है। और विशेष गुणों के कारण उपरोक्त सब प्रकार के विशेष गुण रखने वाले मनुष्यों का अन्नादि पदार्थों तथा नमस्कार आदि प्रिय वचनों से आदर सत्कार करने की वेद ने आज्ञा दी है।

अब यही बात यजुर्वेद के तीसवें अध्याय की, सो इस में भी कर्मानुसार मनुष्य जाति के विभागों का वर्णन है, विशेष जातियों का वर्णन नहीं है। इस बात को स्वयं वेद ही कहता है। जैसे कि—

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम् ॥४॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो! जिस सुखों के निवास के हेतु आश्चर्य रूप धन का विभाग करने हारे, सब के उत्पादक सब मनुष्यों के अन्तर्यामी स्वरूप से सब कामों के देखने हारे परमात्मा की हम लोग प्रशंसा करें, उस की तुम लोग भी प्रशंसा करो ॥४॥

भावार्थ—हे राजन्! जैसे ईश्वर अपने २ कर्मों के अनुकूल सब जीवों को फल देता है। वैसे आप भी देओ। जैसे जगदीश्वर जैसा जिस का पाप वा पुण्य रूप जितना कर्म है उतना वैसा फल उस के लिये देता है वैसे आप भी जिस का जैसा वस्तु वा जितना कर्म है उस को वैसा वा उतना फल दीजिये। जैसे ईश्वर पक्षपात को छोड़ कर सब जीवों में वर्तता है। वैसे आप भी हूजिये ॥४॥

इस की ताईद आप के भाष्यकार उव्वट भी करते हैं कि—

'विभक्तारं कर्मानुरूपेण विभक्तारम्' कर्मों के अनुसार विभाग करने वाले परमात्मा को स्वीकार करें।'

बस इस मन्त्र की रोशनी में सारे अध्याय का अर्थ कर्मानुसार (पेशों के मुताबिक) मनुष्य जाति का विभाग करता है, जैसे कि—

(६) "अक्रायाया अयोगूम्" ३० । ५ में अयोगू किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो लोहे के हथियार विशेष के साथ चलने वाला जन हो, उसी का नाम अयोगू है।

(७) "अतिक्रुष्टाय मागधम्" ३० । ५ इस मंत्र में मागध किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो मनुष्यों की प्रशंसा करे उसी का नाम मागध है।

(८) "नृताय सूतम्" ३० । ६ इस मंत्र में सूत किसी विशेष जाति का नाम नहीं है, अपितु जो नाचने का काम करे उसी का नाम सूत है।

(९) "गीताय शैलूषम्" ३० । ६ में शैलूष किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो गाने द्वारा नट का काम करे उसी का नाम शैलूष है।

(१०) "मेधायै रथकारम्" इस मंत्र में रथकार किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो विमानादि को रचने द्वारा कारीगर हो उसी का नाम रथकार है।

(११) "रूपाय मणिकारम्" इस मंत्र में मणिकार किसी विशेष जाति का नाम नहां है अपितु जो भी मणियों के बनाने का काम करे उसी का नाम मणिकार है।

(१२) "नदीभ्यः पौंजिष्ठम्" ३०।८ इस मंत्र में पौंजिष्ठ नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो जन नदियों को बिगाड़ने के लिये प्रवृत्त हो उसका नाम पौंजिष्ठ है।

(१३) "अर्मेभ्यो हस्तिपम्" ३०। ११ में हस्तिप नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो हाथियों का रक्षक हो उसी का नाम हस्तिप है।

(१४) "जवाय अश्वपम्" ३०। ११ में अश्वप किसी विशे जाति का नाम नहीं है अपितु जो कोई भी घोड़ों का रक्षक शिक्षक होगा उसी का नाम अश्वप होगा।

(१५) "पुष्ट्यै गोपालम्" ३०। ११ में गोपाल किसी विशेष जाति का नाम नहीं है, अपितु जो गौवों के पालने हारा हो उसी का नाम गोपाल है।

(१६) "वीर्यायाविपालम्" ३०। ११ यहां पर अविपाल किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो भेड़ों का पालन पोषण करे उसी का नाम अविपाल है।

(१७) "तेजसेऽजपालम्" ३०। ११ यहां पर अजपाल किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो बकरियों की रक्षा करे उसी का नाम अजपाल है।

(१८) "कीलालाय सुराकारम्" ३०। ११ यहां पर सुराकार नाम किसी विशेष जाति का नहीं है, अपितु जो भी सोम आदि औषधियों का रस निकालने वाला हो उसी का नाम सुराकार है।

(१९) "सरोभ्यो धैवरम्" ३०।१६ यहां पर धीवर नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो समुद्र दरया तालाबों

आदि में तैरने आदि की बुद्धि पूर्वक क्रिया को ग्रहण करता है उसी का नाम धीवर है।

(२०) 'उपस्थावराभ्योदाशम्' ३०। १६ इस में दाश नाम किसी विशेष जाति का नहीं है, अपितु जिस को खान-पान देकर सेवक के काम पर लगाया जावे उसी का नाम दाश है।

(२१) "वैशन्ताभ्योवैन्दम्" ३०।१६ यहां पर वैन्द नाम किसी विशेष जाति का नहीं है, अपितु जो छोटे २ जलाशयों का प्रबंध करे उसी का नाम वैन्द है।

(२२) "अवाराय कैवर्तम्" ३०।१६ में कैवर्त नाम किसी विशेष जाति का नहीं है; अपितु जो जल में नौका को इस पार उस पार पहुंचाने वाला हो, उसी का नाम कैवर्त है।

(२३) "गुहाभ्यः किरातम्" ३०।१६ यहां किरात नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो पहाडों की गुहा में रहने वाला जंगली मनुष्य हो उसी का नाम किरात है।

(२४) "वर्णाय हिरण्यकारम्" ३०।१७ यहां पर हिरण्यकार नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो भी सोने आदि धातुओं का काम करे उसी का नाम हिरण्यकार है।

(२५) "महसे वीणावादम्" ३०।२० यहां पर वीणावाद किसी विशेष जाति का नाम नहीं है अपितु जो भी वीणा को बजावे उसी का नाम वीणावाद है।

(२६) "आनन्दायतलवम्" ३०।२० यहां पर तलव नाम किसी विशेष जाति का नहीं हैं अपितु जो भी राग में ताली आदि के बजाने वाला हो उसे ही तलव कहते हैं।

(२७) "वायवे चाण्डालम्" ३०।२२ यहां पर चांडाल नाम किसी विशेष जाति का नहीं है, अपितु जो भी नीच काम करे उसी का नाम चांडाल है।

(२८) "अंतरिक्षाय वंशनर्तिनम्" ३०।२१ यहां पर वंश नर्ती किसी विशेष जाति का नाम नहीं है, अपितु जो भी बांस लेकर उससे नाचने खेलने का काम करे उसी का नाम वंशनर्ती है।

(२९) "मेधायवासः पल्पूलीम्" ३०।१२ में वासः पल्पूली किसी विशेष जाति का नाम नहीं है, अपितु जो भी वस्त्रों को साफ करने वाली ओषधि वा स्त्री हो उसी का नाम वासः पल्पूली है।

(३०) "प्रकामाय रजयित्रीम्" ३०। १२ यहां पर रजयित्री नाम किसी विशेष जाति का नहीं है। अपितु जो भी उत्तम रंग करने वाली औषधि व स्त्री हो, उस का नाम रजयित्री है।

(३१) "साध्येभ्यश्चर्मम्नम्" ३०।१५ यहां पर चर्मम्न नाम किसी विशेष जाति का नहीं है। अपितु जो चमड़े के विज्ञान में अभ्यास करने वाला है, उसी का नाम चर्मम्न है।

(३२) "स्वनेभ्यः पर्णकम्" ३०।१६ यहां पर पर्णक नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो रक्षा करने में निन्दित हो उसी का नाम पर्णक है।

(३३) "मन्यवेऽअयस्तापम्" ३०।१४ यहां पर अयस्ताप नाम किसी विशेष जाति का नहीं है अपितु जो भी लोहे को तपाकर उस से विविध प्रकार की वस्तुएं बनावे उसी का नाम अयस्ताप है।

ये जातियें नहीं हैं, अपितु कर्मानुसार पेशे के लिहाज़ से मनुष्य जाति के भेदों का वर्णन है। और पेशे के बदलने से नाम भी बदल जाते हैं। इन में से मागध, शैलूष, तलव, वीणावाद, ब्राह्मण और अयोगू, वैन्द, वर्णक क्षत्रिय तथा तक्ष, रथकार, कुंभकार, मणिकार, हस्तिप, अश्वप, गोपाल, अविपाल, अजपाल, सुराकार, धैवर, कैवर्त, हिरण्यकार, वंशनर्ती, पल्पूली, रजयित्री, चर्मन्न, अयस्ताप, ये सब वैश्य तथा दाश शूद्र वर्ण में तथा चांडाल, पौंजिष्ठ, सूत, निषाद, तथा किरात ये अति शूद्र हैं। इससे साबित हुआ कि मनुष्य जाति में ये कर्मानुसार नाम भेद चारों वर्णों में आजाता है और जो चार वर्ण से बाहर हैं वे अति शूद्र कहे जाते हैं। अतः यहां जन्म जाति का वर्णन नहीं अपितु कर्मानुसार मनुष्य जाति में वर्ण भेद तथा नाम भेद का वर्णन है।

३५४ (प्रश्न) जाति का आधार पेशा नहीं है किन्तु रजवीर्य है। फिर हम कैसे मान लें कि जाति पेशे से होती है। पृ० ३१२ पं० १४।

उत्तर—हम जातिका आधार पेशा नहीं मानते अपितु वर्ण का आधार पेशा मानते हैं। और यदि जाति शब्द से आपका अभिप्राय वर्ण से है। तो वर्ण का आधार रजवीर्य नहीं है, अपितु गुणकर्म स्वभाव है। और गुणकर्म स्वभाव की तबदीली हो जाती है। जैसे कि—

शरीरमेवसृजतः पिता माता च भारत।
आचार्य शिष्टाया जातिः सादिव्या साजरामरा ॥१८॥
(महा० शान्ति० अ० १०८)

चातुर्वर्ण्यंमयासृष्टं गुणकर्म विभागशः ॥ १३ ॥
(महा० भीष्म० अ० २८)

वृकोदर न युक्तं ते वचनं वक्तुमीदृशम् ॥ १० ॥
क्षत्रियाणां बलं ज्येष्ठं योधव्यं क्षत्रबंधुना ।
शूराणां च नदीनां च दुर्विदाः प्रभवाः किल ॥ ११ ॥
सलिलादुत्थितोवह्निर्येनव्याप्तंचराचरम् ।
दधीचस्यास्थितो वज्रं कृतं दानवसूदनम् ॥ १२ ॥
आग्नेयः कृत्तिका पुत्रो रौद्रो गांगेय इत्यपि ।
श्रूयते भगवान् देवः सर्वगुह्यमयो गुहः ॥ १३ ॥
क्षत्रियेभ्यश्च ये जाता ब्राह्मणास्ते च ते श्रुताः ।
विश्वामित्र प्रभृतयः प्राप्ता ब्रह्मत्वमव्ययम् ॥ १४ ॥
आचार्य्यः कलशाज्जातोद्रोणः शस्त्रभृतांवरः ।
गोतमस्यान्ववायेचशरस्तम्बाच्च गौतमः ॥ १५ ॥
भवतां च यथा जन्म तदप्यागमितं मया ॥ १६ ॥
(महा० आदि० अ० १३९)

आचार्य्यं त्रिविधा योनी राज्ञां शास्त्रविनिश्चये ।
सत् कुलीनश्च शूरश्च यश्च सेनां प्रकर्षति ॥ ३५ ॥
यद्ययं फाल्गुणो युद्धे नाराज्ञा योद्धुमिच्छति ।
तस्मोदेषोऽङ्गविषये मयाराज्येऽभिषिच्यते ॥ ३६ ॥
(महा० आदि० अ० १३८)

एवं सिद्धः स भगवानार्ष्टिषेणः प्रतापवान् ॥ ९ ॥
तस्मिन्नेव तदातीर्थे सिंधुद्वीपः प्रतापवान् ।
देवापिश्च महाराज ब्राह्मण्यं प्राप्तुमंहत् ॥ १० ॥
तथाच कौशिकस्तात तपो नित्यो जितेन्द्रियः ।

तपसा वै सुतप्तेन ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ॥ ११ ॥
(महा० शल्य० अ० ४०)

भावार्थ—हे भारत! माता पिता तो शरीर ही बनाते हैं। परन्तु आचार्य्य से नियत की हुई जाति है वही दिव्य है, वही अजर अमर है॥ १८॥ मैंने चारों वर्णों को गुण कर्म के विभाग से बनाया है। ॥ १३ ॥ हे भीम! इस प्रकार की बात कहना तुम्हें योग्य नहीं है ॥ १० ॥ क्षत्रियों में बल ही प्रधान हैं, क्षत्रिय बन्धु से युद्ध करना चाहिये। शूर वीर और नदियों के निकास जानने कठिन हैं ॥ ११ ॥ पानी से आग पैदा हुई जो सारे जगत् को व्याप्त कर रही है। दधीच की हड्डी से दानवों का नाशक वज्र बनाया गया ॥ १२ ॥ कृत्ति का पुत्र कार्तिकेय अग्नि से पैदा हुआ, गांगेय रुद्र से पैदा हुआ सुनते हैं कि देव सर्वगुह्य मय गुहक था ॥ १३ ॥ क्षत्रियों में से कई एक ब्राह्मण बन गये, विश्वामित्र आदि अक्षय ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए ॥ १४ ॥ द्रोणाचार्य्य शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कलश से पैदा हुए। गोतम के कुल में शरस्तम्ब से कृपाचार्य्य पैदा हुए ॥ १५ ॥ और आप लोगों का भी जैसे जन्म हुआ हैं, मैं जानता हूं ॥ १६ ॥

हे आचार्य्य! शास्त्र के निश्चयानुसार राजाओं की तीन प्रकार की योनि है, सत्कुलीन, शूरवीर, और सेनापति ॥ ३५ ॥ यदि यह अर्जुन युद्ध में बिना राजा के साथ युद्ध करना नहीं चाहता तो मैं दुर्योधन इस कर्ण का अंग देश के राज्य के लिये अभिषेक करता हूं ॥ ३६ ॥

वह प्रतापी अष्टिषेण इस प्रकार से सिद्ध बन गया

॥ ६ ॥ उस ही तीर्थ में प्रतापी सिंधुद्वीप और देवापि दोनों ब्राह्मणता को प्राप्त हो गये ॥१०॥ हे प्यारे विश्वामित्र भी इन्द्रियों को जीत तप कर उस तप से ब्राह्मण बन गया ॥ ११ ॥

इन प्रमाणों से साबित है कि कोई मनुष्य कहीं से भी पैदा हुआ हो किन्तु वह गुण कर्म स्वभाव के अनुसार प्रत्येक वर्ण को प्राप्त हो सकता है। वर्णका आधार जन्म तथा रजवीर्य शरीर में ही कारण है। वर्ण की तबदीली के लिये शरीर की तबदीली की ज़रूरत नहीं। पेशे के बदलने से वर्ण भी बदल जाता है।

५५ (प्रश्न)—ब्राह्मण्यां वैश्य संसर्गाज्जातोमागध उच्यते ।
वन्दित्वं ब्राह्मणानां च क्षत्रियाणां विशेषतः ७ ॥
(औशनस स्मृति)

भावार्थ—ब्राह्मणी में जो वैश्य के संसर्ग से उत्पन्न हो उसे मागध कहते हैं। यह ब्राह्मणों तथा विशेष कर क्षत्रियों का वन्दी (स्तुति करने वाला) होता है।

एक मागध जाति का ही यह नियम नहीं है वरना जितनी भी जातियां स्मृतियों ने दिखलाई हैं। पहिले उन जातियों की उत्पत्ति का कारण फिर जाति का नाम, नामके पश्चात् जाति का पेशा बतलाया है। इस व्यवस्था को देख कर कोई भी न्यायशील मनुष्य यह नहीं कह सकता कि पेशे से जातियां बनती हैं। पृ० ३१२ पं० २६

उत्तर—वेद ने "क्षत्तृभ्यो नमः" यजु० १६।२६ में इशारा करके हमें बतला दिया कि प्रति लोमजों की कर्मानुसार यथा वर्ण आदर सत्कार नमस्कारादि प्रियवचनों से

पूजा करो। इस का अभिप्राय यह है कि प्रतिलोमजों की उन के कर्मों के अनुसार वर्ण व्यवस्था कर के तदनुसार उन का सत्कार करना चाहिये। इसी बात को मनु जी महाराज ने वर्णन किया है कि—

तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षंचापकर्षंच मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥

(मनु० १०)

भावार्थ—वे अनुलोमज तथा प्रतिलोमज प्रत्येक युग में प्रतिलोमज तप के प्रभाव से तथा अनुलोमज तप और बीज के प्रभाव से इस संसार में मनुष्यों में जन्म की निस्बत ऊंचे वर्ण को तथा नीचे वर्ण को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

जब अनुलोमज तथा प्रतिलोमज कर्मानुसार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र बन सकते हैं। तो फिर आप को वह थ्यूरी कि पहिले वर्ण का निश्चय होकर फिर कर्म का निश्चय होना चाहिये, वेद के विरुद्ध होने से सर्वथा मिथ्या है। और आप की स्मृति भी वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण तथा मिथ्या प्रलाप ही है।

३५६ (प्रश्न)—बंध्या गौ न प्रसूता होती है और न दूध ही देती है। किंतु जाति को वह गौ ही रहती है, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसी प्रकार ब्राह्मण ब्राह्मण का कार्य्य न कर सकने पर भी ब्राह्मण ही रहता है। पृ० ३१३ पं० १।

उत्तर—आपका दृष्टान्त विषम होने से असत्य है। क्योंकि गौ जाति की भान्ति ब्राह्मण जाति नहीं है। अपितु ब्राह्मण वर्ण है। हां गौ जाति की भांति मनुष्य जाति है। जैसे

वंध्या गौ प्रसूता न होने तथा दूध न देने पर भी गौ ही रहती है, इसी प्रकार से मूर्ख मनुष्य भी विद्या और गुण हीन होने पर भी जाति से मनुष्य ही रहता है। जैसे वंध्या गौ को दुधार नहीं कह सकते, ऐसे ही मूर्ख मनुष्य को भी ब्राह्मण नहीं कह सकते। मनुष्य जाति में गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं। जो कि गुण कर्म स्वभाव के तबदील होने पर तबदील हो जाते हैं। जैसा कि—

(१) पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेव च।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥४२॥ मनु ०७

गाधिपुत्रो विश्वामित्रश्च क्षत्रियः संस्तेनैव देहेन ब्राह्मण्यं प्राप्तवान् (कुल्लूक भट्ट)

भावार्थ—विनय से पृथु और मनु ने राज्य को प्राप्त किया तथा कुबेर ने विनय से धनैश्वर्य को प्राप्त किया। और गाधि के पुत्र विश्वामित्र ने क्षत्रिय होते हुए उसी देह से ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया।४२॥

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेन शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रियात् ।४२। मनु १०

भावार्थ—ब्राह्मण मांस लाख और नमक के बेचने से तत्काल पतित हो जाता है। और तीन दिन दूध बेचने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है।

(३) वाशिष्ठीं समतिक्रम्य सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥४८॥
(महा० वन० अ० ८४)

भावार्थ—वाशिष्ठी नदी में स्नान करने से सब वर्ण ब्राह्मण बन जाते हैं ॥४८॥

(४) इन्द्रो वै ब्रह्मण: पुत्र: क्षत्रिय: कर्मणाभवत् ॥११॥

(महा० शान्ति० अ० २२)

भाषार्थ—इन्द्र ब्रह्मा का पुत्र होकर भी कर्म से क्षत्रिय बन गया ॥११॥

(५) शूद्रो राजन् भवति ब्रह्मबन्धु
दुश्चरित्रो यश्चधर्म्मादपेतः ।
वृषलीपतिः पिशुनोनर्त्तनश्च
ग्राम प्रेष्यो यश्च भवेद्विकर्मा ॥४॥

(महा० शान्ति० अ० ६३)

भाषार्थ—हे राजन् ! जो ब्राह्मण बदचलन, धर्म से पतित, शूद्रापति, चुगलखोर, नचनवा, सिधारा, पहुंचाने वाला, और दुष्कर्मी हो वह शूद्र हो जाता है ॥४॥

(६) युधिष्ठिर उवाच—वीत हव्यश्च नृपतिः श्रुतो मे विप्रतां गतः।
तदेव तावद्गाङ्गेय श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ।३।
भीष्म उवाच—शृणु राजन् यथा राजा वीत हव्यो महा यशाः।
राजर्षि दुर्लभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोक सत्कृतम् ।५।

(महा० अनुशा० अ० ३०)

भाषार्थ—युधिष्ठिर ने पूछा कि मैंने सुना है कि राजा वीत हव्य ब्राह्मण बन गया। हे गांगेय प्रभो ! वह अब मैं सुनना चाहता हूं ॥३॥

भीष्म ने उत्तर दिया कि हे राजन् ! जिस प्रकार से राज ऋषि वीतहव्य महान् यशस्वी पूजा के योग्य ब्राह्मण पद को प्राप्त हुआ, वह सुनिये ॥५॥ राजा प्रतर्दन ने वीत हव्य के पुत्रों पर चढ़ाई की और उसने वे सब लड़ाई में मार दिये तब

वीतहव्य नगर से भाग कर भृगु के आश्रम में चला गया। भृगु ने उसको अभय दान दिया। उसके पीछे ही पीछे प्रतर्दन गया। और आश्रम में आवाज दी। तब भृगु मुनि बाहर निकले और राजा प्रतर्दन का सत्कार किया। प्रतर्दन ने कहा कि आपके आश्रम में वीत हव्य राजा आया है। उसने हमारा वंश नाश कर दिया है। मैं उस का वध करूंगा। यह सुन कर भृगु जी बोले—

तमुवाच कृपाविष्टो भृगुर्धर्म्मभृतां वरः ॥५२॥
नेहास्ति क्षत्रियः कश्चित् सर्वे हीमे द्विजातयः।
एतत्तु वचनं श्रुत्वा भृगोस्तथ्यं प्रतर्दनः ॥५३॥
पादावुपस्पृश्य शनैः प्रहृष्टो वाक्यमब्रवीत्।
एवमप्यस्मि भगवन् कृतकृत्यो न संशयः ॥५४॥
य एष राजा वीर्येण स्वजाति त्याजितो मया।
अनुजानीहि मां ब्रह्मन् ध्यायस्व च शिवेन माम् ॥५५॥
त्याजितो हि मया जाति मेष राज भृगूद्वह।
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो ययौ राजा प्रतर्दनः ॥५६॥
यथागतं महाराज मुक्त्वा विषमिवोरगः।
भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितां गतः ॥५७॥
एवं विप्रत्वमगमत् वीतहव्यो नराधिपः।
भृगोः प्रसादाद्राजेन्द्र क्षत्रियः क्षत्रियर्षभ ॥६६॥

(महा० अनुशा० अ० ३०)

भावार्थ—धर्म धारण करने वालों में श्रेष्ठ भृगु दयालु हो कर प्रतर्दन से बोले ॥ ५२ ॥ इन में से क्षत्रिय यहां कोई भी नहीं है। ये सब ब्राह्मण हैं। इस प्रकार से भृगु की

सत्य वाणी को सुन कर प्रतर्दन ॥ ५३ ॥ आहिस्ता से पाओं छू कर हर्ष पूर्वक बोला। भगवन् मैं इस प्रकार से भी निःसंदेह कृतकृत्य हूं ॥ ५४ ॥ जो ये राजा बल से मैंने अपनी जाति से हीन कर दिया। हे ब्राह्मण ! मुझे आज्ञा दे तथा मेरे लिये कल्याण वचन दे॥ ५५ ॥ हे भृगूद्वह ! मैंने यह राजा जाति से हीन कर दिया उस के पीछे राजा प्रतर्दन आज्ञा लेकर चला गया ॥ ५६ ॥ जिधर से आया था उधर ही चला गया, जैसे सांप विष का त्याग करके चला जाता है। भृगु के वचन मात्र से ही वह वीतहव्य ब्रह्म ऋषि पद को प्राप्त हो गया ॥ ५७ ॥ राजा वीत हव्य इस प्रकार से ब्राह्मण पद ... प्राप्त होगया । हे क्षत्रियों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर ! हे राजेन्द्र ! ... प्रकार भृगु की कृपा से क्षत्रिय वीत हव्य ब्राह्मण ब न गया ॥ ६६

न ... नाभाग ... ऽभूत्स तु ब्राह्मणतां गतः ।

स्वक्षत्र वंशं संस्थाप्य ब्रह्मकर्मसिरावृतः ॥ ४८ ॥

धृष्टाद्धाष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयंगतां क्षितौ ॥ ४९ ॥

(शिव० उमा० अ० ३६)

भावार्थ—नाभागदिष्ट के पुत्र हुए और ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए, अपने क्षत्रिय वंश को स्थापन करके ब्राह्मण के कर्मों में प्रवृत्त हुए ॥ ४२ ॥ धृष्ट से धार्ष्ट हुए, वे पहिले क्षत्रिय थे फिर पृथिवी पर ब्राह्मण बन गये ॥ ४६ ॥

(८) वृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ।

पालयामास गायत्तो रात्र्यां वीरासन व्रतः ॥ ५३ ॥

सएकदाऽगतं गोष्ठे व्याघ्रं गा हिंसितुं बली ।

श्रुत्वा गो क्रन्दनं बुद्धो हन्तुं तं खड्गधृग्ययौ ॥ ५४ ॥

अजानन्नहनद्बभ्रो शिरः शार्दूल शंकया ।
निश्चकाम समीव्याघ्रोदृष्ट्वा तंखड्गिनं प्रभुम् ॥ ५२ ॥
श्रुत्वातद्वृत्तमाज्ञायतं शशापकृतागसम् ।
अकामतो विचार्य्येति शूद्रो भव न क्षत्रियः ॥५८॥
एवं शप्तस्तु गुरुणा कुलाचार्येण कोपतः ।
निसृतश्च वृषघ्नस्तु जगाम विपिनं महत् ॥५९॥

(शिव० उमा० अ० ३६)

भावार्थ—वृषघ्न नाम मनु पुत्र को गुरु ने गोपाल बनाया। और वह वीरासन लगा सावधान हो रात्रि में गौवों का पालन करता था ॥ ७३ ॥ किसी समय गौवों को मारने के लिये गोशाला में आये व्याघ्र को देख गौवों के रुदन को सुन, जागके उस को मारने के लिये खड्ग धारण करके वह बली गया ॥ ५४ ॥ और सिंह के भ्रम से बिना जाने गाय के बछड़े के शिर को काट दिया। तब उस खड्गधारी प्रभु को देख वह व्याघ्र भय भीत हो बाहर निकल गया ॥ ५५ ॥ उस वृत्तान्त को सुन के गुरु ने उस अपराधी को शाप दिया। अकाम से बिना विचार के काम करने से तू शूद्र होगा क्षत्रिय न रहेगा ॥ ५८ ॥ इस प्रकार कुलाचार्य्य गुरु ने उसे क्रोध से शाप दिया तब वह वृषघ्न निकल के सघन बन में चला गया ॥ ५६ ॥

(९)

इतरेषां तु पण्यानां विक्रयादिह कामतः-
ब्राह्मणःसप्त रात्रेणवैश्यभावं नियच्छति ॥ ९३ ॥

(मनु० १०)

भावार्थ—और तिजारत की चीज़ों को इच्छानुसार इस

संसार में बेचने से ब्राह्मण सात रात में वैश्य पद को प्राप्त हो जाता है ॥ ६३ ॥

ये थोड़े से प्रमाण दे दिये हैं। इस प्रकार के सैंकड़ों प्रमाण ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। जिन से यह साबित है कि मनुष्य जाति में ये चारों वर्ण ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र गुण कर्म स्वभाव के अनुसार हैं और गुणकर्म स्वभाव के तबदील होने से ये भी तबदील हो जाते हैं। इस से यह साबित है कि ब्राह्मणादि वर्ण गौ आदिवत् जातियाँ नहीं हैं। अपितु ये मनुष्य जाति के ही कर्मानुसार वर्ण भेद हैं। और ब्राह्मण के घर पैदा होकर ब्राह्मण के कर्म न करने वाला इतना ही नहीं कि ब्राह्मण नहीं रहता अपितु क्षत्रिय वैश्य शूद्र यहाँ तक कि रावण की भांति राक्षस भी हो जाता है।

३५७ (प्रश्न)—तपः श्रुतं च योनिश्चेत्येतद् ब्राह्मणकारकम्।
तपः श्रुताभ्यां यो हीनो जाति ब्राह्मण एवसः ॥
(महाभाष्य पस्पशाह्निक)

भाषार्थ—तप, विद्या, योनि, इन तीन से पूर्ण ब्राह्मण बनता है। विद्या और तप इन दो से हीन रहा ब्राह्मण जाति का ब्राह्मण है ॥

उत्तर—निम्न हेतुओं से आपका श्लोक तथा तत् प्रतिपादित विषय मिथ्या होने से अप्रमाण हैं।

(१) यह श्लोक महाभाष्य के पस्पशाह्निक में नहीं है।

(२) आपने अपनी पुस्तक में पृ० १३९ पं० २२ में लिखा है कि शब्द विषय में व्याकरण स्वतः प्रमाण है। अतः धर्म्म विषय में आप के ही लेखानुसार महाभाष्य प्रमाण नहीं हो सकता।

(३) जमदग्नि की माता गाधी की लड़की क्षत्राणी सत्यवती थी किंतु वह ब्राह्मण बने। (महा० अनु० अ० ४)

(४) विश्वामित्र की माता क्षत्राणी थी किन्तु आप उसे जन्म से ही ब्राह्मण मानते हैं। (महा० अनु० अ० ४)

(५) हरिणीगर्भसंभूतः ऋष्यशृङ्गो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणोजातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥ २६ ॥

भाषार्थ—हरिणी के गर्भ से पैदा होकर ऋष्यशृङ्ग मुनि ब्राह्मण तप से बन गये, इस में संस्कार कारण था ॥ २६ ॥

(६) श्वपाकीगर्भ संभूतः पिता व्यासस्य पार्थिव।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥ २७ ॥

भाषार्थ—चाण्डाली के गर्भ से पैदा होकर व्यास का पिता पराशर तप से ब्राह्मण बन गया, इस में संस्कार कारण है ॥ २७ ॥

(७) उलूकी गर्भ संभूतः कणादाख्यो महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥ २८ ॥

भाषार्थ—उलूकी के गर्भ से पैदा हो कर महामुनि कणाद तप से ब्राह्मण बन गये, इस में संस्कार कारण था ॥२८॥

(८) गणिका गर्भ संभूतो वशिष्टश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥२९॥

भाषार्थ—गणिका के गर्भ से पैदा हो कर महामुनि वशिष्ठ तप से ब्राह्मण बन गये। क्या इस में संस्कार कारण था ॥२६॥

(९) नाविका गर्भ संभूतो मन्दपालो महामुनिः।

तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥३०॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२)

भाषार्थ—नाविका के गर्भ से पैदा हो कर महामुनि मन्दपाल तप से ब्राह्मण बन गये। इस में संस्कार कारण था ॥३०॥

(१०) व्यास की माता सत्यवती ब्राह्मणी न थी किंतु व्यास जी ब्राह्मण थे। (महा० आदि० अ० १०५)

(११) कृपाचार्य की माता ब्राह्मणी न थी किंतु वह ब्राह्मण बन गये। (महा० आदि० अ० १३०)

(१२) द्रोणाचार्य की माता ब्राह्मणी न थी किंतु वह ब्राह्मण बन गये। (महा० आदि० अ० १३१)

(१३) सोमश्रवा की माता सांपनी थी किंतु वह ब्राह्मण बन गये। (महा० आदि० अ० ३)

(१४) शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नर वराधिप ॥५१॥
(बाल्मी० अयो० स० ६३)

अज्ञानात्तु हतो यस्मात्क्षत्रियेण त्वया मुनिः।
तस्मात्त्वां नाविशत्याशु ब्रह्महत्या नराधिप ॥५५॥
(बाल्मी० अयो० स० ६४)

भाषार्थ—सरवण ने कहा—हे राजन्! मैं वैश्य से शूद्रा में पैदा हुआ हूं ॥५१॥

सरवण के बापने कहा कि हे दशरथ! चूंकि तू क्षत्रिय ने अज्ञान से सरवण मुनि को मार दिया इस लिये तुझ को ब्रह्म हत्या नहीं लगती।

सरवण की माता शूद्रा थी वह ब्राह्मण बन गया।

तिस्रो भार्या ब्राह्मणस्य द्वे भार्ये क्षत्रियस्य तु।
वैश्यः स्वजात्यां विन्देत तास्वपत्यं समं भवेत् ॥१०॥
(महा० अनु० अ० ४४)

अब्राह्मणन्तु मन्यन्ते शूद्रापुत्रमनैपुणात्।
त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद् ब्राह्मणो भवेत् ॥१७॥

भावार्थ—ब्राह्मण की ब्राह्मणी क्षत्राणी वैश्या तीन स्त्रियां हैं, क्षत्रिय की क्षत्राणी तथा वैश्या दो, वैश्य की एक वैश्या ही स्त्री है उन से पैदा हुई सन्तान समान वर्ण ही होगी अर्थात् पिता के अनुकूल वर्ण होगा ॥१०॥

बेवकूफी से कई लोग शूद्रा के पुत्र को ब्राह्मण नहीं मानते, किन्तु तीनों ब्राह्मगवर्णों की स्त्रियों में ब्राह्मण से पैदा हुआ ब्राह्मण ही होता है ॥१७॥

(१६) एतैः कर्मफलैर्देवि न्यून जाति कुलोद्भवः।
शूद्रोऽप्यागम संपन्नो द्विजो भवति संस्कृतः ॥४६॥
ब्राह्मणो वाप्य सद्वृत्तः सर्व संकर भोजनः।
ब्राह्मण्यं समनूत्सृज्य शूद्रो भवति तादृशः ॥४७॥
न योनिर्नापि संस्कारो न श्रुतं न च सन्ततिः।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ॥५०॥
(महा० अनु० अ० १४३)

भावार्थ—हे देवि! इन कर्मों के फल से हीन जाति कुल में पैदा हुआ शूद्र भी वेद से सम्पन्न हुआ संस्कार से द्विज हो जाता है ॥४६॥ और ब्राह्मण भी दुराचारी सर्व भक्षी ब्राह्मण पद को छोड़ कर शूद्र ही हो जाता है ॥४७॥ ब्राह्मण बनने में न योनि कारण है न संस्कार और न श्रुत और न सन्तति

कारण हैं। अपितु ब्राह्मण बनने में आचरण अर्थात् कर्म ही कारण है।

३५८ (प्रश्न)—"भूतानां प्राणिन इत्यादि मनु० १।९६-९७" इन श्लोकों में साफ लिखा है कि मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ और ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ। विना पढ़े ब्राह्मण होते हैं तब तो मनु ने दो प्रकार के ब्राह्मण माने। एक विना पढ़े और एक विद्वान्। पृ० ३१३। पं० १०

उत्तर—कुर्बान जायें आपकी मन्तक दानी के। आपने तो लाल भुजक्कड़ को भी मात कर दिया। यदि मनु ने यह कह दिया कि ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं तो क्या इससे यह साबित हो गया कि मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है। तो क्या सब की विद्या समान ही होती है। कदापि नहीं। श्रीमान जी! ब्राह्मणों में भी विद्या की कमी ज़ियादती के कारण अनेक भेद हैं। जैसे विप्र, ब्राह्मण, मुनि, ऋषि, उपाध्याय, गुरु, आचार्य, ब्रह्मा, अध्वर्यु, उद्गाता, होता। अतः यहां पर ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं इसका यह अभिप्राय है कि ब्राह्मणों में जो विशेष विद्वान् हैं, वे श्रेष्ठ हैं। इन श्लोकों का अर्थ निम्न प्रकार से है, कि—

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ९६॥
ब्राह्मणेषु चविद्वांसो विद्वत्सुकृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः॥ ९७॥ मनु० अ० १

भाषार्थ—भूतों में प्राणी श्रेष्ठ हैं। प्राणियों में बुद्धि से जीवन व्यतीत करने वाले श्रेष्ठ हैं। बुद्धि वालोंमें मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं॥ ९६॥ ब्राह्मणों में जो विशेष विद्वान्

हैं वह श्रेष्ठ हैं। और विद्वानों में भी जो विशेष बुद्धि रखते हैं वे श्रेष्ठ हैं। और बुद्धिवालों में भी जो कर्मकाण्डी है, वे श्रेष्ठ हैं, कर्मकाण्डियों में से भी ब्रह्म के जानने वाले श्रेष्ठ हैं ॥ ९७ ॥

कहिये महाराज जी! जैसे आप "ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं" इस फ़िक़रे से यह अभिप्राय निकालते हैं कि "मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है" वैसे ही "विद्वानों में बुद्धिमान् श्रेष्ठ हैं" इस फिक़रे से भी यह अभिप्राय निकाल लीजियेगा कि "विद्वानों में भी बुद्धि हीन और मूर्ख होते हैं" कैसी मज़ेदार बात है। और कैसे सुन्दर अर्थ और युक्ति युक्त अभिप्राय हैं। शर्म तो नहीं आती क्या इन ही प्रमाणों के आधार पर जन्म से वर्ण व्यवस्था सिद्ध करने चले थे। मूर्खों को ब्राह्मण साबित करते २ विद्वानों को भी मूर्ख सिद्ध कर गुज़रे। होश कीजिये महाराज! मूर्खों का नाम ब्राह्मण भी कहीं हो सकता है। आप ज़रा ब्राह्मण के लक्षण तो पढ़िये—

योऽध्यापयेदधीयीत यजेद्वा याजयीत वा।
दद्याद्वापि यथाशक्ति तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३६ ॥
ब्रह्मचारी च वेदान् योऽप्यधीयाद्द्विजपुंगवः।
स्वाध्याये चाप्रमत्तो वै तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३७ ॥
(महा० वन० अ० २०५)

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥१०३॥
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः न शूद्रादतिरिच्यते।
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥१०६॥
(महा० वन० अ० ३१२)

विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्य धनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥१५५॥ मनु० २
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवत् बहिष्कार्यः सर्वस्मात् द्विज कर्मणः ॥१०३॥
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्व माशु गच्छति सान्वयः ।।१६८। मनु० २
ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः संध्यां न पश्चिमाम् ॥१९॥
सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्र कर्माणि कारयेत् ।२०॥
(महा० अनु० अ० १०४)

भाषार्थ—जो वेद पढ़ावे, वेद पढ़े, यज्ञ करे, यज्ञ करवावे और यथा शक्ति दान दे, विद्वान् लोग उसको ब्राह्मण कहते हैं ॥३६॥ जो ब्रह्मचारी हों और वेदों को पढ़े स्वाध्याय में सुस्ती न करे उसको विद्वान् लोग ब्राह्मण कहते हैं ॥३७॥ हे प्यारे यक्ष ! सुन ब्राह्मण बनने में न कुल कारण है नकेवल स्वाध्याय और विद्या कारण हैं, अपितु ब्राह्मण बनने में कर्म ही कारण हैं इसमें संशय नहीं है ॥१०६॥ चारों वेदों का पढ़ा हुआ भी दुराचारी शूद्र से अधिक नहीं है जो अग्नि होत्र करने वाला पवित्र आचार वाला हो वही ब्राह्मण कहा जाता है ॥१०६॥ ब्राह्मणों में ज्ञान से बड़ाई है। क्षत्रियों में बल से बड़ाई है। वैश्यों में धान्य धन से बड़ाई है। केवल शूद्रों में ही जन्म से बड़ाई है ॥१५५॥ इन श्लोकों से यह साबित हो गया कि मूर्ख का नाम ब्राह्मण नहीं है अपितु जो वेद को पढ़े तथा तदनुकूल आचरण करे उसी का नाम ब्राह्मण है । तथा यह भी सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणों में ज्ञान के थोड़ा बहुत होने से छुटाई बड़ाई है। अतः "ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ हैं" इसका यही अभिप्राय

है कि "जो ब्राह्मणों में विशेष ज्ञान वाले हैं, वे श्रेष्ठ हैं" इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है क्योंकि विद्या तथा कर्म हीन ब्राह्मण रहता ही नहीं अपितु वह शूद्र हो जाता है। जैसाकि—

जो प्रातः काल संध्या नहीं करता और जो शाम को भी संध्या नहीं करता उसको शूद्रों की भांति सब कामों से बाहर निकाल देना चाहिये ॥१०३॥ जो ब्राह्मण वेद न पढ़ कर अन्यत्र परिश्रम करता है। वह जीते हुए ही परिवार समेत शूद्र पद को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है ॥१६८॥ जो ब्राह्मण प्रातः और सायं संध्या नहीं करते धार्मिक राजा का यह फर्ज़ है कि उन सब से शूद्र का काम करवावे ॥१९-२०॥

अतः आपकी कल्पना कि मूर्खों का नाम भी ब्राह्मण है यह सर्वथा वेद विरुद्ध और मिथ्या है।

३५९ (प्रश्न)—स्वामी जी गुण कर्म स्वभाव से वर्ण-व्यवस्था बतलाते हैं। और फिर अपने मत को वैदिक कहते हैं। यही आश्चर्य्य है। श्रुति स्मृति में कहीं पर भी गुण कर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था नहीं लिखी। पृ० ३१७ पं० २५

उत्तर—"ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्" की मौजूदगी में गुण कर्म स्वभावानुसार वर्णव्यवस्था से इनकार करना आश्चर्य्य नहीं तो क्या है। संपूर्ण श्रुति स्मृति तथा इतिहास इस वैदिक सिद्धान्त की ताईद करते हैं। चारों वेदों में एक मंत्र भी ऐसा मौजूद नहीं है जो जन्म से वर्णव्यवस्था का प्रतिपादन करता हो।

३६० (प्रश्न)—सत्यकाम विश्वामित्र और मतंग को

बतलाया है कि ये तीनों अब्राह्मण से ब्राह्मण बन गये। सत्य-काम आदि का अब्राह्मण से ब्राह्मण बन जाना लिखना सुफेद झूठ हैं। पृ० ३१८ पं० ४

उत्तर—स्वामीजी का लिखना सर्वथा सत्य है कि सत्य-काम विश्वामित्र तथा मतंग अब्राह्मण से ब्राह्मण बन गये। इस स्पष्ट सत्य को स्वीकार न करना हठधर्मी तथा आत्म हत्या के विना क्या कहा जा सकता है।

३६१ (प्रश्न)—' किं गोत्रो नु सोऽध्येत्यादि छान्दो० प्र०४ खं० ४" में सत्यकाम के पूछने पर उस की माता जाबाला ने कहा कि "युवावस्था में घर आये अतिथि रूप ऋषियों की मैं सेवा किया करती थी। युवावस्था में तू उत्पन्न हुआ फिर तुम्हारे पिता तपस्या को चले गये मैं गोत्र नहीं पूछ पाई। मैं नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है। मैं इतना जानती हूं। मेरा नाम जबाला तेरा नाम सत्यकाम है। इस से सत्यकाम अब्राह्मण कैसे सिद्ध हुए। पृ० ३१८ पं० १०

उत्तर—यदि सत्यकाम अब्राह्मण न थे तो कृपया आप ही बतलावें कि इस पाठ में वे कौन से वाक्य हैं जिन से सत्य काम का ब्राह्मण होना सिद्ध होता है। और यह भी बतलाने की कृपा करें कि "घर आये अतिथि रूप ऋषियों को मैं सेवा किया करती थी। फिर तुम्हारे पिता तपस्या को चले गये मैं गोत्र नहीं पूछ पाई" यह अर्थ कौन से संस्कृत वाक्यों का है। वास्तव बात तो यह है कि "अज्ञात कुलोत्पन्न जबाला ने आवारह गरदी हुए यौवन अवस्था में अनेक पुरुषों से व्यभिचार करते २ गर्भ धारण किया था। वह निश्चय पूर्वक न

बतला सकती थी कि सत्यकाम का पिता कौन है"। छान्दोग्य का पूरा पाठ तथा अर्थ इस प्रकार सें है कि—

सत्यकामोह जाबालो जबालां मातरमामन्त्रयां चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किं गोत्रोऽहमस्मीति ॥१॥ सा हैनमुवाच नाहमेतद्वेदतात यद्गोत्रस्त्वमसि वह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामालभे। साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नामाहमस्मि सत्यकामो नामत्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रुवीथा इति ॥२॥ स ह हारिद्रुमतं गौतममेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्तमिति ॥३॥ तꣳह होवाच किं गोत्रोनु सोम्यासीति स होवाच नाहमेतद्वेद भोयद्गोत्रोऽहमस्म्यपृच्छं मातरँ सा माप्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामालभे साहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमसि जबाला नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भोइति ॥ ४ ॥ तं होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधं सोम्याहरोपत्वानेष्ये न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशा नामवलानां चतुः शता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानु संव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्तयेति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्र संपेदुः ॥५॥

(छान्दो॰ अ० ४ खं० ४)

भाषार्थ—जाबाली सत्यकाम अपनी माता जबाला से कहने लगे। श्रीमति जी मैं ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करना चाहता हूं, मेरा गोत्र क्या है॥ १ ॥ वह उस को बोली—हे प्यारे मैं यह नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है। मैंने वहुत फिरते हुए यौवन में आवारा गर्दी से तुझ को प्राप्त किया है। सो मैं यह

नहीं जानती तेरा गोत्र क्या है। मेरा नाम जबाला है तेरा नाम सत्यकाम है। वह तू जाबाल सत्यकाम ही अपने को बोल ॥२॥ वह हारिद्रुमत गौतम के पास जाकर बोला मैं आप के पास ब्रह्मचर्य्य वास करूंगा। इस कारण आप को प्राप्त हुआ हूं ॥ ३ ॥ उस को गौतम ने कहा, सौम्य तेरा क्या गोत्र है। उस ने कहा मैं यह नहीं जानता मेरा क्या गोत्र है। मैंने माता से पूछा था उस ने मेरे से कहा मैंने बहुत फिरते हुए यौवन में आवारा गर्दी से तुझ को प्राप्त किया है, वह मैं यह नहीं जानती कि तेरा गोत्र क्या है। मैं जबाला नाम हूं तेरा नाम सत्यकाम है। सो मैं सत्यकाम जाबाल हूं ॥ ४ ॥ उस को गौतम बोला यह बिना ब्राह्मण के कोई नहीं कह सकता। हे सौम्य! तू समिधा ला। मैं तेरा यज्ञोपवीत करूंगा। तू सत्य से नहीं डिगा। उसको यज्ञोपवीत देकर कमज़ोर और दुबली चार सौ गौ बाहर निकाल कर बोला। हे सौम्य इन के पीछे जा। उन को रवाना करते हुए बोला एक हज़ार होने से पहले मत लौटना। वह बहुत वर्षों तक बाहर रहा वे जब तक एक हज़ार हो गईं। ५ ॥

(१) गोत्र पूछने से ऋषि का अभिप्राय खान दान तथा पिता का वर्ण पूछना था ताकि तदनुकूल संस्कार किया जावे। तभी तो पता न लगने पर गौतम ने सत्य के लक्षण से सत्यकाम का संभावित ब्राह्मण वर्णानुसार यज्ञोपवीत किया।

(२ क्या अतिथि सेवा में लगने तथा पति के तपस्या को चले जाने से गोत्र वर्ण तथा पति के नाम का भी पता न लग सकता था। क्या अडौसी पडौसी संबंधी पुरोहित आदि सभी गोत्र वर्ण तथा पति का नाम भूल गये थे।

(३) यदि सत्यकाम को व्यभिचार से पैदा न किया था तो जबाला ने पिता का नाम क्यों न बतलाया, अपना ही नाम क्यों बतलाया।

(४) यदि पिता के निश्चित ज्ञान न होने से वह पिता का नाम तथा गोत्र न बतला सकती थी तो अपना वर्ण तो बतला सकती थी। किंतु जबाला ने अपना भी कोई वर्ण नहीं बतलाया।

(५) छांदोग्य के किसी पाठ से भी जबाला तथा सत्यकाम का जन्म से ब्राह्मण होना साबित नहीं होता।

(६) गौतम ने जो सत्यकाम की बात को सुन कर कहा कि यह बात बिना ब्राह्मण के कोई नहीं बतला सकता। तो अपनी पैदाइश को व्यभिचार से बताना ही गौतम की दृष्टि से इतना उस के लिये गौरव का कारण हो सकता है। साधारण बात से इतना गौरव नहीं हो सकता। क्योंकि माता का अतिथि सेवा में लगना पिता का तपस्या को जाना तो कोई भी बतला सकता है। यह सचाई कोई कड़वी सचाई नहीं है। हां अपने को व्यभिचार से पैदा हुआ बताना यह एक ऐसी कड़वी सचाई है कि जिस को प्रत्येक आदमी नहीं बतला सकता अपितु साधारण मनुष्य छिपाने का यत्न करता है। किंतु सत्यकाम ने ऐसी कड़वी सचाई भी गौतम से कह सुनाई। अतः गौतम के मुख से अनायास यह वाक्य निकल गये कि ब्राह्मण के बिना ऐसी बात कोई नहीं कह सकता।

इस से साबित हुआ कि केवल सत्यकाम ही अज्ञात कुलोत्पन्न तथा अब्राह्मण न था। अपितु जबाला भी अज्ञात कुलोत्पन्ना तथा अब्राह्मणी आवारह गर्द चलती फिरती वेश्या ही थी।

३६२ (प्रश्न) वेदारंभ से पहिले जो वेदारम्भ के लिये उपनयन संस्कार हुआ करता है। अभी वह भी नहीं हुआ फिर सत्यकाममें कौन विद्याका गुण आया और बिना वेद पढ़े कौन कौन उस ने वैदिक कर्म किये जिस से वह गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मण बना। पृ० ३१९ पं० २

यद्यपि छान्दोग्य के पाठ से यह साबित नहीं होता कि सत्यकाम की आयु छोटी थी। क्योंकि उस का स्वयं माता से गुरुकुल में जाने की प्रार्थना करना और गुरु से इस प्रकार की बात चीत करना तथा चार सौ गौओं को चरा कर एक हज़ार बनाना ये काम सत्यकामकी छोटी आयु को सिद्ध नहीं करते। तथापि वेदारम्भ से पूर्व तथा यज्ञोपवीत से भी पूर्व सम्भावित वर्णानुसार यज्ञोपवीतादि संस्कार होते हैं। अर्थात् बालक के माता पिता कुल, गोत्र, आचार को मद्देनज़र रख कर भावी जीवन में उस बालक के जिस वर्ण में जाने की आशा होती है। उस वर्ण के अनुसार यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये जाते हैं। वह बालकों का संभावित वर्ण होता है। और जब विद्या पूरी होने के पश्चात् गुण, कर्म, स्वभाव अनुसार आचार्य वर्ण नियत करता है वह उन का व्यवस्थित वर्ण होता है। तो गौतम आचार्य ने सत्यकाम में सत्य भाषण गुण देख कर उस के ब्राह्मण बनने की संभावना में उस को संभावित ब्राह्मण जान कर ब्राह्मण वर्णानुसार उसका यज्ञोपवीत संस्कार करवा दिया। भावी कर्मों की सम्भावना के अनुसार भी नाम रक्खे जाते हैं। इस में निरुक्त का निम्न लिखित प्रमाण उपस्थित है। जैसे कि—

यथो एतदपरस्माद्भावात् पूर्वस्य प्रदेशो नोपपद्यते इति पश्यामः

पूर्वोत्पन्नानां सत्वानामपरस्माद्भावान्नामधेय प्रतिलम्भमेकेषां नैकेषां यथा बिल्वादो लम्बचूडक इति ॥ निरु० अ० १ खं० १४ ॥

भाषार्थ—जो यह कहा जाता है कि आने वाले भाव से पूर्व वाले का प्रदेश उत्पन्न नहीं होता। हम देखते हैं कि पहिले पैदा हुए प्राणियों के होने वाले कर्मों को मद्दे नज़र रख कर नाम किन्हीं के रक्खे जाते हैं किन्हीं के नहीं। जैसे लम्ब चूडक (लंबी चोटी वाला) बिल्वाद (विल्व खाने वाला)

जो बालक अभी पैदा हुए हैं न उन की लम्बी चोटी है और न ही वे विल्व खाते हैं किन्तु आगामी जीवन में उन की लम्बी चोटी होने तथा विल्व खाने की संभावना में उनका नाम लम्बचूडक तथा बिल्वाद रक्खा जाता है। इसी का नाम संभावित संज्ञा है।

३६३ (प्रश्न)—यहां पर तो उपनयन संस्कार होने से पहिले ही गौतम ने सत्यकाम से कह दिया "मैं जानता हूं तू ब्राह्मण है, ब्राह्मण के बिना ऐसी बात कोई नहीं कह सकता" फिर सत्यकाम का गुण कर्म स्वभाव से ब्राह्मण बन जाना संसार की आंख में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है। पृ० ३१६ पं० ५

उत्तर—सत्यकाम की माता जबाला ब्राह्मणी न थी सत्यकाम के बाप का उसकी माता भी निश्चय न कर सकी कि कौन किस वर्ण तथा किस नाम का था। सत्यकाम के गोत्र कुल वर्ण आदि का कोई पता न था। गौतम ने सत्यकाम के यह कड़वी सचाई बयान करने पर कि "मेरी माता ने फिरते २ आवारागरदी में यौवनावस्था में मुझे प्राप्त किया है, मेरे गोत्र

का कोई पता नहीं" उसके ब्राह्मण होने की संभावना की। इतने पर भी सत्यकाम को जन्म से ब्राह्मण बतलाना संसार की आंखों में धूल झोंकना नहीं तो क्या है।

३६४ (प्रश्न)—विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना वे लोग मानेंगे कि जिन्होंने विश्वामित्र की गाथा को न पढ़ा हो। पृ० ३१६ पं० ११।

उत्तर—वास्तव में विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बने। आप की गाथा वेद स्मृति रामायण और स्वयं महाभारत के विरुद्ध है। यह हम आगे चल कर सिद्ध करेंगे। अब विश्वामित्र की वास्तव कथा सुनिये—

राजासीदेष धर्म्मात्मा दीर्घकालमरिंदमः ।
धर्म्मज्ञः कृतविद्यश्च प्रजानां च हिते रतः ॥ १७ ॥
प्रजापति सुतस्त्वासीत्कुशो नाम महापतिः ।
कुशस्य पुत्रो बलवान् कुशनाभः सुधार्मिकः ॥ १८ ॥
कुशनाभ सुतस्त्वासीद्गाधिरित्येव विश्रुतः ।
गाधेः पुत्रोमहातेजा विश्वामित्रो महामुनिः । १९ ॥
विश्वामित्रो महातेजाः पालयामासमेदिनीम् ।
बहुवर्ष सहस्राणि राजा राज्यमकारयत् ॥ २० ॥

(बाल्मीकि० बाल० स० ५१)

भाषार्थ—यह बहुत पहिले शत्रुओं का जीतने वाला धर्मात्मा राजा था। धर्म का जानने वाला विद्वान् प्रजा के हित में लगा रहता था ॥ १७ ॥ प्रजापति का पुत्र महाराज कुश था। कुश का पुत्र धार्मिक और बलवान् कुशनाभ था ।१८। कुशनाभ का पुत्र गाधी नाम से मशहूर था। गाधि का पुत्र महाते-

जस्वी महामुनि विश्वामित्र था।१९। महातेजस्वी विश्वामित्रने पृथिवी का पालन किया। और राजा विश्वामित्र ने कई हज़ार वर्ष राज्य किया।२०॥ कभी राजा विश्वामित्र सेना साथ में लेकर पृथिवी का चक्कर लगाते हुए वशिष्ठ के आश्रम में आये। उस आश्रम में वसिष्ठ ने विश्वामित्र का स्वागत करके कुशल पूछा। पश्चात् वसिष्ठ ने सेना सहित विश्वामित्र का अतिथि सत्कार किया। राजा विश्वामित्र ने वसिष्ठ से शबला गौ मांगी। वसिष्ठ ने शबला के देने से इनकार कर दिया। तब राजा विश्वामित्र ने ज़बरदस्ती शबला गौ को ले जाना चाहा। वसिष्ठ ने विश्वामित्र से युद्ध किया और विश्वामित्र की सारी सेना का नाश कर दिया। पराजित होकर विश्वामित्र घर आया और अपने एक पुत्र को राज्य सौंप कर आप तप करने वन में चला गया और बड़े भारी तप से दिव्य शस्त्रास्त्र प्राप्त किये। और बड़े घमंड से वसिष्ठ के आश्रम पर चढ़ाई की। इस लड़ाई में वसिष्ठ ने अपने ब्रह्म दण्ड से विश्वामित्र के संपूर्ण शस्त्रास्त्रों का नाश कर दिया। यह देख कर विश्वामित्र ने कहा कि—

धिग्बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्।
एकेन ब्रह्मदण्डेन सर्वास्त्राणि हता नि मे ॥ ३॥
तदेतत्प्रसमीक्ष्याहं प्रसन्नेन्द्रिय मानसः।
तपो महत्समास्थास्येयद्वै ब्रह्मत्वकारणम् ॥२४॥
(बाल्मी० बाल० स० ५६)

भाषार्थ—क्षत्रियों के बल को धिक्कार है! ब्रह्म तेज ही बल है। एक ही ब्रह्म दण्ड ने मेरे सारे अस्त्रों को निकम्मा करदिया

॥ २३ ॥ यह सब कुछ देखकर प्रसन्न मन होकर मैं ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिये बड़ा भारी तप करूंगा ॥ २४ ॥ यह कहकर बन में तप करने चले गये । और बड़ा भारी तप किया—

ततः सुरगणाः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥ १८ ॥
विश्वामित्रं महात्मानं वाक्यं मधुरमब्रुवन् ।
ब्रह्मर्षे स्वागतं तेऽस्तु तपसा स्म सुतोषिताः ॥ १९ ॥
ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक ।
दीर्घमायुश्च ते ब्रह्मन्ददामि समरुद्गणः ॥ २० ॥
ततः प्रसादितो देवै र्वसिष्ठो जपतां वरः ।
सख्यंचकार ब्रह्मर्षिरेवमस्त्विति चाब्रवीत् ॥ २५ ॥
ब्रह्मर्षिस्त्वं न संदेहः सर्वं सम्पद्यते तव ।
इत्युक्त्वा देवताश्चापि सर्वा जग्मुर्यथागतम् ॥ २६ ॥
(वाल्मी० बाल० स० ६५)

भाषार्थ—तब ब्रह्मा समेत सारे देवता ॥ १८ ॥ महात्मा विश्वामित्र को मीठे वचन बोले । हे ब्रह्मर्षे ! हम तेरा स्वागत करते हैं । आपने हमको तप से संतुष्ट कर दिया है ॥ १९ ॥ है कौशिक ! आप ने घोर तप से ब्राह्मण पद को प्राप्त कर लिया है । और हे ब्राह्मण मैं तुझको देवताओं समेत बड़ी आयु देता हूं ॥ २ ॥ तब देवताओं ने जप करने वालों में श्रेष्ठ वसिष्ठ को प्रसन्न किया तब वसिष्ठ ने मित्रता करके कहा ऐसा ही होगा ॥ २५ ॥ तू ब्रह्मर्षि है इस में संदेह नहीं है । और तेरे में सब कुछ योग्य है । यह कहने पर देवता भी सब चले गये ॥ ६ ॥ यही कथा अक्षरशः संक्षेप से महाभारत आदि पर्व अध्याय १७७ में लिखी हुई है । और इस कथा के आदि तथा अन्त में

ये श्लोक मौजूद हैं कि—

काम्य कुब्जे महानासीत्पार्थिवो भरतर्षभ ।
गाधीति विश्रुतो लोके कुशिकस्यात्मसंभवः ॥३॥
तस्य धर्म्मात्मनः पुत्रः समृद्धबलवाहनः ।
विश्वामित्र इति ख्यातो बभूव रिपुमर्दनः ॥४।
विश्वामित्रः क्षत्रभावान्निर्विन्नो वाक्यमब्रवीत् ।
धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलं बलम् ॥४४॥
बलाबलं विनिश्चित्य तप एव परं बलम् ।
स राज्यं स्फीतमुत्सृज्य तां च दीप्तां नृपश्रियम् ॥४५॥
भोगांश्चपृष्ठतः कृत्वा तपस्येव मनो दधे ।
स गत्वा तपसा सिद्धिं लोकान् विष्टभ्य तेजसा ॥४६॥
तताप सर्वान् दीप्तौजा ब्राह्मणत्वमवाप्तवान् ।
अपिबच्च ततः सोममिन्द्रेण सह कौशिकः ॥४७॥

(महा० आदि० अ० १७१)

भाषार्थ—कान्य कुब्ज देश में कुशिक का पुत्र बड़ा प्रसिद्ध गाधि नाम का राजा था ॥३॥ उस धर्म्मात्मा का पुत्र सामान बल से समृद्ध शत्रुनाशक विश्वामित्र प्रसिद्ध था ॥४॥ विश्वामित्र ने क्षत्र भाव से दुःखी होकर यह बात कही कि क्षत्रिय बल को धिक्कार है ब्रह्मतेज ही बल है ॥४४॥ बल अबल का निश्चय करके तप ही परम बल है । उसने राज्य को तथा प्रकाशित श्री को छोड़ कर ॥४५॥ भोगों को पीछे छोड़ कर तप में ही मन को लगाया । उसने तप से सिद्धि को प्राप्त करके और लोकों को तेज से काबू करके ॥४६॥ अपने तेज से सबको तपाकर ब्राह्मण पद को प्राप्त किया और उस कौशिक विश्वामित्र ने इन्द्र के साथ सोम रस का पान किया ॥४७॥

यहां पर बाल्मीकि तथा व्यास दोनों ने ही विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना लिखा है। आपके विचार के अनुसार क्या इन दोनों को विश्वामित्र के इतिहास का पूर्ण ज्ञान न था। यदि था तो फिर साफ सिद्ध हो गया कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बने।

३६५ (प्रश्न)—अनुशासन पर्व के आरंभ में भीष्म ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि कर्म के द्वारा कोई अन्य जाति ब्राह्मण नहीं बन सकती। पृ० ३१९ पं० १२

उत्तर—श्रीमान् जी! अनुशासन पर्व के वे श्लोक तो पेश कर दिये होते जहां भीष्म ने दूसरी जतियों के लिये कर्म द्वारा ब्राह्मणत्व को अप्राप्य वस्तु लिखा है। अनुशासन पर्व के प्रथम अध्याय में "मनुष्य की मृत्यु में अपने ही किये हुए कर्म कारण हैं" और दूसरे अध्याय में "गृहस्थी मृत्यु को कैसे जीत सकता है" इन दो विषयों का वर्णन है। इन अध्यायों में वर्ण व्यवस्था का जिकर तक भी नहीं है। न जाने आपने यह सुफैद झूठ लिख कर क्यों आत्म हत्या की है। क्या इस झूठ का आप कोई प्रायश्चित्त करेंगे।

३६६ (प्रश्न)—राजा युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि—

ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्राप्यं त्रिभिर्वर्णैर्नराधिप।
कथं प्राप्तं महाराज क्षत्रियेण महात्मना ॥१॥
विश्वामित्रेण धर्म्मात्मन् ब्राह्मणत्वं नरर्षभ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥२॥
(महा० अनु० अ० ३)

भगवन् नरेश भीष्म! यदि क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये तीन

वर्ण किसी प्रकार से भी ब्राह्मण नहीं हो सकते तो फिर विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण कैसे बन गए, यह हम याथातथ्य सुनना चाहते हैं। आप कृपा करके हम से कहें। पृ० ३१९ पं० १४

उत्तर—या बेईमानी तेरा ही आसरा। ऊपर तो भीष्म के नाम से गप्प हांक दी। यहां दुष्प्राप्य के अर्थ ही "तीन वर्ण किसी प्रकार से भी ब्राह्मण नहीं हो सकते" करदिया। श्रीमान् जी! दुष्प्राप्य का अर्थ कष्ट साध्य है असाध्य नहीं है। आर्य्य समाज भी क्षत्रिय वैश्य शूद्र से ब्राह्मण बनना सुसाध्य नहीं मानता अपितु कष्ट साध्य मानता है। हां पौराणिक साहित्य सुसाध्य अवश्य मानता है। जैसाकि—

विश्वामित्रस्तु राजेन्द्र ब्राह्मणत्व जिगीषया।
तपश्चचार विपुलं संतापाय दिवौकसाम्।
ब्राह्मणत्वं न लेभे ऽसौ लेभे विघ्नाननेकशः ॥ ५६ ॥
ततस्तु नियमात्तासां तिथीनां प्रवरा तिथिः।
उपोषिता बहुविधा ज्ञात्वा ब्रह्मप्रियां तिथिम् ॥ ५७ ॥
ततोदेवो ददौ ब्रह्मा विश्वामित्राय धीमते।
इहैव तेन देहेन ब्राह्मणत्वं सुदुर्लभम् ॥ ५८ ॥
तिथीनां प्रवरा ह्येषा तिथीनामुत्तमातिथिः।
क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा ब्राह्मणत्वमवाप्नुयुः ॥ ५९ ॥

(भविष्य० ब्राह्म० अध्याय १६)

भाषार्थ—हे राजेन्द्र विश्वामित्रने तो ब्राह्मणत्व के प्राप्त करने की इच्छा से देवताओं को संताप देने के लिये घोर तप किया किंतु वह ब्राह्मणत्व को प्राप्त नहीं हुआ अपितु अनेक विघ्नों को प्राप्त हुआ ॥ ५६ ॥ फिर तो उन तिथियों में से

श्रेष्ठ तिथि प्रतिपदा में बहुत प्रकार से नियमानुसार उपवास किया इस बात को जानकर कि यह तिथि ब्रह्मा की प्यारी है ॥ ५७ ॥ तब देव ब्रह्मा ने बुद्धिमान् विश्वामित्र के लिये इस ही जन्म में इस ही देह से दुर्लभ ब्राह्मणत्व दिया ॥ ५८ ॥ यह तिथि तिथियों में श्रेष्ठ है, यह तिथि तिथियों में उत्तम है। इस से क्षत्रिय तथा वैश्य शूद्र ब्राह्मण पद को प्राप्त हो सकते हैं ॥ ५९ ॥

कहिये महाराज ! यह तो केवल प्रतिपदा के व्रत से ही ब्राह्मणपद की प्राप्ति होने लगी ! क्या इस से सस्ता सौदा भी कहीं संसार में हो सकता है। फिर युधिष्ठिर के प्रश्न से पता लगता है कि वह विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण बना ही मानते थे।

३६७ (प्रश्न) भीष्म ने उत्तर दिया कि गाधि क्षत्रिय की लड़की सत्यवती का विवाह ऋचीक ब्राह्मण से हुआ। गाधि की स्त्री के कहने से सत्यवती ने सन्तानार्थ अपने पति से कहा। ऋचीक ने दोनों के लिये दो चरु बनाये। गाधि की स्त्री के लिये क्षात्र तेज प्रधान चरु बनाया तथा अपनी स्त्री के लिये ब्रह्मतेज प्रधान चरु बनाया। अपनी स्त्री को गूलर तथा गाधि की स्त्री को पीपल से मिलने को कहा। माँ बेटियों ने आपस में चरु भी तबदील कर लिये और पेड़ों का मिलना भी तबदील कर लिया। जब ऋचीक को इस बात का पता लगा तो उन्हों ने अपनी स्त्री सत्य वती से कहा कि चरु तथा वृक्षों के मिलने के तबदील करने का यह परिणाम होगा कि तेरी माता श्रेष्ठ ब्राह्मण को तथा तू उग्रकर्मा क्षत्रिय को पैदा करेगी। सत्यवती की प्रार्थना पर ऋषि ने कहा कि

अच्छा तुम्हारे पुत्र इस प्रकार का न होगा किंतु पौत्र इस प्रकार का होगा। समय आने पर सत्यवती के जमदग्नि नाम बालक पैदा हुआ और जमदग्नि के परशु राम पैदा हुआ। तथा गाधि की स्त्री ने यशस्वी ब्रह्मवादी ब्रह्मर्षि विश्वामित्र को पैदा किया। अब कौन मनुष्य कह सकता है कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गया। जबकि उत्पन्न होते ही विश्वामित्र को ब्रह्मवक्ता एवं ब्रह्मर्षि कहा है, फिर इस का क्षत्रिय होना मानेगा कौन। पृ० ३१६ पं० १५।

उत्तर—बाल्मीकि रामायण तथा महाभारत के आदि पर्व में विश्वामित्र की पैदाइश गाधि से लिखी है और उनको क्षत्रिय राजा से ब्राह्मण होता माना है। वहां चरु आदि का कतई जिकर नहीं है। देखो (नं० ३६४)

(२) गाधि की लड़की सत्यवती क्षत्रिया थी और ऋचीक ब्राह्मण थे। ऋचीक से विवाह होने पर सत्यवती ब्राह्मणी बन गई या कि क्षत्रिया ही रही। यदि क्षत्रिया ही रही तो उन की सन्तान जमदग्नि को वर्ण संकर मानना पड़ेगा। यदि ब्राह्मणी बन गई तो इस से ही क्षत्रिया का ब्राह्मणी बनना गुण कर्म स्वभाव से वर्ण व्यवस्था का साधक है।

(३) महाभारत वन पर्व अध्याय ११५ श्लोक २१ से ४२ तक में यह वर्णन है कि चरु ऋचीक के पिता सत्यवती के श्वसुर भृगु ने तय्यार किये। जैसे कि—

ततः प्रसादयामास श्वशुरं सा पुनःपुनः ॥४२॥
(महा० वन० अ० ११५)

भाषार्थ—तब सत्यवती ने अपने श्वशुर भृगु को बार २ प्रसन्न किया ॥४२॥ इत्यादि इत्यादि

इन दोनों में से कौन सी बात ठीक है। हमारे विचार से तो परस्पर विरोध होने के कारण चरु की कल्पना ही मिथ्या है।

(४) वृक्षों के साथ आलिंगन का क्या प्रयोजन था। क्या वृक्षों का आलिंगन भी गर्भस्थिति में कारण था। क्या वृक्ष भी स्त्री में गर्भाधान कर सकते हैं। यदि करसकते हैं तो सन्तान किस वर्ण की होगी।

(५) चरु भक्षण के पश्चात् गाधि की स्त्री तथा ऋचीक की स्त्री ने गाधी तथा ऋचीक से समागम किया या नहीं। यदि कहो कि पतियों से गर्भाधान द्वारा वीर्यदान लिया था तो फिर विश्वामित्र की मां क्षत्राणी तथा पिता गाधी क्षत्रिय और विश्वामित्र भी क्षत्रिय ही हुआ।

(६) यदि कहो कि पतियों से वीर्य दान नहीं लिया तो गर्भ कैसे ठहरा। क्यूं कि वेद कहता है कि—

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् ॥

इत्यादि (यजु० १९।७६)

अर्थ—पुरुष की इन्द्रिय स्त्री की योनि में प्रवेश होकर गर्भ में वीर्य छोड़ती है तब गर्भ होता है तथा मनु भी कहता है कि—

क्षेत्र भूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्।
क्षेत्र बीज समायोगात्संभवः सर्वदेहिनाम् ॥ ३३ ॥

(मनु० ९)

भाषार्थ—स्त्री खेत है और पुरुष बीज है। खेत और बीज के संयोग से ही सब शरीरधारियों का पैदा होना मुमकिन है।

(७) यदि कहो कि चरु में बीज मौजूद था उससे गर्भ हो गया, तो क्या बीज के खाने से स्त्री के गर्भ होना संभव है या चरु को योनि की तरफ से ही इस्तेमाल किया गया था।

(८) यदि चरु में बीज था तो वह किस प्रकार का बीज था, क्या ऋचीक के शरीर से पैदा हुआ बीज था या वेद मंत्रों से पैदा किया हुआ विशेष बीज था जिस में ऋचीक का शारीरिक भाग न था।

(९) यदि कहो कि ऋचीक का शारीरिक बीज चरु में था तो वह किस विधि से ऋचीक के शरीर से निकाल कर चरु में दाखिल किया गया था और ऋचीक के बीज से गाधि की स्त्री में गर्भाधान, जवाई के बीज से सास में गर्भ क्या शास्त्र विहित है, यदि नहीं तो क्या विश्वामित्र को नाजायज़ औलाद मानना पड़ेगा।

(१०) एक ही ऋचीक के शरीर से दो प्रकार का वीर्य होना कैसे संभव है। अर्थात् एक क्षत्रिय पैदा करने वाला, दूसरा ब्राह्मण पैदा करने वाला।

(११) यदि कहो कि ऋचीक के शरीर का बीज में कोई भाग न था अपितु वेद मंत्रों की शक्ति से ही इस चरु में बीज पैदा किया गया था तो क्या बिना मनुष्य के शरीर के इस प्रकार का बीज तैयार किया जा सकता है कि जो गर्भ धारण में काम दे सके। और क्या वेदमंत्रों से किसी वस्तु में ब्राह्मण-पन तथा क्षत्रियपन के गुण पैदा किये जा सकते हैं।

(१२) और यदि बिना किसी प्रकार के शारीरिक संबंध के केवल वेद मंत्रों से ही ब्राह्मणपन तथा क्षत्रियपन के गुण

पैदा किये जा सकते हैं तो फिर न ब्राह्मण खानदान में पैदा होना ज़रूरी है न ब्राह्मण का बीज और न ब्राह्मणी की योनी ही ब्राह्मण बनने के लिये ज़रूरी हैं। अपितु जहां भी वेद मंत्रों से ब्राह्मणपन तथा क्षत्रियपन के गुण पैदा कर दिये जावें वहीं ब्राह्मण तथा क्षत्रिय है। इस से तो वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं, अपितु गुण कर्म स्वभाव से सिद्ध हो गई।

(१३) पुत्र के न होने की शिकायत सत्यवती की माता को थी, सत्यवती को तो न थी फिर दोनों के लिये चरु क्यों तय्यार किया गया। क्यूंकि ऋचीक के सत्यवती से तीन पुत्र थे। जमदग्नि, शुनक तथा शुनः शेप। (बाल्मी० बाल० स० ६१) विश्वामित्र के साथ २ चरु से तो केवल जमदग्नि ही पैदा हुआ था शेष दो तो बिना चरु के ही हुए। जब पिछले दो बिना चरु के पैदा होगये तो पहिले के लिये भी चरु की क्या ज़रूरत थी। अतः दोनों के लिये चरु बनाने की बात केवल चरु के तबादले से विश्वामित्र को जन्म से ब्राह्मण साबित करने के लिये जन्माभिमानी लोगों की कल्पना ही है।

(१४) इन तमाम बातों को छोड़ कर यदि इस कथा को ठीक भी मान लिया जावे तो विश्वामित्र की माता क्षत्राणी थी। चरु ब्राह्मण तेज प्रधान खाया तो विश्वामित्र ब्राह्मण पैदा हो गया। किंतु, जमदग्नि की माता सत्यवती क्षत्रिया थी और चरु भी क्षात्रतेज प्रधान खाया तब जमदग्नि क्षत्रिय क्यूं न बना। यदि पुत्र नहीं तो पौत्र ही परशु राम क्षत्रिय क्यूं न माना गया। इस से साबित है कि यह गाथा वेद शास्त्र युक्ति विरुद्ध होने से क़तई मिथ्या है। वास्तव में गाधि क्षत्रिय था

विश्वामित्र गाधि का पुत्र जन्म से क्षत्रिय था, वह तप से कर्मानुसार ब्राह्मण बन गया। इस घटना को संस्कृत ग्रन्थों में अनेक स्थलों में वर्णन किया गया है।

(१) पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेवच।
कुबेरश्च धनैश्वर्यं ब्राह्मण्यं चैव गाधिजः ॥ ४२ ॥
(मनु० ७)

गाधिपुत्रो विश्वामित्रश्च क्षत्रियः संस्तेनैव देहेन ब्राह्मण्यं प्राप्तवान् (कुल्लूक भट्ट)

भावार्थ—पृथु ने विनय से राज्य को प्राप्त किया और मनु ने भी। कुबेर ने विनय से धन ऐश्वर्य को प्राप्त किया। और विनय से ही गाधि का पुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए उस ही शरीर से ब्राह्मण बन गया ॥ ४२ ॥ यहां मनु तथा कुल्लूक दोनों ने विश्वामित्र को क्षत्रिय माना है।

(२) तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।
उत्कर्षं चापकर्षंच मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ ४२ ॥
(मनु० १०)

तपः प्रभावेन विश्वामित्रवत्। बीज प्रभावेन ऋष्यशृङ्गवत्। (कुल्लूक भट्ट)

भावार्थ—मनुष्यों में प्रत्येक युग में इस संसार में कोई तप के प्रभाव से विश्वामित्र की भांति कोई बीज के प्रभाव से ऋष्यशृङ्ग की भांति अपने जन्म की अपेक्षा उन्नति तथा अवनति को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४२ ॥ यहां कुल्लूक भट्ट ने विश्वामित्र की उन्नति में बीज को कारण नहीं माना अपितु तप को कारण माना है।

(३) यद्दुस्तरं यद्दुरापं यद्दुर्गंयच्च दुष्करम् ।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम् ॥ ३३८ ॥
(मनु० ११)

यद्दुःखेन प्राप्यते क्षत्रियादिना यथा विश्वामित्रेण तेनैव शरीरेण ब्राह्मण्यादि (कुल्लूक भट्ट)

भाषार्थ—जो कठिनता से तैरने योग्य है जो दुःख से प्राप्त करने योग्य क्षत्रियादि से जैसे विश्वामित्र ने उसी शरीर से ब्राह्मण पद आदि जो कठिनता से गमन करने योग्य है। जो कठिनता से करने योग्य है। वे सब तप से साध्य है। क्यूंकि तप दुर्लंघ्य शक्ति है ॥ ५३८ ॥

(४) पूर्वं राजर्षि शब्देन तपसा द्योतितप्रभः ॥५४॥
ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया ।
तदद्भुतमभूद्विप्र पवित्रं परमं मम ॥५५॥
(वाल्मी० बाल० स० १८)

भाषार्थ— राजा दशरथ ने विश्वामित्र से कहा कि आप पहिले तप के कारण राजर्षि शब्द से प्रकाशित हुए ॥५४॥ फिर ब्रह्मर्षि बन गये, अतः मेरे से अत्यन्त पूज्य हैं। हे विप्र यह अद्भुत घटना है आप परम पवित्र मेरी दृष्टि में हैं ॥५५॥

(५) विश्वामित्रो गाधिसुतस्तपसैव महामुने ।
क्षत्रियोऽथाभवद्विप्रः प्रसिद्धं त्रिभवेत्विदम् ॥५३॥
(शिव० उमा० अ० १२)

भाषार्थ—हे महामुने ! गाधि का पुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय होते हुए तप से ही ब्राह्मण बन गया। यह तो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥५३॥

(६) शृणु तात न विप्रोऽहं गाधिक्षत्रिय बालकः ।
विश्वामित्रेति विख्यातः क्षत्रियो विप्रसेवकः ॥६॥
विश्वामित्र वरान्मे त्वं ब्रह्मर्षि नात्र संशयः ।
अतस्त्वमाज्ञया मे हि संस्कारं कर्तुमर्हसि ॥१३॥
ततोऽकार्षीत् ससंस्कारं तस्य प्रीत्याऽखिलं यथा ॥१४॥
(शिव० रुद्र० कुमार अ० ३)

भावार्थ—विश्वामित्र ने कहा—हे प्यारे सुन मैं ब्राह्मण नहीं हूं। गाधि क्षत्रिय का बालक हूं। विश्वामित्र नाम से प्रसिद्ध हूं। ब्राह्मणों का सेवक क्षत्रिय हूं ॥६॥ शिव पुत्र ने कहा हे विश्वामित्र ! मेरे वर से तू ब्राह्मर्षि है। इस में संशय नहीं है इस लिये तू मेरी आज्ञा से मेरा संस्कार कर सकता है ॥१३॥ तब विश्वामित्र ने शिव पुत्र का यथा विधि प्रीति से संपूर्ण संस्कार करवाया ॥१४॥

(७) क्षत्रभावादपगतो ब्राह्मणत्वमुपागतः ।
धर्मस्य वचनात् प्रीतो विश्वामित्रस्तथाभवत् ॥१८॥
(महा० उद्योग० अ० १०५)

भावार्थ—तथा विश्वामित्र धर्म के वचन से प्रीति पूर्वक क्षात्र भाव को छोड़ कर ब्राह्मण पद को प्राप्त हो गया ।१८॥

(८) विश्वामित्रस्तदोवाच क्षत्रियोऽहं तदाभवम् ।
ब्राह्मणोऽहं भवानीति मया चाराधितोभवः ।
तत्प्रसादान्मया प्राप्तं ब्राह्मण्यं दुर्लभं महत् ॥१६॥
(महा० अनुशा० अ० १८)

भावार्थ—तब विश्वामित्र बोला कि तब मैं क्षत्रिय था। मैं ब्राह्मण होना चाहता हूं, मैंने ऐसी प्रार्थना ब्रह्मा से की। उस

ब्रह्मा की कृपा से मैंने दुर्लभ ब्राह्मण पद को प्राप्त किया ॥१६॥

इतने स्पष्ट प्रमाणों की मौजूदगी में विश्वामित्र के क्षत्रिय से ब्राह्मण बनने में किसको शंका हो सकती है। अतः विश्वामित्र का जन्म से ब्राह्मण या ब्रह्मर्षि मानना पौराणिक गप्पाष्टक ही है।

३६८ (प्रश्न)—ब्राह्मण से जो क्षत्रिय कन्या में उत्पन्न होता है उसमें माता के रज से कुछ क्षत्रियत्व विकार रहता है इसी कारण मन्वादि धर्म्म शास्त्रों ने ऐसी सन्तान को पूर्ण ब्राह्मण न लिख कर मूर्धाभिषिक्त लिखा है। विश्वामित्र ने अपने घोर तप से मातृ रज को अपने शरीर से निकाल दिया। निकालने के पश्चात् वह पूर्ण ब्राह्मण बन गया। जब चरु ब्रह्म वीर्य से युक्त था और महाभारत ने उत्पन्न होते ही विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि मान लिया इतना होने पर भी विचार शील मनुष्य यह नहीं मान सकता कि विश्वामित्र क्षत्रिय के वीर्य से पैदा हुआ विद्या पढ़ कर ब्राह्मण बन गया। पृ० ३२१ पं० ११

उत्तर—(१) आपने विश्वामित्र को ब्राह्मण से क्षत्रिया कन्या में पैदा होने के कारण मूर्धाभिषिक्त माना है। और चरु में ब्रह्मवीर्य की मौजूदगी मानी है। और गाधि के वीर्य से उत्पत्ति का निषेध कर दिया है। तो आपके लेख से सिद्ध हुआ कि ऋचीक के वीर्य तथा गाधि की स्त्री के रज मिलने से विश्वामित्र की पैदाइश हुई। गोया जवाई के वीर्य से सास में गर्भ का होना आपने तसलीम कर लिया। क्या इसे सनातन धर्म्म शास्त्र के अनुकूल धर्म्म मानता है।

(२) एक तरफ तो आप विश्वामित्र को जन्म समय

अपूर्ण ब्राह्मण मानते हैं। दूसरी तरफ जन्म से ही ब्रह्मर्षि मानते हैं, क्या यह परस्पर विरोध तो नहीं है।

(३) जब आप यह मानते हैं कि तप से मातृ रज को शरीर से निकाला जा सकता है तो क्या उसी प्रकार से पितृ वीर्य को भी तप से बाहर निकाल कर प्रत्येक मनुष्य ब्राह्मण नहीं बन सकता। अतः आपकी सारी कल्पना निर्मूल होने से सर्वथा मिथ्या है। वास्तव में विश्वामित्र क्षत्रिय, क्षत्रिया के रज वीर्य से पैदा होकर तप से ब्राह्मण बना था।

३६६ (प्रश्न)—"केवल चरु मात्र से गर्भ नहीं रह सकता यह निरी गप्प है" यह कहना ठीक नहीं क्योंकि यह महाभारत में लिखा है। यदि महाभारत गप्प है तो गाधि का होना गप्प, गाधि की स्त्री से विश्वामित्र का होना गप्प, तथा विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना गप्प। फिर इस गप्प युक्त विश्वामित्र की कथा को तुम ने क्यों सत्य माना। पृ० ३२१ पं० २३।

उत्तर—श्रीमान् जी महाभारत स्वतः प्रमाण नहीं है अपितु परतः प्रमाण है। महाभारत की बातें भी यदि वेद के विरुद्ध हों तो वह प्रमाण नहीं मानी जासकतीं। चूंकि वेद कहता है कि रजवीर्य के योग से ही सन्तानोत्पत्ति हो सकती है। (नं० ३६७) अतः केवल चरु से गर्भ स्थिति वेद विरुद्ध होने से अप्रमाण तथा गाधि तथा गाधि की स्त्री के रजवीर्य से विश्वामित्र का पैदा होना वेदानुकूल होने से प्रमाण है। भला यह तो बतलाइये कि महाभारत में यह कहां लिखा है कि चरु खाने के पीछे उन स्त्रियों ने पति से समागम नहीं किया। और फिर कौनसी खुराफ़ात है जो मौजूदा महाभारत से नहीं मिल सकती।

व्यास कहते हैं महाभारत चौबीस हज़ार है गरुड कहता है छैः हज़ार था। अब एक लाख के लगभग मौजूद है, जिस ग्रन्थ में इतना हेर फेर हो वह भी कहीं क़ाबिल प्रमाण हो सकता है। देखिये—

दैत्याः सर्वे विप्रकुलेषु भूत्वा कृते युगे भारते षट् सहस्र्याम्।
निष्कास्यकांश्चन् नवनिर्मितानां निवेशनं तत्र कुर्वन्ति नित्यम्॥६९॥
(गरु० उत्तर ब्रह्म० अ० २)

भाषार्थ—सब राक्षस लोग ब्राह्मणों के खानदानों में पैदा होकर धर्मात्मा राजा के राज्य में बनी छे हज़ार की भारत संहिता में से कुछ श्लोक निकाल कर और कुछ नये बनाये श्लोकों को दाखिल करने का काम हमेशा करते हैं॥ ६६ ॥ अतः महाभारत की बात वेदानुकूल होने से ही प्रमाण मानी जासकती है अन्यथा नहीं। और आप तो विश्वामित्र में रज और वीर्य दोनों की मौजूदगी भी मानते हैं (नं० ३६८)

३७० (प्रश्न) प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एतद्वदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता॥
(सायण भाष्य भूमिका)

भाषार्थ—जो उपाय प्रत्यक्ष में नहीं आता और जो अनुमति अक़लिया दलील में नहीं बैठता। वह वेद के अनुष्ठान से मिल जाता है। यही वेद की वेदता है। पृ० ३२२ पं० ६।

उत्तर—आपका तथा आपके सायण का यह ख्याल कि "वेद उन्हीं बातों का प्रतिपादन करता है जो प्रत्यक्ष तथा अनुमान से न जानी जावें" क़तई निर्मूल है। अपितु वेद सब सत्य विद्याओं के भंडार हैं। जिन में मनुष्योपयोगी

संपूर्ण विषयोंका वर्णन है। जैसे मनुने कहा है कि—

चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकाश्चत्वारश्चाश्रमाःपृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यंच सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥ ६७॥

भावार्थ—चारों वर्ण तीनों लोक चारों आश्रमों के उपयोगी जो विद्या होचुकी हैं और होगी वे सब वेदसेही प्रसिद्ध होती हैं। चूंकि वेद "रेतो मूत्रमित्यादि यजु० १६।७६" में कहता है कि रजवीर्य के संयोगसे गर्भ होता है अतः केवल चरुसे गर्भस्थिति वेद विरुद्ध होने से मिथ्या ही है।

३७१ (प्रश्न)—वेदोक्त पुत्रेष्टि यज्ञ होने पर केवल चरुमात्र से पुत्र उत्पन्न होता है इस को न्याय दर्शन ने माना है कि त्रिपिंडी श्राद्ध के मध्यमपिंड के भक्षण से स्त्री को गर्भ रहता है यह भी एक वेद का महत्त्व है। इस को मनु ने भी लिखा है। कात्यायण श्रौत सूत्रमें इस की विधि है। पृ० ३२२ पं० १०।

उत्तर—आप ने न्याय दर्शन का कोई प्रमाण नहीं दिया कि पुत्रेष्टि यज्ञ होने पर केवल चरु से ही गर्भ हो जाता है। पुत्रेष्टि यज्ञ के शेष भोजन से प्रसव विरोधी रोगों का ही दूर होना संभव है। केवल चरु भक्षण से गर्भ असम्भव तथा वेद के ही विरुद्ध होने से मिथ्या है। मध्यम पिण्ड के भोजन से गर्भ स्थिति पौराणिक गप्प ही है। चाहे वह मनु में लिखा हो चाहे किसी श्रौत सूत्र में उस की विधि हो। चूंकि वेद रज और वीर्य के योग से गर्भ स्थिति मानता अतः रज, वीर्य के योग के बिना गर्भ स्थिति बतलाने वाले सम्पूर्ण लेख वेद के विरुद्ध होने से मिथ्या हैं।

२७२ (प्रश्न) आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् ।
(यजु० २। ३३)

हे पितरो ! तुम गर्भ स्थापन करो और कमल की माला पहिनने वाला इस स्त्री के पुत्र पैदा हो। यह स्वतः वेद कहता है फिर हम कैसे मान लें कि चरु से गर्भ नहीं रहता।
(पृ० ३२२ पं० १४)

उत्तर—यहां वेद में गर्भाधान का प्रकरण ही नहीं है। यहां पर तो वेदारम्भ का वर्णन है। यजमान अपने पुत्र को आचार्य के हवाले करता हुआ कहता है कि हे ज्ञान से रक्षा करने वाले आचार्य तथा अध्यापको ! आप इस बालक को गर्भ वत् धारण करें। जैसा महाभारत में भी आता है कि—

आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य,
भूत्वा गर्भं ब्रह्मचर्यं चरन्ति।
इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति
प्रहाय देहं परमं यान्ति योगम् ॥६॥
(महा० उद्योग० अ० ४३)

भाषार्थ—जो इस संसार में आचार्य रूप योनि में प्रवेश करके गर्भ रूप हो कर ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं। वे इसी संसार में शास्त्रों के कर्ता बनते हैं और देह को त्याग कर परम धाम को प्राप्त होते हैं ॥६॥

कहिये श्रीमान् जी। यहां वेद मन्त्र में यह कौनसे शब्दों का अर्थ है कि रज वीर्य के योग के बिना केवल चरु से ही गर्भ स्थिति हो जाती है। इस वेद मन्त्र में तो इस बात का गन्ध मात्र भी नहीं है। अतः विश्वामित्र, गाधि तथा उस

की धर्मपत्नी के रज वीर्य के योग से ही पैदा हुआ था। और जन्म से क्षत्रिय होता हुआ तप करके गुण, कर्म, स्वभावानुसार ब्राह्मण बन गया।

३७३ (प्रश्न) किसी ब्राह्मण का पुत्र मतङ्ग नामक था। वह रथ पर सवार हो कर यज्ञ कराने को जा रहा था कि उस को गधी के साथ बातचीत से पता लगा कि मैं ब्राह्मणी में नाई से पैदा हुआ चाण्डाल हूं। उस ने वापस आ कर पिता को सब वृत्तान्त कह सुनाया और स्वयं मातङ्ग ने ब्राह्मण बनने के लिये घोर तप किया। किन्तु इन्द्र ने कहा कि ब्राह्मण जाति तप से प्राप्त नहीं हो सकती। अतः मतंग पूर्ववत् चांडाल बना रहा। यह मतंग का इतिहास है (महा० अनु० अ० २७—२९) इस कथा से मतंग का ब्राह्मण होना लिखना सर्वथा अन्याय है। पृ० ३२२ से ३२४ तक

उत्तर—श्रीमान् जी! स्वामी जीका लेख बिलकुल सत्य है कि मातंग ऋषि चाण्डाल से ब्राह्मण बन गये थे। और यह वही मातंग थे कि जिन के घर से विश्वामित्र ने कुत्ते का मांस चुराकर खाया था। जिस का संवाद कि महाभारत शांतिपर्व अ० १४१ में दर्ज है। जिस में यह श्लोक मौजूद है कि—

विश्वामित्रस्तु मातंगमुवाच परिसन्त्वयम्।
क्षुधितोऽहंगतप्राणो हरिष्यामिश्वजाघनीम्॥ ४९॥

(महा० शान्ति० अ० १४१)

भाषार्थ—विश्वामित्र ने मातंग को शान्त करते हुए कहा कि मैं भूख से मरा जाता हूं। मैं कुत्ते की जांघ ज़रूर चुराऊंगा॥ ४९॥ और महाभारत के पढ़ने से यह भी पता लगता है कि

वह वेद शास्त्र का ज्ञाता था तभी तो उसने वेद तथा धर्म शास्त्र का प्रमाण देकर विश्वामित्र को उपदेश किया है । जैसा कि—

नेदं सम्यक् व्यवसितं महर्षे धर्मगर्हितम् ।
चांडाल स्वस्य हरणमभक्ष्यस्य विशेषतः ॥ ८६ ॥
यद्येष हेतुस्तव खादनेऽस्य न ते वेदः कारणं नार्य्यधर्म्मः ।
तस्माद्भक्षेऽभक्षणेवा द्विजेन्द्र दोषं न पश्यामि यथेदमत्र ॥ ८७ ॥
(महा० शान्ति० अ० १४१)

भाषार्थ—हे महर्षे ! आपने यह धर्म से निन्दित सम्यक् यत्न नहीं किया कि चाण्डाल के धन का चुराना और विशेष करके अभक्ष्य वस्तु का ॥ ८६ ॥ यदि इस कुत्ते के मांस खाने में आपका यह हेतु है । तो पता लगा कि आपके लिये वेद तथा आर्य धर्म प्रमाण नहीं हैं । इस लिये भक्ष अभक्ष में आप दोष नहीं समझते मैं यहां जैसा कि देख रहा हूं ॥ ८७ ॥

अब वह उन्नति करके ब्राह्मण बना । यह हम महाभारत से दिखाते हैं—

जैसा कि—

उत्पाद्य पुत्रान्मुनयो नृपते यत्र तत्र ह ।
स्वेनैव तपसा तेषामृषित्वं विदधुः पुनः ॥१३॥
यवक्रीतश्च नृपते द्रोणश्च वदतां वरः ।
आयुर्मतङ्गो दत्तश्च द्रुपदो मात्स्य एव च ॥१५॥
एते स्वां प्रकृतिं प्राप्ता वैदेह तपसोऽश्रयात् ॥१६॥
(महा० शान्ति० अ० २९६)

भाषार्थ—हे राजन् ! मुनि लोगों ने जहां तहां से पुत्रों को पैदा करके उन को अपने तप से ही उन को ऋषि बना दिया ॥१३॥

हे राजन् ! यवक्रीत, द्रोणाचार्य, द्रुपद, आयु, दत्त और मात्स्य तथा 'मतङ्ग', हे जनक ! ये सब तप के आश्रय से ही अपनी अवस्था को प्राप्त हुए हैं ॥१५-१६॥ विशेष देखो (नं० ३५२)

इस से साबित है कि मतङ्ग ऋषि भी चाण्डाल से द्रोणाचार्य जैसा ब्राह्मण बन गया। जन्माभिमानी लोगों ने इस सचाई को छिपाने के लिये उपरोक्त कथा घड़ी, जो कि सर्वथा असम्भव, मिथ्या, वेदशास्त्र तथा इतिहास के विरुद्ध है। इस कथा के मिथ्यात्व में निम्न हेतु हैं—

(१) मतङ्ग के पिता का नाम नहीं लिखा कि वह किस ब्राह्मण का पुत्र था और उस की माता तथा नाई का क्या नाम था।

(२) एक स्थान में ब्राह्मण का पुत्र तथा दूसरे स्थान में नाई का पुत्र लिखना परस्पर विरोध होने से दोनों मिथ्या हैं।

(३) गधी का बोलना तथा उस से मतङ्ग को ज्ञान होना अत्यन्त असम्भव बात है। क्या गधी, नाई तथा मतङ्ग की माता के व्यभिचार के समय मौजूद थी और क्या गधी और मतङ्ग परस्पर एक दूसरे की भाषा को समझते थे। जिस बात को गधी ने जान लिया तथा उस समय के ब्राह्मणों ने न जान पाया, क्या वे ब्राह्मण उस गधी से भी बुद्धि हीन थे। ऐसा नहीं माना जा सकता अतः यह कथा सर्वथा मिथ्या ही है।

(४) क्या मतङ्ग पहले यज्ञ कराता रहा था वा नहीं। यदि कराता रहा था तो आप के लेखानुसार ही चाण्डाल होते हुए ब्राह्मण का काम करता रहा, किंतु कोई उसे न पहिचान सका।

अतः पता लगा कि ब्राह्मणों में सिवाय कर्म करने के और कोई क्षत्रिय चाण्डाल आदि से विशेषता नहीं है।

(५) गधी ने भी उस के क्रूर कर्म से ही चाण्डाल होने का अन्दाज़ा लगाया शकल से नहीं! अतः पता लगा कि मनुष्यों में कर्मानुसार ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चाण्डालादि का पता लग सकता है, अन्यथा नहीं।

(६) मतङ्ग ने जो ब्राह्मण बनने के लिये तप किया तो उस समय तप करने से ब्राह्मण बन जाते होंगे तभी तप किया। यदि तप से ब्राह्मण बनने का रिवाज ही न होता तो ब्राह्मणार्थ तप का साहस कैसे होता।

(७) इन्द्र का कहना कि तप से कोई ब्राह्मण नहीं बन सकता स्वयं महाभारत के ही विरुद्ध है। क्यों कि इससे अगले ही अध्याय में वीत हव्य के ब्राह्मण बनने का ज़िकर है।

श्रृणु राजन् यथा राजा वीत हव्यो महायशः।
राजर्षि दुर्लभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोक सत्कृतम् ॥५॥
(महा० अनु० अ० ३०)

भाषार्थ—हे राजन्! सुनो जैसे महायश राजर्षि राजा वीतहव्य दुर्लभ पूज्य ब्राह्मण पद को प्राप्त हुआ ॥५॥

(८) विश्वामित्र तथा अनेकों ने यत्र तत्र जन्म लेकर तप से ब्राह्मण पद को प्राप्त किया, जिन का इस वर्ण व्यवस्था प्रकरण में विस्तार पूर्वक वर्णन है।

(९) भविष्य पुराण प्रति सर्ग पर्व खंड १ अध्याय ३३ श्लोक ३ से २४ तक में लिखा है "त्रिपाठी नाम का एक ब्राह्मण था, उसकी स्त्री का नाम कामिनी था। एक वार वह

ब्राह्मण किसी दूसरे ग्राम में कथा करने गया और वह एक मास तक घर न आया, तो कामिनी ने कामातुर होकर एक लकड़ियां बेचने वाले निषाद को पांच रुपये देकर उससे भोग किया। उस के गर्भ हो गया। दश मास पश्चात् पुत्र पैदा हुआ। त्रिपाठी ने उस का जात कर्म संस्कार किया और वही व्याध कर्मा अन्त में राजा विक्रमादित्य के यज्ञ का आचार्य्य बना। जैसा कि—

विक्रमादित्य राज्ये तु द्विजाः कश्चिदभूद्भुवि।
व्याधकर्मेति विख्यातो ब्राह्मण्यां शूद्रतोऽभवत् ॥३॥
विक्रमादित्य भूपस्य यज्ञाचार्यो बभूव ह ॥२४॥

(भविष्य० प्रति स० ख० १ अ० ३३)

भावार्थ—विक्रमादित्य के राज्य में कोई ब्राह्मण हुआ है। उस का नाम व्याधकर्मा प्रसिद्ध है तथा जो कि ब्राह्मणी में शूद्र से पैदा हुआ था ॥३॥ वह विक्रमादित्य के यज्ञ में आचार्य बना।

जब व्याधकर्मा चाण्डाल से ब्राह्मण बन गया तो मतङ्ग के ब्राह्मण बनने में रुकावट क्यों?

(१० इस कथा के अन्त में लिखा है कि—

छन्दो देव इति ख्यातः स्त्रीणां पूज्यो भविष्यसि।
कीर्तिश्च ते अतुला वत्स त्रिषु लोकेषु यास्यति ॥२४॥

(महा० अनु० अ० २९)

भावार्थ—इन्द्र ने वर दिया कि हे वत्स! तू वेदों का विद्वान् प्रसिद्ध होगा तथा स्त्रियों से पूज्य होगा और तेरी तीनों लोकों में अत्यन्त कीर्ति होगी ॥२४॥ इस मिथ्या कथा में भी यहां वेदों का विद्वान् होना तथा ब्राह्मणी आदि समस्त

स्त्रियों का पूज्य तथा तीनों लोकों में कीर्ति वाला होना भी ब्राह्मण पद की प्राप्ति को साबित करता है।

अतः प्रत्येक अवस्था से सिद्ध है कि मतङ्ग अब्राह्मण से ब्राह्मण बन गया।

३७४ (प्रश्न) फिर स्वामीजी ने जो "स्वाध्यायेनेत्यादि मनु० २। २८" यह श्लोक देकर सिद्ध किया है कि स्वाध्याय आदि से यह शरीर ब्राह्मण का हो जाता है, यह लेख ग़लत है। पृ० ३२४ पं० १५।

उत्तर—स्वामी जी ने जो लिखा है वह बिल्कुल ठीक है। वह श्लोक तथा अर्थ इस प्रकार से है कि—

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ २८॥ (मनु० २)

इस का अर्थ पूर्व कर आये हैं। यहां भी संक्षेप से कहते हैं। (स्वाध्यायेन) पढ़ने पढ़ाने (जपैः) विचार करने कराने (होमैः) नाना विध होम के अनुष्ठान, (त्रैविद्येन) संपूर्ण वेदों को शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारण सहित पढ़ने पढ़ाने (इज्यया) पूर्णमासी, इष्टि आदि के करने (सुतैः) पूर्वोक्त विधिपूर्वक धर्म्म से सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैश्च) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ, और अतिथियज्ञ (यज्ञैश्च) अग्निष्टोमादि यज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार सत्यभाषण परोपकारादि सत्यकर्म और संपूर्ण शिल्प विद्यादि पढ़ के दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठाचार में वर्तने से (इयम्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का (क्रियते) किया जाता है॥ २८॥

३७५ (प्रश्न) प्रथम तो यह श्लोक मनु का है। किसी भी

वेद मन्त्र के अनुकूल नहीं। फिर यह आर्य्य समाज को कैसे प्रमाण होगा। पृ० ३२४ पं० १८।

उत्तर—मनु का यह श्लोक "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् यजु० ३१। ११" के अनुकूल होने से आर्य्यसमाज को प्रमाण है। आप कोई वेद मन्त्र पेश करके इस श्लोक को वेद के विरुद्ध साबित करें।

३७६ (प्रश्न)—यज्ञ स्वामी जी ने वेदों से उड़ादी। जब वेद में यज्ञ रहे ही नहीं, तो आर्य्य समाजी करेंगे कहां से। पृ० ३२४ पं० २०।

उत्तर—स्वामी जी वेदों में यज्ञ के विधान को तसलीम करते हैं। और उपरोक्त श्लोक के अर्थ में स्वामी जी ने अपने मन्तव्य के अनुकूल ही (इज्यया, यज्ञ, महायज्ञ) शब्दों का अर्थ करते हुए यज्ञ शब्द की तशरीह भी कर दी है। हां, स्वामी जी आपके मन्तव्यानुसार अश्वमेध, गौ मेध, अजामेध, नर मेध आदि यज्ञों में घोड़े, गौ, बकरे तथा मनुष्य आदि को मार कर उन के मांस से हवन करने को वैदिक नहीं मानते।

३७७ (प्रश्न) स्वामी जी ने पाठ बदल कर श्लोक में 'व्रतैर्होमैः' के स्थान में 'जपैर्होमैः' बना लिया। जप बार २ उच्चारण का नाम है। उस का स्वामी जी मूर्ति पूजा में खण्डन कर चुके। यहां पर उस को ही शुभ कर्म बतला दिया।

पृ० ३२४ पं० २७

३७७ (उत्तर) स्वामी जी ने यहां चौथे समुल्लास में वर्ण व्यवस्था प्रकरण में इस श्लोक को दर्ज करते हुए लिखा है कि 'इस का अर्थ पूर्व कर आये हैं'। सो यही श्लोक स्वामी

जी ने तीसरे समुल्लास में ब्रह्मचारियों को उपदेश प्रकरण में दिया है। वहां पर पाठ 'व्रतैर्होमैः' ही है और उस का अर्थ इस प्रकार से किया है कि '(व्रतैः) ब्रह्मचर्य सत्य भाषणादि नियम पालने' और यहां पर इस प्रकार से अर्थ किया है कि '(जपैः) विचार करने कराने' ये दोनों ही अर्थ स्वामी जी के मन्तव्य के अनुकूल हैं। और दोनों ही शुभ कर्म भी हैं। इस पाठ को बदलने में स्वामी जी को कोई स्वार्थ प्रतीत नहीं होता। और न ही इस पाठ भेद से वास्तव श्लोक के अर्थों में कोई भेद पड़ता है। और जैसे सनातन धर्म व्रत तथा जप को शुभ कर्म मानता है वैसे ही आर्यसमाज भी मानता है। केवल अर्थों का फर्क है। स्वामी जी व्रत का अर्थ ब्रह्मचर्य सत्य भाषणादि नियम तथा जप का अर्थ विचार करना कराना मानते हैं। अतः यह पाठ भेद हमारे सिद्धान्त का बाधक तथा स्वार्थ साधक नहीं है।

३७८ (प्रश्न) "ब्राह्मीयं" का अर्थ "ब्राह्मण का" नहीं हो सकता। इस का अर्थ है कि "इन अनुष्ठानों से ब्रह्म प्राप्ति के योग्य शरीर बनता है" पृ० ३२५ पं० २२

उत्तर—श्रीमान् जी यह "ब्राह्मीयं" एक शब्द नहीं है। अपितु "ब्राह्मी इयं" इन दो शब्दों का मजमूआ है। स्वामी जी ने यहां चौथे समुल्लास में संक्षेप से ब्राह्मी" का अर्थ किया है "ब्राह्मण का" किंतु तीसरे समुल्लास में विस्तार पूर्वक "ब्राह्मी" का अर्थ किया है "वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधार रूप ब्राह्मण का शरीर" स्वामी जी वेद तथा परमेश्वर की प्राप्ति को ही ब्राह्मणपन में हेतु मानते हैं। ब्रह्म नाम वेद तथा

परमेश्वर दोनों का है। इस लिये "शरीर का ब्रह्म प्राप्ति के योग्य" बनना तथा "ब्राह्मण का शरीर" बनना एक ही बात है। इस में ज़रा भी फर्क नहीं है। क्योंकि ब्राह्मण का लक्षण भी यही है, जो ब्रह्म को जानता है वह ब्राह्मण है। जैसा कि—

जन्मना जायते शूद्रो व्रत बन्धाद्द्विजो भवेत्।
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रो ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणो भवेत्॥
["वज्र सूची" सटीक लघुटंक नाम टीका पृ० २४]
सं० १८३६ ई

प्रकाशक ऐल विलकिंसन पोलीटिकल एजंट भूपाल। वर्तमान पुस्तक स्वतंत्रानन्द पुस्तकालय हीरा मारकीट बाज़ार कसेरियां अमृतसर में प्राप्य है।

भावार्थ—जन्मसे प्रत्येक मनुष्य शूद्र पैदा होता है। यज्ञोपवीत धारण करने से द्विज हो जाता है। वेद का अभ्यास करने वाला विप्र हो जाता है। ब्रह्म का जानने वाला ब्राह्मण होता है। यद्यपि वर्तमान वज्र सूची उपनिषद् जोकि उपनिषदों के गुटके में ३७ नंबर पर पाई जाती है। उस में यह श्लोक मौजूद नहीं है। जन्माभिमानी लोगों ने उसे निकाल दिया है। तो भी बर्तमान वज्र सूची उपनिषद् वर्ण व्यवस्था को कर्मानुसार ही प्रतिपादन करती है। जैसे कि—

वज्र सूचिकोपनिषत्

यज्ज्ञानाद्यान्ति मुनयो ब्राह्मण्यं परमाद्भुतम्।
तत् त्रैपदं ब्रह्म तत्त्वमहमस्मीति चिन्तये ॥१॥

ओ३म्। आप्यायन्त्विति शान्तिः॥ चित्सदानन्दरूपाय सर्वधीवृत्ति साक्षिणे। नमो वेदान्त वेद्याय ब्रह्मणेऽनन्त रूपिणे।

ओं वज्रसूचिं प्रवक्ष्यामि शास्त्रमज्ञानभेदनम् । दूषणं ज्ञान हीनानां भूषणं ज्ञानचक्षुषाम् ॥१॥ ब्रह्म क्षत्रिय वैश्य शूद्रा इति चत्वारो वर्णा स्तेषां वर्णानां ब्राह्मणा एव प्रधाना इति वेद वचनानुरूपं स्मृतिभिरप्युक्तम् ॥ तत्र चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम, किं जीवः, किं देहः, किं जातिः, किं ज्ञानम् , किं कर्म, किं धार्मिक इति ॥ तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत्तन्न अतीतानागतानेक देहानां जीवस्यैक रूपत्वात् एकस्यापि कर्मवशादनेक देह संभवात् सर्व शरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च । तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति ॥ तर्हि देहो ब्राह्मण इति चेत्तन्न आचांडालादिपर्यन्तानां मनुष्याणां पांच भौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वाज्जरामरण धर्माधर्मादिसाम्य दर्शनाद् ब्राह्मणः श्वेतवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णो वैश्यः पीतवर्णः शूद्रः कृष्णवर्ण इति नियमाभावात्। पित्रादि शरीर दहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादि दोष संभवाच्च । तस्मान्न देहो ब्राह्मण इति ॥ तर्हि जाति ब्राह्मण इति चेत्तन्न तत्र जात्यन्तर जन्तुष्वनेकजाति संभवा महर्षयो बहवः सन्ति । ऋष्यशृङ्गो मृग्यः । कौशिकः कुशात् । जाम्बूको जम्बूकात् । वाल्मीको वल्मीकात् । व्यासः कैवर्तकन्यायाम् । शशपृष्ठात् गौतमः । वसिष्ठउर्वश्याम् । अगस्त्य कलशे जात इति श्रुतत्वात् । एतेषां जात्या विनाप्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयो बहवः सन्ति तस्मान्न जाति ब्राह्मण इति ॥ नहि ज्ञानं ब्राह्मण इतिचेत्तन्न क्षत्रियादयोऽपि परमार्थ दर्शिनोऽभिज्ञा बहवः सन्ति । तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति ॥ तर्हि कर्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्ध संचितागामि कर्म साधर्म्य दर्शनात्कर्मभिः प्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तीति तस्मान्न कर्म ब्राह्मण इति ॥ तर्हि धार्मिको ब्राह्मण इति चेत्तन्न । क्षत्रियादयो हिरण्यदातारो बहवः सन्ति ।

तस्मान्न धार्मिको ब्राह्मण इति ॥ तर्हि को वा ब्राह्मणो नाम ॥ यः कश्चिदात्मानमद्वितीयं जाति गुण क्रियाहीनं षडूर्मिषड् भावे त्यादि सर्व दोषरहितं सत्यज्ञानानन्दानन्तस्वरूपं स्वयं निर्विकल्पमशेषकल्पाधारमशेषभूतान्तर्यामित्वेनवर्तमानमन्तर्बहिश्चाकाशवदनुस्यूतमखण्डानन्दस्वभावमप्रमेयमनुभवैकवेद्यमपरोक्ष तया भासमानं करतलामलकवत् साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादि दोष रहितः, शमदमादि संपन्नो भाव मात्सर्य तृष्णाशामोहादि रहितो दम्भाहंकारादिभिरसंस्पृष्टचेतावर्तते ॥ एवमुक्त लक्षणो यः स एव ब्राह्मण इति श्रुति स्मृति पुराणेतिहासानामभिप्रायः ॥ अन्यथाहि ब्राह्मणत्व सिद्धिर्नास्त्येव ॥ सच्चिदानन्दमात्मानमद्वितीयं ब्रह्मभावयेदात्मानं सच्चिदानन्दं ब्रह्मभावयेदित्युपनिषत् । ओं आप्यायन्त्विति शान्तिः ॥

इतिवज्रसूच्युपनिषत्समाप्ता ॥

यह उपनिषद् ३८ उपनिषदों के गुटके में ३७ नम्बर पर मौजूद है।

३७९ (प्रश्न)—इस श्लोक में कई बातें ऐसी हैं। जिन को आर्य्य समाज वैदिक ही नहीं मानता। पृ० ३२५ पं० ७

उत्तर—आपका यह लिखना क़तई ग़लत है। यदि आर्य्य समाज इस श्लोक को वेदानुकूल न मानता तो इस का प्रमाण ही न देता। अतः आर्य्य समाज इस श्लोक में प्रतिपादित सब सत्कर्मों को वैदिक मानता है जैसा कि—

(१) स्वाध्याय–"अधीयीरंस्त्रयो वर्णाः मनु० १०।१" इस श्लोक में व्यवस्थित तीनों वर्णों को प्रतिदिन स्वाध्याय

करने की आज्ञा है, ताकि वह अपना ब्रह्मचर्य्य अवस्था का पढ़ा हुआ भूल न जावें, और पढ़ाने की आज्ञा केवल ब्राह्मण को ही है। और व्यवस्थित शूद्र को स्वाध्याय की आज्ञा नहीं, क्यूंकि शूद्र कहते ही उस को हैं जो बावजूद कोशिश के न पढ़ सका हो। हां संभावित चारों वर्णों को पढ़ने का हक़ है। अर्थात् चारों वर्णों की सन्तान को वेदादि पढ़ने का अधिकार है।

(२) व्रत—ब्रह्मचर्य्य सत्य भाषणादि नियम का पालन तथा मधु मांस वर्जनादि नियमों का पालन आर्य्य समाज वेदानुकूल मानता है। जिसका पूरा वर्णन सत्यार्थ प्रकाश के तीसरे समुल्लास में मौजूद है।

(३) होम—नानाविध होम के अनुष्ठान को आर्य्य समाज वैदिक मानता है। तीसरे समुल्लास में सावित्री अर्थात् गायत्री मंत्र से भी होम की आज्ञा दोनों समय करने की है। और चरु नाम सामग्री का है जो हवन में एक आवश्यक वस्तु है।

(४) त्रैविद्य—संपूर्ण वेदों को शब्द अर्थ संबंध स्वरोच्चारण सहित पढ़ने पढ़ाने का व्रत आर्य्य समाज के गुरुकुलों में ब्रह्मचारी गण हमेशा ही पालन करते हैं।

(५) इज्या—पौर्णमासी आदि पार्वणिक यज्ञ तथा ब्रह्मचर्य्य अवस्था में देव अर्थात् विद्वानों ऋषि अर्थात् वेद के ज्ञाताओं पितृ अर्थात् अन्न बल तथा ज्ञान से रक्षा करने वाले आचार्य्य आदि पितरों की सेवा करके उनको तृप्ति करना आर्य्यसमाज को इष्ट है।

(६) सुत—धर्म से सन्तानोत्पत्ति आर्य समाज वेदानुकूल मानता है।

(७) महायज्ञ--पांच महायज्ञों को आर्य्य समाज वेदानुकूल धर्म मानता ही है।

(८) यज्ञ---अग्निष्टोम अर्थात् ज्योतिष्टोमादि यज्ञों को भी आर्य्य समाज वेदानुकूल तसलीम करता है।

अब बतलाइये इस श्लोक में वह कौनसी बात है जिस को आर्यसमाज अवैदिक कहता है। यदि नहीं तो आप का झूठ बोलना आत्म हत्या है या नहीं। इस से साबित है कि आप झूठ बोलकर आत्म हत्या करके सनातन धर्मियों को गुमराही के समुद्र में गिरा रहे हैं।

३८० (प्रश्न) "येनास्येत्यादि पर" स्वामी जी! पिता पितामहादिक इस आपके नकली ईसाई मार्ग से नहीं चले। वर्णव्यवस्था का न बदलना यही वेद का सिद्धान्त है। पृ० ३२५ पं० २६।

उत्तर—आपने वेद का कोई प्रमाण नहीं दिया, जिससे यह साबित हो कि वर्ण व्यवस्था तबदील नहीं होती। और हमने वेद स्मृति इतिहास के अनेक प्रमाण दिये हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि वर्ण कर्मानुसार है जन्म से नहीं है। क्योंकि यदि वर्ण जन्म से हो तो उसकी व्यवस्था करने की क्या ज़रूरत रही, जब वह जन्म से व्यवस्थित ही है। अतः वर्ण के साथ व्यवस्था शब्द की मौजूदगी ही वर्णों को गुण कर्म स्वभावानुसार व्यवस्था का मोहताज साबित कर रही है। गुणकर्म स्वभावानुसार वर्णों का बदलना ही वेद का सिद्धान्त है। स्वामी जी ने यह सिद्धान्त ईसाइयों से नहीं लिया। अपितु ईसाइयों ने यह सिद्धान्त हमारे वेद शास्त्रों से लिया है। और हमारे पिता

पितामहादि परम्परा से इस सिद्धान्त को मानते आये हैं। जैसा कि हमने वेद, स्मृति, रामायण, महाभारत तथा पुराणों के प्रमाणों से इस को साबित किया है। हम गुण कर्म स्वभाव अनुसार वर्णव्यवस्था की पुष्टि में एक महाभारत का और प्रमाण पेश करते हैं। न्याय प्रिय सज्जन न्यायानुसार इस पर विचार करके सत्यसिद्धान्त को स्वीकार करें—

युधिष्ठिर उवाच—कीदृशः कृतकः पुत्रः संग्रहादेव लक्ष्यते।
शुक्रं क्षेत्रं प्रमाणं वा यत्र लक्ष्यं न भारत ॥ १९ ॥
भीष्म उवाच—मातापितृभ्यांयस्त्यक्तः पथियस्तं प्रकल्पयेत्।
न चास्य मातापितरौ ज्ञायेतां स हि कृत्रिमः ॥ २० ॥
अस्वामिकस्य स्वामित्वं यस्मिन् संप्रतिलक्षयेत्।
योवर्णः पोषयेत्तं च तद्वर्णस्तस्य जायते ॥ २१ ॥
युधिष्ठिर उवाच—कथमस्य प्रयोक्तव्यः संस्कारः कस्यवा कथम्।
देया कन्या कथंचेतितन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २२ ॥
भीष्म उवाच— आत्मवत्तस्य कुर्वीत संस्कारं स्वामिवत्तथा।
त्यक्तो मातापितृभ्यांयः सवर्णं प्रतिपद्यते ॥ २३ ॥
तद्गोत्रबंधुजंतस्य कुर्यात् संस्कारमच्युत।
अथदेयातु कन्या स्यात्तद्वर्णस्य युधिष्ठिर ॥ २४ ॥
(महा० अनुशा० अ० ४९)

भाषार्थ—युधिष्ठिर ने पूछा कि किया हुआ पुत्र कैसे संग्रह से जाना जाता है। जहां पर बीज तथा क्षेत्र प्रमाण नहीं माना जाता ॥ १९ ॥ भीष्म ने उत्तर दिया कि माता और पिता ने जिस को त्याग दिया हो और जो उस को रास्ते में प्राप्त कर ले। और उस के माता पिता को हम जानते नहीं

वही कृत्रिम पुत्र है ॥ २० ॥ लावारिस का वारिसपना जिस में जाना जावे उस का जो वर्ण भी पालन पोषण करे वही वर्ण उस का हो जाता है ॥ २१ ॥ युधिष्ठिर ने फिर पूछा कि उस का संस्कार कैसे करना चाहिए और वह किस का कैसे है, और उस को कन्या कौन दे, यह मेरे से कहिये ॥ २२ ॥ भीष्म ने उत्तर दिया कि जो वर्ण उस का पालन पोषण करता है वह अपने समान ही स्वामी बन कर उस का संस्कार करे। जो माता पिता ने त्याग दिया वह पालने वाले का सवर्ण ही होता है ॥ २३ ॥ अपने गोत्र तथा बंधु के समान उस का संस्कार करे। और उसी वर्ण का पुरुष उसे कन्या भी दे ॥ २४ ॥ यह सब वृत्त कर्ण के साथ हुआ। (महाभारत)

कहिये महाराज़ ! यदि शूद्र का पुत्र ब्राह्मण को तथा ब्राह्मण का पुत्र शूद्र को पड़ा हुआ मिल जावे। और वह उस का पालन पोषण करके अपने ही वर्ण में उस की शादी कर दे तो बालकों का वर्ण पालन करने वाले के अनुकूल होने से वर्ण में परिवर्तन हो गया, याकि नहीं। अब आप किस मुख से कह सकते हैं कि वेदों तथा धर्म्म शास्त्र में वर्ण परिवर्तन का विधान नहीं है।

३८१ (प्रश्न)—जो ब्राह्मण या क्षत्रिय ईसाई मुसलमान हो गया वह अब भी जाति का ब्राह्मण क्षत्रिय ही है। जाति तो शरीर के पतन पर बदलेगी। यदि कहो उससे खान पान और विवाहादि संबंध क्यों नहीं करते। वह भ्रष्ट हो गया है इस कारण उस का जाति में ग्रहण नहीं होता। पृ० ३२६ पं० ३

उत्तर—यदि कोई ब्राह्मण वा क्षत्रिय ईसाई वा मुसल-

मान होजाये तो आप उस से रोटी बेटी का व्यवहार क्यूं नहीं करते। जब आप वर्ण व्यवस्था जन्म से मानते हैं कर्म से नहीं। तो ईसाई मुसलमान होने से उन का जन्म तो तबदील होता नहीं और कर्मों की आपकी दृष्टि में कोई वुक़अत ही नहीं है। और जाति की तबदीली शरीर की तबदीली से होती है। और शरीर उन का तबदील होता नहीं अतः आप के ख्याल में वे दोनों जाति से भी ब्राह्मण क्षत्रिय ही हैं। फिर यह बतलावें कि वे भ्रष्ट किस पद्वी से होगये जो आप उन के साथ रोटी बेटी का व्यवहार करने को तय्यार नहीं हैं। और उन को जाति में भी ग्रहण करने को तय्यार नहीं हैं। बस जिस तबदीली के कारण उन को भ्रष्ट माना जाता है। और जिस तबदीली के कारण आप उस से रोटी बेटी व्यवहार करने को तय्यार नहीं हैं। और प्रायश्चित करने के पीछे जिस की तबदीली के कारण आप फिर से उसे उत्कृष्ट मानने तथा रोटी बेटी का व्यवहार भो करने को तय्यार हो जाते हैं। उसी का नाम ब्राह्मणत्व वा क्षत्रियत्व है जो कर्मों के तबदील होने से तबदील होते रहते हैं। शरीर या जन्म का नाम ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं है। अपितु शरीर का नाम मनुष्यत्व है जोकि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ईसाई मुसलमान ही है। इन सब में शरीर जन्म मरण आदि समान होते हुए भी कर्म ही एक ऐसी वस्तु है जो एक दूसरे में ब्राह्मणत्वादि भेद का कारण है। इससे साबित है कि ब्राह्मण आदि वर्ण कर्मानुसार ही हैं, जन्म से नहीं हैं।

३८२ (प्रश्न)—सभी मनुष्य लड्डू खाते हैं किंतु जो लड्डू

मैले से बिड़ गया, उस को कोई नहीं खायेगा। क्यूंकि वह भ्रष्ट हो गया। इसी प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय ईसाई मुसलमान हो जाने से जाति के ब्राह्मण क्षत्रिय रहने पर भी भ्रष्ट हो जाते हैं। अतएव उन का व्यवहार छोड़ दिया जाता है। पृ० ३२६, पं० ६

उत्तर—यद्यपि ये नियम कि गंदी नाली में गिरने से व्यवहार के योग्य नहीं रहता, महज़ मनुष्यों से बनाई हुई खाने की चीज़ों पर ही लागू होता है। वरना लड़का, लड़की, स्त्री, पुरुष, गाय, भैंस, कपड़ा, रुपया, चांदी, सोना, सब्ज़ी, फल, अन्न सब गन्दी नाली मे निकाल कर शुद्ध करके बरते जाते हैं। इनसान के खाने की चीज़ नहीं। इस की शुद्धि भी लिखी है। 'अद्भि गात्राणि' इति मनु० ५। ब्राह्मण के लिये लड्डू की मिसाल मौजूं नहीं है। क्योंकि जैसे लड्डू अपनी विशेष गोल आकृति के कारण जलेबी, बालुशाही, शक्करपारा, बरफी आदि मिठाइयों में से स्पष्ट पहिचाना जाता है। वैसे ब्राह्मण को कोई विशेष आकृति नहीं है जिस से वह क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, राक्षस, चाण्डाल, ईसाई, मुसलमानों में स्पष्ट रूप से पहिचाना जावे। हां मनुष्य के लिये लड्डू की मिसाल मौजूं है, क्योंकि मनुष्य भी लड्डू की भांति गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि में से अपनी विशेषाकृति के कारण स्पष्ट पहिचाना जाता है। जैसे लड्डू नाली में गिरने के पश्चात् रहता तो लड्डू ही है परन्तु अपनी पवित्रता नष्ट हो जाने के कारण काबिल खुराक नहीं रहता। वैसे ही मनुष्य भी ब्राह्मण वर्ण से गिर कर ईसाई, मुसलमान हो जाने से रहता मनुष्य ही है। किंतु ब्राह्मण वर्ण नष्ट हो जाने

के कारण वह व्यवहार के योग्य नहीं रहता। अतः ब्राह्मण वर्ण लड्डू की भान्ति नहीं, अपितु मनुष्य लड्डू की भान्ति तथा ब्राह्मण वर्ण लड्डू की पवित्रता की भांति है जो कि तबदील हो कर अपवित्रता, भ्रष्टता की सूरत में तबदील हो जाती है वैसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय वर्ण भी ईसाई, मुसलमान की सूरत में तबदील हो जाता है। इस से साबित है कि मनुष्य जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ईसाई, मुसलमानादि भेद कर्मानुसार हैं जन्म से नहीं हैं। और गन्दी नाली में गिरने से लड्डू की भ्रष्टता भी हीन कर्म से मनुष्य गिर जाता है यही साबित करती है।

३८३ (प्रश्न)—"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस मन्त्र में निराकार ईश्वर को अनुवृत्ति स्वामी जी बतलाते हैं। इस अध्याय में तो निराकार ईश्वर कहा ही नहीं। इस अध्याय में तो "सहस्रशीर्षा पुरुषः" इस मंत्र द्वारा साकार विराट् का वर्णन है। आगे चल कर "तं यज्ञं" इस मंत्र में यह वर्णन किया कि जो सब से पहिले पैदा हुआ था उस यज्ञ पुरुष विराट् का ऋषियों ने पूजन किया। फिर यहां निराकार कहां से घुस बैठा।

पृ० ३२६ पं० १२

उत्तर—आप ने स्वामी जी के लेख को चुरा कर मनमाना पाठ लिख दिया। स्वामी जी का लेख यूं है कि "यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है" इस से साफ ही साबित है कि स्वामी जी "पुरुष" शब्द के अर्थ "निराकार व्यापक परमात्मा" करते हैं। और पुरुष शब्द इस से पहले मन्त्र "यत्पुरुषम्" में ही पड़ा है। पुरुष शब्द के अर्थ करते हुए निरुक्त लिखता है कि—

उत्तर—शतपथ के प्रमाण से स्वामी जी के सिद्धान्त की पुष्टि होती है, आपके सिद्धान्त की नहीं। आपने इसका अर्थ ग़लत किया है। इस प्रमाण में विराट् शब्द का नामोनिशान भी नहीं है। देखिये, इसका अर्थ इस प्रकार से है कि—

"यस्मादेते मुख्या स्तस्मान्मुखतोह्यसृज्यन्त इत्यादि।

जिस से ये मुख्य हैं इस से मुख के सदृश उत्पन्न हुए ऐसा कथन संगत होता है। अर्थात् जैसा मुख सब अंगों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्णविद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त होने से मनुष्य जाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है"

अतः शतपथ का प्रमाण भी गुण कर्म स्वभाव से ही वर्णव्यवस्था को मानता है, जन्म से नहीं।

३८६ (प्रश्न)—आप विराट् को भी निराकार मानते हैं यह आपकी विलक्षण बुद्धि है। पृ० ३२७ पं० १९।

उत्तर—स्वामी जी ने इस स्थल में कहीं भी विराट् के अर्थ निराकार नहीं किये। अपितु यह लिखा है कि 'जब परमेश्वर के निराकार होने से मुखादि अंग ही नहीं हैं तो मुखादि से उत्पन्न होना असम्भव है। जैसा कि—यजु० ४० में परमात्मा को स्पष्ट "अकायमस्नाविरम्" "शरीर से रहित तथा नाड़ीनस के बन्धन से रहित" बतलाया गया है। हाँ यदि स्वामी जी के बिराट् शब्द के अर्थ देखने हों तो—

ततोविराडजायत। यजु० ३१।५

ततः—उस सनातन पूर्ण परमात्मा से (विराट्) बिविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्ड रूप संसार (अजायत) उत्पन्न होता है।

यह मौजूद हैं। अतः आपकी तहरीर सर्वथा असत्य है।

३६० (प्रश्न)—"कार्य्य उपादान कारण के सदृश होता है" यदि कार्य उपादान कारण के सदृश होता है तो फिर यह मनुष्य पानी से पैदा होता है। यह कठिन शरीर का क्यों हो गया। बट का वृक्ष ज़रा से गोल बीज से उत्पन्न होता है। तो फिर यह बीज के सदृश क्यों गोल नहीं, सरसों का पेड़ लंबा क्यों, यह भी कारण के सदृश होना चाहिये। पृ० ३२३ पं० २९।

उत्तर—बेशक स्वामी जी की तहरीर सत्य है कि 'कार्य, उपादान, कारण के सदृश होता है। यदि द्विजादि का उपादान कारण मुखादि हैं तो द्विजादिको मुखादिके सदृश शकल में गोलादि आकृति का होना चाहिये, मनुष्य पानी से पैदा नहीं होता। अपि तु पुरुष के शरीर में पांचों तत्व हैं जिन में पृथिवी प्रधान है। और वीर्य पुरुष शरीर के अङ्ग २ से पैदा होता है। अतः वीर्य का उपादान कारण पुरुष का शरीर है। अतः उस वीर्य से जो मनुष्य उत्पन्न होता है वह भी पिता के शरीर की तरह कठोर अर्थात् पृथिवी तत्व प्रधान होता है। इसी प्रकार से ही बड़ और सरसों के वीज का उपादान कारण भी बढ़ तथा सरसों का वृक्ष ही होता है। अतः बढ़ तथा सरसों के बीज से जो वृक्ष उत्पन्न होते हैं वे बढ़ तथा सरसों के वृक्षों के समान ही होते हैं अन्यथा नहीं। अब यां तो आप भी यह तसलीम करें कि ब्राह्मणादि का उपादान कारण ब्रह्मा का सारा शरीर है। मुखादि महज़ बाहर आने के योनि वत् साधारण कारण ही हैं। तो ऐसी सूरत में आप के मत में ब्राह्मण तथा शूद्र में कोई भेद न रहेगा। और

यदि आप ब्राह्मणादि में मुखादि को पृथक् २ उपादान कारण मानते हैं तो फिर स्वामी जी का एतराज़ ठीक है कि ब्राह्मण आदि की आकृति अपने उपादान कारण मुखादि के सदृश गोल आदि होनी चाहिये।

३९१ (प्रश्न)—स्वामी जी लिखते हैं कि "सृष्टि के आरम्भ में जो लोग मुख से पैदा हुए थे वे ब्राह्मण थे किंतु आज कल के ब्राह्मण तो मुख से पैदा नहीं हुए फिर ये ब्राह्मण कैसे" ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण ही होता है। जैसे बैल का पुत्र बैल और ऊंट का पुत्र ऊंट इस प्रकार से जब घोड़े का पुत्र घोड़ा और गधे का पुत्र गधा होता है। तो फिर ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय का पुत्र क्षत्रिय एवं वैश्य का पुत्र वैश्य और शूद्र का पुत्र शूद्र कैसे न होगा। जो व्याकरण पढ़े हैं वे जानते हैं "ब्राह्मणस्य पुत्रःपुमान् ब्राह्मणः"।

उत्तर—स्वामी जी का आक्षेप ठीक है कि "यदि तुम मुखादि से पैदा होना ही ब्राह्मणादि होने में कारण मानते हो तो जो मुखादि से पैदा हुए होंगे वे ब्राह्मणादि होंगे। किंतु तुम तो सब लोगों की भाँति गर्भाशय से पैदा हुए हो, मुखादि से पैदा नहीं हुए तुम ब्राह्मणादि कैसे।" आपने इस के उत्तर में लिखा है कि जैसे गधे घोड़े ऊंट बैल के पुत्र गधे घोड़े बैल ऊंट ही होते हैं वैसे ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र के पुत्र भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ही होंगे। आप का यह उत्तर ठीक नहीं है। क्योंकि जैसे गधे घोड़े बैल ऊंट में परस्पर आकृति भेद है और वे भिन्न पहचाने जाते हैं, वैसे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रों में परस्पर आकृति भेद नहीं है और न ही वे भिन्न २

पहिचानी जाती हैं । अपितु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र एक ही मनुष्य जाति के कर्मानुसार भेद हैं। इसी जन्म में कोई गधे से बैल और बैल से गधा नहीं बन सकता किन्तु शूद्र से ब्राह्मण और ब्राह्मण से शूद्र बन जाता है । जैसा कि हम साबित कर आये हैं। अतः ब्राह्मणादि वर्णों के लिये बैलादि जातियों का दृष्टान्त ठीक नहीं है । हां यह ठीक है कि मनुष्य का पुत्र मनुष्य ही होगा । फिर वह ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र में से जिस वर्ण के कर्मों को करेगा । उसी वर्ण में शुमार किया जावेगा। आपने व्याकरण की भी खूब टांग तोड़ी है। ज़रा बतला तो दिया होता कि ब्राह्मण शब्द से अपत्य अर्थ में किस सूत्र से कौनसा प्रत्यय होकर, किस सूत्र से सर्वथा लोप होकर, ब्राह्मण का ब्राह्मण ही शेष रह जाता है। हम आपको डंके की चोट चैलेंज करते हैंकि आप व्याकरण से 'ब्राह्मणस्य पुत्रः पुमान् ब्राह्मणः'' सिद्ध करके दिखलावें। वरना व्याकरण का नाम लेकर जनता को धोके में डालना ईमानदारी से बईद है। ब्राह्मणादि किस को कहते हैं देखो—(नं० ३५१)

३९२ (प्रश्न)—"शूद्रो ब्राह्मणतामेति" यह श्लोक वेदानुकूल नहीं है। स्वामी जी ने इस को प्रमाण कैसे माना। पृ० ३२८ पं० १८ ।

उत्तर—मनुस्मृति का यह श्लोक "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" के अनुकूल है। अतः स्वामी जी ने प्रमाण माना है।

३९३ (प्रश्न)—इस श्लोक में कहीं पर गुण कर्म स्वभाव नहीं है। इन तीनों को स्वामी जी ने अर्थों में मिला दिया है। पृ० ३२८ पं० २०।

भावार्थ—जो पशुओं तथा खेती आदि में शीघ्र प्रवेश करता है। दान देता है, शुद्धि में प्रेम रखता है, वेद पढ़ता है वह वैश्य है ॥ ६ ॥ वैश्यों में धान्य धन से बड़प्पन है ॥ १५८ ॥ अतः पशु खेती अन्न, धन आदि समस्त पदार्थों में हर प्रकार से प्रवेश करने वाले का नाम वैश्य है। हाथी, घोड़े, ऊंट, गधा, गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि पशुओं को वैश्य नहीं कहा जा सकता, क्यूंकि प्रथम तो वेद ने वर्ण व्यवस्था पशुओं के लिये नहीं. लिखी दूसरे पशु संपूर्ण पदार्थों चांदी, सोना, हीरा, मोती, रुपया, पैसा, कपड़ा आदि व्यापार तथा शिल्प की वस्तुओं में प्रवेश की बुद्धि नहीं रखते। शब्दों की व्युत्पत्ति करके भी उस को योग्यता से ही चरितार्थ किया जाता है। जैसे पति के अर्थ हैं रक्षा करने वाला। तो क्या आप विना योग्यता का विचार किये प्रत्येक रक्षा करने वाले पिता पुत्र, भाई, चौकीदार, सेनापति, राजा, कुत्ता, बैल, गधा, घोड़ा आदि को प्रत्येक स्त्री का पति तसलीम कर लेंगे। अतः योग्यता के अनुसार ही व्युत्पत्ति के अर्थ चरितार्थ हुआ करते हैं।

३८७ (प्रश्न)—"जो पैर के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र" आप की दृष्टि में पैर मूर्ख हैं। और भुजा चारों वेद पढ़ी हैं। पैर दर्शनों का पण्डित है। और ऊरु वैयाकरण हैं। यह आप कहाँ की अक़ल खर्च कर हैं। पैर बोलते नहीं, तो भुजा पेट ऊरू भी तो सत्यार्थ प्रकाश नहीं बांचते। पृ० ३२७ पं० ३

उत्तर—आप यहां पर उपमालंकार के असूल को फिर भूल गए, यहां पर स्वामी जी की इबारत यूं है कि "जो पग

के अर्थात् नीचे अंग के सदृश मूर्खत्वादि गुण वाला हो वह शूद्र है" यहां पर स्वामी जी का यह अभिप्राय है कि जैसे पाओं नीचा अंग है वैसे ही मूर्खत्वादि घटिया गुण जिस में हों, वह शूद्र है। दूसरे जैसे पाओं सारे शरीर के बोझ को उठाते हैं वैसे ही जो मनुष्य केवल बोझ उठाने अर्थात् कुली-पन का काम जानता हो वह शूद्र है। यह स्पष्ट है कि जैसे मुख में ज्ञान, भुजा में रक्षा, तथा पेट में कच्चे पदार्थ को पक्का बनाने के गुण हैं वे गुण पगों में नहीं हैं। मुख बाहु पेट ऊरू की अपेक्षा पैर गुण हीन हैं। तभी शूद्रों को पगों से उपमा दी गई है। क्यूंकि शूद्र भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की अपेक्षा गुण हीन हैं। अन्यत्र साहित्य में भी यदि किसी को किसी से हीन वर्णन करना हो तो कहा जाता है कि वह उस के पाओं के बराबर भी नहीं है। जैसा कि—

न पादरजसा तुल्या ममेयं गोपकन्यका।

(पद्मा० सृष्टि० अ० १७ ब्रह्मासावित्री संवाद)

राधेयस्य न पादभाक्।

(महाभारत)

भाषार्थ—सावित्री ने ब्रह्मा से कहा कि जिस गोप कन्या से आप ने विवाह किया है यह तो मेरे पैर की धूल के बराबर भी नहीं है।

अर्जुन तो कर्ण के पाओं के समान भी नहीं है।

इससे सिद्ध हुआ कि स्वामी जी का अर्थ बिलकुल ठीक है। आपने उपमालंकार के असूल को छोड़ कर स्वामी जी के अर्थ पर मखौल उड़ाने की चेष्टा की है। इस प्रकार से तो प्रत्येक

उपमा पर मखौल उड़ाया जा सकता है। जैसे गीता का श्लोक है कि—

विद्याविनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥

भावार्थ—जो मनुष्य विद्वान् विनीत ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल में समान दृष्टि रखते हैं। वे पण्डित हैं। आपके पण्डित होने में तो किसे संदेह हो सकता है। तो क्या आप इस श्लोक की शिक्षा के अनुसार—

(१) गौ, हाथी, कुत्ते तथा चांडाल को ब्राह्मण मान कर उन से वेद पढ़ने के लिये जाते हैं। अथवा उनको कभी दूसरे ब्राह्मणों के साथ श्राद्ध में भोजन कराते हैं। अथवा उनके लड़के लड़कियों के साथ आप अपने लड़के लड़कियों का रिश्ता करने को तैय्यार हैं।

(२) ब्राह्मण, हाथी, कुत्ता तथा चांडाल को गौ मान कर उनका दूध निकाल कर कभी स्वयं तथा अपने परिवार को पिलाते हैं।

(३) ब्राह्मण गौ कुत्ते और चांडाल को हाथी मान कर उनके ऊपर सवारी करते हैं।

(४) ब्राह्मण गौ हाथी और चांडाल को कुत्ता मान कर उनसे कुत्ते का सा व्यवहार करते हैं।

(५) ब्राह्मण गौ हाथी और कुत्ते को चांडाल मान कर उन से चांडाल का सा व्यवहार करते हैं।

यदि ऐसा नहीं करते तो क्या आप पण्डित कहलाने के क़ाबिल हैं। आप गौ को माता कहते हैं। क्या वह आपके

बाप की धर्म्म पत्नी है । और जैसे आप गौ को सांड के पास ले जाते तथा उसका दूध निकाल कर उससे मक्खन निकालते हैं, वैसे ही माता के साथ भी व्यवहार करते हो । यदि नहीं तो साफ तौर से आप को मानना पड़ेगा कि उपमा का उतना ही भाग लिया जावेगा जितना कहने वाले का मकसद हो जैसे गीता के श्लोक में सब की आत्मा को अपनी आत्मा के समान जानने का उपदेश है । तथा गौ को माता कहने से यह प्रयोजन है कि माता के समान पालन करने वाली होने से माता के समान ही पालन करने, रक्षा करने तथा इज़्ज़त करने के क़ाबिल है । वैसे ही शूद्रों को पाओं की उपमा देने का भी यही प्रयोजन है कि जो पग के समान बोझ उठाने वाले हीन कर्म करने वाले तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की अपेक्षा विद्या आदि गुणों से हीन हैं वह शूद्र कहाते हैं ।

भला आप के सिद्धान्तानुसार यदि मुख बाहु पेट ऊरु तथा पगों में गुणों की न्यूनाधिकता नहीं और सब अंग गुणों में समान ही हैं तो शूद्रों के पगों से पैदा होने के कारण आप दूसरों से नीच क्यों मानते हैं ।

अतः स्वामी जी ने जो अर्थ किया है वह सर्वथा वेदानकूल होने से सत्य हैं ।

३८८ (प्रश्न)—शतपथ का जो आपने प्रमाण दिया वह तो हमारे सिद्धान्त की पुष्टि करता है । शतपथ का अर्थ यह है कि "ब्राह्मण सब में मुख्य हैं । इसलिये इनको विराट के मुख से रचा" । इस अर्थ से हमारे सिद्धान्त की पुष्टि है या आप के सिद्धान्त की । पृ० ३२७ पं० १३ ।

पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा ।
पूरयत्यन्तरि इत्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य ॥

"यस्मात्परं नापरमस्तिकिञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किंचित् । वृक्ष इव स्तब्धो दिवितिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्" इत्यपि निगमो भवति ॥ १ ॥ (निरु० अ० २ खं० ३)

भावार्थ—पुरुष उस को कहते हैं कि जो इस सारे संसार में व्यापक हो रहा है । जो स्वयं परमेश्वर इस सारे जगत् को अपने स्वरूप से व्याप्त कर रहा है उसी का नाम पुरुष है । पुर कहते हैं ब्रह्मांड और शरीर को । उस में जो सर्वत्र व्याप्त और जो जीव के भीतर भी व्यापक अर्थात् अन्तर्यामी है । उस का नाम पुरुष है ।

जिस पूर्ण परमेश्वर से उत्तम कोई नहीं, और जिस से प्राचीन कोई नहीं और जिस परमात्मा से सूक्ष्म तथा महान् कोई नहीं । जो वृक्ष की भांति सूर्य चन्द्र पृथिवी आदि को धारण करके अचल रूप से अद्वितीय आकाश में व्यापक हो कर ठैरा है । उस परमात्मा से ही यह सारा जगत् पूर्ण हो रहा है । यह भी प्रमाण है । इस प्रमाणसे साबित है कि पुरुष का अर्थ सर्व व्यापक है ॥ १ ॥ और सर्वव्यापक निराकार पदार्थ ही हो सकता है । साकार सर्वव्यापक नहीं होता । अतः पुरुष का अर्थ निराकार व्यापक परमात्मा बिलकुल ठीक है । "सहस्र-शीर्षा" "तथा तं यज्ञं" इन दोनों मन्त्रों में भी व्यापक तथा निराकार परमात्मा का ही वर्णन है । अतः स्वामी जी का लेख सर्वथा सत्य तथा वेदानुकूल है ।

३८४ (प्रश्न)—आप का यही तो अर्थ है कि "जो सब

में उत्तम हो वह ब्राह्मण, आप के हिसाब से राजा ब्राह्मण, मंत्री ब्राह्मण, पहलवान ब्राह्मण, गायक शिरोमणि ब्राह्मण, खूबसूरत ब्राह्मण, रंडी ब्राह्मण, जो उत्तम होंगे वे सब ब्राह्मण होंगे। इनमें कुछ न कुछ उत्तमता ज़रूर रहती है। पृ॰ ३२६ पं० २०

उत्तर—वाह महाराज! खूब समझे। इस समझ ने तो आप को बूझ बुझक्कड़ का भी दादा साबित कर दिया। क्या आप उपमालंकार को भी नहीं समझते। श्रीमान् जी! उपमालंकार में उपमान् के गुणों का उतना ही हिस्सा लिया जाता है जितने गुणों से कहने वाला उपमेय के गुणों की साम्यता करना चाहता है। यदि मैं आप को किसी समय यह कह दूं कि आप बड़े शेर हैं तो इस का यह मकसद नहीं कि मैं आप को हैवान दरिन्दा या पूंछ वाला कहना चाहता हूं अपितु मेरा यही मकसद होगा कि आप शेर जैसे बहादुर हैं। यदि मैं आप की धर्मपत्नी को 'माता जी नमस्ते' कह दूं तो इस का यह मकसद नहीं कि मैं उस को अपने बाप की पत्नी कहना चाहता हूं। अपि तु मैं उसे माता के समान पूज्या समझता हूं। इसी प्रकार से ही स्वामी जी ने जो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि 'जो पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह द्विज' इस का यह अभिप्राय हैं कि 'जैसे मुख में बाकी जिस्म की निस्बत पांच गुणा ज्ञान है और मुख शरीर को उलटे रास्तेसे हटा कर सीधे रास्ते पर चलाता है और मुख ही अपनी पढ़ी विद्या लोगों को पढ़ाता है। वैसे ही जो मनुष्य आम पब्लिक की निस्बत बहुत अधिक उत्तम ज्ञान रखता हो, लोगों को उलटे रास्ते से हटा कर सीधे रास्ते पर चलावे तथा

अपनी पढ़ी विद्या लोगों को पढ़ावे वह द्विज कहाने का हक़दार है'। जैसा कि मनु ने भी लिखा है कि 'विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यम्' (मनु० २। १५५) विप्रों को ज्ञान के कारण ज्येष्ठ माना जाता है। यदि कोई राजा, मन्त्री, पहलवान्, गायक, खूबसूरत, तथा रण्डी भी अपने २ काम को छोड़ कर मुख के समान अत्यन्त ज्ञानी हो कर उपदेशक तथा तथा अध्यापक का काम करने लग जावें तो निःसंदेह वे द्विज बन सकते हैं अन्यथा नहीं, हां सनातन धर्म के सिद्धांतानुसार एक पुरुष या स्त्री, विप्र के घर जन्म ले कर मद्य पान, मांस भक्षण, वेश्या-पन, वेश्या गमन, गो घात, गो मांस भक्षण, चोटी कटा, यज्ञोपवीत उतार, मुसलमान, ईसाई हो गो मांस का व्यापार इत्यादि २ अनेक प्रकार के कुकर्म करते हुए भी ब्राह्मण ब्राह्मणी कहा सकते हैं, क्यों कि सनातन धर्म जन्म से वर्ण व्यवस्था मानता है, कर्म से नहीं। देखो (नं०३८१)

३८५ (प्रश्न)—'जिस में बल, वीर्य अधिक हो वह क्षत्रिय' बलवान् क्षत्रिय, शेर क्षत्रिय और भैंसा क्षत्रिय। पृ० ३२६ पं० २४।

उत्तर—बेशक, जिस मनुष्य में बल, वीर्य अधिक हो। जैसे दोनों भुजा अपने आप को आपत्ति में डाल कर भी बाकी शरीर की रक्षा करती हैं। वैसे ही जो पुरुष अपने आप को आपत्ति में डाल कर भी सब प्रजा की रक्षा करता है वह क्षत्रिय कहाता है। जैसे कि 'क्षत्रियाणां तु वीर्यतः। मनु० २। १५५'। क्षत्रियों की बल से उत्तमता मानी जाती है। वेद ने चूंकि वर्ण व्यवस्था पुरुषों के लिये प्रतिपादन की है पशुओं

के लिये नहीं। और न ही पशु अपने बल और वीर्य से दूसरे पशुओं की रक्षा कर सकते हैं। अपि तु बलवान् पशु निर्बलों को सताते और मार खाते हैं। अतः शेर तथा भैंसे को क्षत्रिय नहीं कहा जा सकता।

३८६ प्रश्न)—'ऊरू के बल से जो देश विदेश जावे वह वैश्य' कोई आर्यसमाजी पण्डित पेशावर से पैदल चल कर कलकत्ते पहुंच जावे तो वह आप की दृष्टि में वैश्य, क्योंकि ऊरू के बल से आया है। आप के इस लक्षण से तो द्विज, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हाथी, घोड़ा, ऊंट गधा, गाय, भैंस, भेड, बकरी सभी वैश्य हो जावेंगे। क्यों कि ये सब ऊरूके बल से चलते हैं। पृ० ३२६ पं० २७।

उत्तर—गलत इबारत लिख कर जनता को धोका देना आप का मुख्य धर्म है। देखिये स्वामी जी की तहरीर इस प्रकार से है कि "जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरु के बल से आवे जावे। प्रवेश करे वह वैश्य" बेशक जो भी मनुष्य पदार्थों में प्रवेश करने के लिये अर्थात् व्यापार वा खेती वा शिल्प कारी के लिये, पदार्थों के प्राप्त करने के लिये ऊरु के बल से देश देशान्तर में जावेगा वह वैश्य कहा जावेगा। चाहे वह आर्य्य समाज का उपदेशक हो वा जन्म से ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्र आदि कोई भी हो। जैसे कि—

विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरुचिः शुचिः।
वेदाध्ययन सम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः॥ ६॥

(महा० शान्ति० अ० १८६)

वैश्यानां धान्यधनतः। मनु० २।१५५

उत्तर—श्रीमान् जी! ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र शरीर का नाम नहीं है। और न ही आत्मा का नाम है। ये गुणकर्म स्वभाव से ही मनुष्य जाति में चार भेद हैं और इनकी तबदीली से ही शूद्र से ब्राह्मण तथा ब्राह्मण शूद्र से बन सकता है। अतः स्वामी जी ने इस श्लोक का अर्थ ठीक ही किया है कि—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥६५। मनु०१०

जो शूद्र कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य हो जाए। वैसे ही जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जावे। वैसे ही क्षत्रिय वा वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण ब्राह्मणी वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है। अर्थात् चारों वर्णों में जिस २ वर्ण के सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २ वर्ण में गिनी जावे।

३६४ (प्रश्न)—"शूद्रोब्राह्मणतामेति" इसके पहले शूद्रायाब्राह्मणाज्जातः" श्लोक है। इन दोनों श्लोकों का इकट्ठा अर्थ होता है। एक श्लोक को छोड़ा और एक को लिया। स्वामी जी की यह चालाकी है। पृ० ३२८ पं० १७

उत्तर—"शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः" यह श्लोक वेद के विरुद्ध है। और दोनों श्लोकों को मिला कर जो आप अर्थ करते हैं। वह अर्थ वेद स्मृति रामायण और महाभारत सबके विरुद्ध हैं। वास्तव में यह श्लोक जाति अभिमानी लोगों ने पीछे से

मनु में शामिल किया है। इसका प्रमाण यह है कि "शूद्रो ब्राह्मणतामेति" यह श्लोक भविष्य पुराण में भी वर्ण व्यवस्था प्रकरण में दिया है किन्तु इसके साथ "शूद्रायांब्राह्मणाज्जातः" यह श्लोक नहीं है। भविष्य पुराण का पाठ इस प्रकार से है।

वेदानध्यापयंतोऽपि तेऽधीयाना: श्रुतिक्रमात्।
ब्राह्मणत्वाद्विहीयन्ते दुराचारविधायिनः ॥ ४३ ॥
तस्मान्न जातिरेकत्र भूतात्मास्त्यनपायिनी।
नाशित्त्वादत्र च श्लोकान्मानवाः समधीयते ॥ ४४ ॥
सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेन शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रयी ॥ ४५ ॥
गोरक्षकान् वाणिजिकां स्तथा कारु कुशीलवान्।
प्रेष्यान् वार्धुषिकांश्चैव शूद्रांस्तान्मनुरब्रवीत् ॥ ४६ ॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियोयाति विप्रत्वं विद्याद्वैश्यं तथैव च ॥ ४७ ॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४०)

भावार्थ—वेद को पढ़ाते हुए तथा श्रुति क्रम से पढ़ते हुए भी दुराचारी लोग ब्राह्मण पद से गिर जाते हैं ॥ ४३ ॥ इस कारण नाश होने वाला होने से वर्ण एक ही आत्मा में स्थिर नहीं है। इस विषय में मनुष्य श्लोक पढ़ते हैं ॥ ४४ ॥ द्विज, मांस लाक्षा और नमक के बेचने से तत्काल ही पतित हो जाता है। और जो द्विज दूध बेचता है वह तीन दिन में शूद्र हो जाता है ॥ ४५ ॥ गोरक्षक, व्यापारी, सेवा काम करने वाले, नचार, दूत, सूद खोर ब्राह्मणों को मनु ने शूद्र कहा है ॥ ४६ ॥ शूद्र ब्राह्मण हो जाता है, तथा ब्राह्मण शूद्र हो जाता है।

क्षत्रिय विप्र बन जाता है। और वैश्य भी ब्राह्मण वा शूद्र हो जाता है ॥ ४७ ॥ आशा है कि आप को इस लेख से वर्ण व्यवस्था विषयक तसल्ली हो जावेगी और यह भी निश्चय हो जाएगा कि "शूद्रायाम्" यह श्लोक प्रक्षिप्त है। वरना भविष्य इसे अवश्य लिखता।

३६५ (प्रश्न)—इन दोनों श्लोकों का अर्थ इस प्रकार से है कि—

शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसाचेत्प्रजायते।
अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥ ६४ ॥
शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५ ॥
(मनु० १०)

शूद्रों में ब्राह्मण से जो सन्तान उत्पन्न हो वह पारशवाख्य वर्ण होता है। यदि वह कन्या हो और उस को द्विज विवाह ले फिर उस के भी कन्या हो इसी प्रकार सात पीढ़ी तक कन्या होती जाये तथा उस का विप्र से सम्बन्ध होता जाये तो पारशव वर्ण में जो शूद्रत्व है। उस का नाश हो कर सप्त कन्या शुद्ध ब्राह्मणी हो जायेगी। इसी प्रकार 'शूद्रो ब्राह्मणतामेति' शूद्र वर्ण ब्राह्मणता को प्राप्त हो जाता है। यदि शूद्रा में ब्राह्मण से लड़का उत्पन्न हो और उस का सम्बन्ध शूद्रों में होता जावे तो सप्तम पीढ़ी में ब्राह्मणत्व का नाश हो जावेगा। और वह ब्राह्मण वीर्य शूद्रता को प्राप्त हो जायेगा। ऐसे 'ब्राह्मश्चैति शूद्रताम्' ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होगा। इसी प्रकार शूद्रा में क्षत्रिय से उत्पन्न हुई कन्या सप्त पीढ़ी तक यदि उस का सम्बन्ध बराबर क्षत्रिय से होता रहे

तो सप्तम कन्या शुद्ध क्षत्रिय कन्या हो जावेगी। यदि शूद्र स्त्री में क्षत्रिय से लड़का हो और उस का सम्बन्ध बराबर शूद्र से होता जाये तो वह सप्तम पीढ़ी में शूद्र हो जावेगा। ऐसे शूद्र क्षत्रिय और क्षत्रिय शूद्र हो जाता है। इसी प्रकार शूद्रा स्त्री में वैश्य से कन्या उत्पन्न हुई हो और उस का सम्बन्ध बराबर सातवीं पीढ़ी तक वैश्यों में होता जावे तो सप्तम पीढ़ी में पह वणिक् कन्या होगी। वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हुआ पुत्र सात पीढ़ी तक शूद्रों में सम्बन्ध करता जावे तो वह शूद्र हो जावेगा इस प्रकार वैश्य शूद्र और शूद्र वैश्य होगा।

(पृ० १३० तथा पृ० ३२८ पं २२)

उत्तर—आप के इस लेख में निम्न प्रकार से दोष हैं—

(१.) यदि ब्राह्मण से क्षत्रिया तथा वैश्या में तथा क्षत्रिय से वैश्या में पुत्र पुत्री हों तो उन की वर्ण व्यवस्था क्या होगी यह आप ने नहीं बतलाया। यदि वीर्य की प्रधानता से पिता का वर्ण सन्तान का होगा तो शूद्रों में भी पैदा की गई सन्तान वीर्य की प्रधानता से पिता के वर्ण की क्यों न हो।

(२) शूद्रा में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य से पैदा हुई सन्तान यदि विवाह न करे तो किस वर्ण में शुमार की जावेगी।

(३) आप का यह अर्थ सातवीं पीढ़ी में सन्तान पिता के वर्ण की होगी। मनु के निम्न लेख के विरुद्ध है।

जातो नार्यामनार्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः॥ १०। ६७॥

यस्माद् बीज प्रभावेण तिर्यग्जा ऋषयोऽभवन्।

पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्मात् बीजं प्रशस्यते॥ १०। ७२॥

तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे।

उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः॥ १०॥ ४२॥

भावार्थ—शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य से पैदा किया पुत्र गुणों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो जाता है ॥ ६७ ॥ जिस कारण बीज के प्रभाव से तिर्यग् (टेढ़ी-नीच) जाति में पैदा हुए भी ऋषि बन गये, पूजा तथा प्रशंसा के योग्य हो गये। इस लिये बीज ही प्रधान है ॥ ७२ ॥ वह अनुलोमज तथा प्रतिलोमज कोई तप के प्रभाव से कोई बीज के प्रभाव से प्रत्येक युग में इस संसार तथा इसी जन्म में जन्म की निस्बत मनुष्यों में उन्नति तथा अवनति को प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ जब मनु के कथनानुसार वीर्य प्रधान है तो फिर सातवीं पीढ़ी में वर्ण की उन्नति स्वयं मनु के ही विरुद्ध है।

(४) मनु कहता है कि स्त्री का वर्ण पति के अनुसार है—

याद्दग्गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्यते यथा विधि ।
ताद्दग्गुणा सा भवति समुद्रेणैव निम्नगा ॥ ९ । २२ ॥
अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताधमयोनिजा ।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामभ्यर्हणीयताम् ॥ २३ ॥
एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः ।
उत्कर्षं योषिताः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैःशुभैः ॥ २४ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार के गुणों वाले पति से स्त्री संयुक्त होती है उसी प्रकार के गुणों वाली हो जाती है। जैसे नदी समुद्रमें मिल कर समुद्र रूप हो जाती है ॥ २२ ॥ अधमयोनि से पैदा हुई अक्षमाला वसिष्ठ से विधि पूर्वक संयुक्त हो कर और अधम कुलोत्पन्न शारङ्गी मन्दपाल से संयुक्त हो कर पूजा के योग्य पदवी को प्राप्त हो गई ॥ २३ ॥ ये भी और भी बहुत

सी स्त्रियां इस संसार में अधम कुल में पैदा हो कर अपने २ पतियों के गुणों से उन्नति को प्राप्त हो गईं ॥ २४ ॥ जब मनु के कथनानुसार विवाह होने पर स्त्री का वर्ण पति के अनुसार ही हो जाता है तो फिर उन की सन्तान का सातवीं पीढ़ी में पिता का वर्ण प्राप्त करना मनु की तहरीर के घोर विरुद्ध है।

(५) निम्न लिखित महात्मा शूद्रा तथा चाण्डाली आदि में पैदा हो कर तप से ब्राह्मण बन गये—

(१) पराशर चाण्डाली से, (२) वसिष्ठ कञ्जरी से, (३) मन्दपाल मल्लाहनी के उदर से, (४) व्यास कैवर्ती के पेट से, (भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२) (५) बाल्मीकि भीलनी के पेट से, (भारत सार अ० ५५ शू० २१) (६) सरवण शूद्रा के पेट से, (बाल्मी० अयो० स० ६३) इत्यादि २।

जब इस प्रकार के अनेकों ऋषि मुनि शूद्रा तथा चाण्डा-ली के उदर से पैदा हो कर उसी जन्म में ब्राह्मण बन गये तो फिर सात पीढ़ी की कैद स्वयं ही वेद, शास्त्र, इतिहास विरुद्ध है।

इस से साबित है कि 'शूद्रायाम्' इत्यादि श्लोक स्वयं मनु के विरुद्ध होने से प्रक्षिप्त है।

भला यह तो बतलाइये 'आसप्तमाद्युगात्' का अर्थ 'सातवीं पीढ़ी' कैसे किया। इस से तो यदि 'सातवां वर्ष' इस का अर्थ कर लो तो यह श्लोक मनु के अनुकूल बन सकता है कि 'शूद्रा में ब्राह्मण से पैदा हुआ यदि श्रेष्ठ हो तो सातवें वर्ष में निकृष्ट जाति से उत्कृष्ट जाति को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् यज्ञोपवीत के समय गुण देख कर उसे ब्राह्मण के ढङ्ग

से यज्ञोपवीत दिया जा सकता है। देखिये—

अब्राह्मणं तू मन्यते शूद्रा पुत्रमनैपुणात्।
त्रिषु वर्णेषु जातो हि ब्राह्मणाद् ब्राह्मणो भवेत् ॥ १७ ॥
(महा० अनु० अ० ४७)

भावार्थ—शूद्रा के पुत्र को लोग बेवकूफी से ब्राह्मण नहीं मानते वरना ब्राह्मण से क्षत्रिया, वैश्या तथा शूद्रा तीनों वर्णों में पैदा हुआ ब्राह्मण ही है ॥ १७ ॥

अतः सातवीं पीढ़ी में उस का ब्राह्मण होना मानना डबल बेवकूफी है।

३९६ (प्रश्न)—आपस्तम्ब के सूत्रों में स्वामी जी 'जाति परिवृत्तौ' पद के अर्थ को दबा लेते हैं। अर्थ यह होता है 'धर्माचरण से छोटे वर्ण बड़े २ वर्ण को प्राप्त होते हैं जाति बदल जाने पर। अधर्माचरण से बड़े २ वर्ण छोटे २ वर्ण को प्राप्त होते हैं जाति बदल जाने पर।' जाति शरीर में रहती है। शरीर बदलने पर जाति बदलती है। सूत्र तो कहते हैं कि शरीर के बदलने पर वर्ण बदल जाता है। और स्वामी जी सूत्रों के दो पद चुरा कर तुरन्त ही वर्ण बदल देते हैं।

(पृ० ३२६ पं ३)

उत्तर—इन सूत्रों में जहां २ जाति शब्द वर्ण का वाचक आता है। वहां २ इस का इसी जन्म में इसी शरीर से परिवर्तन भी मिलता है जैसे कि—

आचार्यस्त्वस्ययां जातिं विधिवत् वेदपारगः।
उत्पादयति सावित्र्या सासत्या साजरामरा ॥ १४८ ॥
(मनु० २)

ब्राह्मणस्य रुजः कृत्याघ्रातिरघ्रेय मद्ययोः ।
जह्मयं च मैथुनं पुंसि जाति भ्रंशकरं स्मृतम् ॥ ६७ ॥
(मनु० ११)

भावार्थ—वेदों के पार को जानने वाला आचार्य तो इस मनुष्य की जिस जाति (वर्ण) को गायत्री से पैदा करता अर्थात् बनाता है वही सत्य है वही अजर अमर है ॥ १४ ॥ ब्राह्मण को कष्ट देना, सूंघने के नाकाबिल वस्तु तथा शराब का सूंघना, कुटिलता, पुरुषों में मैथुन, ये काम जाति से भ्रंश करने वाले हैं ॥ ६७ ॥ यहां पर पहिले श्लोक में इसी जन्म में आचार्य द्वारा जाति का पैदा होना तथा दूसरे श्लोक में दुष्ट कर्मों के बदले जाति का नाश माना गया है। इस से साबित हुआ कि यहां पर जाति नाम वर्ण का जो कि इसी जन्म में कर्मानुसार बनता और नाश भी हो जाता है। बस इसी प्रकार से इन सूत्रों में भी जाति नाम वर्ण का ही है। जो कि परिवर्तनशील है।

अतः इन दोनों सूत्रों से पहिला तथा पिछला प्रकरण साबित करता है कि यह सब इसी जन्म में कर्त्तव्य हैं। अगले जन्म का यहां वर्णन नहीं है। जैसे कि—

राज्ञः पन्था ब्राह्मणेनासमेत्य ॥५॥ समेत्य तु ब्राह्मणस्यै व पन्थाः ॥६॥ यानस्य भाराभिनिहितस्यातुरस्य स्त्रिया इति सर्वैं र्दातव्यः ॥७॥ वर्ण ज्यायसां चेतरवर्णैः ॥८॥ अशिष्टपतितमत्तोन्मत्तानामात्मस्वस्त्ययनार्थें न सर्वैरेव दातव्यः ॥९॥ धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥१०॥ अधर्मचर्यया पूर्वो पूर्वो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरि-

वृत्तौ ॥११॥ धर्मप्रजासम्पन्ने दारे नान्यां कुर्वीत ॥१२॥ अन्यतराभावे कार्या प्रागग्न्याधेयात् ॥१३॥ आधाने हि सति कर्मभिस्सम्बध्यते येषामेतदङ्गम् ॥१४॥ सगोत्राय दुहितरं न प्रयच्छेत् ॥१५॥ मातुश्च योनि संबन्धेभ्यः ॥१६॥

(आपस्तम्बीय धर्म्म सूत्र प्र० २ प० ५ खं० ११)

भावार्थ—यदि मिलने वाला अब्राह्मण हो तो वह राजा के लिये मार्ग छोड़ दे ॥५॥ यदि ब्राह्मण से मेल हो तो राजा ब्राह्मण के लिये मार्ग छोड़े ॥६॥ सवारी, बोझ उठाने वाले, रोगी और स्त्री के लिये सब रास्ता छोड़ दें ॥७॥ ऊंचे वर्णों के लिये सब नीचे वर्ण मार्ग छोड़ें ॥८॥ असभ्य, पतित, मूर्ख तथा पागल के लिये अपनी आत्मा के कल्याणार्थ सब मार्ग छोड़ दें ॥९॥ धर्म्म के आचरण से छोटा छोटा वर्ण बड़े बड़े वर्ण को प्राप्त होता है वर्ण परिवर्तन होने में ॥१०॥ पापाचरण से ऊंचा २ वर्ण नीचे नीचे को प्राप्त होता है वर्ण परिवर्तन होने में ॥११॥ धर्म्म तथा सन्तान वाली स्त्री की मौजूदगी में दूसरी स्त्री न करे ॥१२॥ यदि धर्म या सन्तान से हीन हो तो अग्नि आधान से पहिले दूसरी करले ॥१३॥ अग्नि आधान होने पर कर्मों के साथ संबंध हो जाता है जिन का यह अंग है ॥१४॥ समान गोत्र वाले को कन्या न दे ॥१५॥ माता के साथ जिनका योनि संबंध हो उनको भी न दे ॥१६॥

उपरोक्त सारी आज्ञायें इसी जन्म के साथ संबंध रखती हैं। अतः वर्ण परिवर्तन की आज्ञा भी इसी जन्म के साथ सम्बन्ध रखती हैं। परजन्म के साथ नहीं। मनु ने हूबहू इन्हीं सूत्रों के भाव को यों वर्णन किया।

तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे ।
उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥४२॥ मनु० १०)

भाषार्थ—अनुलोमज तथा प्रतिलोमज सब मनुष्य कोई तप कोई बीज के प्रभाव से प्रत्येक समय में इस ही जन्म में जन्म की अपेक्षा ऊंचे वर्ण तथा नीचे वर्णों को प्राप्त होते हैं।

स्वामी जी ने "जाति परिवृत्तौ" पद को चुराया नहीं अपितु सत्यार्थ प्रकाश तथा संस्कार विधि में भी इस पद के अभिप्राय को स्पष्ट लिख दिया है "कि वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस २ के योग्य होवे"। आप ज़रा आंखें खोल कर पढ़ें तो आपको पता लग जावेगा वर्ण शरीर के बदलने से नहीं अपितु कर्मों के बदलने से बदल जाता है। इन सूत्रों से साबित है।

(प्रश्न)—"नतिष्ठति तु यः पूर्वामित्यादि मनु० २।१०३" इस श्लोक में ब्राह्मण शूद्र हो जाता है ऐसा नहीं है अपितु शूद्र वत् हो जाता है ऐसा है। आर्य्य समाजियो! तुम शूद्र और शूद्र वत् में घपला मचा कर मूर्खों को जाल में फंसा सकते हो विद्वान् को नहीं। पृ० ३२६ पं० २७।

उत्तर—न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्चपश्चिमाम्।
सशूद्रवत् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥१००॥

जो मनुष्य प्रातः और सायं सन्ध्या नहीं करता वह समस्त द्विज कर्म से शूद्र की भांति बाहर कर देने योग्य है।१०३।

अब आप ही इन्साफ से बतलावें कि जिसको समस्त द्विज कर्म से बाहर निकाल दिया जावे वह शूद्र नहीं तो क्या है। इसी बात को महाभारत में यों लिखा है कि—

ये न पूर्वामुपासन्ते द्विजाः संध्यां न पश्चिमाम् ॥१९॥
सर्वांस्तान्धार्मिको राजा शूद्रकर्माणि कारयेत् ॥२०॥
(महा० अनु० अ० १०४)

भाषार्थ—जो ब्राह्मण प्रातः सायं सन्ध्या न करें धार्मिक राजा उन सबसे शूद्र के काम करवावे। कहिये महाराज! शूद्र के काम करता हुआ भी क्या वह शूद्र न होगा। इसलिये आर्य्य समाजी घपला नहीं मचाते आप घपला मचाते हैं। आर्य्य समाजी तो यह श्लोक भी पेश करते हैं कि—

सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च।
त्र्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीर विक्रयात् ॥ ९२ ॥ मनु० १०

भाषार्थ—ब्राह्मण लाख नमक तथा मांस के बेचने से तत्काल पतित हो जाता है। और दूध बेचने से ब्राह्मण तीन दिन में शूद्र हो जाता है ॥ ९२ ॥ कहिये महाराज! अब तो शूद्र-वत् का भी घपला नहीं है। अब तो साफ शूद्र होना लिखा है। अब तो स्वीकार कीजिये कि वर्णव्यवस्था कर्म से है जन्म से नहीं।

३६८ (प्रश्न)—वेदव्यास कहारी का लड़का नहीं क्षत्रिय कन्या का पुत्र है। पृ० ३३० पं० १६।

उत्तर—श्रीमान् जो आपके ही मान्य ग्रन्थ कह रहे हैं। कि— (१) जातोव्यासस्तु कैवर्त्याः।

भविष्य० ब्राह्म० ४२, २२

(२) व्यासः कैवर्त कन्यायाम् (वज्रसूची उपनिषत्)

(३) कैवर्त गर्भ संभूतो व्यासोनाम महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम् ॥ २० ॥
(भारत सार अध्याय ५५)

(४) कैवर्तेदाशधीवरौ ॥ १५ ॥ (अमरकोश वर्ग १०)

व्यास जी मल्लाहनी से पैदा हुए। (१) व्यास जी मल्लाह की कन्या में पैदा हुए। (२) मल्लाहनी के गर्भ से पैदा होकर महामुनि व्यास तप से ब्राह्मण बन गये। इस लिये जाति कारण नहीं। (३) कैवर्त, दाश, धीवर ये तीन नाम मल्लाह के हैं। (४) व्यास जी कहारी के नहीं तो मल्लाहनी के पुत्र अवश्य हैं, इस में संदेह नहीं है। किन्तु क्षत्रिय कन्या के पुत्र न थे।

३१६ (प्रश्न)—महाभारत आदिपर्व अध्याय ६३ में कथा इस प्रकार है कि उपरिचर वसु नाम के राजा के एक पुत्री और एक पुत्र हुआ। पुत्री दास को पालने को दे दी और लड़का आप रख लिया। उस लड़की से व्यास जी पैदा हुए। जब सत्यवती उपरिचर वसुनामक राजा के वीर्य्य से उत्पन्न हुई। तब हम उसको दास की पुत्री किस प्रकार मान लें। पृ० ३३० पं० २२ ।

उत्तर—हम ऊपर साबित कर आये हैं कि व्यास जी मल्लाह कन्या के गर्भ से पैदा हुए थे। जन्माभिमानी लोगों को यह बात कैसे रुच सकती थी कि कोई मल्लाहनी के गर्भ से पैदा होकर ब्राह्मणों का गुरु बन जावे। इस बात को मलियामेट करने तथा जनता की आँखों में धूल झोंक कर जन्माभिमान को क़ायम रखने के लिये एक असंभव कथा घड़कर महाभारत में दाखिल की गई, जिस कथा के अनुसार सत्यवती की पैदाइश को आप मछली समेत ही श्राद्ध के लड्डू की भान्ति हड़प कर गये और बनावटी बातें लिखकर जनता को धोके में डालना चाहा है। कहिये महाराज ! उपरिचर राजा के जो

एक पुत्र और एक पुत्री हुई वह कौनसी रानी के गर्भ से हुई, और पुत्री को जो दास को पालनार्थ दिया तो क्या जहां पुत्र का पालन हो सकता था वहां पुत्री का पालन न हो सकता था। और फिर यदि पालन के लिये ही दी थी तो दास को यह साहस कैसे हुआ कि लड़की को किश्ती चलाने के काम में लगावे। और उसकी शादी के विषय में भी राजा शान्तनु से स्वयं ही बातचीत करें और राजा उपरिचर इसका कोई नोटिस न ले। और फिर यह भी न बतलाया कि सत्यवती से व्यास की पैदाइश कैसे हुई। महाभारत की जिस कथा को आप छिपाना चाहते हैं वह इस प्रकार से है कि—

उपरिचर नाम का एक राजा था उसकी स्त्री का नाम गिरिका था। वह ऋतु स्नाता हुई तो राजा शिकार खेलने चला गया। वहां बन में स्त्री के ख्याल से राजा का वीर्य-पात हो गया। राजा ने उसे पत्ते में बन्द करके अपनी स्त्री के पास पहुंचाने के लिये बाज़ को रवाना किया, बाज़ लिये जारहा था कि दूसरे बाज़ से लड़ाई होने के कारण उस से वह वीर्य यमुना नदी में गिर पड़ा। उसको एक मछली ने खा लिया। मछली के गर्भ हो गया। दश मास के पीछे मछली को मच्छीहारों ने पकड़ लिया। उसका पेट चीरा तो उस से एक लड़का और एक लड़की निकले। मछलीहारों ने इन दोनों को राजा के पेश किया। राजा ने लड़का रख लिया जो मत्स्य नाम का प्रतापी राजा बना। और बदबू के कारण लड़की मछलीहारे को दे दी। बड़ी होकर वह किश्ती चलाने लगी। एक वार यात्रा करते हुए पराशर यमुना नदी से पार

होने लगे तो लड़की पर मोहित होगये। और उस से समागम की इच्छा की। लड़की ने कहा लोग देख रहे हैं। पराशर ने कुहर पैदा करके अंधेरा कर दिया। लड़की ने कहा, मेरा कन्या पन नाश हो जावेगा। ऋषि ने वर दिया कि समागम करने पर भी तू कन्या ही हो जावेगी। ऋषि ने वर देकर उस की बदबू दूर करके खुशबू पैदा कर दी। तभी सत्यवती ऋतु-मती होगई। पराशर ने उस से समागम किया उस समय व्यास जी पैदा हुए। और माता को यह कह कर कि कभी काम हो तो मुझे याद करना बन में तप करने चले गये॥ (महा० आदि० अ० ६३)

अब यह कथा सारी की सारी सर्वथा असंभव है।

(१) राजा को जंगल में फिरते वीर्यपात होगया। क्या पौराणिक लोगों में यह असाध्य रोग सब को तंग करता है।

(२) पत्ते में बन्द करके वीर्य को स्त्री के पास भेजने का प्रयोजन, क्या उससे गर्भ संभव है।

(३) मछली के पेट में तो लड़का लड़की दश मास में पैदा होने योग्य बने। तथा व्यास जी मिंटों में ही पैदा हो गये।

(५) यदि राजा को ज्ञान था कि लड़का लड़की मेरे हैं। तो लड़का लेकर लड़की क्यों न ली। यदि बदबू के कारण तो वह बदबू लड़के में भी होगी।

(६) पराशर ने व्यभिचार किया तो ऋषिपन में क्यों फ़र्क न आया।

(७) पराशर ने कुहर पैदा की, क्या पहिले न होती थी।

(८) यदि सत्यवती ऋतुमती होगई। तो चार दिन से पहिले समागम शास्त्र विरुद्ध है।

(६) व्यास का पैदा होते माँ से बात करना तप करने जाना भी असंभव ही हैं ।

सारांश यह कि यह सारी कथा ही असंभव और सर्वथा असत्य है । वास्तव बात वही सत्य है कि सत्यवती मल्लाह की पुत्री थी उस के कन्यावस्था में व्यभिचार से व्यास जी पैदा हुए । और वह तप से ब्राह्मण बन गये मनुस्मृति का टीकाकार भी सत्यवती को निकृष्ट योनि से ही मानता हैं । वह "एताश्चान्याश्च । मनु० ६।२४" के टीका में लिखता है कि—

एताश्चान्याश्च सत्यवत्यादयो निकृष्ट प्रसूतयः ।
स्वभर्तृ गुणैः प्रकृष्टै रस्मिंल्लोके उत्कृष्टतां प्राप्ताः ॥

ये भी और भी सत्यवती आदि स्त्रियां बहुत सी निकृष्ट योनि से पैदा हुई अपने पतियों के उत्कृष्ट गुणों से संसार में उत्कृष्ट बन गईं । इससे साफ सिद्ध है कि सत्यवती मल्लाह की लड़की थी । यदि आपके लेखानुसार भी सत्यवती कों राजा की पुत्री माना जावे तो भी क्षत्रिया के पेट से व्यास ब्राह्मण कैसे बने । यदि आप कहें कि वीर्य प्रधान होने से ब्राह्मण बने । तो यदि आप वीर्य को प्रधान मानते हैं तो सत्यवती को क्षत्रिया साबित करने में क्यों पानी २ हो रहे हैं । सत्यवती यदि मल्लाह की पुत्री हो तो भी पराशर का वीर्य प्रधान होने से व्यास जी ब्राह्मण बन जावेंगे । यदि वीर्य ही प्रधान है तो फिर क्षेत्र की तो कोई कैद न रही । स्त्री चाहे कोई भी हो पुरुष का वीर्य प्रधान होने से पुरुष के अनुसार ही वर्ण माना जावेगा और यदि वीर्य प्रधान है तो व्यास जी ने अम्बिका अंबालिका तथा दासी में जो धृतराष्ट्र पाण्डु तथा विदुर को पैदा किया वे ब्राह्मण क्यों

न बने। क्षत्रिय क्यों बने। जैसा कि कुल्लूक भट्ट ने भी "विशिष्टं कुत्रचिद्‌दिति मनु० ६।३४" के भाष्य में लिखा है कि—

विचित्र वीर्यं क्षेत्रे क्षत्रियायां ब्रह्मणोत्पादिता अपि धृतराष्ट्रादयः क्षत्रियाः क्षेत्रिण एव पुत्रा बभूवुः।

विचित्रवीर्य के क्षेत्र क्षत्रिया में ब्राह्मण से पैदा किये हुए भी धृतराष्ट्र आदि क्षत्रिय क्षेत्र वाले के ही पुत्र हुए।

अतः न क्षेत्र प्रधान है न वीर्य, अपितु वर्ण व्यवस्था में कर्म ही प्रधान हैं।

४०० (प्रश्न)—बाल्मीक को भील का लड़का कहना जान बूझ कर लोगों की आँख में धूल झोंकना है। जब कि बाल्मीकि रामायण में लिखा है कि—

एतदाख्यानमायुष्य स भविष्यं सहोत्तरम्।
कृतवान् प्रचेतसः पुत्रस्तद् ब्रह्माप्यन्वमन्यत॥

(बाल्मी० उत्तर० स० १११)

यह आख्यान आयु का बढ़ाने वाला भविष्य और उत्तर सहित प्रचेता के पुत्र बाल्मीक ने निर्माण किया और ब्रह्मा ने इस का अनुमोदन किया है। पृ० ३३४ पं० २१।

उत्तर—हम बाल्मीक को भील का लड़का नहीं कहते अपितु भीलनी का लड़का कहते हैं। और यह आप के ग्रन्थों में लिखा है। जैसे कि—

भिल्लिका गर्भ संभूतो बाल्मीकिश्च महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम्॥२१॥

(भारत सार अध्याय ५५)

भाषार्थ—भीलनी के गर्भ से पैदा होकर बाल्मीक महा-

मुनि तप से ब्राह्मण बन गये। इस लिये जाति कारण नहीं है ॥ २१ ॥ जब बाल्मीक भीलनी के पुत्र थे तो फिर बाल्मीक को जन्म से ब्राह्मण कहना जनता की आंखों में धूल झोंकना नहीं तो और क्या है।

४०१ (प्रश्न) वसिष्ठ मित्रावरुण से उर्वशी बिजली में अयोनिज मानसिक पुत्र है। पृ० ३३० पं० २०।

उत्तर—धन्य हो महाराज ! आपने बड़ी ही हिम्मत की जो उर्वशी को बिजली मान लिया। यदि आप उर्वशी का अर्थ बिजली करें तो हमें कोई एतराज़ नहीं। किन्तु यहां पर मित्रावरुण यह दोनों कौन थे उन से बसिष्ठ कैसे पैदा हुए। ज़रा यह बतला तो दिया होता किन्तु आप बतलावें भी क्या। आप के पुराण आप के अनुकूल नहीं पड़ते। देखिये इस कथा को रामायण में इस प्रकारसे लिखा है कि—

'इतनेमें उर्वशी इच्छानुसार घूमती हुई आ निकली। उस रूपवती उर्वशी को फिरते देख कर वरुण कामातुर हो गये। और मैथुन के लिये प्रार्थना की। उर्वशी ने कहा कि आप से पहिले मुझे मित्र ने बुलाया है। वरुण ने कामातुर हो कर कहा कि यह मैं अपना वीर्य घड़े में डालता हूं यदि तू समागम नहीं करती। उर्वशी ने कहा मेरा मन तुम्हारा हो चुका है और शरीर मित्र का है। उर्वशी मित्र के पास गई तो क्रोध में आ-कर मित्र ने कहा कि पहिले मैंने तो बुलाई थी तूने और पति कर लिया। तू दुराचारिणी है। मित्र ने भी अपना वीर्य उसी घड़े में डाल दिया।

कस्यचित्त्वथकालस्य मित्रावरुण संभवः।

वसिष्ठस्तेजसा युक्तो जज्ञे इक्ष्वाकुदैवतम् ॥ ७ ॥
(वाल्मी० उत्तर० स० ५७)

भाषार्थ—कुछ काल के पश्चात् मित्रावरुण से पैदा होने वाला इक्ष्वाकु कुल का देवता तेजस्वी वसिष्ठ पैदा हुआ ॥ ७ ॥ श्रीमान् जी ! उर्वशी का अर्थ बिजली कर के ज़रा इस कथा को सङ्गत करने की कृपा करें। और मित्रावरुण तथा वसिष्ठ के भी और अर्थ करके इन की ऐतिहासिक सत्ता से ही इन्कार करें। वरना इस बात को तसलीम करें कि यहां पर उर्वशी बिजली नहीं अपि तु वेश्या का नाम है।

४०२ (प्रश्न)—वसिष्ठ कभी गणिका के गर्भ से पैदा ही नहीं हुए। पृ० ३३१ पं० ४

उत्तर—निम्न हेतुओं से उर्वशी गणिका ही थी।

(१) उपरोक्त रामायण की कथा में मन वरुण को तथा शरीर मित्र को अर्पण करना वेश्या होने का चिह्न हैं।

(२) घृताची, मेनका रम्भा, पूर्वचित्तिः, स्वयंप्रभा।
उर्वशी, मिश्रकेशीच, दण्डगौरी, वरूथिनी ॥२६॥
गोपाली, सहजन्याच, कुंभयोनिः, प्रजागरा।
चित्रसेना, चित्रलेखा, सहा च, मधुरस्वना ॥३०॥
एताश्चान्याश्च ननृतुस्तत्र तत्र सहस्रशः।
चित्त प्रसादने युक्ताः सिद्धानां पद्मलोचनाः ॥३१॥
महाकटितट श्रोण्यः कम्पमानैः पयोधरः।
कटाक्षहावमाधुर्यैश्चेतो बुद्धि मनोहरैः ॥३२॥
(महा० वन० अ० ४३)

भाषार्थ—इन्द्र के दरबार में घृताची आदि तथा और

भी हज़ारों नाचती थीं। कमल जैसे नेत्रों वाली प्रसन्नता से सिद्ध लोगों के चित्त को प्रसन्न कर रही थीं। ॥३१॥ सुन्दर कटि तथा श्रोणि वाली कांपते हुए स्तनों से आंखों के मधुर कटाक्षों से चित्त बुद्धि मन को हरने वाली चेष्टाओं से युक्त थीं ॥३२॥

इन में उर्वशी का भी होना उसके वेश्यापन का सबूत है।

(३) विभांडकस्य विप्रर्षेस्तपसा भावितात्मनः ।३१।
तस्यरेतः प्रचस्कन्द दृष्ट्वाप्सरसमुर्वशीम् ॥३३॥
(महा० वन० अ० ११०)

भाषार्थ—तप में श्रेष्ठ विप्रों में ऋषि विभांडक का उर्वशी अप्सरा को देख कर वीर्य पात हो गया ॥३३॥

सब को लुभायमान करते हुए घूमना तथा सब के वीर्य पात का कारण तथा तप भंग का कारण होना वैश्यापन का सबूत हैं।

(४) सर्वाप्सरःसुमुख्यासुप्रनृत्यासु कुरूद्वह ।
त्वं किला निमिषः पार्थमामेकां तत्र दृष्टवान् ॥ २८ ॥
त्वत्कृतेऽहं सुरेशेन प्रेषितोवरवर्णिनी ।
प्रियं कुरु महेंद्रस्य मम चैवात्मनश्चह ॥ ३२ ॥
तद्गुणाकृष्टचित्ताहमनङ्गवशमागता ।
चिराभिलषितो वीर ममाप्येष मनोरथः ॥ ३५ ॥
अनावृत्ताश्च सर्वाः स्म देवराजाभिनन्दन।
गुरु स्थाने न मां वीर नियोक्तुंत्वमिहार्हसि ॥ ४२ ॥
(महा० वन० अ० ४६)

भाषार्थ—हे अर्जुन! सब नाचने वाली मुख्य अप्सराओं में से तूने निश्चय मेरे को ही टिकटिकी वांध कर देखा था। ॥ २८ ॥ इसलिये इन्द्र ने तेरे लिये मेरे को भेजा है। तू इन्द्र

को भी खुश कर, मुझे तथा अपने को भी भी प्रसन्न कर ॥ ३२ ॥ तेरे गुणों से मेरा मन आकर्षित होकर मैं काम के वश हो रही हूं। मेरे दिल में भी यह मनोरथ देर से था ॥३५॥ हे इन्द्र, पुत्रार्जुन ! हम सब बेहद आज़ाद हैं। तू मुझे अपने बड़ों के स्थान में न समझ ॥ ४२ ॥

उर्वशी का अर्जुन को भ्रष्ट करने की चेष्टा करना तथा अपने को नंगी आज़ाद कहना वेश्यापन का सबूत है। इन से साबित है कि उर्वशी इन्द्र सभा की नाचने गाने तथा इन्द्र की आज्ञा से ऋषियों का तप भंग करने वाली अप्सरा वेश्या या गणिका थी और वसिष्ठ जी उनके गर्भ से पैदा हुए। जैसा कि—

उर्वशी गर्भ संभूतोवसिष्ठो हि महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम् ॥ २६ ॥

(भारत सार अ० ५५)

भावार्थ—उर्वशी के गर्भ से पैदा होकर महामुनि वसिष्ठ तप से ब्राह्मण बन गये। अतः ब्राह्मण बनने में जाति कारण नहीं। इस से सिद्ध हुआ कि वसिष्ठ जी उर्वशी गणिका के गर्भ से पैदा हुए थे।

४०३ (प्रश्न)—श्रीमद्भागवत में लिखा है कि—

मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगु वसिष्ठोदक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥

मरीची, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ दक्ष नारद ये दश ब्रह्मा के पुत्र हैं। यही बात मनु ने लिखी है। जब वसिष्ठ इस जन्म में ब्रह्मा के अयोनिज पुत्र हैं तो गणिका पुत्र हो ही नहीं सकते ॥ पृ० ३३१ पं० ७।

उत्तर—(१) यहां सृष्टि के आदि में हुए वसिष्ठ नाम ऋषि का विवाद नहीं अपितु इक्ष्वाकुकुल के पुरोहित का विवाद है (नं०) ४०१

(२) भागवत में तो ये दश ब्रह्मा के पुत्र लिखे हैं किन्तु मनुस्मृति में मनु के पुत्र लिखे हैं । जैसे कि—

अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पतीन् प्रजानामसृजं' महर्षीनादितोदश ॥ मनु० । १ । ३४ ॥
मनोर्हैरण्य गर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः ॥ मनु०३ । १९४ ॥
पृथुस्तु विनयाद्राज्यं प्राप्तवान् मनुरेव च ॥ मनु० ७ । ४२॥

मैंने (मनु ने) प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से घोर तप करके प्रजा के पति दश महर्षियों को पैदा किया ॥ ३४ ॥ हिरण्यगर्भ मनु के ये मरीचि आदि दश पुत्र थे ॥ १९४ ॥ पृथु ने और मनु ने विनय से राज्य को प्राप्त किया ॥ ४२ ॥

कहिये भागवत का लेख सत्य है या मनु का । और मनु जी तो राजा अर्थात् क्षत्रिय थे उनके पुत्र वसिष्ठ ब्राह्मण बन गये इससे भी कर्मानुसार वर्णव्यवस्था सिद्ध है अतः आप के लेखानुसार ही हमारा पक्ष सिद्ध, तथा आप का ग़लत है ।

४०४ (प्रश्न) श्रीमद्भागवत के स्कंध ९ अध्याय १३ में लिखा है कि वसिष्ठ जी निमि के शाप से मर गये । मरने के पीछे दूसरी बार—

मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥६॥

मित्र वरुण के सकाश से वसिष्ठ ने उर्वशी में जन्म धारण किया । पृ० ३३१ पं० १८

उत्तर—भागवत का भी खूब प्रमाण दिया। जिस से अपना पक्ष स्वयं ही खण्डित कर दिया। आप के प्रमाण से यह सिद्ध हो गया कि आदि सृष्टि वाले वसिष्ठ और थे वह निमि के शाप से मरे तथा उर्वशी के पुत्र वसिष्ठ दूसरे थे।

कहिये महाराज! मित्र तथा वरुण से दोनों से एक उर्वशी में वसिष्ठ कैसे पैदा हुए, क्या दो पुरुषों से एक स्त्री में सन्तान सम्मिलित (मुशतरका) पैदा हो सकती है।

उर्वशीं तरुणीं दृष्ट्वा चस्कंभोभौबभूवतुः।
मित्र कुम्भे जहौ रेतो वरुणोऽपि तथा जले ॥२४॥
ततः कुम्भात्समुत्पन्नो वसिष्ठो मित्र सम्भवः।
अगस्त्यो वरुणाज्जातो बडवाग्नि समद्युतिः ॥२५॥
(शिव० उमा० अ० ४)

जवान उर्वशी को देख कर मित्र तथा वरुण का वीर्य पात होगया। मित्र ने अपना वीर्य घड़े में डाल दिया तथा वरुण ने जल में डाल दिया ॥२४॥ तब घड़े से मित्र का पुत्र वसिष्ठ पैदा हुआ तथा जल से वरुण का पुत्र अग्नि समान तेजस्वी अगस्त्य पैदा हुआ।

कहिये महाराज यहां पर दोनों की हिस्सा पत्ति गुम है। और दोनों का वीर्य भी एक ही स्थान घड़े में नहीं डाला गया। अपितु एक का घड़े में दूसरे का जल में डाला गया। एक से वसिष्ठ तथा एक से अगस्त्य पैदा हुए, अतः मित्रा वरुण दोनों से वसिष्ठ की पैदाइश ग़लत हो गई। फिर रामायण में वरुण ने अपना वीर्य घड़े में डाला लिखा है तथा यहां जल में डालना लिखा है। अतः पुराणों की कथायें परस्पर विरोध होने से मिथ्या ही हैं। वास्तव में बात यह है कि उर्वशी गणिका थी

उस में न मालूम किस से गर्भ ठहरा। जिस से वसिष्ठ पैदा हुए। वह तप से ब्राह्मण बन गये। जैसा कि—

वसिष्ठ उर्वश्याम् (वज्र सूची उपनिषद)

वसिष्ठो गणिकात्मजः ॥२३॥ (भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२)

वसिष्ठ उर्वशी में पैदा हुए ॥ वज्र ॥ वसिष्ठ गणिका के पुत्र थे। भविष्य कहिये। महाराज! अब तो वसिष्ठ के गणिका पुत्र होने में संदेह नहीं। अच्छा एक बात और तो बताइये कि उर्वशी का क्या वर्ण था तथा मित्रा वरुण का क्या वर्ण था जिस से जन्म से वसिष्ठ ब्राह्मण हुए।

आदित्याः क्षत्रियास्तेषां विशश्च मरुतस्तथा ॥ २३ ॥
अश्विनौ तु स्मृतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समा स्थितौ।
स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः ॥ २४ ॥
इत्येतत् सर्वं देवानां चातुर्वर्ण्यंप्रकीर्तितम् ॥ २५ ॥

(महा० शान्ति० अ० २०८)

आदित्य क्षत्रिय। मरुत वैश्य। अश्विनी कुमार शूद्र। तथा आंगिरस देवता ब्राह्मण हैं। अब उर्वशी के वर्ण का तो पता ही नहीं और मित्र नथा वरुण, अग्नि तथा जल का नाम होने से आदित्य हैं। वे क्षत्रिय हुए। अब उनसे यदि वसिष्ठ पैदा हुए तो भी जन्म से ब्राह्मण नहीं।

४०५ (प्रश्न)—यह कथा पुराण में ही नहीं किंतु वेद में भी है। देखिये "विद्युन्न या पतन्तीत्यादि" मंत्र तथा इस पर निरुक्त दैव० अ० ११ खं० ३६ में उर्वशी को देवता मान कर दीर्घायु की प्रार्थना की है। जब उरुवशी मध्य स्थानीय देवता है। तो फिर इस को गणिका मानना शास्त्र अनभिज्ञता है या नहीं। पृ० ३३२ पं० १२

उत्तर—वेदों में इतिहास और कथायें नहीं होतीं। क्यों कि वेद अनादि ईश्वर का ज्ञान हैं। इतिहास किसी के जन्म के पश्चात् लिखा जाता है, पूर्व नहीं। अतः वेदों में किसी मनुष्य का इतिहास या कथा नहीं है। और न ही वसिष्ठ या उसकी पैदाइश का वर्णन है। मध्य स्थानी देवता "वायुर्वेन्द्रोवान्तरिक्ष स्थानः। निरु० अ० ७ खं० ५" वायु तथा इन्द्र अर्थात् बिजली हैं॥ जिस को वेद ने उर्वशी के नाम से वर्णन किया है। यहां वसिष्ठ की माता उर्वशी का वर्णन नहीं है। अपितु "उर्वभ्य-श्नुते" बहूदकं व्याप्नोति" जो बहुत पानी में व्यापक है। अतः बिजली को उर्वशी कहते हैं। उसी का इस वेद मंत्र में वर्णन है। जैसे—

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः॥१०॥
(ऋ० मं० १० सू० ९५)

निरुक्त परतः प्रमाण है। अतः उसका ऐतिहासिक पक्ष वेद विरुद्ध होने से प्रमाण के योग्य नहीं है। वेद मंत्र का अर्थ इस प्रकार है—"जब विद्युत् होकर गिरती हुई जो चमकती है उत्पन्न हुआ है उससे मनुष्यों के लिये हितकारी शुभ जन्म वाला जल, इस प्रकार जल और जल से अन्न द्वारा वह बिजली दीर्घ आयु बढ़ाती है॥१०॥ कहिये महाराज! इस वेद मंत्र में वसिष्ठ और उसकी पैदाइश का वर्णन कहां है।

४०६ "उतासि मैत्रा वरुणो" इस मन्त्र का तथा उसके निरुक्त अ० ५ खं० १४ में उस उर्वशी अप्सरा से वसिष्ठ की उत्पत्ति वेद ने बतलाई है। पृ० ३३३ पं० २१

उत्तर—श्रीमान् जी ! वेदों में मनुष्यों के इतिहास का वर्णन नहीं होता। अपितु मनुष्य वेदों को देख कर अपने नाम रख लिया करते हैं। जो निरुक्त वेदों में इतिहास बतलाता हो वह वेद विरुद्ध होने से मिथ्या तथा अप्रमाण है। इस वेद मन्त्र में वसिष्ठ तथा वसिष्ठ की माता उर्वशी का वर्णन नहीं है। अपितु वसिष्ठ से जीवात्मा तथा उर्वशी से प्रकृति का वर्णन है। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार से हैं।

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजातः।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वा ददन्त॥११॥
(ऋ० मं० ७ सू० ३३)

भावार्थ—हे देह में वसे प्राणों में सर्व श्रेष्ठ जीव! और तू मित्र और वरुण प्राण और अपान दोनों का स्वामी है। हे बुद्धिशील जीव! तू अतिकान्तिमती तैजस सात्विक विकार से युक्त वा "उरु" अतिविस्तृत व्यापक प्रकृति के ऊपर मनन शक्ति द्वारा भोक्ता रूप से अध्यक्ष होता है। समस्त किरणों के समस्त शक्तियों के स्वामी सूर्यवत् तेजस्वी महान् परमब्रह्म परमेश्वर से प्रदत्त वीर्य के समान तुझ को समस्त दिव्य शक्तियां पुष्टिकारक तत्व में धारण करती हैं॥११॥

आपको वेद में यौगिक शब्द देख कर रूढ़ी नामों वाले व्यक्तियों की कल्पना नहीं करनी चाहिये।

४०७ (प्रश्न)—हम वसिष्ठ को गणिका पुत्र मानें तो कैसे मानें। पृ० ३३४ पं० २०

उत्तर—आप अपने ग्रन्थों के लेखानुसार वसिष्ठ को गणिका पुत्र मानने पर मजबूर हैं। देखिये—

गणिका गर्भ संभूतो वसिष्ठश्च महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेनकारणम् ॥२९॥
(भविष्य० ब्राह्म० अ० ४२)

भाषार्थ—कंजरी के गर्भ से पैदा होकर महामुनि वसिष्ठ जी तप से ब्राह्मण बन गये । अतः ब्राह्मण बनने में संस्कार कारण नहीं हैं ॥२६॥

आशा है कि इतने स्पष्ट प्रमाण की मौजूदगी में आपको वसिष्ठ के गणिका पुत्र होते हुए तप से ब्राह्मण बनने में अब कोई संदेह न रहेगा ।

स्वामी दयानन्द और वर्ण व्यवस्था

४०८ (प्रश्न)—स्वामी दयानन्द जी वर्ण व्यवस्था जन्म से मानते हैं। पृ० २२ पं० १३

उत्तर—आपका यह लिखना क़तई ग़लत है। क्योंकि ऋषि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश की समाप्ति पर अपने मन्तव्यों को लिख दिया है। ताकि आप जैसी कुमाश के लोग स्वामी जी के नाम से ग़लत बयानी करके धोका न दे सकें। चुनांचे वर्णव्यवस्था के बारे में ऋषि इस प्रकार से लिखते हैं कि—

१६—"वर्णाश्रम" गुणकर्मों की योग्यता से मानता हूं॥

४०९ (प्रश्न)—सत्यार्थप्रकाश पृ० ३८८ में लिखा है कि "(प्रश्न) जाति भेद ईश्वर कृत है या मनुष्य कृत (उत्तर) ईश्वर कृत और मनुष्य कृत भी जाति भेद है (प्रश्न) कौन से ईश्वर कृत और कौन से मनुष्य कृत (उत्तर) मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जल जन्तु आदि जातियां परमेश्वर कृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियां, वृक्षों में पीपल, वट, आम्रादि, पक्षियों में हंस, काक, वकादि, जल जन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जाति भेद हैं वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अन्त्यज जाति भेद ईश्वर कृत हैं"

यहां पर स्वामी जी ने मनुष्य जाति में ब्राह्मणादि जातियां ईश्वर कृत मानी हैं। ईश्वर कृत कार्य्य में कोई तबदीली नहीं कर सकता इस लिये तुम्हारा लगाया गुण कर्म स्वभाव का अड़गा निष्प्रयोजन है। पृ० २२ पं० १५

उत्तर—आपने स्वामी जी का अधूरा पाठ उद्धृत करके धोखा देने की अनधिकार चेष्टा की है। जो पाठ आप ने दिया है। उससे आगे सत्यार्थप्रकाश में पाठ इस प्रकार से है कि—

"परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणादि की सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेष जाति में गिनते हैं। जैसे पूर्ण वर्णाश्रम व्यवस्था में लिख आये वैसे ही गुण कर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी अवश्य है। इस में मनुष्य कृतत्व उनके गुण कर्म स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि वर्णों की परीक्षा पूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानों का काम है"

अब उस पाठ से आगे इस पाठ को मिलाकर पढ़ें तो आपको स्पष्ट ज्ञान हो जायगा कि स्वामी जी का अभिप्राय यह है कि "किसी जीव का ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रादि के घर पैदा होना तो पूर्व जन्म के कर्मानुसार ईश्वर कृत है। परन्तु मनुष्य का काम करने में स्वतंत्र होने के कारण श्रेष्ठ कर्म करके शूद्रादि से ब्राह्मणादि बन जाना अथवा निकृष्ट कर्म करके ब्राह्मणादि का शूद्रादि बन जाना यह मनुष्य कृत है"। ईश्वर कृत कार्य जो मनुष्य शरीर है उसमें हम तबदीली नहीं कर सकते किंतु गुण कर्म स्वभाव की उत्कृष्टता तथा निकृष्टता से वर्ण परिवर्तन कर सकते हैं।

४१० (प्रश्न)—सत्यार्थप्रकाश पृ० २८ में लिखा है कि—

"६ वें वर्ष के आरंभ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य्य कुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों वहां लड़के

लड़कियों को भेज दें। और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये बिना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें"

यहां पर स्वामी जी ने जाति भेद वर्ण व्यवस्था को जन्म से माना है द्विजों को आचार्य्यकुल में प्रवेश करवाया है और शूद्रों को आचार्य्य कुल में फटकने नहीं दिया, उनके पढ़ने के लिये गुरुकुलों की व्यवस्था लिख दी। द्विजों के लड़कों का उपनयन करना लिखा और शूद्रों के लड़कों के उपनयन का का निषेध किया, यह बात सनातन धर्म मानता है पृ० २२ पं० २५ (उत्तर) स्वामी जी की परिभाषा में आचार्य्यकुल तथा गुरुकुल एक ही वस्तु हैं। जैसा कि स्वामी जी के लेख से पता लगता है। स्वामी जी ने चतुर्थ समुल्लास के आरंभ में "गुरुणा-नुमतः" इस का अर्थ करते हुए लिखा है कि—

"गुरु की आज्ञा ले, स्नान कर गुरुकुल से अनुक्रम पूर्वक आके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अपने वर्ण अनुकूल सुन्दर लक्षण युक्त कन्या से विवाह करे।"

आचार्य्यकुल में दाखिल करना तथा गुरुकुल से निकलना सिद्ध करता है कि आचार्य्यकुल तथा गुरुकुल एक ही चीज़ है दो नहीं। रही बात यज्ञोपवीत की जब तक बच्चे माता पिता के अधीन हैं। उनके संस्कार माता पिता के वर्णानुकूल होते हैं। जब वे कर्म करने में समर्थ स्वतन्त्र हो जाते हैं तब उन के संस्कार उन के गुण कर्मानुसार होते हैं। अतः द्विजों के बालकों को उन के माता पिता के वर्णानुसार यज्ञोपवीत देकर तथा शूद्रादि के बालकों को उन के माता पिता के वर्णानुसार बिना यज्ञोपवीत के ही गुरुकुल में प्रविष्ट किया जाता है। फिर गुरुकुल

में दाखिल होने के पश्चात् आचार्य्य सब बालकों की योग्यता को देख कर पुनः यज्ञोपवीत देता है। शूद्रादि के जो बाल विद्या पढ़ने के योग्य होते हैं उन को यज्ञोपवीत देकर वेदारंभ संस्कार करवाता है। और द्विजों के जो बालक विद्या पढ़ने में बुद्धिहीन साबित होते हैं उनको गुरुकुल से निकाल देता है। जैसे कि स्वामी जी ने तृतीय समुल्लास में "कन्यानां संप्रदानं" श्लोक के नीचे लिखा है कि—

"प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्य्यकुल में हो" इसका वही प्रयोजन है जो हम ने ऊपर वर्णन किया है।

यदि सनातन धर्म भी शूद्रादि के बालकों को गुरुकुल में दाखिल करना उन को वेदादि की शिक्षा देना तथा उन की योग्यतानुसार यज्ञोपवीत देना स्वामी जी की भांति मानता है तो मुबारिक हैं, देश के भाग्य जाग पड़े।

४११ (प्रश्न)—सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३८ में लिखा है कि—

'ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति। राजन्यो द्वयस्य। वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्ज मनुपनीतमध्यापयेदित्येके' यह सुश्रुत के सूत्र स्थान के दूसरे अध्याय का वचन है। ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, क्षत्रिय क्षत्रिय तथा वैश्य वैश्य एक वैश्य वर्ण को यज्ञोपवीत करा के पढ़ा सकता है। और जो कुलीन शुभ लक्षण युक्त शूद्र हो तो उस को मन्त्र संहिता छोड़ कर सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उस का उपनयन न करे। यह मत अनेक आचार्य्यों का है।

यहां स्वामी जी ने शूद्रों को उपनयन करने तथा वेद पढ़ाने का निषेध किया है।

उत्तर—स्वामी जी ने स्पष्ट लिख दिया है कि 'यह मत अनेक आचार्यों का है' इस से साबित है कि यह स्वामी जी का अपना मत नहीं है। स्वामी जी का अपना मत यह है कि—

'यथेमां वाचमित्यादि। यजु० २६। २'... ..

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्री आदि और शूद्र आदि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुना कर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों"

स्वामी जी ने यह प्रमाण इस लिये दिया है कि "क्षत्रिय तथा वैश्य को यज्ञोपवीत देने तथा पढ़ाने का और शूद्र को विद्या पढ़ने का हक़ तो सनातन धर्म के भी अनेक आचार्य मानते हैं"

४१२ (प्रश्न)—स्वामी जी संस्कार विधि में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन ही वर्णों का उपनयन लिखते हैं। और तीन ही वर्णों के लिये उपनयन के आरम्भ में क्रम से पयोव्रत यवागु आमिक्षा ये तीन व्रत बतलाते हैं। अपने इस सिद्धान्त की पुष्टि में गृह सूत्र मनु और शतपथ के प्रमाण भी दिये हैं। स्वामी जी के मत में तीन ही वर्णों का उपनयन संस्कार होता है शूद्र का नहीं। उपनयन में वर्ष संख्या एवं भिन्न २ प्रकार के पृथक् २ व्रत जाति को जन्म से सिद्ध करते हैं। नामकरण संस्कार में भी स्वामी जी ने ब्राह्मण बालक का नाम शर्मा और

क्षत्रिय बालक का नाम वर्म्मा तथा वैश्य के बालक के नाम के अन्त में गुप्त लगा कर नाम रखना लिखा है। ११ दिन के बच्चे की जाति गुण कर्म स्वभाव से कभी हो नहीं सकती। नाम रखने में वर्ण व्यवस्था जन्म से ही है। सनातन धर्मी इस को प्रमाण मानते हैं। पृ० २३ पं० १८

उत्तर—जिस बालक की माता गुण कर्म स्वभावानुसार पूरे तौर से ब्राह्मणी हो और पिता गुण कर्मानुसार पूरे तौर से ब्राह्मण हो और ब्राह्मण के ढंग से ही उसके संस्कार किये जायें तो नव्वे प्रतिशतक ऐसे बालक के ब्राह्मण ही बनने की संभावना होती है। हां दशप्रतिशतक यह संभावना भी है कि वह बालक ब्राह्मण के कर्मों से हीन होकर शूद्र बन जावे। और जिस बालक की माता पूरे तौर से शूद्र तथा पिता भी पूरे तौर से शूद्र हो और उस का पालन पोषण भी शूद्रों के ही ढंग से हुआ हो तो नव्वे प्रति शतक ऐसे बालक के शूद्र ही बनने की संभावना है। हां, दश प्रति शतक उस को हक हासिल है कि वह ब्राह्मणादि बन सके। बालक चूंकि माता पिता के अधीन होते हैं, कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं होते अतः उनके संस्कार भी नाम करणादि से गुरुकुल प्रवेश तक माता पिता के अनुकूल ही होते हैं। और उन की भावी संज्ञा को लक्ष्य में रख कर ब्राह्मणादि के बालकों के शर्म्मादि नाम रक्खे जाते हैं। तथा ब्राह्मणादि के बालकों का उपनयन करके तथा शूद्रादि के बालकों को बिना उपनयन के गुरुकुल में दाखिल कर दिया जाता है। गुरुकुल में गुरु उन सब बच्चों के उन की योग्यतानुसार उपनयन करवा देता है। और विद्या पूरी होने पर परीक्षा

महर्षि दयानन्द मार्ग, उ